योऽनूचानः स नो महान्
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर

पुस्तकालय

पुस्तक संख्या ....

वर्गीकरण संख्या ....

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर

परिग्रह

वर्गीकरण सं. ....

पुस्तक सं. 10,371 दिनाङ्क ....

यह पुस्तक नीचे अङ्कित तिथि या उससे पूर्व लौटा दी जानी चाहिये। यदि पुस्तक निर्धारित तिथि से अधिक समय तक पाठक अपने पास रखेंगे तो 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क देय होगा।

योऽनूचानः स नो महान्
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर

पुस्तकालय

पुस्तक संख्या ....

वर्गीकरण संख्या ....

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
क्रमांक

श्री मधुसूदन सरस्वती प्रणीतम्
गोपालविलास महाकाव्यम्
समीक्षोपेतम्

समीक्षक :
डा० चन्द्रदत्त वत्स
एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रथम संस्करण
१०००

विक्रमाब्द
२०४५

भारतीय शासन के मानव संसाधन विकास मन्त्रालय द्वारा प्रदत्त
आर्थिक सहायता से प्रकाशित

20-1-89

प्रकाशक :
कृष्णा प्रकाशन :
२२ मानसरोवर सिविललाइन्स (मेरठ)

● सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मूल्य : ३७ रुपये मात्र

मुद्रक :
देव प्रिण्टर्स
खत्ता रोड, शाहपीर गेट; मेरठ।

कृतज्ञतापूर्वक!
ह० [illegible]
२०-५-८९

प्राक्कथन

हस्तलेखन द्वारा साहित्य का प्रस्तुती करण भारतीय मनीषियों की अति प्राचीन परम्परा रही है। इसीलिये आज भी भारत का प्राचीन साहित्य पांडुलिपियों के रूप में ही प्राप्त होता है। क्योंकि हमारे पूर्वजों ने अपने सम्पूर्ण वाङ्मय को पाण्डुलिपियों में संरक्षित कर दिया था। इनमें कुछ अनुपलब्ध हैं तथा कुछ इतिहास के पृष्ठों में नाम मात्र को ही लिखी मिलती हैं। यह प्रस्तुत गोपाल-विलास—महाकाव्य भी एक ऐसी ही पाण्डुलिपि के रूप में दौराला गांव के एक ब्राह्मण परिवार से उपलब्ध हुआ है। जो अद्यावधि अप्रकाशित है। इसके अन्त में इसके रचयिता का नाम श्री मधु—सूदन सरस्वती दिया हुआ है जो अद्वैत वेद्वान्त के जाने माने प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान एवं श्री कृष्ण के अनन्य भक्त हुए हैं। इसलिये भी मैं इस रचना की ओर अधिक आकृष्ट हुआ।

इसे प्रकाश में लाने के लिये अन्तर्राष्ट्रिय ख्याति प्राप्त विद्वान श्री गणेश दत्त जी के निर्देशन में मैंने पी-एच० डी० उपाधि हेतु इस पर दस अध्यायों में विभक्त एक विस्तृत व्यापक समीक्षात्मक निबन्ध मेरठ विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया।

इसके प्रथम अध्याय में इस प्रस्तुत पाण्डुलिपि का परिचय दिया गया है। द्वितीय अध्याय में इसके कर्ता एवं इसके काल का निर्णय किया गया है। तृतीय अध्याय में इसकी कथा वस्तु का विवेचन हुआ है तथा चतुर्थ में इसके वर्ण्य विषय पर प्रकाश डाला गया है। पंचम अध्याय में इसके कलापक्ष को और षष्ठ अध्याय में इसके भाव पक्ष को प्रस्तुत किया है। सप्तम अध्याय में इसके दार्शनिक एवं आध्यात्मिक तथा अष्टम अध्याय में इसके सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों का निर्धारण हुआ है। नवम अध्याय में संस्कृत साहित्य की कृष्ण काव्य परम्परा में गोपाल विलास का स्थान निश्चत किया गया है। दशम अध्याय में सम्पूर्ण निबन्ध को उपसहृत किया है।

श्रृङ्गार के माध्यम से अध्यात्म का सन्देश देने वाली इस प्रकार की रचना से मेरा प्रथम परिचय था। इसके प्रौढ़भाव पक्ष एवं उत्कृष्ट कला पक्ष का अध्ययन मैंने अपने परम पूज्य गुरू देव विद्वदग्रगण्य कविरत्न श्री प्रभुदत्त श्री स्वामी के श्री चरणों में बैठकर किया है। उन्ही की असीम अनुकम्पा से इस रचना को मैं अपनी अल्प बुद्धि से जितना भी हृदयस्थ कर सका हूं उसे ही लिपिबद्ध कर सहृदय विद्धज्जनों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूं

इस पाण्डुलिपि का एक चौथाई भाग अस्पष्ट एवं अशुद्ध था। अत: अपने

अध्ययन के लिये इसकी शुद्ध प्रति तैयार करने में एकवर्ष लगा। इसके लगभग वीस श्लोक आजभी अस्पष्ट हैं। इसपांडुलिपि की दो प्रतियां अनूप संस्कृत पुस्तकालय लाल गढ़ पैलेस वीकानेर में सुरक्षित है। इन पाण्डुलिपियों से वहीं जाकर मैंने अपनी पाण्डुलिपि के कुछ श्लोकों को शुद्ध करने में सहायता ली है।

इस निवन्ध को पूर्ण करने में मैंने जिन ग्रन्थों से सहायता ली है मैं उनका ऋणी हूं अतः उन रचयिताओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

परंपूज्य ज्योतिष्पीठाधीश श्री स्वरूपानन्द जी महाराज ने इस रचना को जहां तहां से देखकर अपना पद्यमय आशीर्वाद प्रदान किया है इसके लिये मैं उनका अनुग्रहीत हूँ।

अनन्त श्री विभूपित श्री प्रकाशानन्द श्री महाराज महामण्डलेश्वर जगद्गुरु आश्रम कनखल ,परमपूज्य, जगद्गुरु शंकराचार्य पुरी, परमादरणीय श्री करपात्री जी महाराज, डा० सुनीत कुमार चटर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय, श्री सङ्गमलाल जी दर्शन विभागाध्यक्ष प्रयाग विश्वविद्यालय डा० आर. एन. दाण्डेकर भाण्डारकर शोध संस्थान पूना तथा एशियाटिक सोसायटी के सचिवएस० चौधरी आदि महानुभावों ने समय समय पर अपना अमूल्य सहयोग देकर मेरा पथ प्रदर्शन किया है। उनके प्रति मैंश्रद्धावनत हूँ।

विदुषामनुचरः—चन्द्र दत्त वत्स

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय पृष्ठ

विषय प्रवेश १–४

द्वितीय अध्याय

(क) गोपाल विलास का कर्ता ५–८

(ख) गोपाल विलास का काल ८–२५

(ग) गोपाल विलास की प्रमाणिकता

(i) गोपाल विलास और श्री भगवद्भक्ति रसायन २५–३४

(ii) गोपाल विलास और गीता की गूढार्थ दीपिका टीका ३४–३६

(iii) गोपाल विलास और भागवत के प्रथम श्लोक की टीका ३६–३९

(iv) गोपाल विलास और आनन्द मन्दाकिनी ४०–४५

(v) श्री मधुसूदन सरस्वती और गोपाल विलास ४६–५१

तृतीय अध्याय

गोपाल विलास की कथा वस्तु ५२–६२

(क) कथावस्तु का आधार ६३–६७

(ख) मौलिकता परिवर्तन और परिवर्धन ६७–७२

(ग) पूर्ववर्ती काव्यों का प्रभाव ७२–८५

चतुर्थ अध्याय

गोपाल विलास का वर्ण्य विषय ८६–८८

(क) श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन ८८–९९

(ख) राधा वर्णन १००–११६

(ग) रास वर्णन ११६–१२६

(घ) प्रकृति चित्रण १२६–१४६

पञ्चम अध्याय

गोपाल विलास का कलापक्ष

(क) गोपाल विलास में प्रयुक्त काव्य विद्या १४७–१५८

(ख) गोपाल विलास में रसपरिपाक १५८–१८४

(ग) गोपाल विलास में अलंकार योजना १८४–१९३

(घ) गुण दोष रीति विवेचन १९४–२०६

(ङ) छन्दो विधान २०७–२०९
(च) भाषा वैभव २०९–२१२

षष्ठ अध्याय

गोपाल विलास का भाव पक्ष
गोपाल विलास में भक्तितत्व २१३–२१४
(१) निर्गुण भक्ति २१४–२२०
(२) सगुण भक्ति २२०–२२३

सप्तम अध्याय

गोपाल विलास में दार्शनिक एवं आध्यात्मिक तत्व
(क) दार्शनिक तत्व २२४–२३३
(ख) आध्यात्मिक तत्व २३३–२४१

अष्टम अध्याय

गोपाल विलास का सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यांकन २४२–२५७

नवम अध्याय

कृष्ण काव्य परम्परा में गोपाल विलास का स्थान २५८–२६८

दशम अध्याय

उपसंहार २६९–२७२
गोपाल विलास महाकाव्य २७३–३६८
प्रथम सर्ग २७३–२८५
द्वितीय सर्ग २८६–२९३
तृतीय सर्ग २९४–३०४
चतुर्थ सर्ग ३०५–३११
पंचम सर्ग ३१२–३१९
षष्ठ सर्ग ३२०–३३०
सप्तम सर्ग ३३१–३३८
अष्टम सर्ग ३३९–३४४
नवम सर्ग ३४५–३५०
दशम सर्ग ३५१–३५८
एकादश सर्ग ३५९–३६८

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य
श्री स्वरूपानन्द सरस्वती स्वामिवर्याणाम्
ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रमः
उत्तराखण्ड

॥ श्रीज्योतिरीश्वरो विजयते ॥ ॥ श्रीः ॥

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्यपदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणयमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध्यष्टाङ्गयोगानुष्ठाननिष्ठतपश्चर्य्याचरणचक्रवर्त्यनादिगुरुपरम्पराप्राप्तवैदिकदर्शनमतस्थापनाचार्य्यसकलनिगमागमसारहृदयवैदिकमार्गप्रवर्तकसर्वतन्त्रस्वतन्त्रचातुर्वर्ण्यशिक्षकश्रीमन्महाराजाधिराजगुरुभूमण्डलाचार्य्य जगद्गुर्वनन्तश्रीविभूषितश्री मदाद्यशङ्कराचार्य्यभगवत्पादपद्म भृङ्गायमाना. श्रीमदनेकशासननिरङ्कृतान्तेवासिजनगनस्तमस्तोना: सर्वसार्वभौमविश्वजनीन-सनातनधर्मसंरक्षणबद्धपरिकरा: परापरविद्याविद्योतितान्तःकरणाः समस्तसम्प्रदायसमन्वयसाधनदत्त चित्ता विविधविरुदावलिविराजमानमानोन्नता अलकनन्दागङ्गातीरनिवास्युत्तराम्नायश्रीमज्ज्योतिष्पीठाधीश्वराः श्रीमत्स्वरूपानन्दसरस्वतीस्वामिवर्य्या विजयन्तेतराम् ।

पत्रांक ....

दिनांक आश्विन कृ. ... १० / ...
वि. स. २०५५ गुरुवार

श्रीचन्द्रदत्तवत्सेन मधुसूदन निर्मितम् ।
भक्ति प्रचुर माहात्म्य बृंहितं काव्यमुत्तमम् ॥

श्री गोपाल विलासाख्यमाश्रित्य सुविवेचितम् ।
निवासकाल विषयं विपुलं सुसमीक्षणम् ॥

तत्र चैतस्य प्रतिभा-चातुर्मुख्यं प्रगल्भते ।
अध्येतॄणां विवेक्तॄणां हार्दानन्दाय जायताम् ॥

शुभाशीराशिभिर्नूनं जनोऽयं प्रतिनन्द्यते ।
कृतिरेषा तु सर्वेभ्यो हिताय विजयः सदा ॥

स्वरूपानन्द सरस्वती

१ | विषय प्रवेश

(क) गोपालविलास की विशेषता

प्रत्येक रचना अपने कुछ विशिष्ट गुणों के कारण ही पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं और अध्ययन की प्रेरणा देती है। पाण्डुलिपि के रूप में प्राप्त यह गोपालविलास महाकाव्य भी अपने कतिपय असाधारण गुणों से मंडित एक उच्चकोटि की अप्रकाशित रचना है। इसके प्रणेता श्रीमधुसूदन सरस्वती हैं। इस महाकाव्य में कृष्ण भक्ति का स्रोत अजस्त्रप्रवाहित हो रहा है। इसके द्वारा कवि ने श्रृंगार के माध्यम से भक्ति का संदेश दिया हैं। यह काव्य परमार्थ का प्रेरणा स्रोत है। इसका साहित्यिक सौन्दर्य दर्शनीय है। श्री सरस्वतीजी के साधना काल को निश्चित करने में पर्याप्त सहायताप्रदान करता है।

१. गोपालविलास एक अप्रकाशित रचना है—

यह एक अप्रकाशित रचना है, अब तक यह मेरी ही मान्यता थी, जिसका न कोई अर्थ है न मूल्य। अतः मैंने अपनी इस धारणा को पुष्ट करने के लिये "चौखम्बा संस्कृत सीरीज काशी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, पटना तथा दिल्ली, संस्कृत पुस्तकालय बड़ा बाजार, कलकत्ता, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई जैसे संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन करने वाले संस्थानों से पत्र व्यवहार किया, मदरास, प्रयाग, कलकत्ता, अलीगढ़ बनारस, मेरठ आदि विश्वविद्यालयों के संस्कृत विभागाध्यक्षों से पत्राचार द्वारा ज्ञात किया किन्तु गोपालविलास के प्रकाशन का का सूत्र कहीं से प्राप्त नहीं हुआ। इससे यही सिद्ध होता है कि यह रचना अभी तक अप्रकाशित हैं।

२. श्री मधुसूदन सरस्वती से सम्बद्ध रचना—

इस महाकाव्य के रचयिता प्रख्यात दार्शनिक एवं प्रसिद्ध कृष्ण भक्त श्रीमधुसूदन सरस्वती हैं। भारतीय विद्वत् समाज उन्हें केवल दार्शनिक जगत् के जाज्वल्यमान ज्योतिपुंज नक्षत्र के रूप में ही जानता आया हैं। एक शास्त्रार्थ महारथी एवं प्रचण्ड दार्शनिक की ऐसी सरस श्रृंगार परक आध्यात्मिक रचना देखकर अवश्य उत्सुकता जागृत होती है। उन्होंने परम्परागत आधार पर प्रत्येक सर्ग के अन्त में और इस महाकाव्य के समापन पर अपना परिचय दिया है।

३. कृष्णभक्ति से ओत-प्रोत रचना—

यह रचना भागवत के दशम स्कन्ध के तैतीसवें अध्याय तक की कथा का

महाकाव्यीय संस्करण हैं। भागवत के पर ब्रह्म परमेश्वर प्रभु गोपाल इस महाकाव्य के नायक बने हुये हैं। इस महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में जहां कृष्ण से वियुक्त राधा की व्यथा पूर्ण कथा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण मिलता है वहाँ उसका सप्तम सर्ग अद्वैत भक्ति का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसमें राधा के वियोग से व्याकुल हृदय माधव गोपाल की दयनीय दशा के दर्शन होते हैं। इस विरह व्यथा से व्यथित कृष्ण की मानसिक स्थिति का ऐसा हृदयग्राही करुणापूर्ण एवं मार्मिक चित्रण संस्कृत साहित्य में अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। इस काव्य का कृष्णभक्ति में अभिसिक्त दार्शनिक वैभव पाठकों को बरबस अध्ययन के लिये आमन्त्रित करता है।

४. श्रृंगार के माध्यम से भक्ति का संदेश वाहक—

अपने इस महाकाव्य के माध्यम से कवि ने अध्यात्म की वह पवित्र पयस्विनी प्रवाहित की है जिसका गहन अवगाहन एवं एकाग्र चिन्तन करने के पश्चात् पाठक स्थान-स्थान पर एक वर्णनातीत अलौकिक लोक में पहुँच कर अतिदिव्य अनुभूतियों का रसास्वादन कर आनन्दातिरेक से अभिभूत हो उठता है। अपनी इस श्रृंगार परक रचना के आध्यात्मिक पक्ष को पुष्ट करते हुए सरस्वती जी स्वयं कहते हैं कि "मद्वाणी सरसीविचित्र सुरसानालीकलीलावती" अर्थात् मेरी यह "गोपाल विलास रूप वाणी आस्वादन में सुरसा है, देखने में विचित्र है क्योंकि श्रृंगार से अध्यात्म की ओर ले जाती हैं, तथा यह अलीक लीलाओं वा मिथ्या कल्पनाओं का अपलाप नहीं है। कवि के ही शब्दों में "तथाप्येतत्काव्यं परिचरति विष्णोः पदम्" अर्थात् यह महाकाव्य इसका अनुशीलन करने वालों को भगवान विष्णु की परम पावनी भक्ति प्रदान करता है। जो मानव जीवन का परम लक्ष्य है और चरम पुरुषार्थ है। कवि को श्लेष एवं श्लिष्ट अभिव्यक्ति में अत्यधिक आसक्ति है श्रृंगार रस के माध्यम से अद्वैत भक्ति के आध्यात्मिक लोक का दर्शन कराया है। इस प्रकार के अद्वितीय महाकाव्य का अध्ययन करने के लिये प्रत्येक सुरुचिसम्पन्न सहृदय साहित्यिक तत्वान्वेषी अवश्य लालायित होगा।

५. परमार्थ का प्रेरणास्त्रोत—

इस महाकाव्य की रचना किसी सम्राट शासक अथवा किसी अन्य मर्त्य की प्रशास्ति में नहीं की गई है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में कवि इसकी पुष्टि करते हुए कहते हैं कि मैंने इस महाकाव्य की रचना किसी भौतिक लक्ष्य की सिद्धि के लिये अथवा किसी मर्त्य को प्रसन्न करने के लिये नहीं अपितु "नन्दात्मजप्रीतये" अर्थात् ब्रजेश नन्दन गोपाल को आनन्दित करने के लिये ही की है। इस प्रकार परमार्थ की ओर प्रेरित करने वाला काव्य किसे प्रिय न होगा और कौन इसे अपने हृदय में उतारना नहीं चाहेगा।

६. साहित्यिक सौन्दर्य—

इन तथ्यों के अतिरिक्त इस महाकाव्य का साहित्यिक सौन्दर्य प्रत्येक साहित्य सेवी रसान्वेषी को अध्ययन के लिये विवश करता है। यह काव्य अपने अद्भुत भाषा वैभव, भाव गांभीर्य, अद्वितीय छन्दो विधान असाधारण आलंकारिक योजना एवं कवि की लोकोत्तर अनुभूतियों से विभूषित है। यह रचना रसमर्मज्ञ साहित्य के साधकों तथा काव्य प्रेमियों एवं परमार्थ के पथिकों को साधिकार अपनी ओर आकृष्ट करती है और साग्रह अध्ययन के लिये निमन्त्रित करती है।

७. सरस्वती जी के काल निर्णय में सहायक है—

सरस्वती जी के विषय में अब तक जो कुछ लिखा गया है वह उनके अद्वैत दर्शन से ही सम्बद्ध है। इससे उनके भक्ति साहित्य पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। गोपाल विलास के प्रकाश में आने से उनके काल निर्णय में बहुत बड़ी सहायता मिलेगी क्योंकि गोपाल विलास सम्भवतः उनकी अन्तिम रचना है। वे अकबर से लेकर औरंगजेब के काल तक जीवित रहे। वे अकबर के दरबार में गये थे। और औरंगजेब के दरबार में भी। इस प्रकार उन्होंने एक सौ पच्चीस वर्ष का यशस्वी जीवन व्यतीत किया। गोपाल विलास के अभाव में ही सरस्वती जी के प्रशंसक और उनके साहित्य में रुचि रखने वाले और उनके साहित्य का गहन अध्ययन करने वाले किसी भी विद्वान ने उनकी आयु साठ वर्ष से अधिक नहीं मानी है। गोपाल विलास में इस प्रकार के संकेत अवश्य मिलते हैं जो सरस्वती जी की आयुनिश्चित करने में सहायक होंगे।

(ख) यह रचना शोध्य एवं प्रकाश्य है—

अपने इन असाधारण उदात्त गुणों के कारण यह रहस्यमयीरचनानिश्चित रूप से शोध का विषय है। इसके नायक पद पर गोपवपुधारी भगवान विष्णु स्वयं नन्द नन्दन व्रजचन्द्र के रूप में विराजमान हैं, जो अनन्त काल से गुह्य एवं गोप्य रहे हैं। आज भी देश में एवं देश से बाहर कृष्ण के विषय में अनेक शोध संस्थान चल रहे हैं। "गोपालविलास" के कृष्ण राधा की श्रृंगार सरसी में निवास करने वाले मराल हैं। राधा कौन है ? मराल कौन है ? श्रृंगार सरसी क्या है ? ये प्रश्न आज भी मनीषियों की जिज्ञासा के केन्द्र बने हुये हैं।

गोपालविलास के कृष्ण गोपवधूविट हैं। इन्होंने ही सरस्वती जी को अपना दास बना लिया है। उसी गोपवधू विट का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना ही इस महाकाव्य का लक्ष्य है। सरस्वती जी की गीता की गूढार्थदीपिका टीका से उद्धृत यह पङ्क्ति—"शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन" ही इस महा-

---

१. अद्वैत वीथी पथिकैरुपास्या स्वराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन॥
—गीतागूढार्थदीपिकाटीका द्वितीयषटक

काव्य की आधार शिला है जिस पर इस विट का यह विशाल महाकाव्यीयकलेवर टिका हुआ है।

अपनी गीता की टीका में सरस्वती जी कहते हैं कि—निरन्तर तैलधारावत की गई साधना से पंचविध[1] क्लेशों का नाश हो जाने पर जो ब्रह्म सुख स्वयं स्फुरित हुआ था, इस सामने विराजमान नराकृति श्याम ने उस सुख को व्यर्थ बना दिया हैं। सरस्वती जी के इस महाकाव्य में नायक पद पर नराकृति श्याम ही सुशोभित हैं।

इस प्रकार के दुर्लभ ग्रन्थ का सम्पादन एवं प्रकाशन अत्यन्त आवश्यक है। इसके प्रकाश में आने के पश्चात् सरस्वती जी के विषय में नवीन तथ्यों का उद्घाटन होगा। सरस्वती जी की यह अद्वैत भक्ति भावुक साधकों को अवश्य नई दिशा का दर्शन करायेगी।

---

१. क्लेषैक्रमान् पञ्चविधैः क्षयंगते यद्ब्रह्मन्सौख्यं स्वयमस्फुरत्परम्।
तद्व्यर्थयन् यः पुरतः नराकृतिः श्यामोऽयमामोदभरः प्रकाशते॥
—गीता, गूढार्थदीपिकाटीका द्वितीय षटकाअन्त

२ | गोपालविलास का कर्ता एवं काल

(क) गोपालविलास का कर्ता

गोपाल विलास का अध्ययन करने से पूर्व उसके कर्ता तथा उसके काल का विवेचन आवश्यक है। अपेक्षित अध्ययन एवं पर्यालोचन के आधार पर शोधकर्ता की यह धारणा है कि इस महाकाव्य के रचयिता मधुसूदन सरस्वती है। इसकी पुष्टि प्रस्तुत अध्याय में प्रमाण निर्देश पुरस्सर की जायेगी और यह भी प्रतिपादित किया जायेगा कि यह काव्य किस काल की रचना है।

अन्य अनेक काव्य प्रणेताओं के विषय में जहाँ संस्कृत साहित्य के विद्यार्थी को अंधकार में ही भटकना पड़ता हैं वहाँ गोपाल विलास के विषय में ऐसी बात नहीं हैं। इस महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में इसके प्रणेता ने अपना परिचय देते हुए कहा है—

श्रीमत्कृष्ण सरस्वती गुरुपद द्वन्द्वाम्बुजानन्दिना
धीर श्री मधुसूदनेन यतिना नन्दात्मज प्रीतये
यद्गोपाल विलास संज्ञितमिदं काव्यं कृतं कौतुकात्
तस्मिन माधव बाल केलिकथकः सर्गोऽयमादिर्गतः ॥

कि परम पूज्य गुरुदेव श्रीमत्कृष्ण सरस्वती अथवा श्रीमाधव सरस्वती के चरण कमलों में आनन्द लेने वाले धीर और यति श्रीमधुसूदन ने नन्दनन्दन श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिये कौतुक वश जिस गोपालविलास नामक काव्य की रचना की है उसका माधव बालकेलि नामक प्रथम सर्ग समाप्त होता है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में दिये गये इस श्लोक के प्रथम तीन पद सर्वत्र समान रूप में मिलते हैं। चतुर्थ पद में कवि ने सर्ग में वर्णित विषय वस्तु का निर्देश किया है।

इस विवरण से यह ज्ञात हो जाता है कि इस महाकाव्य के प्रणेता श्रीमधुसूदन सरस्वती हैं जो एक प्रसिद्ध वीतरागी, तत्वज्ञ एवं ब्रह्म निर्वाण प्राप्त अलौकिक महा पुरुष हैं, जो गुणातीत एवं सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। इन समस्त विशेषणों से विभूषित तथा असाधारण गुणों से मण्डित केवल एक ही मधुसूदन सरस्वती इतिहास की परतों में प्राप्त होते हैं। वे ही इस अद्वितीय महाकाव्य के कर्ता हो सकते हैं।

'गोपाल विलास' के कवि ने इस महाकाव्य की पाण्डुलिपि के समापन पर भी अपना परिचय दिया है। वे कहते हैं कि—"श्रीमत्परिव्राजकाचार्य सद्विद्य

विद्योतमान श्रीमधुसूदन सरस्वती विरचितं गोपालविलासाख्यं काव्यं समाप्तम् । शुभमस्तु सम्वत् १७२७ समय ज्येष्ठ वदि पञ्चमी । इन पङ्क्तियों से भी यही सिद्ध हो रहा है कि महाकाव्य के रचयिता दार्शनिक एवं आध्यात्मिक जगत् में विख्यात परम हंस परिव्राजकाचार्य सद्विद्या से द्युतिमान 'अद्वैत सिद्धि' आदि वेदान्त के अनेक उत्कृष्ट कोटि के ग्रन्थों को जन्म देने वाले भक्तशिरोमणि श्री मधुसूदन सरस्वती ही हो सकते है।

श्रीमधुसूदन सरस्वती की प्राणाणिकत—श्री एम० कृष्णमाचारिय द्वारा लिखित संस्कृत साहित्य के इतिहास का अनुशीलन करने पर श्रीमधुसूदन सरस्वती के सम सामयिक मधुसूदन नाम के अनेक कवियों की एक लम्बी सूची प्राप्त होती हैं, जिनका परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) नारायण के पुत्र मधुसूदन[1]—इस इतिहास ग्रन्थ में सर्वप्रथम जिस मधुसूदन का परिचय मिलता है वे श्रीवत्स गोत्र में उत्पन्न श्री नारायण के पुत्र हैं। इन्होंने "साहित्य कन्टकोद्धार" नामक ग्रन्थ के दोनों अध्यायों में प्रसिद्ध महाकवि हर्ष, भारवि, और बिल्हण द्वारा अपने काव्यों की भाषा में प्रयुक्त की गई संज्ञाओं आदि की तीव्र आलोचना की है। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कोई रचना नहीं है।

(२) मधुसूदन[2] **काव्य रत्न**—इन्होंने "पण्डित चरित्र प्रहसन" नामक एक ग्रन्थ की रचना की है जिसका विवरण 'पत्ताम्बी' से प्रकाशित होने वाली 'विज्ञान चिन्तामणि' नामक संस्कृत की एक क्षेत्रिय पत्रिका से प्राप्त होता है।

(३) मधुसूदनवुजन्ति[3]—इन्होंने अन्यापदेशशतक तथा 'नीतिसार-संग्रह नामक ग्रन्थों की रचना की है। ये दोनों ग्रन्थ मुम्बई से मुद्रित हुए हैं। सी० सी० १-१४७ में इनका विवरण दिया हुआ है।

(४) माधवपुत्र मधुसूदन[4]—ये श्रीमाधव के पुत्र हैं। इन्होंने श्री बालकृष्ण कवि द्वारा विरचित "विद्वद्भूषण" नामक काव्य पर १६४४ ई० में एक विस्तृत टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त इन्होंने सूर्य शतक नामक एक अन्य ग्रन्थ पर भाष्य भी लिखा है।

(५) महानाटक के सम्पादक मधुसूदन[5]—इन्होंने प्रसिद्ध भारतीय सम्राट भोज के काल में रचे गये 'महानाटक' का सम्पादन किया है। इन्होंने अपने इस

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लसिकल संस्कृत लिटरेचर पृ० ७८९।
२. " " " " " पृ० १०३०।
३. " " " " " पृ० ३२०।
४. " " " " " पृ० ३२८।
५. " " " , " पृ० ६३१-४१।

द्वितीय संशोधित संस्करण में इसे चौदह अङ्कों के स्थान पर केवल नौ अङ्कों में ही सीमित कर दिया है। इसका विस्तृत विवरण "ओरियन्टलमैनिस्क्रिप्ट लाइब्रेरी मद्रास" से प्रकाशित कैटेलोग[1] में उपलब्ध है।

(६) वैद्येश्वर पुत्र मधुसूदन[2]—ये मधुसूदन भारद्वाज गोत्रीय श्री वैद्येश्वर के पुत्र थे। इन्होंने धूर्त चरित नामक एक भाण की रचना की है। इस रूपक के अतिरिक्त इन्होंने "पारिजात हरण 'रासमञ्जरी' 'देवस्तुति' आदि अनेक रचनाओं के साथ-साथ एक 'भारतामृत' नामक चालीस सर्गों के विशाल महाकाव्य की भी रचना की है। इसका कथानक 'महाभारत' से लिया गया है। इनके अग्रज श्री दिवाकर, विजय नगर के राजा कृष्ण देवराज के आश्रित कवि थे। इनका समय १५०६-१५२६ ई० निश्चित किया गया है।

(७) मधुसूदन[3] पण्डित—इन्होंने एक 'आर्याशतक' नामक काव्य की रचना की है जिसका परिचय सी० सी० १/४२७ पर दिया हुआ है।

(८) मधुसूदन[4] मिश्रशर्मन्—इन्होंने सोलहवीं शती में स्थित काशी निवासी हारीत गोत्रीय श्री धर्मभट्ट द्वारा रचित 'साहित्यरत्नाकर' नामक ग्रन्थ पर अपनी 'नौका' नामक टीका लिखी है। वाराणसी और उड़ीसा से इसका सम्पादन हुआ है ये महाशय उत्कल के तात्कालिक शासक श्री बल्लभदेव के आश्रित कवि थे। इन्होंने "हनुमत सन्देश" 'माया सावरी विलास' नामक काव्यों की भी रचना की है।

(९) मधुसूदन[5] शर्मन्—कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली 'मित्रगोष्ठी" नामक पत्रिका में लिखे गये इनके लेखों से ही इनका परिचय मिलता है शेष इनके विषय में कुछ उपलब्ध नहीं है।

इस सम्पूर्ण नामावलि तथा इन कवियों की कृतियों पर दृष्टिपात करने से स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से किसी भी मधुसूदन के पास वह प्रज्ञा नहीं है जो गोपाल विलास जैसे गूढ़ एवं गम्भीर महाकाव्य के लिये नितान्त अपेक्षित हैं। इन सभी की रचनाओं में प्राप्त विषय वस्तु भी साधारण कोटि में ही आती है। अतः ये अपने काल के साधारण कवि ही रहे होंगे। किन्तु सरस्वती शब्द जिस मधुसूदन नाम के साथ प्रयुक्त हुआ है वह इस महाकाव्य 'गोपाल विलास' का कर्ता हो सकता है। इसके अतिरिक्त ऐसी अद्भुत प्रतिभा के स्वामी ऐसे परमोदात्त महाकाव्य की रचना करने में सक्षम गीता के मधुसूदनी टीकाकार सिद्ध पुरुष

---

१. डैस्क्रिप्टिव कैटेलोग ऑफ संस्कृत मैनिस्क्रिप्ट्स पृ० २१-८४४६।

२. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल लिटरेचर पृ० २९८।

३. " " " " पृ० १०३०।

४. " " " " पृ० ७९९।

५. " " " " पृ० १०३०।

'अद्वैत सिद्धिः' के रचयिता जगतप्रसिद्ध दार्शनिक एवं कृष्ण भक्त श्री मधुसूदन सरस्वती ही हो सकते हैं।

प्रस्तुत महाकाव्य गोपाल विलास की पाण्डुलिपि के द्वितीय सर्ग के पचासवें श्लोक के नीचे यह टिप्पणी दी हुई है—

'चक्रादिनानाबन्धा तथा कविनामाङ्कितषडार चक्रबन्धः' वह श्लोक निम्न प्रकार है—

सद्भावाय[1] न तत्र गोपमह विश्वस्तः स्वधुनूर्यम्बुदे
क्षिप्त्वाम्येति सलोक पालमतुली वैयात्यसूश्चातकः
बद्धो धर्म रयेण लग्न मनसं त स्वीकुदन्वीक्ष्यते
तेनासौ समुपेक्षितोभवति चेदेते न कः सेव्यते ॥

इस षडारचक्रबन्ध में निश्चित रूप से मधुसूदन सरस्वती का नाम अङ्कित होगा। किन्तु इन चित्र काव्यों के रहस्य को जानने की एक विशिष्ट विद्या होती है जिसके पाण्डित आज कल प्राप्त नहीं हैं।

(ख) गोपालविलास का काल

साहित्य जगत् में विद्वानों द्वारा किसी भी रचना का काल निर्णय करने के लिये दो प्रकार के साक्ष्यों को ही प्रामाणिकता प्रदान की गई है। प्रथम वे बाह्य साक्ष्य हैं जो साहित्य के ऐतिहासिक ग्रन्थों, परम्परागत जनश्रुतियों एवं विद्वानों द्वारा लिखे गये शोधपूर्ण लेखों के आधार पर निर्णीत होते हैं। दूसरे प्रकार के अन्तर्साक्ष्य वे हैं जिनका सीधा सम्बन्ध रचना में उपलब्ध तथ्यों से होता है।

गोपालविलास के काल के विषय में बाह्य साक्ष्य पूर्णतया मौन हैं। कहीं से भी किसी भी प्रकार का कोई सूत्र प्राप्त नहीं होता जो इस महाकाव्य के काल निर्णय में तनिक भी आधार बन सके और सहायक सिद्ध हो सके।

किन्तु संस्कृत साहित्य के इस अद्वितीय रत्न का समय निर्धारण करने के लिये इस काव्य के समापन पर कवि द्वारा स्वयं निर्दिष्ट किया गया, समय अन्तः-साक्ष्य के रूप में अवश्य ही सहायक है। क्योंकि पाण्डुलिपि स्वयं में एक सिद्ध प्रमाण है। अतः इसमें दिये गये समय को बिना किन्हीं अत्यन्त पुष्ट एवं प्रबल प्रमाणों के, नकारा नहीं जा सकता। इस विषय में इस महाकाव्य के अन्त में जो विवरण प्राप्त होता है उसके अनुसार गोपालविलास का काल सम्बत् १७२७ ज्येष्टवदि पञ्चमी है।

इस महाकाव्य के अन्त में दी हुई इस तिथि से यह स्वतः सिद्ध होता है कि

---

१. गोपाल विलास २।५०।

यह रचना सम्वत् १७२७ अथवा सन् १६७० ई० में पूर्ण हुई। सम्भवतः यह सरस्वती जी की अन्तिम रचना है, क्योंकि सरस्वती जी के साहित्य का गहन अध्ययन करने वाले विद्वानों का एक वर्ग सतरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध को सरस्वती जी के काल की अन्तिम सीमा मानता है किन्तु पण्डितों का दूसरा वर्ग सतरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक ही सरस्वती जी की साहित्य साधना का काल निर्धारित करता है।

इस महाकाव्य के विषय में हमें संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों द्वारा सरस्वती जी के विषय में प्रस्तुत किये गये तथ्यों एवं सरस्वती जी की अन्य अनेक रचनाओं पर लिखे गये भाष्यों एवं भूमिकाओं का अध्ययन एवं अनुशीलन करने के पश्चात् भी, कोई सामग्री प्राप्त नहीं होती। सरस्वती जी के काल निर्णय के विषय में संस्कृत के विभिन्न शोध संस्थानों द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में लिखे गये लेखों से भी इस महाकाव्य का किञ्चित् मात्र भी परिचय प्राप्त नहीं होता।

अतः इस दुर्लभ महाकाव्य गोपालविलास के काल निर्णय के लिये इसकी इस पाण्डुलिपि के अन्त में दी हुई तिथि के औचित्य को स्वीकार करते हुए सरस्वती जी की अन्य रचनाओं के तारतम्य में इस तिथि की प्रामाणिकता सिद्ध करने, का प्रयास किया जायेगा।

सरस्वती जी युग पुरुष, युग द्रष्टा एवं युग सृष्टा थे, जगद्गुरु शङ्कराचार्य के परम अनुयायी होने के कारण वे अद्वैत वेदान्त के प्रबल समर्थक एवं संरक्षक थे। शङ्कराचार्य की भाँति उन्हें भी अपने जीवन में अनेक प्रकार की कठिन चुनौतियों का सामना करना पड़ा था।

उस काल में उनके सम्मुख सर्वप्रथम द्वैतवादी आचार्यों द्वारा अद्वैत के विरुद्ध की गई व्यूह रचना को ध्वस्त करना था। तेरहवीं शताब्दी में ही द्वैतवाद अपना प्रचण्ड रूप धारण कर चुका था जब आचार्य शङ्कर के प्रखर प्रतिद्वन्द्वी विशुद्ध द्वैतवाद के संस्थापक आचार्य मध्व ने अपने '"सर्वदर्शन संग्रह" में यह घोषणा की थी कि "द्वैतं न विद्यते इति तस्मादज्ञानिनां मतम्"।

सरस्वती जी एकाकी ही द्वैतवादियों के तर्कों को छिन्न-भिन्न करते रहे। शास्त्रार्थों के माध्यम से वाणी द्वारा एवं अपनी रचनाओं में लेखनी द्वारा उन्होंने अपनी प्रतिभा की मृत सञ्जीवनी शक्ति से उस समय अद्वैत वेदान्त को एक प्रकार से पुनर्जीवन प्रदान किया। द्वैतवाद के प्रसिद्ध ग्रन्थ न्यायामृत का खण्डन करने के लिये उन्होंने "अद्वैत सिद्धिः" की एवं शङ्कर मिश्र द्वारा रचित "भेद रत्न" का उत्तर देने के लिये "अद्वैत रत्न रक्षण" जैसे अद्वैत प्रतिपादक मूल ग्रन्थों का निर्माण किया। साथ ही "सिद्धान्त

---

१. ५/२३।

लेश टीका' तथा "संक्षेप शारीरिक" आदि पर भाष्यों को रचना की। ये सभी ग्रन्थ अद्वैत वेदान्त पर उनके एकाधिकार को प्रकट करने के लिये पर्याप्त है।

दूसरी चुनौती उन्हें तात्कालिक भक्ति आन्दोलन से मिली जिसका आरम्भ नवीं शताब्दी में ही हो चुका था। इसे उग्रता प्रदान करने का कार्य रामानुज, निम्बार्क तथा वल्लभाचार्य आदि वैष्णव आचार्यों ने किया और इसे तीव्रतम बनाया, गौडीय वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव ने।

वैष्णव भक्ति के इन सभी सम्प्रदायों में कुछ मतभेदों के साथ-साथ अधिकांश भक्ति के विषय में समान विचारधारा ही प्राप्त होती है। इनकी भक्ति की आत्मा एक ही है। भिन्नता ऊपर से दिखाई देती है जो केवल नामों तक ही सीमित है। जैसे—विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि। जहाँ भक्ति शरणागति आदि के विषय में ये सब समान विचार रखते है वहाँ ये शंकर के अद्वैत का विरोध करने में सभी एक मत है। ये सभी आचार्य द्वैत के पोषक ऐवं अद्वैत के विरोधी रहे हैं।

किन्तु सरस्वती जी प्रचण्ड अद्वैतवादी थे और शङ्कराचार्य के प्रमुख अनुयायी थे। उन्होंने श्रुति प्रतिपादित "रसोवै सः" के द्वारा अद्वैतभक्ति को रसमयता प्रदान करने के लिये सर्वप्रथम भक्ति रस के लक्षण ग्रन्थ के रूप में "भगवद्‌भक्ति रसायन" की रचना की। जिस प्रकार उनके अद्वैतसिद्धिः, अद्वैतरत्नरक्षण आदि दार्शनिक ग्रन्थ ज्ञान काण्ड के प्रकाण्ड पण्डितों एवं अद्वैत वेदान्त के साधकों के लिये ज्योति स्तम्भ की भाँति प्रबल सम्बल बने हुए हैं उसी प्रकार भक्ति रस की अद्वैतीय व्याख्या प्रस्तुत करने वाली यह रचना आधिकारिक कृति के रूप में विद्वज्जन द्वारा स्वीकृत की गई है एवं भक्तों द्वारा सम्यक् समादृत रही है। इसकी रचना भक्ति के लक्षण ग्रन्थ के रूप में हुई है और लक्ष्य ग्रन्थ के रूप में रचा गया गोपाल विलास उनकी भक्ति के व्यावहारिक रूप का दर्शन कराता है। गोपाल-विलास से पूर्व भक्ति पर उनकी अन्य अनेक रचनायें भी प्राप्त होती हैं जिनमें शिव महिम्नःस्तोत्र की शिव एवं विष्णु परक टीका, बोपदेवकृत हरिलीला विवेक पर टीका, रासपञ्चाध्यायी, भागवत पुराण के प्रथम श्लोक की टीका, "गूढार्थदीपिकाटीका" में गीता के प्रत्येक षटक् के आदि तथा अन्त में प्राप्त होने वाली सरस पदावली आदि जो सरस्वती जी की भक्ति का दिशा निर्देश करती है।

सरस्वती जी के साहित्य का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है कि अपने जीवन के पूर्वकाल में उन्होंने जिस दार्शनिक साहित्य का निर्माण किया है उसकी किसी भी रचना में सरस्वती जी द्वारा रचित भक्ति परक किसी भी ग्रन्थ का कोई सन्दर्भ प्राप्त नहीं होता किन्तु जीवन के उत्तर काल में रचे गये, भक्तिपरक ग्रन्थों में उनकी दार्शनिक रचनाओं का परिचय अवश्य मिलता

है। उदाहरण के रूप में उनके "भगवद्भक्ति रसायन" के प्रथम उल्लास की बीसवीं कारिका में विषयों से सम्बद्ध मम विषयों का आकार ग्रहण कर लेता है इस सिद्धान्त का वेदान्तियों और सांख्यविदों ने अच्छी प्रकार निरूपण किया है—'[1]विस्तरस्त्वस्मदीय वेदान्तकल्पलतिकायामनुसन्धेयः'। एक अन्य स्थान पर प्रथम उल्लास की चौबीसवीं कारिका को स्पष्ट करते हुए सरस्वती जी कहते हैं कि—[2]सर्वाचियम् प्रक्रिया अस्माभिः विस्तरेण सिद्धान्त विन्दौप्रतिपादिता।

उनकी दार्शनिक रचनाओं में भक्ति से सम्बन्धित किसी भी रचना का विवरण न मिलना तथा उनके भक्तिपरक ग्रन्थों में दार्शनिक रचनाओं का सन्दर्भ प्राप्त होना यह स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि सरस्वती जी ने अपने जीवन के पूर्वार्ध में केवल दार्शनिक ग्रन्थों का ही निर्माण किया। उन्होंने दर्शन एवं भक्ति के ग्रन्थों की रचना साथ-साथ नहीं की अपितु दोनों विषयों पर दो पृथक्-पृथक् काल खण्डों में अपने ग्रन्थों का निर्माण किया।

अतः गोपाल-विलास का काल निर्धारित करने के लिये सरस्वती जी द्वारा प्रणीत उनकी रचनाओं के काल क्रमानुसार समीक्षण करना आवश्यक हो जाता है। ऊपर के विवरण से यह स्वतः प्रमाणित हो रहा है कि उन्होंने अपनी साहित्य साधना का आरम्भ दार्शनिक ग्रन्थों के निर्माण से ही किया है। इसलिये किस दार्शनिक ग्रन्थ की रचना से उन्होंने अपना लेखन कार्य प्रारम्भ किया और क्रमानुसार कौन सा ग्रन्थ किस ग्रन्थ के पश्चात् रचा गया, इस पर विचार किया जायेगा। यही प्रक्रिया सरस्वती जी द्वारा भक्ति साहित्य पर लिखे गये ग्रन्थों के विषय में भी अपनायी जायेगी। जिससे गोपाल-विलास का काल ज्ञात हो सके।

सरस्वती जी के दार्शनिक साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि उन्होंने सर्वप्रथम जिस ग्रन्थ की रचना की थी, वह सम्भवतः "सर्वज्ञात्ममुनि के संक्षेप शारीरक" पर उनका भाष्य ही रहा होगा और जो "संक्षेप शारीरक सार संग्रह" के नाम से दार्शनिक जगत् में प्रसिद्ध है। इस भाष्य को उनकी प्रथम रचना मानने के लिये कुछ तथ्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

सरस्वती जी ने अपनी सभी दार्शनिक रचनाओं में एक दूसरी का परिचय दिया है। जैसे 'अद्वैतरत्न रक्षण' में वे कहते हैं—'शब्दातिरिक्तं चात्मविषयं प्रमाणं नास्तीत्यपि निरूपितमद्वैत सिद्धिवेदान्तकल्पलतयोरिति नेह प्रपञ्च्यते [3]इसी ग्रन्थ

---

१. भगवद्भक्ति रसायन पृ० ५४।

२. वही पृ० ५७।

३. "अद्वैतरत्नरक्षण" सन्यास आश्रम कनखल से प्रकाशित पृ० ४३०-४३१

में वे दूसरे स्थान पर कहते हैं कि "भ्रमबाधव्यवस्थोपपत्तिरद्वैतसिद्धौ सविस्तरमनुसन्धेया इतीहोपरम्यते"[१]। इसी प्रकार "अद्वैत सिद्धिः" में—"वेदान्त कल्पलतिकायामस्यार्थस्य प्रपञ्चो द्रष्टव्यः'[२]। इसी ग्रन्थ में वे अन्यत्र कहते हैं कि—"वेदान्त कल्पलतिकायामभिहितमस्माभिः"[३]। इससे आगे उन्होंने कहा है कि "व्युत्पादितं चैतदस्माभिः "सिद्धान्त बिन्दौ"।[४] इसी ग्रन्थ में वे एक और स्थान पर कहते हैं—'अहंकारोपरागकालीनत्वाभावे न तत्तानुल्लेख इत्यादि सर्वमुपपादितमस्माभिः सिद्धान्त बिन्दौ'[५]। इसी प्रकार "सिद्धान्त बिन्दुः" में उन्होंने कहा है कि—"विस्तरस्तु वेदान्तकल्पलतिकायामनुसन्धेयः"[६] इसी ग्रन्थ में उन्होंने आगे भी कहा है कि—"विस्तरेण चैतत्प्रपञ्चितमस्माभिर्वेदान्त कल्पलतिकायामित्युपरम्यते"।[७]

किन्तु सरस्वती जी ने अपने इस 'संक्षेप शारीरक' के भाष्य में अपनी अन्य किसी भी रचना का नामोल्लेख तक नहीं किया है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि इससे पूर्व उन्होंने अन्य किसी दार्शनिक ग्रन्थ की रचना नहीं की थी जिसे वे अपने इस भाष्य में उद्धृत करते। अतः इस भाष्य को ही उनकी प्रथम रचना माना जाना चाहिये।

उनकी प्रथम रचना होने के कारण ही इस भाष्य की भाषा में उस प्रौढ़ता, प्रखरता एवं प्राञ्जलता के दर्शन नहीं होते जो उनकी अग्रिम रचनाओं में प्राप्त होते है। सरस्वनी जी की विषयावगाहिनी गम्भीर विवेचनापूर्ण शैली इसमें कहीं भी नहीं मिलती। इस भाष्य में मौलिकता भी यत्र-तत्र ही प्राप्त होती है अन्यथा सरस्वती जी स्वामी रामतीर्थ से ही अपनी सहमति प्रकट करते हुए दिखाई देते हैं।

जनमानस इन्हीं स्वामी रामतीर्थ को सरस्वती जी का गुरु मानता आया है। उन दिनों काशी में वेदान्त के अद्वितीय विद्वान् के रूप में स्वामी रामतीर्थ जी की ख्याती सर्वत्र फैली हुई थी। उन्हीं से सरस्वती जी ने वेदान्त का अध्ययन किया था। गीता की अपनी गूढ़ार्थ दीपिका टीका के समापन पर सरस्वती जी ने अपने

---

१. वही पृ० २८४।
२. "अद्वैत सिद्धिः" निर्णयसागर प्रैस पृ० ५१९।
३. वही पृ० ५२४। ४. वही पृ० ५४६।
५. वही पृ० ५५९।
६. "सिद्धान्त विन्दुः" महेश अनुसन्धान संस्थान वाराणसी से प्रकाशिय पृ० १६९।
७. वही पृ० १७२।

गुरुओं को स्मरण करते हुए उन्हें प्रणाम किया है और उन्हीं के श्रीचरणों में अपना गीता-भाष्य समर्पित किया है।

श्रीराम विश्वेश्नर माधवानां प्रसादमासाद्य मया गुरुणाम्।
व्याख्यानमेतद्विहितं सुबोधं समर्पितंतच्चरणाम्बुजेषु ॥

इससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि श्रीरामतीर्थ ही उनके वेदान्त के गुरु थे माधव सरस्वती जी से उन्होंने मीमांसा का अध्ययन किया था ; और उनके दीक्षा गुरु आचार्य विश्वेश्वर थे।

इसके अतिरिक्त अबुलफजल द्वारा रचित "आयने अकबरी" में अकबर ने टोडरमल का वर्ण निश्चित करने के लिये काशी के कुछ प्रसिद्ध विद्वानों को अपने दरबार में बुलाया था। उन विद्वानों की सूची में सर्वप्रथम माधव सरस्वती का नाम है। दूसरे स्थान पर 'मधुसूदन' का नाम दिया है। स्वामी रामतीर्थ तथा नरसिंहाश्रम भी इस सूची में हैं। इस सूची में केवल मधुसूदन ही नाम होना यह सिद्ध करता है कि मधुसूदन जी ने उस समय तक सन्यास नहीं लिया था। क्योंकि सरस्वती शब्द का प्रयोग सन्यास लेने के पश्चात ही किया जाता है। इससे सिद्ध हो जाता है कि उस समय सरस्वती जी विद्यार्थी ही थे और स्वामी रामतीर्थ से वेदान्त का अध्ययन समाप्त करने के बाद माधव सरस्वती से मीमांसा का अध्ययन कर रहे थे। अत्यन्त मेधावी और विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न अपने शिष्य मधुसूदन का नाम भी माधव सरस्वती जी ने दरबार में जाने वाले पण्डितों की सूची में दे दिया होगा।

मधुसूदन जी का समस्त साहित्य सन्यास लेने के पश्चात् ही रचा गया है जो मधुसूदन सरस्वती के नाम से ही उपलब्ध होता है केवल मधुसूदन के नाम से नहीं। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि मीमांसा का अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् ही सरस्वती जी ने संक्षेप शारीरिक पर अपना भाष्य पूर्ण करने से पूर्व सन्यास लिया तदुपरान्त अपना भाष्य पूर्ण किया। यह समय सन् १५७५ ई० के आस पास का रहा होगा।

सन्यास लेने के पश्चात् सरस्वती जी अपने गुरु के पास गोपाल मठ में ही रहकर साधना करते रहे। संक्षेप शारीरक पर भाष्य लिखने के पश्चात् उन्होंने "वेदान्त कल्पलतिका" की रचना की। यह अद्वैत वेदान्त पर उनकी सर्वप्रथम मौलिक रचना है। अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों को सार रूप में प्रस्तुत करने वाली एक लघु-काय रचना है।

तभी सन् १५७६ में रामायण की रचना समाप्त करने के पश्चात् पूर्व में रामचरित मानस का प्रचार करते हुए तुलसी प्रथम बार अयोध्या से १५७७-७८ ई० में काशी आये। काशी के विद्वन् समाज ने उन्हें पूर्ण सम्मान नहीं दिया। काशी के

पण्डित उनको तथा उनके रामचरित मानस को भाषा की रचना होने के कारण हेय दृष्टि से देखते थे। भाषा में रामायण की रचना करने वाले और शंकर को राम का दास बताने वाले तुलसी के प्रति उनमें तीव्र आक्रोश उत्पन्न हो गया। तुलसी जैसे सन्त का हृदय इस अशान्त वातावरण से खिन्न रहता था। सरस्वती जी तुलसी के आश्रम पर आते जाते थे। आज भी तुलसी का आश्रम हरिश्चन्द्र घाट पर है और उससे थोड़ी दूर पर ही षष्ठी योगिनी घाट पर सरस्वती जी का निवास है। दोनों में पर्याप्त घनिष्ठता थी। सरस्वती जी भी काशी के विद्वानों, आचार्यों तथा मठाधीशों में तुलसी के प्रति व्याप्त रोग से परिचित थे। तुलसीदास जी के आश्रम पर एक दिन इसी प्रकार की चर्चा चल रही थी जिसमें तुलसी ने जो दोहा पढ़ा उससे उनकी मन स्थिति का परिचय मिलता है।

हरिहर यश सुरनरगिरा वरणहिसन्त सुजान।
हांडी हाटक चारु रुचि रांधेस्वाद समान ॥[१]

तभी सरस्वती जी ने भी तुलसीदास जी की तथा उनकी रामभक्ति और उनके मानस की प्रशंसा करते हुए निम्न श्लोक सुनाया—

[२]आनन्द कानने काश्यां तुलसी जंगमस्तरुः।
कविता कौमुदी यस्य राम भ्रमर चुम्बिता ॥

यह घटना १५७७-७८ ई० की है जब तुलसी मानस समाप्त करने के पश्चात् सर्वत्र राम भक्ति का प्रचार करते हुए अयोध्या से काशी में आकर रहे।

श्री अनन्त शास्त्री फड़के ने सरस्वती जी की 'भगवद्भक्ति सरायन की अपनी भूमिका में उस बालमीकि रामायण का वर्णन किया है जो तुलसीदास जी ने अपने अध्ययन के लिये लिखाई थी। उसका लेखन काल इसमें सम्वत् १६४१ अथवा सन १५८४ ई० दिया हुआ है। इस बाल्मीकि रामायण में सरस्वती जी का सन्दर्भ प्राप्त होता है, जिससे सरस्वती जी की स्थिति काशी में १५८४ ई० तक सिद्ध होती है। यह "वाराणसेय संस्कृत विश्व विद्यालय" के पुस्तकालय में आज भी देखी जा सकती है। अतः सरस्वती जी १५८४-८५ ई० तक काशी में रहे। इस समय उन्होंने अद्वैत वेदान्त को सरलता एवं स्पष्टता से हृदयस्थ कराने के लिये आचार्य शंकर द्वारा रचित 'दशश्लोकी' की व्याख्या के रूप में "सिद्धान्त विन्दु" का निर्माण किया।

विद्वत् समाज की यह मान्यता है कि 'सिद्धान्त विन्दु' की रचना सरस्वती जी ने अपने शिष्य बलभद्र भट्टाचार्य के व्यक्तिगत अध्ययन के लिये की थी। इसका

---

१. भक्ति रसायन की भूमिका पृष्ठ ८।
२. वही पृष्ठ ८।

अर्थ है, उस समय सरस्वती जी ३५-४० वर्ष के अवश्य रहे होंगे क्योंकि शिष्य परम्परा का आरम्भ साधारणतया तीस वर्ष के पश्चात् ही होता है, फिर दो दो शिष्यों को दीक्षा देने वाले सरस्वती जी की आयु ३५, ४० वर्ष अवश्य रही होगी जो सन् १५८५–९० के मध्य कहीं निश्चित की जा सकती है।

सिद्धान्त विन्दु' के पश्चात् द्वैतवादी आचार्य व्यास तीर्थ की प्रसिद्ध रचना 'न्यायामृत' का शब्दशः खण्डन करने के लिये सरस्वती जी ने 'अद्वैतसिद्धि' जैसे उत्कृष्टतम दार्शनिक ग्रन्थ की रचना की। इसे अद्वैत वेदान्त पर उनकी प्रौढ़ कृति के रूप में जाना जाता है। यह ग्रन्थ सरस्वती जी की ख्याति का ही आधार नहीं बना अपितु अद्वैत वेदान्त के लिये भी उसके प्राणाधार के रूप में सिद्ध हुआ।

श्री आर० कृष्ण स्वामी ने भी 'ओरियन्टल' रिसर्च मद्रास' पत्रिका में लिखे अपने निवन्ध में वे न्यायामृत के कर्ता श्री व्यासराज का समय १४४६–१५३९ ई० के मध्य निश्चित करते हैं और कहते हैं कि—"सपोजिग देट ए पीरियड ऑफ फिफ्टी ईयर्स शुड एट लीस्ट हैव लैप्स्ड बिटवीन दी राइटर्स। वी मे एस्साइन मधुसूदन सरस्वती टु दी एण्ड ऑफ दी सिक्सटीन्थ सैन्चुरी एट दी अरलियस्ट" इससे यही सिद्ध होता हैं कि 'अद्वैत सिद्धिः" की रचना दीक्षित जी के अन्तिम काल १५९० ई० अथवा उनके पश्चात् १६०० ई० के मध्य किसी समय हुई है।

ग्रन्थकार और उस ग्रन्थ के भाष्यकार अथवा समालोचक का सम सामयिक होना आवश्क नहीं है। दोनों में पर्याप्त समय की अपेक्षा है। अतः श्री आर० कृष्ण स्वामी शास्त्री ने व्यासतीर्थ के न्यायामृत और सरस्वती जी के 'अद्वैतसिद्धिः' ग्रन्थों में पचास वर्ष का अन्तर स्वीकार किया है जो पूर्णतया उचित है।

दार्शनिक जगत् में चतुर्दिक इस ग्रन्थ रत्न की विद्वानों द्वारा मुक्त कण्ठ से प्रशंसा होने लगी। इस समय राज दरबार तक भी इनकी ख्याति पहुँच चुकी थी।

यही वह समय है जब सरस्वती जी को अकबर ने अपने दरबार में आमन्त्रित किया था। क्योंकि टोडरमल सरस्वती जी के घनिष्ठ मित्रों में से थे। सरस्वती जी ने उनसे अनेक बार मुसलमानों द्वारा साधु सन्यासियों एवं भगवद्भक्तों पर आये दिन होने वाले आक्रमणों और अत्याचारों के विषय में अपनी गहन चिन्ता व्यक्त की थी। इस पर टोडरमल के कहने से अकबर ने अन्य अनेक विद्वानों के साथ सरस्वती जी को राज दरबार में आमन्त्रित किया। इस तात्कालिक ज्वलन्त समस्या पर सरस्वती जी ने अपने विचार अत्यन्त ओजस्विता के साथ अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए प्रकट किये। इस पर दरबार में उपस्थित समस्त विद्वद् वर्ग ने

---

१. ओरियन्टल रिसर्च मद्रास वोल्यूम २ प्रिंट २ पृ० ९७–१०४।

उनकी इस पाण्डित्य पूर्ण प्रतिभा की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए एक स्वर से सरस्वती जी के अभिनन्दन में वहाँ यह निम्न श्लोक पढ़ा।

'वेत्ति पारं सरस्वत्याः मधुसूदन सरस्वती।
मधुसूदन सरस्वत्याः पारं वेत्ति सरस्वती॥

सरस्वती जी की इस वक्तृता के पश्चात् अकबर ने कहा बताते हैं कि सन्यासियों को भी अपनी रक्षा का प्रबन्ध स्वयं करना चाहिये। इस कथन पर सरस्वती जी ने उस नागा सेना को पुनरुज्जीवित करने का निश्चय किया जिसका संगठन आद्य शङ्कराचार्य ने उन बौद्धों के विरुद्ध किया था जो साधु सन्तों को आक्रान्त करते थे और जिन धर्मान्ध बौद्धों ने शङ्कराचार्य पर अनेक बार घातक प्रहार किये। अपने समय में यही कुछ मुसलमानों द्वारा होते हुए देखकर उन्होंने नागावाहिनी को एक तेजस्वी, आत्मनिर्भर एवं सम्यक् अनुशासित संगठन के रूप में सन्नद्ध करना आरम्भ किया। सरस्वती जी द्वारा नागावाहिनी के संगठन का उल्लेख इस निबन्ध में करने के लिये प्रयाग विश्वविद्यालय के दर्शन विभागाध्यक्ष ने मुझे निर्देश दिया है।

दरबार की यह घटना सम्भवतः १६००-१६०५ ई० की है। यदि घटना इस से पूर्व की होती तब इसके विषय में सन् १५९७ ई० में लिखी गई आयने अकबरी में अवश्य कुछ न कुछ लिखा हुआ मिलता। जिस पण्डित सभा का वर्णन आयने अकबरी में किया गया है उसकी अध्यक्षता श्री माधव सरस्वती ने की थी।

द्वैतवाद के नैष्ठिक एवं प्रामाणिक ग्रन्थों में प्रतिपादित मान्यताओं का खण्डन करने के उपक्रम में जिस प्रकार सरस्वती जी ने प्रसिद्ध द्वैवबादी आचार्य व्यासतीर्थ के "न्यायामृत' का खण्डन किया, उसी प्रकार उन्होंने शंकर मिश्र के 'भेदरत्न' में प्रस्तुत किये गये द्वैतवादी सिद्धान्तों को धराशायी करने के लिये 'अद्वैत-रत्नरक्षण' का निर्माण किया। द्वैतवाद की रक्षा के लिये शङ्कर मिश्र ने अपनी निम्न कारिका द्वारा वेदान्तियों से सावधान रहने की घोषणा की है। वे केवल तार्किकों को ही भेदवाद का एकमात्र रक्षक मानते हैं।

'भेदरत्न परिजाणे तार्किकाः एव यामिकाः।
अतो वै वेदान्तिनो स्तेनान्निरस्यत्येष शङ्करः॥

इस का उत्तर सरस्वती जी ने उन्हीं की भाषा तथा उन्हीं की शैली में निम्न कारिका में दिया है—

---

१ भक्ति रसायन भूमिका पृष्ठ ९।

अद्वैतरत्न रक्षायां तात्त्विकाः एव यामिकाः ।
अतो न्यायचिदः स्तेनान्निरस्यामः स्वयुक्तिभिः ॥

'अद्वैत रत्न रक्षण' में सरस्वती जी ने केवल 'वेदान्त कल्पलतिका' तथा "अद्वैत सिद्धिः" को ही उद्धृत किया है । अतः इसकी रचना इन ग्रन्थों के पश्चात् ही हुई है । 'अद्वैतसिद्धि' की रचना सन् १६०० के लगभग हुई जैसा कि पीछे बताया गया है । इसलिये "अद्वैतरत्नरक्षण" १६०५ या १६१० के मध्य किसी समय रचा गया होगा ।

'अद्वैत रत्नरक्षण' का समय निश्चित करते हुए "अद्वैतसिद्धिः" के व्याख्याता श्री योगीन्द्रनाथ तर्क सांख्य वेदान्ततीर्थ कहते हैं कि—शङ्कर मिश्र ने "खण्डनखण्ड-खाद्य" का खण्डन करने के लिये 'भेदरत्न' नामक ग्रन्थ लिखा । उसका खण्डन श्री सरस्वती जी ने "अद्वैत रत्नरक्षण नामक ग्रन्थ के द्वारा किया है । शङ्कर मिश्र का समय पन्द्रहवी शताब्दी माना जाता है । उनके निकट परवर्ती होने के कारण आपका जीवन-काल भी १५३३ ई० से १६४० ई० तक मानना उचित है ।

श्री गोपीनाथ[1] कविराज भी 'अद्वैत रत्नरक्षण' को द्वैतवादी आचार्य शङ्कर मिश्र द्वारा रचित 'भेदरत्न' के ही उत्तर में लिखा हुआ मानते हैं । शङ्कर मिश्र का समय उन्होंने भी पन्द्रहवी शताब्दी ही स्वीकार किया है । 'वादी विनोद' की भूमिका में श्री गंगानाथ झा द्वारा निश्चित की हुई तिथि सम्वत् १५८५ को वे इसलिये उचित नहीं मानते क्योंकि उन्हें 'भेदरत्न' की एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई थी जिसमें शङ्करमिश्र का समय सम्बत् १५१९ या सन् १४६२ दिया हुआ है । वे शङ्करमिश्र की स्थिति इस तिथि से भी पर्याप्त पूर्व की मानते हैं जो सर्वथा उचित प्रतीत होती है ।

इस विषय में लगभग ये ही विचार श्री आर० कृष्ण स्वामी शास्त्री अपने निबन्ध[2] में प्रकट करते हैं । उनका कथन है कि शङ्कर मिश्र १५२९ ई० के पश्चात् तक रहे । यह तिथि उन्होंने श्यामाचरण संस्कृत सीरीज' प्रयाग द्वारा सम्पादित शङ्करमिश्र के 'वादी विनोद' की भूमिका लेखक श्री गङ्गानाथ झा के आधार पर ही दी है । किन्तु कविराज गोपीनाथ ने उसे अमान्य घोषित कर दिया है क्योंकि उन्हें भेदरत्न की एक पाण्डु लिपि प्राप्त हुई है जिसका समय १४६२ ई० दिया हुआ है । अतः शङ्कर मिश्र पन्द्रहवी शती में विद्यमान थे ।

सभी ने शङ्कर मिश्र के आस-पास ही सरस्वती जी का काल निश्चित करने का प्रयत्न किया है निःसन्देह किसी ग्रन्थ के रचयिता और उस ग्रन्थ के भाष्यकार

---

१. प्रिंस ऑफ वेल्स सरस्वती भवन स्टडीज VI। वोल्यूम पृ० १७८ ।
२. ओरियन्टल रिसर्च मद्रास वोल्यूज २ प्रिन्ट २ पृष्ठ ९७–१०४ ।

का बौद्धिक रूप से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। किन्तु वे समसामयिक भी हों अथवा आस-पास के समय में ही स्थित हो यह आवश्यक नहीं। जिस प्रकार 'खण्डन खण्ड-खाद्य' और "भेदरत्न" में लगभग चार शताब्दी का अन्तर है, उसी प्रकार भेदरत्न और अद्वैत रत्नरक्षण में भी लगभग एक शताब्दी से अधिक का अन्तर है। इस समस्त विवेचन से 'अद्वैत रत्नरक्षण' के काल निर्णय में बहुत अधिक सहायता नहीं मिलती। हां। 'अद्वैत रत्न रक्षण' में अन्तः साक्ष्य के रूप में 'अद्वैत सिद्धिः' और 'वेदान्त कल्प लतिका' का सन्दर्भ अवश्य प्राप्त होता है, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि सरस्वती जी ने इस ग्रन्थ की रचना 'अद्वैत सिद्धिः' और 'लतिका' के पश्चात् पचपन-साठ वर्ष की अवस्था में सन् १६०५ और १६१० ई० के मध्य की है। यह ग्रन्थ 'अद्वैतसिद्धिः' के तत्काल पश्चात् लिखा गया है। अतः यह तिथि ही समीचीन प्रतीत होती है। सम्भवतः "अद्वैतरत्नरक्षण" उनकी अद्वैत वेदान्त पर लिखी गई अन्तिम रचना है। इसके पश्चात् उन्होंने भक्ति सम्बन्धी बहुमूल्य ग्रन्थों का निर्माण किया।

सरस्वती जी के साहित्य का अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने भक्ति साहित्य का निर्माण 'पुष्पदन्त' के "महिम्नः स्तोज' की टीका से आरम्भ किया है। उन्होंने भक्ति को अद्वैत वेदान्त के धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिये इस टीका में हरि और हर की एक रूपता का प्रतिपादन किया है। हरि और हर द्वैत नहीं द्वैताभास है। उन्होंने इसका निरूपण दार्शनिको की परम्परागत शैली में अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों के आधार पर किया है। सरस्वती जी ने अभीष्ट अर्थ की सिद्धि के लिये शब्दों की व्युत्पत्ति आश्चर्य जनक ढंग से की है जो उनके गम्भीर व्याकरण ज्ञान की परिचायक है। उनके अनुसार हरि और हर तत्वतः एक ही है भिन्नता की प्रतीति का कारण अज्ञान अथवा माया है।

भक्ति के क्षेत्र में घोर अव्यवस्था सिद्धान्त हीनता एवं अनर्गल प्रचार को देखकर सरस्वती जी ने भक्ति का विद्वज्जन सम्मान्य एवं सहृदय जन स्वीकार्य वह स्वरूप निर्धारित किया जो अद्वैत वेदान्त के अत्यन्त निकट था और सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अधिक अनुकूल भी था। अतः उन्होंने भक्ति के लक्षण ग्रन्थ के रूप में "भगवद्भक्ति रसायन" की रचना करके अपनी भक्ति विषयक मान्यताओं का प्रतिपादन किया।

'रसायन' का काल निश्चित करने के लिये यह तो कहा ही जा सकता है कि इसकी रचना सरस्वती जी ने अपने दार्शनिक ग्रन्थों के पश्चात् की हैं। क्योंकि रसायन में एक स्थान पर [1] 'वेदान्त कल्पलतिका' तथा दूसरे स्थान पर 'सिद्धान्त[2] बिन्दुः" नामक उनकी दार्शनिक रचनाओं का सन्दर्भ मिलता है। इसके अतिरिक्त रसायन में ही एक अत्यन्त पुष्ट प्रमाण उपलब्ध होता है वह है सरस्वती जी का एक

---

१. भक्ति रसायन पृ० ४४। २. वही पृष्ठ ५७।

श्लोक जो उन्होंने रसायन की टीका आरम्भ करने से पूर्व मंगलाचरण के रूप में लिखा है। इसमें अनन्य कृष्ण भक्त सरस्वती जी नन्द मन्दिर में स्थित किसी ऐसे अनिर्वचनीय स्वरूप को प्रणाम कर रहे हैं जिसकी अपने चरण नखों में प्रतिबिम्बित अपने दस रुद्रों के साथ शङ्कर स्वयं एकादशता को धारण करते हुए सम्यक् उपासना करते हैं। वह श्लोक निम्न प्रकार है—

[1]पदनखनिविष्ट मूर्तिभिरेकादशताभिवावहन्निष्टाम्।

यम् समुपासते गिरिशस्तं वन्दे नन्द मन्दिरेकञ्चित्॥

इस पद के विषय में अप्पयाजी दीक्षित एवं सरस्वती जी के भक्ति साहित्य में अपनी गहन रुचि रखने वाले विद्वानों की यह मान्यता है कि सरस्वती जी ने अपने इस मंगलाचरण द्वारा द्वैता-द्वैतवादी आचार्य अप्पयाजी दीक्षित की 'शिव ही अन्तिम तत्व है" इस मान्यता को अमान्य घोषित किया है। क्योंकि सरस्वती जी कृष्ण के अतिरिक्त किसी अन्य तत्व को नहीं जानते हैं। "कृष्णात्परं किमपितत्व-महंन जाने" उनकी यह प्रसिद्ध उक्ति इस विषय में साक्षी है। अतः यह सर्वथा सम्भव हो सकता है कि शिव को अन्तिम तत्व मानने वाले अथवा एक मात्र तत्व स्वीकार करने वाले दीक्षित जी के विरोध में सरस्वती जी ने अपनी मान्यता को स्थापित किया हो।

अप्पयाजी दीक्षित के कार्यकाल को निर्धारित करने में विद्वान एक मत नहीं हैं। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज दीक्षित जी का समय सन् १५२०-९३[2] मानते हैं। कल्याण के सम्पादक १५५०–१६२२ ई० मानते हैं।[3] श्री आर० के० स्वामी शास्त्री 'डेट ऑफ मधुसूदन' नामक अपने लेख में असंदिग्ध रूप से दीक्षित जी का काल १५५४-१६२६[4] ई० निश्चित करते हैं। इनमें अन्तिम दोनों मत ऐतिहासिक काल क्रम की दृष्टि से अधिक समीचीन प्रतीत होते हैं और विद्वानों के द्वारा मान्य स्वीकार किये गये हैं। अत. अप्पा जी दीक्षित के अन्तिम काल में लगभग १६२० ई० के सरस्वती जी ने भक्ति लोक का साङ्गोपाङ्ग दर्शन कराने वाली भगवद्भक्ति रसायन की रचना की होगी।

सरस्वती जी ने श्रीमद्भगवद्गीता पर भी 'गूढार्थ दीपिका' नामक टीका की

---

१. वही पृ० २।

२. सरस्वतीभवन स्टडीज वोल्यूम ७ पृ० १७७।

३. 'कल्याण' सन्तवाणी अंक पृ० १४८।

४. ओरियन्टल रिसर्च मदरास पृ० ९७–१०२।

रचना की है जो विद्वज्जगत् में 'मधुसूदनी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस टीका की रचना भी उन्होंने साधकों के लिये भगवद्भक्ति की अनिवार्यता का प्रतिपादन करने के लिये ही की है। उन्होंने यह टीका भगवत्पाद आचार्य शङ्कर के भाष्य को दृष्टि में रखकर ही रची है। इस टीका का आरम्भ करने की प्रतिज्ञा करते हुए वे कहते हैं कि—

'भगवत्पादभाष्यार्थमालोच्यातिप्रयत्नतः[1]
प्रायः प्रतिपदं कुर्वे गीता गूढार्थ दीपिकाम् ।।

अपनी इस टीका में भी सरस्वती जी ने प्रथम षटक् के कर्म और तृतीय षटक् के ज्ञान की अपेक्षा द्वितीय षटक् में प्रतिपादित भक्ति को ही प्रधानता दी है। उनकी दृष्टि में केवल भगवद्भक्ति द्वारा ही कर्म और ज्ञान की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। ये ज्ञान और कर्म दोनों को परस्पर महा विरोधी मानते हैं। बिना भक्ति के इन दोनों में समन्वय हो ही नहीं सकता। इन दोनों के मध्य अवस्थित भक्ति ही साधक के समस्त विघ्नों और पापों को समूल नष्ट करने वाली है—

'उभयानुगता सा ही सर्व विघ्नापनोदिनी।[2]

यह भक्ति कर्म मिश्रा, ज्ञान मिश्रा और शुद्धा नामों से तीन प्रकार की होती है। इन तीनों में वे शुद्धा भक्ति को सर्वोच्च सिंहासन पर विराजमान करते हुए कहते हैं कि—

यस्य[3] देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
यस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।।

इतना ही नहीं वे प्राग्भूमि के सिद्ध हो जाने पर भी उत्तरोत्तर भूमियों की सिद्धि के लिये भी भगवद्भक्ति को नितान्त आवश्यक मानते हैं। वे कहते हैं कि जीवन-मुक्त दशा में यद्यपि भक्ति के फल की कोई कल्पना नहीं की जा सकती किन्तु भगवद् भजन करना जीवन मुक्तों का स्वभाव बन जाता है।

जीवन[4] मुक्ति दशायां तु न भक्तेः फलकल्पना।
अद्वेष्टृत्वादिवत्तेषां स्वभावो भजनं हरेः ।।

इससे सिद्ध हो रहा है कि सरस्वती जी स्वभावत. भक्त थे दार्शनिक तो उन्हें परिस्थितियों ने बना दिया था। गीता की टीका के द्वितीय षटक् में वे घोषणा करते

---

१. गूढार्थ दीपिका टीका की अनुक्रमणिका—प्रथम श्लोक।
२. वही—७।
३. 'गूढार्थदीपिका टीका' की अनुक्रमणिका श्लोक ३०।
४. वही—श्लोक ३६।

हैं कि–यद्भक्ति न विना मुक्तिः" । सरस्वती जी की भक्ति का यथार्थ स्वरूप निश्चित करने के लिये गीता की गूढ़ार्थ दीपिका टीका के प्रत्येक षटक् पर प्राप्त भक्ति रस से परिपूर्ण उस सरस एवं भावुकता पूर्ण पदावली का अध्ययन, मनन एवं चिन्तन करना आवश्यक है । वस्तुतः गोपाल विलास में अभिव्यक्त प्रेमा भक्ति का मूल स्रोत इन पदों में खोजा जा सकता है ।

इस टीका की रचना सरस्वती जी ने अपनी वृद्धावस्था में की थी। इसमें भक्ति रसायन और 'अद्वैतसिद्धिः' दोनों का सन्दर्भ प्राप्त होता है। इन दोनों रचना-ओं का काल ऊपर निश्चित किया गया है । अतः गीता पर टीका की रचना उन्होंने १६२५–३० ई० के लगभग की होगी ।

श्री भागवतविद्यापीठ सन खेड़ा, नाडियार से श्री कृष्णशङ्कर शास्त्री द्वारा सम्पादित भागवत की विविध टीकाओं के साथ ही सरस्वती जी की भागवत के प्रथम श्लोक पर लिखी टीका और बोपदेवकृत हरिलीला विवेक पर उनका भाष्य भी प्रकाशित हुआ है ।

सरस्वती जी द्वारा भागवत के प्रथम श्लोक की टीका का आरम्भ करने से पूर्व मङ्गलाचरण के रूप में जो श्लोक दिया गया है उसमें "पद्यानां" पद षष्ठी बहुवचनान्त है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा हैं कि उन्होंने भागवत के समस्त पद्यों पर अपना भाष्य किया था । वह श्लोक निम्न है—

श्रीकृष्णं[1] परमं तत्वं नत्वा तस्य प्रसादतः
श्री भागवत पद्यानां कश्चित् भावः प्रकाश्यते"

केवल एक श्लोक की टीका करने के लिये मङ्गलाचरण नहीं किया जाता अपितु विघ्नरहित ग्रन्थ को पूर्ण करने की कामना से मङ्गलरूप भगवान की प्रार्थना की जाती है। यद्यपि वह सम्पूर्ण भाष्य आज प्राप्त नहीं है फिर भी इससे यह अनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि इस विशाल कार्य को परिपूर्ण करने में उनका पर्याप्त समय लगा होगा। यह सम्पूर्ण भाष्य १६३५–४० ई० के लगभग पूर्ण हुआ होगा ।

श्री पी० सी० दीवान जी एम०ए० एल०एल० एम० ने श्री बोपदेवकृत हरिलीला विवेक का सम्पादन किया है। इसकी भूमिका में उन्होंने अपने पूर्ण विश्वास के साथ अपने शोध पूर्ण तर्कों के आधार पर यह प्रमाणित किया है कि सरस्वती जी ने धार्मिक सिद्धान्तों के संकलन के रूप में श्री अप्पयाजी दीक्षित द्वारा विरचित "सिद्धान्त लेश संग्रह" पर भी अपने भाष्य की रचना की थी। सरस्वती जी, दीक्षित जी के पश्चात् पर्याप्त समय तक जीवित रहे और अन्तिम क्षण तक साहित्य

---

१. भागवतभाष्य मङ्गलाचरण ।

साधना में संलग्न रहे। दीवान जी के विचारों से सहमति रखते हुए श्री दीक्षित जी और उनकी रचना 'सिद्धान्त लेश संग्रह' पर भाष्य करने वाले सरस्वती जी के समय में पचास वर्ष का अन्तर मान लेने पर इस रचना का समय सतरहवीं शताब्दी का द्वितीय चतुर्थांश अर्थात् १६५० ई० सिद्ध होता है जो पूर्णतया तथ्यों के आधार पर है और युक्ति-युक्त है।

उदासीन संस्कृत विद्यालय वाराणसी से गीता की मधुसूदनी टीका का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने वाले श्रीसनातन देव जी ने ग्रन्थ के आरम्भ में सरस्वती जी का संक्षिप्त जीवन-परिचय दिया है जिसमें वे कहते हैं कि—"सरस्वती जी ने श्रीक्षेत्र के समीप नदी तट पर कहीं बन में रहकर सतरह वर्ष तक तपस्या की थी तथापि अभी तक चित्त पूर्ण शान्त नहीं था। वह कुछ नीरसता का अनुभव करता था। इसी समय एक परम हंस ने उन्हें कृष्णोपासना के लिये प्रेरित करते हुए कहा कि तुम्हें सच्चा आनन्द तो आनन्द कन्द कृष्ण चन्द्र के चरणों में ही मिल सकता है। लगभग यही बात "भारतेर साधक" नामक जीवनी ग्रन्थ में कही गई है।

सम्भवतः इसी समय व्रजभूमि की यात्रा से वापिस आने के पश्चात् कहीं एकान्त में सरस्वती जी ने अपने एक मात्र आराध्य व्रजचन्द्र को प्रसन्न करने के लिये 'आनन्दमन्दाकिनी' नामक अपने लघुकाव्य में उनके नख-शिख सौन्दर्य का अत्यन्त भावुकता पूर्ण सरस चित्रण प्रस्तुत करने के पश्चात् "गोपाल विलास" की रचना की होगी।

वस्तुतः 'आनन्द मन्दाकिनी' गोपाल विलास का प्रारूप सा प्रतीत होता है। गीता की गूढार्थ दीपिका के प्रत्येक षटक पर जो पद प्राप्त होते हैं उनसे सरस्वती जी के कृष्ण का कोई स्वरूप निश्चित नहीं होता उनसे केवल उनकी भक्ति की दिशा अवश्य निर्धारित की जा सकती है। वे सर्व प्रथम 'मन्दाकिनी' में ही गोपाल का नखशिख वर्णन करते हुए, अपने इष्ट देव के अनेक सौन्दर्यस्नात विविध मुद्राओं में सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं।

आनन्द 'मन्दाकिनी' गोपाल विलास का पूर्वाभ्यास सा दृष्टिगत होता है। इसके नौ और दस श्लोकों का विस्तृत रूप ही 'गोपाल विलास' के दूसरे और चौथे सर्ग में देखा जा सकता है। इसी प्रकार 'मन्दाकिनी' के अन्य अनेक श्लोक भी 'गोपाल विलास' की विषय वस्तु की ओर स्पष्ट संकेत करते हुए मिलते हैं। इस काव्य में एक सौ दो श्लोक हैं।

इस समय सरस्वती जी की मानसिक स्थिति बड़ी विचित्र थी। अहर्निश कृष्णतत्व के चिन्तन में ही लीन रहते थे। वेदान्त बहुत पीछे छूट चुका था। ब्रह्म के स्थान में भगवत् तत्व गोपाल की स्थापना हो चुकी थी। अब एक मात्र गोपवधू विट्

---

१ गीता की मधुसूदनी टीका के हिन्दी अनुवाद का आमुख।

गोपाल की अद्वैत भक्ति का निरन्तर रसपान करते रहना ही उनके शेष जीवन का सहज साधन एवं साध्य बन गया था। उनके भावुक हृदय को कृष्ण भक्ति का यह प्रबल ज्वार अपने पूर्ण वेग के साथ अत्यन्त आन्दोलित कर रहा था जिसे इस लघु कलेवर युक्त मन्दाकिनी में सीमित कर देना असंभव था। स्वयं सरस्वती जी को भी इससे कोई तीव्र आत्मानुभूति एवं आत्म सन्तुष्टि प्राप्त नहीं हुई होगी अतः उन्होंने अपने इसी सर्वोच्च लक्ष्य परम पुरुषार्थ रूप रसोवैसः की उपलब्धि के लिये तथा अपने इष्ट देव को प्रसन्न करने के लिये एक-मात्र साधन भूत भक्ति रस सम्भृत महाकाव्य के निर्माण का बृहदायोजन किया होगा। साथ ही उन्होंने रसायन में निर्धारित की गई अपनी समस्त भक्ति विषयक मान्यताओं को सिद्ध करने के लिये कृष्ण तत्व को भक्ति रस के एक मात्र आलम्बन के रूप में स्थापित करने के लिये महाकाव्य के एक विशाल विस्तृत एवं व्यापक क्षेत्र की आवश्यकता अनुभव की। गोपाल विलास के रूप में इस महाकाव्य का जन्म 'आनन्द मन्दाकिनी' के पश्चात् हुआ होगा और उसका समापन सन् १६७० ई० में किया गया।

यह औरंगजेब का काल था। उसने १६५८ ई० से १७०७ ई० तक शासन किया। धर्म परिवर्तन के लिये हिन्दुओं पर सर्वाधिक अत्याचार इसी काल में किये गये थे। काशी विश्वनाथ मन्दिर भी इन्हीं दिनों धराशायी किया गया था। भारतीय संस्कृति का संहार करने वाले ये यवन देश में स्वतन्त्रता के साथ सर्वत्र विचरण करते थे। इसका अनुमान सरस्वती जी जैसे वीतरागी विदेह सन्यासी तथा अत्यन्त उदार भक्त की इन पङ्क्तियो से लगाया जा सकता है, जिसमें उन्होंने यवनों की आकृति उनकी मनोवृत्ति एवं उनके क्रिया-कलाप तथा जीवन दर्शन की झांकी प्रस्तुत की है। विशेष रूप से तीर्थों पर सर्वत्र विचरण करते हुए विधर्मी और विदेशी विजयोन्मत्त यवनों का स्पष्ट चित्र अङ्कित करते हुए सरस्वती जी कहते हैं कि—

'[1]भद्रोपद्रवकारिणः खरमुखाः दुष्टाशयाः शूकराः
एणाः मा विलसन्तु सन्ति परितः पञ्चाननाः सज्जनाः

हिन्दुओं के धार्मिक एवं सांस्कृति तथा सामाजिक समारोहों में उपद्रव करने वाले, जघन्य कृत्यों में रत रहने के कारण क्रूर आकृति वाले दुष्ट आशय अर्थात् कुत्सित मनोवृत्ति वाले भक्ष्याभक्ष्य का बोध न रखने वाले शूकर के समान जंगली पशुओं की भाँति हमारे बीच में भले ही विलसित होते हों, हमें इसकी कोइ चिन्ता नहीं है क्योंकि इन्हें देर-सवेर यमलोक पहुँचाने वाले सज्जन रूप सिंह सर्वत्र हमारे चारों ओर निवास करते हैं।

भारतीय समाज के प्रति दुष्ट भावनायें रखने वाले शूकर के समान घोर तामसिक जीवन व्यतीत करने वाले यवनों के प्रति अपने हृदय की सम्पूर्ण घृणा की अभिव्यक्ति वे इस एक शब्द 'शूकर' के द्वारा ही कर देने हैं। सरस्वती जी जैसे तपः

१. गोपालविलास ११/६१।

पूत आत्मा के क्षुब्ध हृदय की स्थिति का आकलन इस शब्द से अवश्य हो जाता है। वे शास्त्र को ही नहीं शस्त्र को भी संस्कृति की रक्षा के लिये आवश्यक मानते थे। इसी लिये उन्होंने नागावाहिनी को संगठित किया। ऊपर दिया हुआ यह विवरण निश्चित रूप से औरंगजेब के काल की ओर स्पष्ट संकेत करता है। अकबर और शाहजहाँ के काल में जो ग्रन्थ रचे है उनमें कहीं भी इस प्रकार का कोई संकेत नहीं मिलता। अतः यह रचना औरंगजेब के काल की ही है।

इसी काल में हिन्दु धर्म की आधारभूत मान्यताओं पर सर्वाधिक कठोर प्रहार किये गये थे। भारतीय संस्कृति के प्रहरियों, धार्मिक नेताओं, योगियों संन्यासियों, साधु-सन्तों, ब्राह्मणों और भक्तों आदि पर अत्याचार होते थे। इसका प्रतिरोध करने वाली नागावाहिनी का औरंगजेब के सैनिकों से आमने-सामने का युद्ध होता था, जन समर्थन नागा सैनिकों के साथ रहता था। अतः नागाओं की विजय होती थी। यह देखकर ईर्ष्यालु औरंगजेब ने सरस्वती जी को अपने दरबार में आमन्त्रित किया। वहाँ सरस्वती जी ने आत्म रक्षा को जीवन की सर्वप्रथम आवश्यकता बताया। उन्होंने जो तर्क इस विषय में दरबार में रक्खे उनसे वह निरुत्तर हो गया।

'हरिलीला विवेक' की अपनी भूमिका में 'श्री ईश्वर चन्द्र जी भी इस तथ्य से पूर्णतया अपनी सहमति प्रकट करते हैं। वे कहते हैं कि शक सम्वत् १६०० अर्थात् सन् १६७८ में देहली के बादशाह औरंगजेब ने सरस्वती जी को दरबार में बुलाया था। सरस्वती जी की वक्तृता से सभी दरबारी अत्यन्त प्रभावित हुए और वहाँ उपस्थित सभी धार्मिक आचार्यों ने सरस्वती जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इससे निःसन्देह रूप से यह सिद्ध हो जाता है कि सरस्वती जी सन् १६७० में 'गोपाल विलास' की रचना करने के पश्चात् भी अनेक वर्षों तक यशस्वी जीवन व्यतीत करते रहे।

अतः मधुसूदन सरस्वती विरचित 'गोपाल विलास' महाकाव्य का काल औरंगजेब का काल है। और औरंगजेब का काल सरस्वती जी का अन्तिम काल है।

अठारहवीं शती तक सरस्वती जी की रचनायें पर्याप्त प्रसिद्ध हो गई थीं।

तस्यैवाहं ममैवासो स एवाहमितित्रिधा।
भगवच्छरणत्वंस्यात् साधनाभ्यासपाकतः॥

सरस्वती जी की इस कारिका को श्रीहरि दीक्षित ने 'शिव गीता' के अपने भाष्य में उद्धृत किया है। श्रीहरि दीक्षित ने 'ब्रह्मसूत्र वृत्ति' की भी रचना की है

१. ओरियन्टल रिसर्च मदरास वॉल्यूम २ प्रिन्ट २, पृष्ठ ९७–१०४।
२. गीता की गूढार्थ-दीपिका टीका, तृतीय षटक् के अन्त में।

जिसे आनन्दाश्रम संस्कृत सीरिज ने सम्पादित कराया है। इसके अन्त में इसकी समापन तिथि दी गई है जिसके आधार पर यह रचना शक सम्वत् १६५८ या सन् १७३६ की है।

"गजेषुरससूसंख्ये चानलाह्वयेज्येष्ठशुक्लात्रियोदश्यां ग्रन्थः सिद्धिरगादयम् "

इससे यह सिद्ध हो जाता है कि अठारहवी शती के आरम्भ में सरस्वती जी के ग्रन्थों को विद्वानों द्वारा एक सिद्ध प्रमाण के रूप में उद्धृत किया जाने लगा था। श्री आर० कृष्ण स्वामी 'ओरियन्टल रिसर्च' को दिये अपने लेख में कहते हैं कि इन तथ्यों के आधार पर स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सरस्वती जी सतरहवीं शदी के त्रिचतुर्थांश तक अवश्य अपनी साधना में रत रहे।

(ग) गोपाल विलास की प्रामाणिकता—

शोध कर्ता की यह धारणा है कि सरस्वती जी ने अपने सम्पूर्ण भक्ति-साहित्य में जिन भक्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों का निरूपण किया है एवं जिन मान्यताओं का निर्धारण किया है उनकी कलात्मक अनुभूति एवं प्रत्यक्ष परिज्ञान कराने के लिये ही उन्होंने गोपाल विलास काव्य की रचना की है।

सरस्वती जी की भक्ति विषयक सभी प्रामाणिक रचनाओं से उद्धरण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया जायेगा कि गोपाल विलास के लिये उन्होंने अपनी इन सभी रचनाओं का उपयोग किया है और किसी न किसी रूप में इनसे सहायता ली है। जिस प्रकार ये सभी रचनायें विद्वानों द्वारा सरस्वती जी की लेखनी से निर्गत मानी जाती हैं और उन्हीं की प्रामाणिक रचनाओं के रूप में विद्वानों द्वारा समादृत हैं उसी प्रकार 'गोपाल विलास' भी सरस्वती जी की एक प्रमाणित कृति है।

सर्व प्रथम उनकी रचना भक्ति रसायन को लेते हैं।

गोपाल विलाल और भक्ति रसायन—भक्ति रसायन का गोपाल विलास के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। रसायन भक्ति का लक्षण ग्रन्थ है और विलास लक्ष्य ग्रन्थ। अतः इन दोनों की विषय सामग्री से यह सिद्ध किया जायेगा कि 'रसायन' और विलास दोनों एक ही पिता की औरस सन्तान हैं।

जिस प्रकार सरस्वतो जी ने रसायन में भक्ति योग[2] का तदनन्तर भक्ति रस[3] का प्रथक्-प्रथक् लक्षण पुरस्सर विवेचन किया है उसी प्रकार गोपाल विलास के प्रथम

---

१. श्री आर० कृष्ण स्वामी शास्त्री का 'ओरियन्टल रिसर्च मदरास' में छपा लेख पृष्ठ ९७—१०४।

२. भक्ति रसायन पृष्ठ ३ से १९ तक।

३. वही, पृष्ठ ८० से ४४ तक।

तीन सर्गों में सरस्वती जी ने भक्ति योग का निदर्शन किया है तथा चतुर्थ सर्ग से अन्तिम ग्यारहवें सर्ग तक भक्ति रस की सिद्धि की है।

रसायन में अपनी भक्ति को स्पष्ट करते हुए सरस्वती जी कहते हैं कि भगवत् गुण गण श्रवण से तैल धारावत् अविच्छिन्न रूप से द्रवित हुए चित्त में स्थिरता से प्रविष्ट हुई जो गोविन्दाकारता है वही भक्ति है।

[1]द्रुते चित्ते प्रविष्टा या गोविन्दाकारता स्थिरा
सा भक्तिरित्यभिहिता

चित्त की यह गोविन्दाकारता वृत्ति गोपाल विलास की गोपियों को सहज रूप में प्राप्त है। क्योंकि वे जन्म जन्मान्तर से भगवान की सेविका हैं। अब भी वे भगवान् की आज्ञा से उन की सेवा करने के लिये ही गोपी रूप से व्रज में निवास करती हैं। भगवत गुण गण श्रवण से द्रवित बने हुए इन गोप रमणियों के चित्तों में गोपाल के अतिरिक्त अन्य कोई निवास नहीं करता। वे कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानती। वे कृष्ण से स्पष्ट कह देती है कि इस संसार में आपके बिना हमारा कोई प्रियतम नहीं है। सरस्वती जी ने उनकी इस भक्ति को कामजा भक्ति कहा है। इस कामजा भक्ति को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि शरीर का जो विशिष्ट सुरतादि रूप सम्बन्ध है तद्विषयक उत्कट इच्छा होना ही काम है। वह कामसन्निधान और असन्निधान भेदों से दो प्रकार का है। इस कामजा रति से गोप रमणियों के द्रवित चित्तों में जो श्री कृष्ण रूप निष्ठता है वह संभोग और विप्रलम्भ इन दो रूपों में प्रकट होती है। गोपाल विलास में इन दोनों प्रकार की रतियों का विस्तार सहित वर्णन किया गया है।

यह भगवत् विषया रति विभावादि के योग से यदि शृङ्गार से तादात्म्य को प्राप्त होती है तो वह कामजा भक्ति कहलाती है—

[2]शृङ्गार मिश्रिता भक्तिः कामजा भक्तिरिष्यते।

काम जन्य रतियों का निरूपण करने के पश्चात् सरस्वती जी क्रोध[3]जन्य रतिका विवेचन करते हुए कहते हैं कि ईर्ष्या के कारण चित्त में जो दाह उत्पन्न होता है वही क्रोध है। इस क्रोध जन्य चित्त की द्रुति से जो रति उत्पन्न होती है वह द्वेष शब्द से अभिहित होती है। इस द्वेष से उत्पन्न जो चित्त की व्याकुलता है वह उपद्रावक के दर्शन से जन्म लेती है और दो प्रकार की होती है—

१. उपद्रावक नाश विषयिणी
२. उपद्रावक प्रीति विषयिणी—

---

१. भक्ति रसायन २/३। २. वही २/६७।
३. क्रोध ईर्ष्या निमित्तं तु चित्ताभिज्वलनं भवेत्, तज्जन्यायां द्रुतौ सातु द्वेष शब्देन गृह्यते। वही २/५।

इनमें से प्रथम प्रकार की चित्त की व्याकुलता को द्वेष कहेंगे जिसके उदाहरण शिशुपाल और कंस हैं जो द्वेष के उद्दीपन विभाव श्री कृष्ण को देखकर उनके नाश की इच्छा से प्रज्वलित हो उठते हैं। दूसरे प्रकार के उदाहरण में सपत्नीगमनादि अपराधों के कारण उपद्रावक गोपाल कृष्ण से द्वेष करने वाली गोपबालाओं का विश्व विश्रुत प्रेम आता है। उसे ही सरस्वती जी रति कहते हैं। इस रति के अनेक उदाहरण गोपाल विलास में मिलेंगे किन्तु प्रथम प्रकार का एक भी उदाहरण गोपाल विलास में दर्शन मात्र को भी नहीं मिलेगा।

उपद्रावक प्रीति विषयिणी क्रोधजन्य रति का प्रथम उदाहरण—

[1]माम् विहाय विपिने बनमाली राधिका रतिरसेषुनिमग्नः
इत्यनल्प विगलन्मधु धारां चिन्तयन्त्यनुसवं गलदश्रा।
माधवी स्तवक मञ्जुलदीव्यद्वर्तुलस्तनभरानमदङ्गी
रञ्जितालि घनसार परागैः रोदतिस्ममधुपौघ रवैः किम्॥

अर्थात् वृन्दावन वासिनी माधवी की मनोव्यथा देखिये जो अपने प्रियतम गोपाल को राधा के साथ रति क्रीड़ा में लीन समझकर अत्यन्त रुष्ट बनी हुई निरन्तर आंसू बहा रही है। वह कहती है कि मुझे बन में एकाकी छोड़कर प्रियतम बनमाली मदन मोहन राधा के साथ रति रस का आनन्द ले रहे हैं। यह सोचकर अपने विशाल स्तवक रूप दिव्य वर्तुलाकार स्तनों के भार से झुकी हुई अपने सघन परागों से आरञ्जित बनी हुई यह माधवी सपत्नी राधा के रत्पानन्द में मग्न अपने प्रियतम का चिन्तन कर रही है और अपने मधुरस के रूप में नेत्रों से आंसू गिराती हुइ तीव्र रोष के कारण मधुपों के गुञ्जन के व्याज से रुदन कर रही है। द्वितीय उदाहरण—

[2]आससाद सरसां सुकुमारीं चञ्चरीक तरुणो नव वल्लीम्।
किं विलोक्य तदियं वलदङ्गी मालतीभुविपपात वियोगात्॥

अर्थात्—सदैव मालती के साथ रतिक्रीड़ा में व्यस्त रहने वाला वह तरुण मधुप श्याम कोमलाङ्गी नवमल्लिका के रस का पान करने के लिये उस पर पहुँच जाता है जिसे देखकर यह मालती क्या सपत्नी जन्य रोष के कारण व्याकुल बनी हुई पृथ्वी पर लोट पोट हो रही है।

भयजन्यरति—द्वेष का कारण न होने पर भी निज अपराध जनित क्षोभ से चित्त द्रुति होने पर जो भगवद्विषयक रति होती है उसे भय कहा जाता है—

[3]द्वेषाहेतुः स्वमन्तूत्थं वैक्लव्यं चित्तगंतुयत्।
तज्जन्यायां द्रुतौ यास्ते रति साभयमुच्यते॥

---

१. गोपाल विलास ५/१०–११। २. वही ५/१६।
३. भक्ति रसायन २/८।

उदाहरण—

सि'त्वा स्थितं घृतपय परिपूरितानि
पात्राण्युदूखल तले सखिभिस्समेतम् ।
दृष्ट्वा गृहान्त मिलितं भयलोल दृष्टि
दाम्ना बबन्ध चपलं तनयं यशोदा ॥[1]

अर्थात् घृत पय परिपूरित पात्रों को फोड़कर अपने सखाओं के साथ घर के एकान्त कक्ष में स्वापराध जनित क्षोभ से उत्पन्न भय के कारण चञ्चल बने हुए नेत्रों वाले अपने नटखट पुत्र गोपाल को माता यशोदा ने रस्सी से बांध दिया।

किसी असाधारण संकट के भय से ग्रस्त भक्त के चित्त की व्याकुलता से भी चित्त द्रुति होती है जिसका हेतु द्वेष नहीं होता वह करुण रस पूर्ण रति के अन्तर्गत आता है। उदाहरणार्थ गोपाल विलास का निम्न श्लोक दृष्टव्य है—

[2]देवेन्द्रवज्राद्‌भवन्न पक्षा क्षोणिधरास्तस्य सहोदरोऽयम् ।
कर्ता किमद्येति तदा वधूनां वक्षोज शैलेषु बभूव कम्पः ॥

रास लीला के अवसर पर गोपाल को अत्यन्त अधीर हुआ देखकर गोप रमणियाँ भयभीत हो जाती हैं। वे कहती हैं कि स्वर्ग सम्राट् इन्द्र ने अपने वज्र से पर्वतों को पक्ष विहीन बना दिया था। हमारे प्राण वल्लभ नन्दनन्दन उनके ही सहोदर है। कुछ पता नहीं वे आज हमारे साथ क्या करेंगे? इस कल्पना से अत्यन्त भयभीत बनी हुई गोपयुवतियों के कुच-कुधरों में कम्प होने लगता है।

इसी भाव को दूसरे रूप में कहते हैं कि—जिसने प्राचीन काल में सर्वोत्तम पर्वतों को भी बाल सुलभ क्रीड़ा में ही उखाड़ दिया था, पर्वतों के कुल घाती उस इन्द्र के ये भ्राता हैं। इस चिन्ता से गोपबालाओं के स्वर्ण शैलों में भयजन्य क्षोभ के कारण स्वेद धारा प्रवाहित होने लगती है। उनके हृदयों में उत्पन्न इस उग्र भय का विशेष कारण यह है कि इन्द्र ने जिन शैलों को उखाड़ फेंका था वे सब तो कंकड़ पत्थर के ही रहे होंगे। जब उन्हें भी पुरन्दर ने ध्वस्त कर दिया था तब उनके ही भ्राता ये व्रजेन्द्र नन्दन हमारे इन स्वर्ण शैलों को क्यों छोड़ने लगे हैं अर्थात् इन पर भी अब अवश्य आक्रमण होगा। इसी कल्पना से उनके उरोजों में भय से खिन्नता उत्पन्न हो जाती है। वह श्लोक निम्न प्रकार है—

[3]एषः भ्राता गोत्रभेत्तुः पुरस्तात् बालक्रीडोत्पाटितक्ष्मा धरेन्द्रः ।
एवं क्षोभः स्वेद धाराबिरासीत् बालावक्षः स्वर्णभूमीधराणाम् ॥

पाल्य पालक लक्षण वाला पुत्रादि विषयक भाव स्नेह कहलाता है और दूसरा सेव्य सेवक भाव है जिसे सरस्वती जी ने तीन प्रकार का कहा है—

---

१. गोपाल विलास १/६८। २. वही ३/२९।
३. गोपाल विलास ३/३०।

(१) दास्यभाव, (२) सख्यभाव, (३) मिश्रितभाव।

[1]स्नेहः पुत्रादि विषयः पाल्यपालक लक्षणः।
सेव्य सेवक भावोऽन्यः सोऽप्युक्तरित्रविधोबुधैः॥

दास्य और सख्य इन दो प्रकार के मिश्रित स्नेह से द्रवित चित्त में जो गोविन्दाकारता उत्पन्न होती है वह यदि पाल्यपालक भाव से हो तो वत्सल रति कहलायेगी और सेव्यसेवक भाव से हो तब उसे प्रेयोरति कहेंगे।

[2]भगवद्दास्य सख्याभ्यां मिश्रितं चापरं जगुः
या कृष्णकारता चित्ते तज्जन्य द्रुति शालिनि।
[3]पाल्यपालक भावेन सा वत्सल रतिर्भवेत्
सेव्य सेवक भावेन प्रेयोरतिरितीर्यते॥

पाल्यपालक भाव वाली पुत्रादि विषयक रति के निम्न उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१) [4]हैयंगवीन कवलोचित वाम पाणि दुग्धान्नदक्षिणकरः कुटिलालकास्यः।
कृष्णः कदाचिदवला करतालिकाभिः नृत्याकुलस्सुखसमुद्रमपूरि पित्रोः॥

(२) [5]आगच्छवत्सदधि मोदकदुग्धसारान्
भुंक्ष्वेति गोप जरती जननी वचोभिः।
सम्ब्दारितः कर युगेन गृहीत पुच्छान्
वत्सान् बलेन सहितोऽनुससार कृष्णः॥

(३) [6]त्यजाशु शंय्यामभिषेकमाचर
प्रभात भोज्यानि गृहाण पुत्रक ?
सहस्र गोर्गोभिरलङ्कृतां बनं
प्रयाहि गोभिः सखिभिः समन्ततः॥

(४) [7]ततस्तुदोर्भ्यां परिरंभ निर्भरं, चुचुम्ब पुत्रस्य मुखंव्रजेश्वरी।
विमर्दयन् पाणितलेन लोचने तदा मुकुन्दः शयनं जहौ क्रमात्॥

सेव्य सेवक भाव वाली प्रेयोरति उदाहरण निम्न प्रकार से हैं—

(१) [8]सुखं समासीनमवेक्ष्य माधवं तदीय सेवामिषतः समन्ततः।
तथावलाभिर्मदनस्य भूपतेरकारिलावण्य गृहस्य लुण्ठनम्॥

(२) [9]काचित् मुकुन्दस्य मुखेन्दुनिर्गतंताम्बूल कल्कंकरपल्लवे दधे।
पाथोधि पुत्री कुचपालि पालितं पादाम्बुज वापि ममर्द गोपिका॥

---

१. भक्ति रसायन २/६।
२. वही २/१०।
३. वही २/११।
४. गोपाल विलास १/६१।
५. वही १/६४।
६. वही ११/८१।
७. वही ११/८३।
८. गोपाल विलास ३/२०।
९. वही ३/११।

(३) ¹लोलालकान् कान्त कपोल संगतीन् संवृण्वती कापि चुचुम्ब तन्मुखम् ।
अन्या तदङ्गानि विमृज्य पाणिना संवीजयामास सरोजिनीदलैः ॥

गोपियाँ भली प्रकार जानती हैं कि उन्हें अपने स्वामी की सेवा किस प्रकार करनी है ? उन्हें यह भी पता है कि उनके प्रियतम नन्दनन्दन उनसे किस प्रकार की सेवा चाहते हैं और वे किस प्रकार की सेवा से सर्वाधिक प्रसन्न होते हैं। भक्ति रस की साधना के लिये इस प्रकार की भगवत सेवा को सरस्वती जी ने सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। भक्ति रसोपलब्धि के लिये नारद ने जो उपाय भागवत के प्रथम स्कन्ध में बताये हैं, उन्हें ही सरस्वती जी ने अपनी भक्ति रसायन में ग्यारह भूमिकाओं के भेद से प्रस्तुत किया है। उनमें प्रथम भूमिका 'महतां सेवा' है। ²'प्रथमम्महतां सेवा'। इस महत् सेवा को उन्होंने दो प्रकार का माना है—(१) (१) भगवद्भक्त सेवा (२) साक्षाद्भगवत्³ सेवा। इस प्रकार गोपियाँ साक्षात् भगवान की सेविका है। भगवान की इसी प्रकार की सेवा में वे सतत संलग्न रहती है और अपने जीवन को धन्य मानती हैं।

हर्षजन्य रति

⁴हर्षश्चित्त समुल्लासः कथ्यते स चतुर्विधः
एकः परानन्दमयः श्रीशमाहात्म्य कारणम्।
तज्जन्यायां द्रुतौ शुद्धा रतिर्गोविन्द गोचरा
एतदन्त हि शास्त्रेषु साधनाभ्यासमिष्यते ।।

जिससे चित्त का सम्यक् उल्लास होता है वह हर्ष है। इस असीमानन्दोल्लास से द्रवित चित्त में जो रति होती है वह शुद्धा रति के नाम से अभिहित होती है क्योंकि इसमें ही भगवान का साक्षात्कार होता है। हर्षजन्य रति के उत्पन्न होने पर फिर किसी प्रकार की साधना आवश्यक नहीं होती।

गोपाल विलास के तृतीय सर्ग में इस हर्षजन्य रति के दर्शन उस समय होते हैं जब गोपियाँ अपने प्रियतम के विरह में व्यथित बनी हुई यमुना के तट पर आकर विलाप करती हुई अपनी सुध बुध खो देती है। तभी कृष्ण उन पर सदय होकर उनके मध्य प्रकट होते हैं। अपने प्राण वल्लभ को देखते ही उन मृगनयनियों के अश्रु पूरित्त तरल नेत्रों में नव ज्योति का संसार होने लगता है। उनके हृदय अत्यधिक हर्ष के कारण उसी प्रकार उन्मत्त हो जाते हैं जिस प्रकार बलराम के हल से आकृष्ट यमुना का हृदय आनन्दातिरेक के कारण द्रुत गति से आन्दोलित होने लगता है। वह श्लोक निम्नलिखित है—

---

१ वही ३/२४। २. भक्ति रसायन १/३४।
३. वही पृ० ९१। ४. वही २/१२-१३।

[1]'बलानुज विलोकनान्मृगदृशांदृशां तरलिता द्युति समुदिता।
हलायुध हलाहतेरिव चलत्कलिंदननया जलोद्धतगतिः॥

यह हर्ष चार प्रकार का होता है। प्रथम शुद्ध हर्ष है जिसका उदाहरण ऊपर दिया गया है। हर्ष का दूसरा भेद हास है। हास का लक्षण निश्चित करते हुए सरस्वती जी कहते हैं कि विकृत वाणी, वेष, हाथ, भाव, चेष्टा आदि से जन्य चित्त का द्रवी भाव होने पर जो चित्त का समुल्लास होता है वह हास कहलाता है—

[2]'व्रीड़ा विकृतवाक्, वेष चेष्टादि जनितो परः।
तज्जज्यायां द्रुतौ चेतो विकासो हास उच्यते॥

हास के निम्न उदाहरण गोपाल विलास से दिये जाते हैं—

गोपियाँ केलिकानन में पहुँचने के लिये आतुर बनी हुई है। अत्यधिक शीघ्रता के कारण ऐसा विचित्र उल्टा सीधा शृङ्गार किये हुए हैं जिसे देखकर बरबस हंसी आ जाती है।

उनमें अनंगसेना आदि वरांगनायें चरणों में धारण किये जाने वाले तुला कोटियों को भुजाओं में अंगदों के स्थान पर पहन लेती है। कटि पर हार, पैरों में कुडली और स्तनों पर धारण की हुई काञ्ची से कलख करती हुई रासभूमि की ओर जा रही है।

[3]'अनंगसेनादि वरांगनास्तदा क्वणत्तुलाकोटिविनिर्मिताङ्गदाः।
कटीर हारा पदबद्ध कुंडली कुचांत काञ्ची क्वणिता वनं ययुः॥

मिलन के लिये अत्यधिक आतुर बनी हुई रति प्रिया आदि गोपरमणियाँ कंगनों से कानों को सजाये हुए हैं, स्तनों पर अलक्तक लगाये हुए हैं, चरणों में चन्दन का लेप किये हुए हैं और उनके नेत्र कुंकुम से सजे हुए हैं।

[4]'स्मरोत्सुका कङ्कण कर्णभूषणा रतिप्रियाद्याः दयिता कलानिधेः।
अलक्तकालिप्तकुचास्सचन्दनाः पदद्वये नेत्र युगे सकुंकुमाः॥

कोई कनक कलेवरा गोपी अपने एक स्तन पर ही चन्दन का लेप किये हुए ऐसी लग रही है मानो वह, केवल एक साधारण से गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले कृष्ण पर विजय प्राप्त करने की कामना लिये हुए हेमाद्रि और सुमेरु दो प्रसिद्ध पर्वतों को धारण किये हुए हो।

[5]'कन्दर्पकीर्तिः कनकोज्वलाङ्गी श्रीखण्डलिप्तैक कुचं वहन्ती।
गोवर्धनोद्धारि जिगीषयेव प्रालेय हेमाद्रिधरा रराज॥

हर्ष का तृतीय प्रकार विस्मय है जिसे स्पष्ट करते हुए सरस्वती जी कहते

---

१. गोपाल विलास ३/१३। २. भक्ति रसायन २/१४।
३. गोपाल विलास २/१८। ४. वही २/१९।
५. गोपाल विलास २/२०।

हैं कि अलौकिक चमत्कारी वस्तु को देखने से उत्पन्न होने वाला हर्ष का तीसरा प्रकार विस्मय कहलाता है—

[1]लोकोत्तर चमत्कारी वस्तु दर्शनजः पुरः ।
तज्जन्यायां द्रुतो चेतो विकासो विस्मयो मतः ।।

गोपाल विलास से उदाहरण प्रस्तुत है—कृष्ण के बेणु वादन को सुरस्त्रियाँ स्वर्ग में बड़े विस्मय के साथ सुनती है ।

[2]किमेणी दृग् वक्षोरुह गिरिदरी कामपारीन्द्र निद्रा
दरिद्रत्वाद्धात्राध्यरचिविधिना मेघ विस्फूजितालिः ।
किमुद्यन्माध्वीकद्रव परिणतिः, किन्तु पीयूष सिन्धुः
मधु द्रोग्धुः वंशी ध्वनिरिति सुरस्त्री कदम्बः व्यतर्कि ।।

षष्ठ सर्ग के आरम्भ में दूती दूर से ही कृष्ण के रूप लावण्य को बड़े विस्मय के साथ देखती है और विविध प्रकार की अनेक कल्पनायें करती है ।

हर्ष का चतुर्थ भेद उत्साह है । सरस्वती जी कहते हैं कि युद्धाभिपात से वीरों के चित्त में उत्पन्न होने वाले हर्ष से द्रवित चित्त का समुल्लास उत्साह कहा जाता है ।

[3]युद्धाभिपात जनितां वीराणां जायते परः ।
ततश्चित्तस्य विस्तारो द्रुतस्योत्साह उच्यते ।।

यद्यपि युद्धोत्साह के लिये गोपाल विलास की विषय वस्तु में कोई स्थान प्राप्त नहीं है फिर भी सरस्वती जी ने रसायन में निश्चित किये गये भक्ति के लक्षणों को सिद्ध करने के लिये कुछ उदाहरण गोपाल विलास में अवश्य दिये हैं । गोपाङ्गनाओं में असीम युद्धोत्साह के दर्शन तब होते हैं जब नन्दनन्दन गोपाल पर विजय प्राप्त करने के लिये कामदेव द्वारा सुसज्जित की गई तथा युद्ध के लिये सन्नद्ध ब्रज सुन्दरियों की सेनाओं की तुला कोटियों से उत्पन्न प्रचण्ड टङ्कारों को सुनकर भय के कारण कम्पित गात्र वाले गोपाल रोमाञ्चित हो जाते हैं ।

[4]युद्धोद्धुराणां व्रजसुन्दरीणामनीकनीनामथमीनकेतोः ।
श्रुत्वा तुला कोटि रवं सकम्पः प्रोद्भिन्नरोमोजनिनन्दसूनुः ।।

शोक से उत्पन्न रति

शोकजा रति का लक्षण निर्धारित करते हुए सरस्वती जी कहते हैं कि प्रिय के वियोग से जनित जो वैकल्य चित्त में होता है उससे उत्पन्न चित्त द्रुति में प्रविष्ट रति शोक कहलाती है ।

---

१. भक्ति रसा॰ २/१५ ।
२. गोपाल विलास ३/६४ ।
३. भक्ति रसायनं २/१६ ।
४. गोपाल विलास २/२३ ।

"इष्ट विच्छेद जनितो यश्चित्ते क्लिष्टतोदयः।
तज्जन्यायां द्रुतौ विष्टा रतःशोक उच्यते॥

उदाहरण के लिये गोपाल विलास के तृतीय सर्ग से गोपाल के वियोग से व्यथित गोपियों के अनेक चित्र प्रस्तुत किये जा सकते हैं, किन्तु इस रति के सर्वोत्तम उदाहरण के रूप में गोपाल विलास का सम्पूर्ण चतुर्थ सर्ग और सप्तम सर्ग विशेष रूप से दर्शनीय हैं। जहाँ राधा अपने प्रियतम के विरह में और कृष्ण अपनी प्रेयसी राधा के बिना प्रचण्ड विरह ताप से सन्तप्त बने हुए हैं।

[2]दयाजन्य रति

सरस्वती जी कहते हैं कि विषयों में तुच्छता का ज्ञान होकर उनसे जो घृणा हो जाती है वह दया है उससे चित्त द्रुति होने पर जो अनुभूति होती है उसे जुगुप्सा कहते हैं। [3]कोशकार भी दया को घृणा का ही पर्याय मानते हैं। दय् धातु के दान, गति, हिंसा ये तीन अर्थ होने के कारण यह दया हिंसा अर्थ में प्रयुक्त होने पर क्षोभ, गत्यर्थक में उद्वेग, और दान अर्थ में दानोत्साह कहलाती है। दानोत्साह भक्ति रस से सम्बन्धित भाव हैं अतः गोपाल विलास में इसके उदाहरण प्राप्त होते हैं किन्तु गति और हिंसा की वाचक दया उद्वेग और क्षोभ को उत्पन्न करती है। इसीलिये सरस्वती जी इसे भक्ति का विषय नहीं मानते, यही कारण है कि गोपाल-विलास में इसका एक भी उदाहरण प्राप्त नहीं होता। दानोत्साह को सरस्वती जी भक्ति का विषय मानते हैं—

[4]'उत्साहो युधि दाने च भगवद्विषया भमो।'

दानोत्साह का लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि "हे प्रार्थिन्! तुम अपने अभिलषित पदार्थ के लिये याचना करो, मैं अपना सर्वस्व भी तुम्हें दूंगा।"

[5]सर्वस्वमपि दास्यामि प्रार्थयोति च यो महान्।
उद्यमो द्रुत चित्तस्य दानोत्साहः स उच्यते॥

इस दानोत्साह का सर्वोत्तम उदाहरण उस समय मिलता है जब दूति का विरह विधुरा राधा का वर्णन करती हुई गोपाल से कहती है कि किसी वन देवता के प्रकोप से ही राधा की ऐसी दयनीय दशा बनी हुई है। इसीकारण वह अत्यन्त व्याकुल रहती है। न कुछ खाती है न पीती है और न एकान्त मे सखियों से वार्तालाप का आनन्द प्राप्त करती है। राधा की इस करुणा पूर्ण दशा को सुनकर

---

१. भक्ति रसायन २/१७।
२. दयाघृणास्यात् विषय तुच्छत्व ज्ञान पूर्विका तया द्रुते तु मनसि जुगुप्सा जायते भिधा। भक्ति रसायन २/१८।
३. "कारुण्य, करुणा, घृणा, कृपा दयानुकम्पा" अमरकोष।
४. भक्ति रसायन २/२१। ५. वही २/२२।

कृष्ण दयार्द्र हो जाते हैं और दूती से कहते हैं कि हे दूतिके ! राधा को स्वस्थ बनाने के लिये तुम्हें धूप दीप कर्पूर आदि पूजा सामग्री से उस वन देवता का सत्कार करना चाहिये और गायन वादन तथा बलि विभवों से उसका पूजन करना चाहिये। यदि मेरी आवश्यकता समझती हो तो मेरा सर्वस्व भी उस देवता को समर्पित कर सकती हो जो राधा की मनोकामना पूर्ण कर सके।

(१) देवोऽसौविपिनभुवः प्रसादनीयः पूजाभिः बलिविभवैः संगीत वाद्यैः
सर्वस्वं मम भवती ददाति तस्मैराधायां यदि भविता स काम दाता ॥

वैकुण्ठ और द्वारिका की अपेक्षा सरस्वती जी ने श्रीमद्वृन्दावन की जिस भक्ति को तीव्रतीव्रा भक्ति कहा है उसे ही गोपाल विलास के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस भक्ति के सामने वैकुण्ठ और द्वारिका की भक्ति भी तुच्छ है।

वैकुन्ठ द्वारिकायां च श्रीमद्वृन्दावने तथा।
मृदुतीव्रा, मध्यतीव्रा तीव्र तीव्रा च साक्रमात् ॥

उसी वृन्दावन की भक्ति का प्रदर्शन गोपाल विलास में हुआ है। सरस्वती जी भक्ति रसायन भक्ति रस का साधक एक प्रामाणिक लक्षण ग्रन्थ है अतः उसके लक्षणों को लक्षित करने वाला उन्ही के द्वरा रचित इस गोपाल विलास महाकाव्य की प्रामाणिकता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

(२) गीता की गूढार्थ दीपि का टीका और गोपाल विलास।

जब सरस्वती जी के दार्शनिक ग्रन्थों में आनन्द प्राप्त करने वाले विद्वानों ने गीता की गूढार्थ दीपिका टीका में सरस्वती के ब्रह्म को कालिन्दी के कूलों और कछारों में तथा कदम्ब के कुञ्जों और केलिकानन की वीथिकाओं में गोपरमणियों का विट बनकर उनके आगे पीछे घूमते हुए देखा होगा तब निश्चित रूप से उन्हें आश्चर्य हुआ होगा क्योंकि इससे पूर्व सरस्वती जी के हृदय में ब्रज, व्रजेशनन्दन और ब्रजाङ्गनाओं की भक्ति के सरोवर को इतने तीव्र वेग से लहराते हुए किसी ने नहीं देखा था।

इस टीका में सरस्वती जी कृष्णभक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो सब योगियों का सेव्य है और जिसकी भक्ति के बिना मुक्ति असम्भव है उस परमानन्द घन श्री नन्दनन्दन को मैं प्रणाम करता हूं। ये ही नन्दनन्दन 'गोपालविलास के नायक हैं।

[1]यद्भक्ति न बिना मुक्तिर्यः सेव्यः सर्व योगिनाम्।
तं बन्देपरमानन्दं श्री नन्द नन्दनम् ॥

गीता के अपने इस भाष्य में सरस्वती जी यह घोषणा करते हैं कि हमें अब

---

१. गीता की गूढार्थ दीपिका टीका—द्वितीय काण्ड का आरम्भ।

उस निर्गुण निष्क्रिय ज्योति के दर्शनों की तनिक भी लालसा नहीं है जिसे योगीजन अष्टाङ्ग योग की साधना द्वारा चित्त का निरोध करके समाधि में देखते हैं। सरस्वती जी कहते हैं कि अब तो हमारे नेत्र कालिन्दी पुलिनों पर निरन्तर द्रुत गति से प्रवहमान उस अनिर्वचनीय नील तेज से ही चमत्कृत रहते हैं।

[1]ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसातन्निर्गुणं निष्क्रियम्।
ज्योतिर्किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति, पश्यन्तु ते॥
अस्माकं तु तदेव लोचन चमत्कारायभूयाच्चिरम्।
कालिन्दी पुलिनेषु यत्किमपितन्नीलं महो धावति॥

अपने नेत्रों को निरन्तर चमत्कृत रखने के लिये ही सरस्वती जी ने अपने इस महाकाव्य में उस नील तेज का मनोहारी चित्रण किया है।

[2]"कंस विध्वंसिनोजीयात् दृगञ्चल चमत्कृतिः"

'गोपालविलास' में सम्पूर्ण व्रज मण्डल इस अनिर्वचनीय दिव्य ज्योति से पूर्णतया देदीप्यमान है। यही ज्योति वहाँ यमुना के कछारों में कदंब के उपवनों में तरुलता वितानों में केलिकानन के कुञ्जों में सर्वत्र बिखरी हुई मिलती है। व्रजभूमि के एक-एक कण और एक-एक तृण को उस ज्योति से चमत्कृत करने के लिये सरस्वती जी ने इस महाकाव्य को आधार बनाया है।

सरस्वती जी इस नवनील नीरदाभ नन्दनन्दन की रूप माधुरी पर इतने आसक्त हैं जिस के कारण वे ब्रह्म तत्व को पूर्णतया भूल गये हैं। अब वे कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी तत्व को नहीं जानते इसी कृष्ण तत्व का शृंगार इस काव्य के माध्यम से किया गया है।

[3]वंशी विभूषित करान्नवनीरदाभात् पीताम्बरादरुणविम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दु सुन्दर मुखादरविन्द नेत्रात्कृष्णात्परंकिमपितत्वमहं न जाने॥

अद्वैत वेदान्त के उपासकों द्वारा पूज्य, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सरस्वती जी को किसी शठ गोप वधू विट ने बरबस अपना दास बना लिया हैं। इस गोप वधू विट का विस्तृत एवं व्यापक वर्णन करना ही गोपाल विलास का लक्ष्य है। विट एक अलङ्कार शास्त्र का पारिभाषिक शब्द है विट् का व्यक्तित्व एवं अस्तित्व शृङ्गार रस प्रधान महाकाव्य के बिना कल्पित ही नहीं किया जा सकता। अतः इस अपने विट् का समग्र क्रिया कलाप चित्रित करने के लिये उन्होंने गोपाल विलास जैसे शृङ्गार रस प्रधान महाकाव्य कीं आवश्यकता का अनुभव किया।

[4]अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः स्वराज्य सिंहासनलब्ध दीक्षाः।
शठेनकेनापि वयंहठेन दासीकृता गोप वधूविटेन॥

---

१. वही—द्वितीय काण्ड का अन्त।
२. गोपाल विलास १।४।
३. गूटार्थदीपिका—द्वितीय काण्ड का आरम्भ।
४. वही—तृतीय काण्ड का आरम्भ।

विट का प्रयोग सरस्वती जी ने अनजाने में ही नहीं किया है। सरस्वती जी विज्ञ पुरुष थे। विट के चरित्र से वे पूर्णतया परिचित थे। इस विट का पूर्ण रेखाचित्र उनके हृदय में उस समय विद्यमान था जब वे गीता की टीका रच रहें थे। अतः इस विट के सर्वाङ्गपूर्ण चित्रण के लिये उन्होंने इस काव्य का निर्माण किया। यह काव्य ही सरस्वती जी के हृदय में स्थित उस विट की सरस अनुभूति को यथा तथ्य अभिव्यक्त करता है। अतः असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि गोपाल विलास और गूढार्थ दीपिका टीका एक ही हिद्ध हस्त कवि की कृतिया है और वे कवि सरस्वती जी ही है।

सरस्वती जी ने गोप किशोरियों को सर्वाधिक वैभव प्रदान किया हैं। उनका अधिकार क्षेत्र अनन्त है। गूढार्थ दीपिका की अनुक्रमणिका के जिस प्रथम श्लोक के द्वारा उन्होंने भगवत् स्मरण किया है उसमें वे कहते हैं कि—"जिसके कपोलों पर नेत्रों से आसू टप-टप गिर रहे हैं और कोई कोपाकुल गोपी अपने नयनाञ्चलों से जिसकी भर्त्सना करती हुई कह रही है—कि "तू बहुत दुष्ट हो गया है और बहुत ढीट है यह सुनकर कांपते हुए उस शिशु के चरणों में मैं प्रणाम करता हूँ।

[1]यं वाष्प विक्षोभ विधौत वक्त्रं, निर्भर्त्सयन्ती नयनाञ्चलेन।
दुष्टोऽसि धृष्टोऽसिजुहावगोपी तं वेपमानं शिशुमानतोऽस्मि॥

धन्य है वे गोपाङ्गनायें जिन्हें सरस्वती जी के ब्रह्म की ऐसी भर्त्सना करने का भी अधिकार प्राप्त है। गोपाल विलास में भी सरस्वती जी इन गोपरमणियों के वैभव से इतने अभिभूत हैं जिससे वे इस महाकाव्य के आरम्भ में ही उनका स्मरण करते हुए कहते है कि ये गोपियां लक्ष्मी के समान ही सौभाग्य शालिनी हैं। इनके लीलाविलासों से ही वृन्दावन सतत आन्दोलित रहता है। नन्दनन्दन की क्रीडा स्थली में होने वाले समस्त क्रिया कलापों की वे ही सूत्र धारिणी हैं। अतः वे अनन्त ऐश्वर्य की स्वामिनी हैं।

[2]पद्मा सौभाग्य रूपिण्यो जीयासुर्गोप सुभ्रुवः।
लीलान्दोलायितो याभिः पद्मालय सरोवरः॥

इससे सिद्ध हो जाता है कि गोपाल विलास का बीज गीता की मधुसूदनी टीका में निहित हैं।

३. भागवत के प्रथम श्लोक को टीका और गोपालविलास—

सरस्वती जी के भक्ति साहित्य में श्रीमद्भागवत के प्रथम श्लोक की टीका भी अपना महत्व पूर्ण स्थान रखती है। इस अपने विस्तृत भाष्य में स्वयं सरस्वती

१. गूढार्थदीपिका की अनुक्रमणिका का प्रथम श्लोक।
२. गोपाल विलास १।२।

जी ने स्पष्ट किया है कि—"अर्थ[1] च त्वम्पदार्थोऽपि शक्यते अनेन श्लोकेन दर्शयितुं श्लेषालङ्कारस्यात्यन्त चारुता हेतुत्वात्।" अर्थात् तत्त्वमसि—इस महावाक्य के त्वम् पदार्थ की सिद्धि के लिये श्लेष अलङ्कार की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं। श्लेष अलङ्कार की चारुता प्रदर्शन करने के लिये किसी खण्ड काव्य की नहीं अपितु महाकाव्य की आवश्यकता होती है। उसी के माध्यम से श्लेष का चमत्कार दिखाया जा सकता है। इसी लिये 'त्वम्' पदार्थ की सिद्धि के लिये सरस्वती जी ने श्लेष के चमत्कार से परिपूर्ण इस गोपाल विलास महाकाव्य की रचना की है। श्लेष के प्रचुर प्रयोग से यह भी प्रतीत होता है कि सरस्वती जी ने गोपालविलास के अतिमहत्त्वपूर्ण मार्मिक स्थलों को गुह्य एवं गोपनीय बनाने के लिये ही ऐसा किया है। भागवत के प्रथम श्लोक की टीका के अन्त में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि—[2]"विशेषण द्वारा विशेष्यस्योपस्थितिश्चालङ्कारिकाय रोचतेतराम्। साक्षादनभिधानञ्च अतिरहस्यत्वात्" अर्थभेदः कथञ्चनःप्रतिपतॄणां विचित्र प्रज्ञानां विनोदाय। भक्ति-रसानुभवप्रकारश्चसर्वोऽप्यस्माभिर्भवित रसायनेऽभिहितः।

अपनी इस मान्यता के अनुसार ही सरस्वती जी ने गोपालविलास के गोपनीय स्थलों को रहस्यमय रखने के लिये ही इसके कुछ श्लोकों को श्लिष्ट के साथ-साथ अत्यन्त क्लिष्ट भी बना दिया है। जैसे द्वितीय सर्ग में कोई सखी राधा का कृष्ण से प्रथम मिलन कराने के पश्चात् दोनों को कुछ निर्देश देती हुई कहती है—

[3]राधाकाननकाधारा धाम साध्वध्वसामधा।
का सा ताजि जिता सा कानध्व जिघ्रध्वन सर्वतोभद्रः॥

पर्याप्त बौद्धिक व्यायाम करने पर भी इस श्लोक का अभीष्टार्थ नहीं किया जा सका। इस पद में सरस्वती जी ने विषय को अतिगूढ बनाने के लिये 'सर्मतोभद्र' नामक काव्य चित्र का प्रयोग किया है, जिसमें चित्रकाव्य की एक विशिष्ट शैली अपनायी जाती है जो अत्यन्त रहस्यमय हैं। इसीप्रकार के चार पद और हैं जो अस्पष्ट है।

वस्तुतः अपनी टीका के इस अन्तिम अनुच्छेद द्वारा सरस्वती जी अपनी भावी रचना 'गोपाल विलास' की भावभूमि, उसके आलङ्कारिक सौन्दर्य तथा उसमें वर्णित विषय वस्तु का स्पष्ट निर्देश करते हैं। क्योंकि गोपाल विलास में भी गोपाल कृष्ण भक्ति रस के आलम्बन के रूप में चित्रित किये गये है। वहाँ भी आल-ङ्कारिकों की रुचि वैचित्र्य के लिये विशेषण द्वारा विशेष्य की उपस्थिति कराई गई

१. भागवत के प्रथम श्लोक की टीका।
२. भागवत के प्रथम श्लोक की टीका अन्तिम अनुच्छेद।
३. गोपालविलास २।३५।

है। अत्यन्त रहस्यमय होने के कारण गोपाल विलास की प्रतिपाद्य विषय वस्तु कृष्ण भक्ति रस का साक्षात् अभिधान न कराकर व्यञ्जना द्वारा उसकी अभिव्यक्ति कराती है। अर्थों में भेद भी प्रकृष्ट प्रज्ञा वाले पाठकों के विनोदार्थ किया गया हैं— "अर्थभेदेन शब्दभेद:" इस नियम के द्वारा अर्थों में भेद होने के कारण शब्दों में भी भिन्नता की प्रतीति होना अनिवार्य हैं जिसके दर्शन हमें गोपाल विलास में पद-पद पर श्लेष के माध्यम से होते हैं।

सरस्वती जी ने इस महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर जो श्लोने दिया है उसमें वे अपने मीमांसा गुरु श्री आचार्य माधव सरस्वती का साक्षात् अभिधान न करके उन्हें श्लेष द्वारा कृष्ण सरस्वती कहते हैं। ऐसा उन्होंने अपने काव्य को रहस्यमय बनाने के लिये ही किया है।

[1]श्रीमत्कृष्ण सरस्वती गुरु पद द्वन्द्वाम्बुजानन्दिना।
धीर श्रीमधुसूदनेन यतिना नन्दात्मजप्रीतये॥
यग्दोपाल विलास संज्ञितमिदं काव्यं कृतं कौतुकात्।
तस्मिन् माधव बालकेलिकथकः सर्गोऽयमादिर्गतः॥

इस प्रकार के अर्थ भेद को सरस्वती जी विचित्र प्रज्ञा वाले रसिक पाठकों के विनोदार्थ आवश्यक मानते हैं। इसके अतिरिक्त कृष्ण उनके आराध्य देव भी हैं। अतः सरस्वती जी श्लेष की कृपा से अपने गुरु के साथ-साथ अपने इष्ट पर ब्रह्म परमेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के चरणाम्बुजों में भी प्रणाम करते हैं। यही प्रक्रिया उन्होंने "अद्वैतसिद्धिः" के मङ्गलाचरण में भी अपनायी है। वहाँ भी वे अपने तीनों गुरुओं को प्रणाम करने के साथ-साथ पर ब्रह्म को भी नमन करते हैं।

[2]श्रीराम विश्वेश्वर माधवानामैक्येन साक्षात्कृत माधवानाम्।
स्पर्शेन निर्धूतमोरजोभ्यः पादोत्थितेभ्योऽस्तुनमोरजोभ्यः॥

'अद्वैत सिद्धि' के टीकाकार ने "माधवानां" का अर्थ परब्रह्मणां किया। इसीप्रकार शिव महिम्नः स्तोत्र के रचयिता पुष्पदन्त ने अपने इस स्तोत्र में श्लेष का चमत्कार दिखाने के लिये स्वयं को "कुसुमदशननामासर्वगन्धर्वराज कहा है—

[3]"कुसुमदशननामा सर्व गन्धर्वराजः"

सरस्वती जी के अनुसार जिस प्रकार भागवत में [4]"सर्व प्रियत्वेन परमानन्दस्वरूपः, सर्वज्ञः, सर्वशक्तिमान्, सर्वमोहनः, सर्वसुखदः, सर्वापराध सहिष्णुः,

---

१. गोपालविलास प्रथम सर्ग का अन्तिम श्लोक।
२. अद्वैत सिद्धिः के मगला चरण का द्वितीय श्लोक।
३. शिवमहिम्नःस्तोत्र ३८।
४. भागवत के प्रथम श्लोकी टीका।

सर्वात्मा, परमकारुणिको, दिदग्रतश्च श्रीकृष्णोभक्तिराम्बलत्वेन सम्पूर्णं ग्रन्थ प्रतिपाद्य:" हैं, इसीप्रकार उनके गोपालविलास में भी भक्ति के एक मात्र आलम्बन होने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण ही सम्पूर्ण ग्रन्थ के प्रतिपाद्य बने हुए हैं।

सरस्वती जी भागवत के प्रथम श्लोक की टीका में भगवान कृष्ण के अनन्त सामर्थ्य का और ब्रह्मा की जड़ता मुग्धता एवं मूर्खता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

[1]"यथा ब्रह्मणा कृतो वत्सतत्पालक तदुपकरण रूप: सर्गस्तथैव भगवताकृत:। सच्चिदानन्द स्वरूपत्वेनाभौतिकोऽपि भौतिकवददृश्यत्-इत्यर्थ:। तथा च वक्ष्यति-एवमेतेषु भेदेषु चिरध्यात्वा स आत्मभू:। सत्या: केकतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथंचन। इति। तथा च के मया सृष्टा: भौतिका: के च भगवता सृष्टा अभौतिका इति निर्णयासामर्थ्ये च ब्रह्मणो मोहोयुक्त इत्यर्थ:"।

इन ब्रह्म शङ्कर इन्द्र आदि देवताओं की जड़ता, तुच्छता एवं मूढता, का वर्णन उन्होंने अपने सम्पूर्ण भक्ति साहित्य में किया है। गोपालविलास में अनेक स्थानों पर इस प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है। सरस्वती जी एक स्थान पर कहते हैं कि श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन करने में बृहस्पति पूर्णतया जड़ बन जाते हैं। फणिपतिशेष, चतुरानन ब्रह्मा, और पञ्चानन महादेव भी स्वयं को असमर्थ समझकर मौनधारण कर लेते हैं।

[2]"भवतिजडिम युक्तोगीर्पतियत्रगाढं, फणिपतिचतुरास्यो पञ्चवक्त्रश्चमूका

दूती राधा का सन्देश लेकर कृष्ण के समीप पहुँचती हैं। वहाँ वह अपने-अपने मुकुटों से सुशोभित ब्रह्मा शङ्कर इन्द्र आदि देवताओं को नन्दनन्दन के सामने सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए देखती है।

पद्मयोनिशशिमौलिमहेन्द्रै: वन्दित मुकुटशोभि शिरोभि:।
गोपगोधनपदैरभिरामं, कामदं जनिमतान्नयनानांम्॥[3]

भागवत के प्रथम श्लोक की इस टीका को विद्वान लोग सरस्वती जी की ही प्रमाणित रचना मानते हैं। इस टीका के आधार पर कहा जा सकता है कि सरस्वती जी ने इसमें भक्ति रस की सिद्धि के लिये जिस आलम्बन को मान्यता दी है वही उन्होंने गोपालविलास में भक्ति रस की सिद्धि के लिये स्वीकार किया है। अपनी भक्ति विषयक जिन प्रमुख मान्यताओं को उन्होंने इस टीका में प्रदर्शित एवं पुष्ट किया है उन्हें ही गोपालविलास में भी अभिव्यक्त किया है अत: ये दोनों रचनायें नि:सन्देहरूप से सरस्वती जी की ही हैं।

---

१. भागवत के प्रथम श्लोक की टीका।
२. गोपालविलास ६।२२।
३. वही ५।६६।

(४) आनन्दमन्दाकिनी और गोपालविलास—

'आनन्दमन्दाकिनी' सरस्वती जी एक लघुकाय कृति है। इसकी विषयवस्तु भी कृष्णभक्ति से ही सम्बद्ध है। सभी प्रमुख इतिहासकार इसे सरस्वती जी की ही रचना मानते हैं। जनमानस भी इसे सरस्वती जी की ही लेखनी से निर्गत प्रमाणित रचना के रूप में स्वीकार करता आया है। इसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसकी रचना गोपाल विलास से पूर्व ही की गई है क्योंकि यह गोपालविलास का पूर्वाभ्यास मात्र प्रतीत होती है। वैसेआनन्दमन्दाकिनी और गोपाल विलास दोनों विषय वस्तु भावाभिव्यक्ति और वर्णन शैली की दृष्टि से एक ही कवि की रचना प्रतीत होते हैं

कवि की अपनी कुछ मान्यतायें होती हैं जिन्हें वह अपनी कृतियों में कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में अवश्य प्रकट करता है।

सरस्वती जी कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी भी देवता की भक्ति को परानन्द प्रकाशन में समर्थ नहीं मानते क्योंकि उनमें पार्थिवता अधिक होती है। अतः उनकी भक्ति भाव मात्र है जो केवल व्यभिचारी भावों का ही प्रकाशन करती है रस का नहीं। उसे सरस्वती जी ने रसायन में निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है।

'देवान्तरेषु जीवत्वात् परानन्दप्रकाशनात्
तद्योज्यं परमानन्द रूपे न परमात्मनि ॥[1]

वे इन देवताओं को परमानन्द स्वरूप परमात्मा नहीं मानते। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन उन्होंने अपने समस्त भक्ति साहित्य में किया है।

'आनन्दमन्दाकिनी' के प्रथम पद में ही वे अपने इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि जिस गोपाल का गुणगान करने में वाणी की देवी सरस्वती चतुरानन ब्रह्मा, पञ्चवदन शङ्कर, सहस्रमुखी शेष भी जडवत् हो जाते हैं, फिर उस मदनमोहन नन्दनन्दन गोपाल का वाणी द्वारा अभिनन्दन करने की क्षमता मुझ जैसे बुद्धिहीन में कहाँ ?।

'वाक्देवी चतुरास्य पञ्चवदनानित्यं सहस्राननो-
प्युच्चैः यत्रजड़ात्मतामुपगताः केऽन्ये बराकासुराः
मर्त्याः स्वल्पधियः कथं नुकुशलास्तत्राप्यहं प्रज्ञया
हीनः किं करवाणि तां व्रज कुलोत्तसं ! प्रशंसांतव ॥[2]

'आनन्दमन्दाकिनी' में सरस्वती जी इन देवताओं में कितनी श्रद्धा रखते

---

१. भक्ति रसायन २/७५।
२. आनन्दमन्दकिनी १।

हैं इसे वे स्वयं कहते हैं कि इन देवताओं की विचित्र आकृतियों और चमकीले मुकुट आभूषणों और वेशभूषाओं को देखकर उनसे क्षुब्ध बने हुए अपने गोधन को अस्त-व्यस्त हुआ जानकर वृन्दावन के बाल-गोपाल, कृष्ण के चरणों में प्रणाम करने के लिये आये, इन देवताओं पर अपने गोचारण दण्डों से प्रहार करने के लिये उद्यत हो जाते हैं—

[1]दूरे ब्रह्म शिवेन्द्र दिविषद् वृन्दे नमस्कुर्वति
व्यावलगद्व्रजबालकौघलगुड त्रुटयात्किरीटे हठात् ॥

आनन्द मन्दाकिनी में गोपाल की वंशी का रव कितने अद्भुत प्रकार के कार्य करता है। वह तीनों लोकों की श्रुति सम्पद् को सफल बनाता है। इसकी मधुरस्व-रावली का रस ब्रह्मोपलब्धि के आनन्द को तुच्छ बनाने वाला है। कुलवधुओं की धैर्याटवी को ध्वस्त करने वाला है। उत्तम कुलोत्पन्न सुमुखी सुन्दरियों और सती साध्वी ललनाओं के कुलाभिमान को सदा-सदा के लिये समाप्त कर देने वाला है—

[2]साफल्यं श्रुति सम्पदां त्रिजगतां प्रालेय धाराप्रभा
पीयूष द्रवमाधुरी परिभवक्लेशाम्बुधे शोषणम्
ब्रह्मानन्द तिरस्कृतिः कुलबधू धैर्य्याद्रि वज्राहतिः
[3]धैर्य्यंधिक्कुरुते त्रपां विचिनुते कौलं यशः प्रोञ्छति
प्रत्येकं गुरुवर्ग गञ्जन शतं विस्मारयत्यञ्जसा
साध्वीनां निराकरोति भवनं भर्तुर्विधत्ते विषम्
किं किं नो विदधाति हन्त सुदृशां वंशी निनादस्तव

गोपालविलास में भी गोपाल की वंशी का यह रव इसी प्रकार के अभूत पूर्व कार्य कलापों का जनक बना हुआ है—

[4]पीयूषप्पिचुम दयन् कुलवधु धैर्याटवीं त्रोटयन्।
कन्दर्पंद्रुममिन्दुशेखररुषाभस्मान्तमुज्जीवयन् ॥
ग्रावाणां द्रवयंश्च श्रुति सफलयन् साध्वीपदंप्रोञ्छयन्।
श्रृङ्गाराणंव शीत रोचिरुद्भूत कंसारि वंशीरवः ॥

दोनों स्थानों पर भाव साम्य के साथ शब्द भी लगभग समान ही हैं।

'आनन्दमन्दाकिनी'	'गोपाल विलास'
कुलबधू धैर्य्याद्रि वज्राहतिः	कुलबधू धैर्य्याटवीं त्रोटयन्
पीयूषद्रव······शोषणम्	पीयूषप्पिचुमन्दयन्

---

१. आनन्दमन्दाकिनी १२।
२. वही २७।
३. वही २८।
४. गोपाल विलास २/५४।

वंशीनिनादः	वंशीरवः
कौलं यशः प्रोञ्छति	साध्वी पदं प्रोञ्छयन्
साफल्यं श्रुति सम्पदां	श्रुतिं सफलयन्

जिस प्रकार आनन्द मन्दाकिनी की रचना उन्होंने अपने आराध्य परम प्रभु परमात्मा नन्दनन्दन को आनन्दित करने के लिये ही की है।

[1]ममास्तु रचिता बाणी विनोदायते

उसी प्रकार गोपाल विलास का निर्माण भी उन्होंने अपने परम प्रेमास्पद व्रजेन्द्र नन्दन को प्रसन्न करने के लिये ही किया है। इस अपनी प्रतिज्ञा को वे गोपाल विलास के प्रत्येक सर्ग के अन्त में निम्न प्रकार से स्मरण कराते हैं—

[2]"धीर श्रीमधुसूदनेन यतिनानन्दात्मजप्रीतये"

'मन्दाकिनी' में गोपाल की असाधारण रूप माधुरी का चित्रण करते हुए सरस्वती जी कहते हैं कि—हे श्याम ! समस्त विश्व को आनन्दित करने वाली आपकी स्निग्ध तमाल सघन कान्ति वाली रूपराशि को देखकर नील नीरद के विभ्रम से चपल चपलाये स्वयं आकर आपसे लिपट जाती हैं।

[3]विश्वानन्दकदम्बसम्पदमतिस्निग्धं तमाल द्युतिम्
दृष्ट्वानिर्भरविभ्रमंघन इति त्वां संगता विद्युतः।

'गोपाल विलास' में भी रास के अवसर पर कृष्ण के साथ नृत्य में व्यस्त गोपरमणियां गोपाल का आश्रय पाकर अत्यन्त आत्म विमुग्ध बनी हुई हैं। वे अपने विविध हाव भावों के साथ उसी प्रकार से चञ्चल बनी हुई तड़प रही हैं जिस प्रकार चपलायें नीलघन में लीन हो जाने के लिये मचलती हैं।

[4]करयोरवलाहरिणा विधृताः परितस्सरता मधुरन्नटता।
बभुराकुलितानटनक्रियया चपला इव ताघन सम्वलिताः॥
[5]घनवारि विभूषित नीलवपुः परिनर्तित केकि शिखण्डगणः।
सघन समयोनवनीपरुचिश्चपलाद्युतिभिः मधुमिन्मुमुदे॥

आनन्द मन्दाकिनी में गोपाल कृष्ण के पाद पद्म सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार बताये गये सर्वश्रेष्ठ सहज चिह्नों से सुशोभित हैं जो एक मात्र सर्वोच्च कोटि के महापुरुषों में ही प्राप्त होते हैं—

---

१. आनन्दमन्दाकिनी ३।
२. गोपाल विलास के प्रत्येक सर्ग का अन्तिम श्लोक।
३. आनन्दमन्दाकिनी ४६। ४. गोपाल विलास २/५७।
५. वही २/५९।

[1]त्वं धत्से पदयोः यवं ध्वजवरं दम्भोलिमंभोरुहम् ॥

ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता सम्पूर्ण दास्य भाव के साथ अपनी समस्त सम्पदाओं को लिये हुये आपके श्रीचरणों में उपस्थित होते हैं, जिससे वे आपके अंकुश, नीरज अशनि, छत्र, ध्वज आदि से अलंकृत चरणों की दया पा सकें और चिरकाल तक इसी प्रकार अपने पद पर बने रहें।

"[2]तासामङ्कुशनीरजाशनिलसच्छत्र ध्वजाद्याकृतिम्
विभ्राणां विजय श्रियं त्रिजगतां वन्द्यारविन्दालया"

गोपाल विलास के नायक राधापति माधव के मंगलमय चरण भी उन्हीं सर्वोत्तम सामुद्रिक चिह्नों से अलंकृत हैं—

[3]दूतिकापि विपिनं विचरन्ती राधिकाधव पदं प्रतिपेदे।
अङ्कुश यवाशनि राजत छत्रनीरज समुल्लसदर्चिः॥

आनन्दमन्दाकिनी में गोपाल अपने हाथों में उठाये गोवर्धन पर्वत पर दृष्टि बांधे हुए हैं। सहसा उत्तरीय स्खलित हो जाने से राधा के पीनपयोधरों को देखकर श्याम की स्फीत भुजायें कम्पित होने लगती हैं और साथ ही शैल भी डगमगाने लगता है। यह देखकर उसके नीचे शरण लेने वाला समस्त गोकुल त्रस्त हो जाता है और भविष्य की आशंका से नन्द के मुख की कान्ति भी मन्द हो जाती है।

[4]त्वद् बाहूधृत पर्वतार्पितदृशः प्रेक्ष्य प्रियायास्खलत्
वासः पीनपयोधर क्षितिधरौ दोः स्तम्भ कम्पे तव
शैले चञ्चलताङ्गते व्रजपते त्रासाकुले गोकुले
नन्दे मन्द मुख द्युतौ जयति ते मन्दाक्ष मन्देक्षणम् ॥

गोपालविलास में भी श्याम के गोवर्धन धारण करने पर नन्द का हृदय शङ्कित होने लगता है क्योंकि नन्दनन्दन की बलिष्ठ एवं पुष्ट भुजाओ में जो स्वर्ण निर्मित एवं मणि जटित अंगद और कङ्कण हैं जिनमें राधा-माधव की अनेक लीलायें चित्रित है। इन्हें देखकर कहीं श्याम का कर कम्पित न हो जाय क्या इसीलिये नन्द ने करदण्ड के रूप में अपने पुत्र का ग्रन्थि बन्धन करना निश्चित किया।

[5]मुरहर भुज पर्व स्फीतिम द्योतमाने
मणिगण कनकानामांगदे कङ्कणे च
गिरिधर धृति कालेतत् च्युताशङ्किचेतः
किमकृत करदण्ड ग्रन्थि बन्धायनन्दः ॥

---

१. आनन्दमन्दाकिनी ६० । २. वही ५९ ।
३. गोपालविलास ५/६५ । ४. आनन्दमन्दाकिनी ७० ।
५. गोपालविलास ६/१८ ।

'आनन्दमन्दाकिनी' में मंजीर कांची और कङ्कणों की मधुर ध्वनियों से व्याप्त वीणा वेणु और मृदंगों के निनादों से झङ्कृत और गोपबालाओं की करतालों से गुञ्जित रासोत्सव को देखने के लिये आने वाले देवता रास मण्डल पर आकाश से पुष्प-वृष्टि करते हैं।

[1]"वृन्दे वर्षतिदेवते सुमनसो रासस्तवास्तांमुदे"

गोपालविलास में भी मुकन्द के केलिकानन को देखने की इच्छा से आये हुए देवता नन्दनन्दन का यशोगान करते हैं और उन पर पुष्पों की वर्षा करते हैं।

[2]परेसुरा सुरद्रुम प्रसून सेककारिण:
दिदृक्षव: समागता मुकुन्दकेलिकाननम् ।

'आनन्दमन्दाकिनी' में वर्णित केलिकानन में रास रस की वर्षा हो रही है, जिसमें गोपरमणियों के कमल लोचन विविध भ्रूभङ्गिमाओं के साथ विभूषित हो रहे हैं। उनके मुख मण्डल पर मधुर मुस्कान अठखेलियां कर रही है। उनके कपोल श्रम जल से उज्ज्वल बने हुए हैं। विविध हाव-भावों और लीला विलासों से कुण्डल अधिक चञ्चल हो गये हैं। भुज लताओं के आन्दोलनों से कङ्कण क्वणित हो रहे हैं, कंचुक बन्ध के टूट जाने से गोपतरुणियों के उन्नत उरोज स्पष्ट प्रकट हो रहे हैं। विविध काम केलिकलाप में तिर्यक बने हुए त्रिकों से नीवी स्खलित हो रही है। इस प्रकार अपनी प्रियाओं के साथ रचाये गये आपके इस रास की सदा जय हो।

[3]नृत्यद्भ्रू नयनोत्पलस्मितमुख स्विद्यत्कपोलस्थलम् ।
लीला चञ्चलकुण्डलंभुजलतान्दोल क्वणत्कंकणम् ॥
त्र्युटयत्कंचुक बन्धमुन्नतकुचं तिर्यक्त्रिकं प्रस्खलत ।
नीवी व्यञ्जितशिञ्जितं जयति ते रास: प्रियाभि: सह ॥
[4]आकुञ्चद्वदन क्वचित् विलासितांभोजाक्ष्यशोभंक्वचित्
मन्दस्यन्दि विलोचन क्वचिदलंदृक् चापलं कुत्रचित्
काप्युद्दाममदान्ध सिन्धुरगतं कुत्रापि विद्युल्लता
चाञ्चल्यं स्मर वर्धनं विजयतेलास्यं प्रियाणां तव ॥

रास की यही छटा गोपालविलास में भी प्रदर्शित की गई है। वहाँ भी तृतीय सर्ग में रास का वर्णन करते हुए सरस्वती जी लगभग उसी भाषा द्वारा उन्हीं भावों का चित्रण करते हैं। वहां भी गोपरमणियों के नेत्र खञ्जनों की भांति चञ्चल बने हुए नृत्य कर रहे हैं। कहीं पूर्ण विकसित मुखचन्द्र अपनी चन्द्रिका से केलिकानन को

---

१. आनन्दमन्दाकिनी ७७।
२. गोपालविलास २/६४।
३–४. आनन्दमन्दाकिनी ७८/७९।

चमत्कृत वना रहे है। कहीं नीवी स्खलित होकर त्रिकों से नीचे आ रही है। कहीं कहीं अतिद्रुतगति के साथ आवागमन हो रहा हैं। कहीं कामिनियां मन्द-मन्द विचरण कर रही हैं।

'नटन्नयन कुञ्जनं विकसदिन्दुबिम्बाननं
विलोलभुज बल्लरिस्खलित नीवितिर्यक् त्रिकम्
पयोधर धरोद्गम त्रुटितकञ्चुक ग्रन्थिभिः
मुरारिरमणीगणैः भरत तन्त्रमुद्दीपितम् ।।
क्वचित्कुटिल वीक्षणस्मितनिरीक्षितंक्वचित्
क्वचिद्वदनकुञ्चनं मधुरभाषिवक्त्रं क्वचित ।।
अतिद्रुत गतागतं क्वच मन्दमन्दभ्रमं ।
क्वचिन्मदनवर्धनं दधुरमन्द लास्यंस्त्रियः ।।

'मन्दाकिनी' और 'विलास' दोनों में भाषा और भावों की समानता द्रष्टव्य है—

आन्दमन्दकिनी	गोपालविलास
च्युटधरकञ्चुकबन्धमुन्नतकुचंतिर्यक त्रिकंप्रस्खलत	तिर्यक्त्रिकंपयोधर धरोद्गमत्रुटित कञ्चुक ग्रन्थिभिः
काप्युद्दाममदान्ध सिन्धुरगतंकाप्युद्दाम विद्युल्लताचाञ्चल्यम् ।	अति द्रुतगतागतंक्वचन मन्द-मन्द भ्रमम् ।
आकुञ्चद्वदनं क्वचित् स्मर वर्धनम्	क्वचिद्वदन कुञ्चनम् मदन वर्धनम्
प्रियाभिः सह जयति ते रासः नृत्यद्भ्रू नयनोत्पल स्मित मुख विजयतेलास्यंप्रियाणांतव ।	मुरारि रमणी गणैः भरततन्त्रमुद्दीपितं नटन्नयनखञ्जनम् विकसदिन्दुबिम्बाननम् दधुरमन्द लास्यं स्त्रियः ।

अतः आनन्दमन्दाकिनी और गोपालविलास का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि ये दोनों रचनायें एक ही कवि की हैं क्योंकि आनन्द मन्दाकिनी को सभी विद्वान् श्री मधुसूदन सरस्वती की रचना स्वीकार करते हैं। अतः गोपालविलास भी उन्हीं की रचना है, इसमें सन्देह नहीं रह जाता।

---

१. गोपलविलास ३/४८।

(घ) मधुसूदन सरस्वती और गोपालविलास—

गोपालविलास का गहन अध्ययन करने पर प्रकट होता है कि भाव, भाषा विषय तथा रस प्रत्येक दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट रचना है। इसका वर्ण्य-विषय राधा-कृष्ण की भक्ति है जो स्वयं में एक असाधारण आयोजन है। भक्ति को रस सिद्ध करना इस महाकाव्य का लक्ष्य है जो निःसन्देह एक जटिल कार्य है और साधारण कवि की परिधि से बाहर की बात है। इसके नायक नायिका विरजा तट के गोलोक धाम में चिर निवास करते हैं, जहाँ पहुँच पाना प्रत्येक कवि के लिये नितान्त असम्भव है। जिसे वहाँ का मार्ग ज्ञात हो तथा वहाँ का कुछ अनुभव हो तथा कुछ प्राचीन परिचय हो, जिसमें वहाँ तक पहुँचने का साहस, सामर्थ्य एवं सम्बल हो वही इस प्रकार की रचना करने में सक्षम हो सकता हैं। नायक नायिका ही नहीं इस महाकाव्य गोपाल विलास की समस्त सामग्री ही असाधारण और अलौकिक है। इसका प्रत्येक पात्र भूतल का निवासी होते हुए भी उस गोपालधाम का वासी हैं जहाँ ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, शेष आदि देवताओं को पहुँचने के लिये कठोर तप करना होता है। जिस रास का इस काव्य में वर्णन है उस रास के दर्शन तक की आज्ञा भी किसी देवता को प्राप्त नहीं है। उसमें सम्मिलित होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस काव्य के निम्न पात्र भी उसी दिव्य लोक के प्राणी हैं।

यह काव्य भगवान कृष्ण के चरणों की परिचर्या है। यह लोक[1] में पूर्णचन्द्रमा की भाँति प्राणीमात्र को आह्लादित करने वाला है। इसका कवि कामना करता है कि मेरी यह वाणी रूप सरस्वती[2] कृष्ण कथा रूप गंगा में सर्वांग लीन होकर विशाल बनी हुई यमुना की भाँति सर्वपूज्य बने। क्योंकि यह स्वच्छ अन्तःकरण को हर्षोन्मत्त बनाकर उसे रोमाञ्चित करने वाली है और इस वाणी से विश्वम्भर[3] परमात्मा आह्लादन प्राप्त करते हैं।

ऐसी सर्वगुण सम्पन्न वाणी निश्चित रूप से किसी सिद्ध पुरुष की ही हो सकती है। संस्कृत साहित्य के किसी भी तात्कालिक कवि में यह प्रज्ञा एवं क्षमता दिखाई नहीं देती जो इस प्रकार की रचना प्रस्तुत कर अपनी ऐसी सिद्धता का परिचय दे सके, जिसके दर्शन गोपाल विलास में होते हैं। अतः कहा जा सकता है कि यह रचना निःसन्देह रूप से तात्कालिक विद्वान् दार्शनिक एवं प्रसिद्ध कृष्ण भक्त श्रीमधुसूदन सरस्वती जी की है, जिनका नाम इस काव्य के समापन पर दिया हुआ है।

गोपालविलास के अध्ययन से यह स्पष्ट आभासित होता है कि इस रचना

---

१. गोपालविलास ११/८९। २. वही ११/९०।
३. वही ११/९१।

से सरस्वती जी का अत्यन्त घनिष्ठ भावनात्मक सम्बन्ध है। क्योंकि यह काव्य उसी प्रकार की भक्ति से मण्डित है जो सरस्वती जी के प्राणों में समायी है और जिस भक्ति के सिद्धान्त पक्ष का साङ्गोपाङ्ग विवरण उन्होंने अपनी 'रसायन' में दिया है। सरस्वती जी की यह भगवद्भक्ति रसायन भक्तिशास्त्र पर लक्षण ग्रन्थ के रूप में एक प्रामाणिक रचना है। इसी के द्वारा सरस्वती जी ने भक्ति को रस सिद्ध किया है और भक्ति परक महाकाव्य की रूप रेखा निश्चित की है।

लोक में किसी भी शास्त्र की प्रवृत्ति तीन प्रकार से देखी जाती है—

(१) उद्देश्य, (२) लक्षण, (३) परीक्षा।

सर्वप्रथम शास्त्रकार अपने शास्त्र में प्रतिपादित विषय का उद्देश्य निश्चित करता है तदनन्तर उसका लक्षण निर्धारित करता है पश्चात उस लक्षण की संगति लक्ष्य में दिखाकर उसकी परीक्षा करता है। सरस्वती जी ने भी भक्ति शास्त्र का प्रतिपादन करने वाली अपनी भक्ति रसायन में यही किया है। उन्होंने इसके प्रथम श्लोक में ही इस रचना का उद्देश्य कथन किया है।

वे कहते हैं कि कुछ विद्वान सर्वत्र सत्ता रूप में विद्यमान मुकुन्द विषयक भक्ति योग को रसाचार्यों द्वारा निश्चित किये गये शृङ्गार आदि नौ रसों में मिला हुआ मानते हैं और कुछ उसे स्वतन्त्र रूप में एक प्रथक् रस मानते हैं। अनुपम सुख का अधिष्ठान और दुःख से सदा अस्पृश्य उस भक्ति योग की मैं सबको सन्तुष्ट करने के लिये शास्त्रीय दृष्टि से विवेचना[1] करता हूँ।

नवरस[1] मिलितं वा केवलं वा पुमर्थं
परममिह मुकुन्दे भक्ति योगं वदन्ति
निरूपम सुख संविद् रूपमस्पृष्ट दुःखं
तमहमखिल तुष्टयै शास्त्र दृष्टयाव्यनज्मि॥

—भक्ति रसायन १/१॥

उद्देश्य कथन के पश्चात् रसायन के प्रथम उल्लास में भक्ति विशेष को लक्षण सहित स्पष्ट करते हैं। यहां सरस्वती जी ने चित्तद्रुति में न्यूनाधिकता होने के कारण भक्ति को अनेक रूपों में विभाजित कर उन सभी भेदोपभेदों के लक्षण निश्चित किये हैं। रस एवं उसके सहकारी समस्त उपकरणों के पृथक् पृथक् लक्षण देकर रसायन के तृतीय उल्लास में असंलक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य ध्वनि के रूप में रस की सिद्धि की है।

किन्तु किसी वस्तु का लक्षण निर्धारित करने के लिये किसी लक्ष्य की आवश्यकता होती है। जिसके अभाव में उस वस्तु के लक्षण की कल्पना ही नहीं की जा सकती। शास्त्रकारों ने वस्तु के असाधारण धर्म का लक्षण कहा है। जब वस्तु ही नहीं होगी तब असाधारण धर्म भी किसका होगा? और कहाँ से होगा?

---

१. भक्ति रसायन १/१।

इससे सिद्ध होता है कि लक्षण ग्रन्थों से पूर्व लक्ष्य ग्रन्थों का होना अनिवार्य है। उनकी उपस्थिति में ही लक्षण ग्रन्थों का निर्माण किया जा सकता है। जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य में—बाल्मीकि रामायण के आधार पर आचार्य विश्वनाथ आदि ने महाकाव्य का विस्तृत लक्षण किया है। सर्वश्रेष्ठ नायक के सभी गुणों का समावेश राम में प्रदर्शित कर उन्हें ही धीरोदात्त नायक के लक्षणों से विभूषित किया है। भास शूद्रक, कालिदास, आदि के काव्यों में प्राप्त विविध अलङ्कारों के नाम और लक्षण निर्धारित हुए हैं। नाटचाचार्यों द्वारा 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' के अनुसार नाटकों पर लक्षण ग्रन्थ रचे गये हैं।

इसीप्रकार सरस्वती जी ने भी 'रसायन' में भक्ति आदि के लक्षण निश्चित करते समय किसी न किसी लक्ष्य ग्रन्थ को अवश्य आधार बनाया होगा। सम्भवतः वह लक्ष्य ग्रन्थ कोई महाकाव्य रहा होगा। क्योंकि सरस्वती जी 'परमानन्द रूप' आत्मा को ही रस मानते हैं और यह भी स्वीकार करते हैं कि उस श्रुति प्रतिपादित 'रसोवैसः' की अभिव्यक्ति के लिये किसी सुख गर्भिणी वृत्ति वाले शब्दात्मक काव्य का होना आवश्यक है।

[1]परमानन्द आत्मैव रस इत्याहुरागमाः
शब्दतस्तदभिव्यक्तिप्रकारोऽयं प्रदर्शितः॥

इस रस का प्रत्यायक, गुण अलङ्कार रीति और भावों का निवेदक रूप शब्दात्मक काव्य ही है जो असंलक्ष्य क्रम व्यञ्जना वृत्ति द्वारा रस की प्रतीति कराता है। इस काव्य में श्रोताओं के आनन्द के लिये वन शैलादि का वर्णन भी अपेक्षित है।

[2]गुणालङ्कार रीतीनां भावानां च निवेदकः
तस्य प्रत्यायकः शब्दोवृत्या व्यञ्जकरूपया।
[3]अर्थं वादाधि करेण वन शैलादि वर्णनम्
श्रोतृणां सुख मात्रार्थमिति भट्टै रुदाहृतम्॥

भक्ति को रस सिद्ध करने वाले जिस काव्य की रूप रेखा सरस्वती जी ने 'रसायन' में स्थिर की है उसे असाधारण नहीं अपितु उत्कृष्ट कोटि का एक महाकाव्य होना चाहिये। वह कौन-सा महाकाव्य हो सकता है जिसे सरस्वती जी जैसे आप्त पुरुष ने लक्ष्य ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया है?

सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में सम्यक् दृष्टिपात करने पर ऐसे किसी महाकाव्य का संदर्भ प्राप्त नहीं होता। सरस्वती जी जैसे दार्शनिक भक्त की अद्वैत भक्ति सिद्धि के लिये संस्कृत साहित्य के इतिहास में ऐसी किसी रचना के दर्शन नहीं होते जो

---

१. भक्तिरसायन २/२४। २. वही ३/२०। ३. वही ३/३५।

भगवद्भक्ति रसायन में निर्धारित किये गये भक्ति योग एवं भक्ति रस के लक्षणों की परीक्षा करने के लिये लक्ष्य ग्रन्थ के रूप में अपने को सिद्ध कर सके और जिसमें भक्ति का वह स्वरूप निश्चित किया गया हो जो सरस्वती जी को अभीष्ट है और जिसमें स्थायी भाव और आलम्बन विभावों की वे परिभाषायें घटती हो जो 'रसायन' ने निश्चित की हैं। जो महाकाव्य चित्तद्रुति में विभिन्नता होने के कारण भक्ति के उन सभी विविध लक्षणों को सिद्ध करने की क्षमता रखता हो। जो काव्य 'दशमस्त्वमसि' के द्वारा 'सोऽहम्' की अनुभूति करा सकता हो—

[1]वृत्तिः कार्या परोक्षास्य शब्दस्य सुखगर्भिणी।

दशमस्त्वमसीत्यादि वाक्योत्थमति वृत्तिवत्॥

ऐसा ही काव्य सरस्वती जी को अभीष्ट है जो इस दशमी भक्ति को सिद्ध कर सके। जिसमें लौकिक काव्यों द्वारा प्रतिपादित क्षुद्र रसों को खद्योतों की भांति मानकर त्याग दिया गया हो और परिपूर्ण रसा भगवत् रति को आदित्य प्रभा की भांति दिव्य मानकर उसका विशुद्ध रूप से व्यापक वर्णन किया गया हो। जिसमें इन्द्र ब्रह्मा शङ्कर तथा अन्य देवताओं की भक्ति को परमानन्द का प्रकाशक न मानकर इनकी अवमानना की गई हो और जिसमें एक मात्र परमानन्द रूप परमात्मा कृष्ण की भक्ति के दिव्य दर्शन होते हो।

[2]परिपूर्णरसा क्षुद्र रसेभ्योभगवद्रतिः।

खद्योतेभ्यइवादित्यप्रभेव बलवत्तरा॥

अतः सरस्वती जी ने रसायन से पूर्व किसी ऐसे महाकाव्य की रचना की होगी अथवा उनके अन्तःकरण में किसी ऐसे महाकाव्य का पूर्ण एवं स्पष्ट रेखाचित्र अवश्य विद्यमान रहा होगा जिसके आधार पर उन्होंने ये सब भक्ति सम्बन्धी लक्षण निश्चित किये। परन्तु यदि सरस्वती जी रसायन से पूर्व ऐसे किसी महाकाव्य की रचना कर चुके होते तब उस काल खण्ड में उनके द्वारा लिखे गये अन्य ग्रन्थों की भांति 'गोपालविलास' भी लोक प्रसिद्धि प्राप्त करता और आज एक प्रकाशित रचना के रूप में भक्तों एवं दार्शनिकों के परमानन्द का कारण बनता। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। अतः यही सम्भावना अधिक सत्य प्रतीत होती है कि उन्होंने पहले भक्ति के लक्षण अपनी भावनाओं के अनुसार निश्चित करके फिर उन्हें सिद्ध करने के लिये इस अद्वितीय महाकाव्य 'गोपाल विलास' की रचना की।

---

१. भक्तिरसायन ३/२१।

२. भक्तिरसायन १/७७।

संस्कृत साहित्य में यह परम्परा अन्य आचार्यों द्वारा भी अपनाई गई है। आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ ने साहित्य की प्राचीन मान्यताओं से अलग चार प्रकार के काव्यों की कल्पना की है। ये चार हैं—उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम और अधम। अन्य आचार्यों के उत्तम काव्य को उन्होंने उत्तमोत्तम कहा है और द्वितीय अर्थात् उत्तम कोटि की उद्‌भावना उनकी अपनी है जिसका उदाहरण इन्होंने स्वयं निर्मित कर प्रस्तुत किया है। पण्डित राज के अन्य अनेक उदाहरण भी उनके अपने द्वारा ही निर्मित हैं। यही प्रक्रिया उन्होंने मम्मट की मान्यता के विपरीत रस को भी संलक्ष्य क्रमव्यंग्य ध्वनि के रूप में लक्षित करने के लिये अपनायी है। उन्होंने वहाँ अपना स्व निर्मित उदाहरण देकर संलक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य ध्वनि को रस सिद्ध किया है।

शास्त्र की तृतीय प्रवृत्ति परीक्षा के नाम से जानी जाती है। इस प्रक्रिया के द्वारा लक्ष्य में लक्षण की संगति सिद्ध करके उसकी परीक्षा की जाती है। शुद्ध लक्षण वही है जो लक्ष्य द्वारा पूर्णतया सिद्ध हो सके। लक्ष्य भी वही शुद्ध है जिसमें लक्षण पूरी तरह घटता हो। यदि ऐसा नहीं होता तब दोनों ही अशुद्ध हैं। सरस्वती जी ने अपने भक्ति शास्त्र 'भगवद्‌भक्ति रसायन' में जो भक्ति के लक्षण दिये हैं उन्हें लक्ष्य रूप में सिद्ध करने वाला संस्कृत साहित्य में एकमात्र 'गोपाल विलास' महाकाव्य ही है जो उनकी स्वयं की रचना है और जिसका निर्माण उन्होंने केवल अपनी 'रसायन' के लक्षणों को सिद्ध करने के लिये ही किया है। क्योंकि इस महाकाव्य के द्वारा परीक्षित वे सभी लक्षण पूर्णतया शुद्ध सिद्ध होते हैं जिनका निर्धारण रसायन में किया गया है।

सरस्वती जी उन आचार्यों में नहीं थे जिन्होंने (रूप गोस्वामी आदि) भक्ति रस के लक्षण तो निश्चित किये है किन्तु उनका लक्ष्य ग्रन्थ कोई नहीं मिलता।

वस्तुतः सरस्वती जी के समस्त भक्ति साहित्य का लक्ष्य उस भक्ति रस को सिद्ध करना है जिसकी रूपरेखा रसायन द्वारा निश्चित की गई है और जिसकी चरमाभिव्यक्ति एवं पूर्ण परिणति गोपालविलास में हुई है तथा जिस भक्ति की झलक सर्वप्रथम गीता की गूढार्थ दीपिका टीका के प्रत्येक षटक पर मिलती है और जिसका आकार प्रकार भागवत के प्रथम श्लोक की टीका में प्राप्त होता है, 'आनन्द मन्दाकिनी' में जिसने अपना स्वरूप और स्वर निश्चित किया है और गोपालविलास में परिपूर्णता को प्राप्त हुई है। अतः गोपालविलास और सरस्वती जी को अन्योन्य संश्लिष्ट ही मानना होगा।

श्री सरस्वती जी का गोपालविलास से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है यह इसी से ज्ञात हो जाता है कि उन्होंने अपने प्रत्येक ग्रन्थ के अन्त में अपना परिचय देते हुए अपने नाम से पूर्व 'परमहंस परिव्राजकाचार्य का प्रयोग किया है किन्तु 'गोपाल

विलास' के समापन पर वे अपने आप को 'परम हंस' नहीं कहते। वे केवल "श्रीमत् परिव्राजकाचार्य सद्विद्या विद्योतमान् श्री मधुसूदन सरस्वती विरचितं गोपाल विलासाख्यं काव्यं समाप्तम्" इस प्रकार से अपना परिचय देते हैं।

'गोपालविलास' में उन्होंने स्वयं को 'परम हंस' इसलिये नहीं कहा है क्योंकि 'गोपालविलास' के प्रथम श्लोक में उनके परमाराध्य इष्टदेव नन्दनन्दन श्रीकृष्ण चन्द्र स्वयं राधा की भृङ्गार सरसी के हंस बने हुए हैं, फिर वे स्वयं को परम हंस कैसे कह सकते है ?

राधा भृङ्गार सरसी मरालः कमलालयः ।
पाटलाक्षि पदः पायादपयारकोऽपि गोकुलम् ॥

———

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक 10371

३ | गोपाल विलास की कथावस्तु

कवि अपने आराध्य राधा माधव के युगल रूप की वन्दना करने के पश्चात् अपने महाकाव्य की कथा का आरम्भ करते हैं।

अत्याचारी शासकों से त्रस्त पृथ्वी को साथ लेकर अनेक देवता तथा ऋषि मुनियों ने क्षीरसागर के तट पर जाकर भगवान की प्रार्थना की जिससे द्रवित होकर भगवान गोकुल में जन्म लेते हैं। वहाँ भी व्रजभूमि को भयाक्रान्त करने वाली असुर मण्डली को यमलोक पहुँचाते हैं। गोपों को आश्वस्त करते हैं। गोपियों को भगवान शरद रात्रियों में उनके साथ रमण करने का वरदान देते हैं। ऋषि पत्नियों को दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं गोपियों को दिये गये वर को सफल बनाने के लिये रास रचाते है। रास आरम्भ होने से पूर्व कोई दूतिका कृष्ण से राधा का प्रथम परिचय कराती है। सहसा कृष्ण रास मण्डल से अन्तर्धान हो जाते हैं। गोपियाँ रुदन करती हैं। भगवान उन पर दया करते हैं और उन्हें दर्शन देते हैं और उनके साथ महारास की लीला में सम्मिलित होकर उन्हें आनन्दित करते हैं। राधा कृष्ण की अनन्य प्रेमिका हैं अतः कृष्ण उनके प्रेम की वृद्धि करने के लिये वन में कहीं अन्तर्धान हो जाते हैं। भगवान के विरह में अत्यन्त दीन हीन बनी हुई राधा की दयनीय स्थिति को देख कर कोई मालाकार वधू राधा पर दयार्द्र हो जाती है और राधा का सन्देश कृष्ण तक पहुँचाने के लिये सम्पूर्ण वृन्दावन की यात्रा करती है। विरह विधुरा राधा की दशा का करुणापूर्ण वर्णन करके दूती कृष्ण को अत्यन्त व्यथित बना देती है। कृष्ण राधा के विरह में अत्यन्त व्याकुल होकर विक्षिप्त से बन जाते हैं। दूती कृष्ण की इस दयनीय दशा का वर्णन राधा से करती है और उसे कृष्ण के समीप चलने के लिये तैयार कर लेती है। अपनी कुछ अन्तरङ्ग सखियों के साथ राधा दूती को आगे करके कृष्ण मिलन के लिये चल देती है और भगवान की शरण में पहुँचती हैं। दोनों का रात्रि में मिलन होता है। प्रातःकाल प्रिय सखियों के मध्य राधा माधव का मधुर वार्तालाप होता है। सूर्योदय होने पर कृष्ण नन्द महल में चले जाते हैं और राधा सखियों के साथ यमुना स्नान करके अपने घर चली जाती हैं।

सर्गानुसार गोपालविलास का कथानक

प्रथम सर्ग—

प्राचीन काल में ब्रह्मा इन्द्र शङ्कर अग्नि आदि देव समूह ऋषियों को

साथ लेकर और पृथ्वी को आगे करके क्षीर सागर के तट पर जाते हैं। वहाँ चन्द्रवदन गोविन्द के दर्शन करने के पश्चात् उनसे भूभार हरण करने की प्रार्थना करते हैं। देवताओं की प्रार्थना सुनकर लक्ष्मी पति विष्णु ने ब्रह्मा से कहा कि मैं देवकी के गर्भ से शीघ्र जन्म लूंगा। अत: देवगण मेरी सेवा करने के लिये वहाँ जन्म ग्रहण करें। देवाङ्गनायें गोपरमणियों के रूप में नन्दनन्दन की सखियाँ बने। लक्ष्मी भी व्रज में निवास करते समय मेरी प्रिया राधा बनेगी। मुनिगण भी गोवत्स बनकर वहीं वृन्दावन में वास करेंगे।

भगवान की इच्छापूर्ण हुई और देवकी ने उचित समय पर कमल के समान नेत्रों वाले पुत्र को जन्म दिया। वसुदेव देवकी ने नवजात शिशु को शंख, चन्द्र गदा और पद्म् आदि से युक्त देखकर उन्हें दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। तभी उन लक्ष्मी पति भगवान ने वसुदेव को आज्ञा देकर कहा कि यहाँ से मुझे तत्काल गोकुल ले चलो और वहाँ से नन्द कन्या को ले आओ। वसुदेव जी अपने पुत्र को लेकर गोकुल के लिये चल दिये। नन्द महल में पहुँच कर वे अपने पुत्र को यशोदा की शय्या पर लिटा देते हैं और वहाँ से उनकी पुत्री को लेकर मथुरा आ जाते हैं।

उस कन्या के रुदन को सुनकर कंस अपने सेवकों के साथ कारागृह में प्रवेश करता है, वहाँ वह देवकी और वसुदेव की भर्त्सना करता है और तत्काल शिला पर पटक कर समाप्त कर देने के लिये उस कन्या को ले जाता है। उस विष्णु माया को विष्णु के समीप जाते हुए देखकर तथा उसकी वाणी सुनकर कंस अत्यन्त भयभीत हो जाता है और अपने घर में घुस जाता है।

उधर यशोदा भी नवजलधर की कान्ति वाले अपने पुत्र को देखकर आनन्द मग्न हो रही है। वृद्ध गोपाङ्गनायें भी यशोदा को पुत्रवती देखकर भगवान का गुणगान करती हुई नन्द का अभिनन्दन करने के लिये महल में जाती हैं। नन्द भी पूर्ण प्रसन्नता के साथ स्वर्णमणियों तथा कौशेय आदि से उनका यथा शक्ति सत्कार करते हैं। उस समय महाभागनन्द का महल भेरियों मृदङ्गों, शंखों, दुंदुभियों, वेणुवीणाओं की विविध ध्वनियों से तथा व्रज सुन्दरियों के कोकिल कंठों से मुखरित हो उठा। सिद्धों तथा अप्सराओं सहित ब्रह्मा शंकर इन्द्र आदि देवता अपनी अपनी पत्नियों सहित नन्द महल पर पुष्प वृष्टि करते हैं।

प्रसन्न वदन नन्द पुत्र जन्मोत्सव में सम्मिलत होने वाले राजकुमारों से लेकर चर्मकारों तक को स्वर्णभूषणों से लाद देते हैं। तदनन्तर गर्गाचार्य से बलराम सहित कृष्ण का जातकर्म एवं नामकरण सस्कार कराकर पत्नी के पय से रसाल रूप शिशु कृष्ण को बढ़ता हुआ देखकर व्रजपति नन्द सुख के साथ अपना समय व्यतीत करने लगते हैं।

यमुना के कछारों में बक और शकट का रूप धारण किये हुए अन्य अनेक

रिपुओं के साथ तृणावर्त को समाप्त करके बालक कृष्ण और बलराम सहित व्रज रमणियों में काम को उल्लसित करते हुए वृद्धि को प्राप्त होने लगे। तभी कृष्ण ने वृक्ष योनि से मुक्त करने के लिये यमलार्जुन को उखाड़ कर धराशयी कर दिया। इस अद्भुत घटना से वृद्ध गोप भयभीत हो गये और कृष्ण को गोकुल से वृन्दावन ले जाते हैं। वहाँ जाकर भी बलराम तथा कृष्ण ने अपने सखाओं के साथ धेनुक आदि राक्षसों का बध किया। इसी समय श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा का मोह भङ्ग किया तथा कालिया नाग का नाथम करके यमुना प्रवाह को अमृतमय बनाया। इन्द्र के मद को तथा उसके महत्त्व को समाप्त करने के लिये गोवर्धन धारण किया। श्रीकृष्ण ने यमुना में नग्न होकर स्नान करती हुई कात्यायनी व्रत परायण गोप रमणियों के वस्त्रों का हरण किया। किन्तु उनके द्वारा की गई प्रार्थना से प्रसन्न होकर कृष्ण ने उनके वस्त्र लौटा दिये और उन्हें उनका अभीप्सित वर भी प्रदान किया। इसी प्रकार ऋषि पत्नियों को दर्शन देकर उन्हें कृतार्थ किया।

द्वितीय सर्ग—

तदनन्तर नन्दनन्दन माधव वल्ली रूप गोप बालाओं की रमय पर विकसित पुष्प सम्पदा को फलवती बनाने के लिये वृन्दावन में प्रवेश करते हैं। वहाँ कृष्ण के स्वागत में समस्त ऋतुएँ अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ पहले से ही उपस्थित हो जाती हैं। कृष्ण को क्रीडार्थ वन में आया हुआ देखकर सूर्यदेव अस्ताचल को चले जाते हैं। सम्पूर्ण वृन्दावन अन्धकार में लीन हो जाता है। तभी श्याम अपना गायन आरम्भ करते हैं। उधर गोप रमणियाँ भी माधव द्वारा दिये गये वरदान का स्मरण करती हैं और उनके साथ अभिसार की तीव्र लालसा से व्याकुल हो जाती हैं। तभी कृष्ण की वंशी के स्वर जैसे ही उनके कानों में पड़ते है वे कृष्ण के समीप पहुँचने के लिये बेसुध हो जाती हैं और उल्टा सीधा श्रृङ्गार करके कृष्ण के समीप पहुँचती हैं सबसे अन्त में अपनी अनङ्ग सेना आदि सखियों के साथ राधा गजगति से मंदमंद केलिकानन में कृष्ण के समीप पहुँचती हैं। राधा के क्रीडाकानन में पदार्पण करते ही पूर्ण चन्द्रमा का उदय होता है। इसी समय गोपाङ्गनाओं के पदाङ्गदों की ध्वनि मुखरित होने लगती है। जिसे सुनकर नन्दनन्दन आनन्दित हो जाते हैं। काम द्वारा निर्मित गोपाङ्गनाओं की इस प्रचण्ड सेना के असंख्य तुला कोटियों की ध्वनि सुनकर भय से कंपित नन्दनन्दन का शरीर रोमाञ्चित हो जाता है।

इसी समय कोई दूती राधा से माधव का प्रथम मिलन कराती है। उस लावण्यामृत सरसी का नेत्र चषकों से पान कर नन्दनन्दन का अंग अंग अनङ्ग रस से आर्द्र हो जाता है। गोप रमणियों का स्वागत करने के पश्चात् नन्दनन्दन ने उनसे प्रश्न किया कि हे श्रेष्ठ कुलोद्भव देवियो! इस कंटकाकीर्ण भयङ्कर वन में अर्द्ध रात्रि के समय तुमने किसलिये पदार्पण किया है? क्योंकि उत्तम कुल कामिनियाँ रात्रि

में अपने पतियों का परित्याग नहीं करती। अतः तुम मेरी आज्ञा से अपने घरों को चली जाओ। काम बाणों से आहत बनी हुई व्रज युवतियों ने उत्तर में नन्दनन्दन से कहा कि हे काम! पृथ्वी पर आप ही हमारे एकमात्र प्रियतम है। आपके अतिरिक्त हम अन्य किसी को नहीं जानतीं।

गोपियों के अकाट्य तर्कों से कृष्ण निरुत्तर हो जाते हैं और उन्हें अपने आश्रय में लेकर उनके साथ रमण करते हैं। रतिनाथ कृष्ण की काम कलाओं से आकुल बनी असंख्य गोप रमणियों के साथ अद्भुत रूप में अभिसरण करने के लिये व्रजराजकिशोर गोपाल अनेक देह धारण करते हैं कृष्ण के साथ नर्तन करते हुए रस विह्वल बनी हुई गोप युवतियाँ घनश्याम से लिपट जाती हैं और चपलाओं की भांति चमकने लगती हैं। इसी समय उन मदोन्मत्त गोप वधुओं के काम रसाल की पूर्ण अभिवृद्धि करने के लिये अच्युत गोपाल ताड़ तमालों से भरे हुए वन में अन्तर्धान हो जाते हैं।

तृतीय सर्ग—

घनश्याम कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर काम बाणों से व्यथित बनी हुई गोपियाँ अपने प्राणेश्वर को खोजने के लिये तुलसी माधवी कुन्द आदि लताओं से उनके विषय में पूछती फिरती हैं अन्त में वे कालिन्दी के तट पर पहुँचकर कृष्ण के लिये करुणापूर्ण क्रन्दन करने लगती हैं। दयालु कृष्ण उनके बीच में प्रकट होते हैं। वे एक साथ उठकर अपने प्रियतम का स्वागत करती हैं। उसी समय कृष्ण पूर्ण विजय प्राप्त करने की लालसा लिए हुए अपनी वक्र भ्रुकुटियों के व्याज से कामदेव की सेना बनी हुई कमलनेत्रा राधा काम कार्मुक से अपने तीक्ष्ण कटाक्षों के बाणों की वर्षा करने लगती हैं। गोपियाँ कृष्ण के लिये कुचकुङ्कुमों से रंग विरंगे बने हुए अपने उत्तरीयों से एक सुन्दर सा आसन तैयार करती हैं। उस पर अपने प्रियतम मदनमोहन को समासीन करती हैं और सब प्रकार से उनकी सेवा में संलग्न हो जाती हैं। वे जानती हैं कि हमारे प्रियतम किस प्रकार की सेवा से सर्वाधिक प्रसन्न होते हैं। अतः वे अपने सामने बैठे हुए कला निधि काम सम्राट मुकुन्द के लावण्य गृह को लूटना आरम्भ कर देती हैं। यह देखकर राधा अत्यन्त कुपित हो जाती हैं। वे आवेश में आकर माधव के पूर्व विग्रह को अपने उत्तुंग उरोजों में छिपा लेती हैं और स्वयं भी रोमाञ्चित हो जाती है।

गोपबालाओं की उन्मुक्त काम क्रीड़ाओं से माधव अधीर हो जाते हैं। यह देखकर गोपरमणियाँ कृष्ण के द्वारा अपने स्वर्ण शैलों पर भयङ्कर आक्रमण की आशंका से भयभीत हो जाती हैं। भय के कारण उ के स्तनों में कम्पन होने लगता है। यहीं से रास क्रीड़ा आरम्भ हो जाती है।

रास में कोटि-कोटि गोप रमणियों से घिरे हुए तथा उनके काम बाणों से आहत नन्दनन्दन उन कनक कलेवरकामिनियों के मध्य मरकत मणि की भांति

लगते है। रास के अन्त में कमलनेत्र कृष्ण रतिश्रम से उत्पन्न स्वेद बिन्दुओं से सुन्दर बने हुए प्रातः कालीन कमल की कान्ति के समान अपनी प्रियतमाओं के मुखों का मदोन्मत्त मधुप की भाँति चुम्बन करते हैं और राधा से कहते है कि हे राधे! प्रातः कालीन ऊषा प्राची में आ जाने पर हमारी काम क्रीड़ाओं पर प्रतिबन्ध लग गया है। अतः अब घर चलें। रात्रि में अपनी प्रियतमाओं को काम क्रीड़ाओं से तृप्त बनाकर कृष्ण अपने घर चले जाते हैं और गोपियाँ भी राधा को लेकर अपने अपने घरों को चली जाती हैं।

चतुर्थ सर्ग—

राधा के हृदयारविन्द पर निरन्तर गुञ्जन करने वाले अरविन्द नाभि कृष्ण उनके प्रेम की अभिवृद्धि करने के लिये वन में कहीं अन्तर्धान हो जाते हैं। मुकुन्द के चले जाने पर विरह ताप से संतप्त राधा का हृदय शरद ऋतु के सूर्य की प्रखर किरणों से शुष्क बनी हुई सरसी के समान हो जाता है। राधा को अत्यन्त कृश देखकर कोई मालाकार वधू उनको सान्त्वना देती हुई कहती हैं।

दामोदर को प्राणों के समान प्रिय राधिके! तुम्हारे लिये उनके हृदय में तनिक भी अनुराग कम नहीं हुआ है फिर भी तुम इतनी अधीर क्यों हो। दूतिका के ऐसा कहने पर नेत्रों में आंसू भरे हुए राधा उससे कहती है कि दूतिके! तुम कृष्ण के पास जाकर उनसे यह निवेदन करना कि इस समय तुम्हारे वियोग में मलय समीर एवं पाटीर पङ्क भी मेरे लिये हलाहल का कार्य कर रहे हैं। मेरे द्वारा नित्य सिञ्चित यह रसाल तरु भी मेरे नेत्रों को प्रज्वलित कर रहा है। यह कितना बड़ा आश्चर्य है कि एक मात्र गरुड़ध्वज की उपभोग्या मुझे यह मकरध्वज अपने पुष्प चाप से सतत पीड़ित करता रहता है। कुटिल आकृति वाले ये नव किसलय तो मुझे सन्तप्त करते ही हैं किन्तु यह जगत प्रसिद्ध अशोक नाम वाला वृक्ष भी मुझे शोकाकुल बना रहा हैं। यह एक आश्चर्य की बात है। पादपाधि पति कदम्ब जो उस समय तुम्हारे पाद पल्लवों से सम्मान प्राप्त करता था वही पाप बुद्धि अब दुष्ट कोकिलों को अपने ऊपर आश्रय देकर मुझे निरन्तर व्याकुल करता रहता है।

दूतिके! सामने उस बन मृगी को देखो जो अपने मधुर काम कटाक्षों के बदले में अपने प्रियतम मृग द्वारा कर्णाग्र से खुजवाती हुई यमुना की शीतल सिकता पर वृन्दावन के वृक्षों की सघन छाया में सो रही है। इस समय सर्वत्र कमल बनों में अपने प्रियतम मधुकरो के साथ मधुपान में व्यस्त मधुकरियाँ मन्दमन्द मञ्जुल-गुञ्जन करती हुई काम सम्राट की आज्ञा से अपने पतियों के अङ्कों में विराजमान हो रही है।

हे दूतिके! तुम मेरी इस व्यथा पूर्णकथा को उनके श्री चरणों में निवेदन करना और उनसे कहना कि तुम्हारे बिना मेरा यह शरीर अब केवल अग्नि का

भोजन बनने के अतिरिक्त किसी अन्य के योग्य नहीं रह गया है। दुर्जनों पर शासन करने वाले मधुसूदन ! तुम्हारे रहते हुए भी एक मात्र तुम्हीं जिसके नाथ हो ऐसी मुझ अबला को यह दक्षिण पवन इस घोर निर्जन वन में यमपाश के वशीभूत कर देना चाहता है।

अन्त में दूती कहती है कि हे कृष्ण प्रियेराधे ! पाद्मिनी की गन्ध का आनन्द लेने वाला मधुप क्या कभी साधारण पुष्पों के रस से सतुष्ट हो सकता है। तुम भी तो इस मधुवन की वासंती हो और नन्दनन्दन बाल रसाल हैं. क्या कभी इनका वियोग सम्भव है ? अतः हे कृष्णप्रिये ! यमुना के तटों पर पुष्पित पादपों के मूलों में नव किसलय वाले अशोक के रक्तिम कुञ्जों में घूम-घूम कर कृष्ण को खोजूंगी और तुम्हारे हाथों में लाकर सौंप दूगी। इसप्रकार राधा को सात्वना देकर आश्वस्त करती हुई दूती कृष्ण के समीप चली जाती है।

पञ्चम सर्ग—

वृन्दावन में सर्वत्र भ्रमण करती हुई दूती राधा का सन्देश लेकर कृष्ण के समीप जा रही है। वन में कहीं गोप युवतियों के स्तन तटों पर होकर बहने वाले यमुना जल से सिञ्चित नागकेशर वनी में निवास करने वाला पवन जीवन का सञ्चार कर रहा है। कहीं नन्दनन्दन के केलि कानन में गोपरमणियां अपने पतियों के साथ उत्सुकता पूर्वक पुष्प चयन कर रही हैं। कहीं मदमस्त गजराजों के मद जल से सुवासित क्षीरसागर की भांति पीयूष पूरित, सुभग सारसों का आश्रय बने हुए श्रीराम के समान नील कान्ति वाले विशाल जलाशय को देखकर दूती आनन्दित हो उठती है।

अन्त में दूतिका कृष्ण कुञ्ज में पहुंचती है। वहां पूर्ण प्रफुल्लित मल्लिका से विरचित वितान से सुशोभित कुञ्ज में मधुमधुर मुस्कान बिखेरते हुए, नील नलनियों की शय्या पर विराजमान नव जल धर की कान्ति के समान नन्दनन्दन अपने मुख-चन्द्र को अपने कर कमल पर रक्खे हुए हैं। उस समय दूति का क्षीर सागर में शेष शय्या पर शयन करते हुए भगवान विष्णु की भांति नन्दनन्दन गोविन्द के दर्शन करती है।

षष्ठ सर्ग —

दूती दूर से ही श्याम की अनुपम रूप राशि को देखकर अपने मन में अनेक प्रकार की कल्पनायें करने लगती है। किन्तु कृष्ण के वक्ष पर लक्षित भृगु पद के लक्ष्य की उद्दीप्त कान्ति उसे इस चिन्तन से मुक्त कर देती है। अब वह सुख समुद्र श्याम के चरणों में उपस्थित होती है।

दूती विरह विधुरा राधा के म्लान मुख कमल की कान्ति का स्मरण करती हुई कृष्ण के पाद पद्मों में ध्यानस्थ होकर उनसे निवेदन करती है।

हे नन्दनन्दन श्याम ! प्रातः से सायं तक वासन्ती रवि ने अपनी तीक्ष्ण किरणों द्वारा कोमलाङ्गी माधवी राधा को दग्ध कर दिया है। हे दयानिधे ! अब उस काम भूमि राधा को अपनी काम कलाओं के रस से आप्लावित करो। रात-रात भर सींची गई लतायें ही प्रातः काल पूर्ण प्रफुल्लित दिखाई देती हैं। हे मधुकर ! यद्यपि तुम अन्य अनेक पराग पूर्ण सुमनों से लदी हुई लताओं एवं कुमुदनियों को अत्यन्त प्रिय लगते हो फिर भी तुम्हें उस अपनी प्रेयसी कनक कलेवरा राधा का भी सेवन करना चाहिये। हे मधुसूदन ! अब तुम इस मौन व्रत का परित्याग करो और अपनी कर्णप्रिय मधुरवाणी से इस मालिनी का मान वर्धन करो। यदि यह मालिनी इस रसाल के साथ उस बल्लरी का ग्रन्थि बन्धन कर दती हैं तब तुम अपने मधुर गुञ्जनों से इसका सिञ्जन अवश्य करना। हेनन्दनन्दन ! सम्पूर्ण कलाओं के स्वामी चन्द्रमा का शरीर भले ही क्षय आदि दोषों से युक्त हो। इस पर भी कुमुदिनी को उससे तनिक भी अरुचि नहीं होती। इसी प्रकार सूर्य की तमतमाती प्रचण्ड किरणों का पद्मिनी की गन्ध पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये हे श्याम ! मृगलोचनायें प्रायः अपने प्रियतम में दोष नहीं देखती हैं।

इस प्रकार रोमाञ्चित शरीर वाली यह सहज रसिका दूतिका नन्दनन्दन से यह सब निवेदन करने के पश्चात् उन्हें प्रणाम करती है और उनके पास से उठकर चल देती है। तदनन्तर दूती अपने प्रियतम के ध्यान में लीन अपनी प्रिय सखियों के साथ जाती हुई राधा के समीप पहुँचती है।

सप्तम सर्ग—

चन्द्रज्योत्स्ना में स्नात रजनी में सखियों सहित जाते हुए देखकर नन्दनन्दन राधा को स्निग्ध दृष्टि से देखते हैं। जानकी से वियुक्त राम की भाँति कृष्ण दैन्य वाणी में वृन्दावन के तरु खग मृग आदि से राधा के विषय में पूछते हुए अत्यन्त शोकाकुल हो जाते हैं। उनकी विरह वेदना अकथनीय बन जाती है। वे विविध विदग्धालापों से अपने हृदय की ही नहीं अपितु प्राणी मात्र के हृदय की इस अनादि वासना को प्रकट करते हैं।

वे राधा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे प्रिये ! यमुना के पुलिनों पर सदय नेत्रों वाले सानन्द विचरण करते हुये ये मृग मस्ती से झूमते हुए ये बाल मन्दार. तरुशाखाओं से लिपटे हुए ये लता वृन्द, तुम्हारे बिना मुझे प्रचण्ड अग्नि के समान प्रतीत होते हैं। हे राधे ! कितने आश्चर्य की बात है कि तुम्हारे करतलों से स्पर्धा करने वाले कालिन्दी के जल से सिञ्चित ये शोणारविन्द मेरे लिये सन्ताप उत्पन्न कर रहे हैं। विरह विधुर कृष्ण वन में सर्वत्र राधा के दर्शन कर रहे हैं वे राधा से कहते हैं कि हे प्राण प्रिये ! तुम्हारे मस्तक पर देदीप्यमान सिन्दूर विन्दु से सन्ध्या का सूर्य अपनी सिन्दूरी शोभा प्राप्त करता है, तथा चन्द्रमा तुम्हारी मुख श्री लेकर ही

सुधावृष्टि करता है। जिसे काम का सर्वस्व कहा गया है उस तुम्हारे हास्य से ही चन्द्र ज्योत्स्ना धवलता प्राप्त करती है। जिस राधा की कटि अत्यन्त सूक्ष्मता के कारण मीमांसकों के लिये पुनः-पुनः चिन्तन का विषय बनी हुई है, जिसका नीविबन्ध अनुबन्ध चतुष्टय के साथ वेदान्तियों के लिये गहन मनन का विषय बना हुआ है। जो समस्त योगों की निवास स्थली है। बुद्धिमान काम की उस अनिन्द्य विद्या राधा के दर्शन मैं कब करूंगा।

कुन्द मकरन्दों से रमणीय बनी हुई शरद ऋतु में मधुकर, कोकिल, चकोर मयूर कपोत एवं कपोतियों के निरन्तर सुनाई देने वाले मधुर कलरवों से जिनके हृदय कर्ण तथा कण्ठ जड़ बन गये हैं तथा काम बाणों से जिनका मर्मस्थल क्षत विक्षत हो गया है ऐसे कृष्ण राधा मिलन के मार्ग में अनेक प्रकार की बाधाओं से संघर्ष करते हुए अत्यन्त दीनता के साथ दूती से अपने हृदय की व्यथा कहते हैं।

अष्टम सर्ग—

कृष्ण की प्रचण्ड विरह वेदना के प्रत्यक्ष दर्शन करने के पश्चात् दूती राधा के समीप पहुँचती है। वहाँ वह अपनी सखी और मधुसूदन की प्रेयसी राधा को उस नलिनी की भाँति देखती है जो अपने हृदय में अपने प्रियतम की स्मृति को संजोये हुए किसी प्रकार जीवन धारण किये हुए है। हिम कणों से मुख की कलुषित कान्ति वाली, विरह राहु से ग्रस्त चन्द्रिका के समान वह राधा अब तारकों का हार धारण किये हुए हरिचन्दन से चर्चित हिमरजनी के समान दिखाई दे रही है।

राधा की इस दयनीय दशा को देखकर दूती कहती है कि हे राधे! तुम अपने हृदय को इतना व्यथित क्यों कर रही हो? काम बाणों से आहत मधुसूदन के हृदय को चलकर शीघ्र शान्त करो। राधिके? मृत को जीवन दान देने वाली अपनी मुख कान्ति की लहरियों से काम पीड़ा से जर्जर बने हुए मर्मस्थल वाले घनश्याम के हृदय में जलने वाली उस अग्नि को शान्त करो। हे मधुसूदन प्रिये! अब तुम इन लावण्यमयी लताओं में रमण करो। यह निश्चय समझो कि एक दो दिन में मधुहन्ता माधव के चरणों का समागम तुम अवश्य प्राप्त करोगी।

दूती के इन मधुर वचनों से हर्षोन्मत्त बनी हुई राधा अपने विस्तृत शैल श्रृङ्गों पर पुनः-पुनः दृष्टिपात करती है। काम के तीक्ष्ण बाणों के समान हिमकर की किरणों से व्यथित राधा दूती से कहती हैं कि हे प्रिय सखि! सामने कुलटाओं के नेत्रों में शल्य की भाँति चुभने वाला यह चन्द्रमा मुझे अभिसार के लिये उत्सुक देखकर मेरे मार्ग में कंटक दुर्ग की भाँति खड़ा हो गया है।

राधा के मुखचन्द्र से प्रवाहित होने वाली इस मधुमयी बाणी को सुनकर चकोर नेत्रा दूतिका ने कहा कि हे तन्वि! तुम तनिक भी चिन्ता मत करो। केसर सहित चन्दन तैय्यार करो, उस मान निकेतन नन्दनन्न का जयगान करो। माला

में केसर पुष्पों के साथ रक्त कमल भी गूँथों। कुंकुम रञ्जित तण्डुल भी ले लो। इस शुभ अवसर पर तुम्हारी सखियाँ मंगलगान गायें। हे कामिनि ! अब तुम भय का परित्याग करो। हे मृगलोचने ! वन में चलकर इच्छानुसार अपने प्रियतम का सेवन करो। घनसार से अभिसिक्त केलि कानन को प्रस्थान करो और अपने काम सन्ताप को शान्त करो। इस प्रकार दूती ने राधा को कृष्ण के क्रीड़ा वन में चलने के लिये उद्यत कर लिया।

नवम सर्ग—

उस समय आनन्दातिरेक के से आत्मविभोर बनी हुई राधा को वन में चलने के लिये उद्यत देखकर उसकी प्रेम विह्वला सखियाँ कनक कलेवरा राधा के हृदय को अपनी मधुर वाणी से सिञ्चित करने लगी। सखियों के साथ राधा को विलास पूर्ण हास परिहास में व्यस्त देखकर दूतिका नन्दनन्दन के समीप पहुँच जाती है और उनसे कहती है कि हे श्याम ! वन देवता से निरन्तर सतायी जाने पर भी यह तन्वङ्गी राधा अब तक प्राणों का निवास कैसे बनी रही ? अब तुम्ही बताओ कि तुम्हारी दासी यह दूती तुम्हारी क्या सेवा कर सकती है ? यदि आप के कुल में किसी भी प्रकार राधा का अभीष्ट सिद्ध होता है, तब यह मेरे लिये हितकर ही होगा। यह सुनकर प्रफुल्ल वदन नन्दनन्दन ने दूती से कहा—हे दूतिके ! तुम तो इस चिन्ता सागर में डूबते हुए मुझे पार करने के लिये विधाता के द्वारा रची गई एक तरणी के रूप में आयी हो।

तदनन्तर विरहाग्नि से दग्ध राधा की दीन दशा का वर्णन करती हुई दूती कृष्ण से कहती है कि हे मन मोहन ! मैं तुमसे उसकी दशा का क्या वर्णन करूं। अनेक उत्तम वैद्यों द्वारा अनेक प्रयास करने पर भी मृगलोचना राधा के नेत्रों को कोई प्रसन्न नहीं बना सका। यह सुनकर माधव ने दूती से कहा कि राधा के जीवन की रक्षा के लिये वनदेवता को संगीत वाद्यों एवं पूजा की विविध सामग्रियों तथा वलि विभवो से प्रसन्न करना चाहिये। इसके लिये आप मेरा सर्वस्व भी उसे दे सकती हैं यदि वह राधा को अभीष्ट फल देने वाला हो।

यह सुनकर मुदित मना दूती राधा के समीप जाकर उसकी हृदय सरसी को आनन्दान्दोलित करती हुई गोप कुमार मुकुन्द की दानशूरता का वर्णन करती है। वह राधा से कहती है कि हे राधे ! यदि वन में चलकर सुकेशी हन्ता माधव की पूजा करनी है तब हे हरि प्रिये ! यह विलम्ब किस लिये ? अतः वन देवता का पूजन करने के लिये आवश्यक सामाग्रियों में चन्दन द्रव, कलश, कदम्बमाला, ताम्बूल तथा कर्पूर आदि उपकरण अपने साथ ले लो।

इस समय राधा को मिलन के लिये अत्यन्त आतुर देखकर प्रेमाश्रुओं से मलिन दृष्टि वाली कृषकाय राधा की सखियाँ आनन्द मग्न हो रही है। तन्वङ्गी

राधा मन में मिलन की उत्कट उत्कण्ठा लिये हुए अलसगमना होते हुए भी प्रिय मिलन के लिये द्रुत गति से चल रही थी। वे अपने नेत्रों से नील कमलिनियों की कान्तियों को बिखेरती हुई, अपनी हास्य सुधा से जगत को धवल बनाती हुई। दिशाओं को स्वर्णिम करती हुई तथा चरणों से रक्त कमलों की सृष्टि करती हुई राधा केलिकानन के लिये चल दीं।

दशम सर्ग—

मार्ग में राधा ने दूतिका से कहा कि हे सखि! तुम इस वन में सदैव आती जाती रहती हो, तुमने इसे सदा सब प्रकार से निरापद पाया है। अतः तुम मुझे शङ्कर, के पूजा गृह में ले चलो। तब प्रसन्न मना दूती ने राधा से कहा कि हे राधे! जब तक तुम शङ्कर की पूजा करती हो तब तक मैं तुम्हारे मधुर चरितों से मुकुन्द को प्रसन्न बनाकर तुम्हारे समीप आती हूँ।

दूतिका के चले जाने पर राधा ने शिव मन्दिर में प्रवेश किया। मन्दिर में कमल गुच्छों, आम्रमञ्जरियों कल्हार, रक्तकमल, नीप, केशर, धत्तूर, दूर्वा, अगरु, चन्दन, अक्षत, महालवंगी, कस्तूरिका, कुमकुम, धात्रीफल, बिल्वपत्रों एवं पल्लवयुक्त पुष्पों से नैवेद्य सहित मधुर संगीत की स्वर लहरियों के साथ राधा ने गौरी सहित शङ्कर की आराधना की। कमल नेत्रा राधा ने शङ्कर से यह वर मांगा कि त्रिपुरारि! आप मुझ पर ऐसी कृपा करिये जिससे मेरा अन्तःकरण प्रियतम श्याम घन के चरणों में निरन्तर रमण करता रहे।

उधर राधा को शिव मन्दिर में प्रविष्ट हुआ देखकर चाप के दोनों सिरों को मिलाने वाली काम धनुष की प्रत्यञ्चा की भांति दूतिका राधा के आगमन की सूचना देने के लिये कृष्ण के समीप चली गई। वहाँ जाकर उसने गोविन्द से कहा कि हे तमाल! वर्षा से उज्ज्वल बनी हुई शिरीष बनी के समान सुशोभित तथा विद्युत द्युति की भांति देदीप्यमान उन्नत पयोधरा राधा तुम्हारे समीप आ रही है। ऐसा मधुरतम सन्देश पाकर प्रफुल्लवदन नन्दनन्दन ने दूती से कहा कि हे दूतिके! मैंने भी वासन्ती ज्योत्स्ना से सिञ्चित नीप कानन को तुम्हारे लिये सुसज्जित किया है। राधा दूती के मुख से माधव के इस मधुर सन्देश को सुनकर अपनी सहज कान्ति से वन को उद्दीप्त करती हुई उसी प्रकार चञ्चल हो जाती है जिस प्रकार कोई दीप शिखा मन्द पवन के तनिक से स्पर्श से चपल बन जाती है।

दूती की शिक्षा के अनुसार राधा ने अपनी सखियों से कहा कि एक मालाकार वधू की प्रार्थना पर मैं उससे क्षणभर के लिये मिलने को जाती हूँ तब तक तुम शङ्कर की आराधना में संलग्न रहो। यह सुनकर सखियाँ बोली कि राधे! तुम हमें प्राणों के समान प्रिय हो हम तुम्हें वन में अकेला छोड़ने का साहस नहीं कर सकतीं।

इस प्रकार सखियों के वचनों से राधा को संकुचित होते हुए देखकर दूतिका आती है और कहती है कि यह समय मनोविनोद का नहीं है और राधा का हाथ पकड़कर अपने साथ ले जाती है।

सारङ्गकान्ता के समान नेत्रों वाली राधा से दूती ने कदम्ब कानन में पहुँच कर कहा कि हे सुन्दरि। तेरे प्राणेश्वर-नन्दनन्दन इसी वन में निवास करते हैं। अपने कर्ण चषकों से उस सुधासव का पान कर श्याम प्रसन्न हो जाते हैं। यह कहकर कि राधा कहाँ है ? लक्ष्मी पति मुकुन्द अत्यन्त चञ्चल बन जाते हैं।

तदनन्तर दूतिका राधा को नन्दनन्दन के समीप ले जाती है। तब वाक्पटु दूती व्रजेन्द्रनन्दन को आनन्दित करती हुई मुकुन्द वल्लभा राधा से कहती है कि हे राधे ! मैं क्षण भर के लिये तुम्हारी सखियों के पास जाकर तुम दोनों के लिये सुमनाञ्जलि लेकर आती हूँ। यह कहकर सूर्य की अन्तिम किरण की भाँति दूतिका वहां से चली जाती है।

इसके पश्चात् किङ्कार-हुङ्कार तथा रुनझुन की ध्वनियों और नात्कार तथा सीत्कार के रवों से भरे हुए तथा निरन्तर हुँ हुँ की उग्र ध्वनि से व्याप्त कृष्ण कुञ्ज इसप्रकार के अस्पष्ट वर्णों वाले काम केलि कलरव से मनोहर बन जाता है। उस समय श्याम के अङ्क में समाहित राधा ऐसी लग रही थी मानो मीनाक्षी मृगमद की गाढ़ी पङ्क में फस गई हो। फिर चपल कुण्डलों वाले श्याम ने अपने कपोलों की कान्ति से राधा के कपोलों को मण्डित करते हुए ताम्बूल कल्क से राधा के अधरों को उसी प्रकार भर दिया जिस प्रकार शुक के मुख को अनार के दानों से भर दिया हो। अन्त में लक्ष्मी की कुचपालियों से सेवित नन्दनन्दन के चरणों का सम्वाहन करती हुई सर्वेश्वरी राधा का मन उस नट खट मुकुन्द के मुख पर पूर्णतया आसक्त हो गया। अब उनके अङ्ग अपने अङ्गों में नहीं समा रहे थे।

एकादश सर्ग—

प्रातः हरि से प्रसन्न बनी हुई प्राची को देखकर राधा विचित्र प्रकार के भावों में निमग्न हो रही थीं। तभी सौन्दर्य निधि कृष्ण भी अपनी प्रिया राधा के पीले पड़े हुए कपोलों को अपने कुण्डलों की कान्ति से मण्डित करते हुए बोले। हे राधे ! विधाता की कृपा से मित्र का उदय हो गया है अतः हे प्रिये ! अब तो रात्रि में ही हमारा मिलन होगा। राधे ! यह प्रखर मित्र मेरे केलि कानन में कंटक की भाँति प्रवृत्त हो रहा है। अब इस मित्र से उत्पन्न तपन को शान्त करने के लिये घर के अन्दर चलना चाहिये। राधा से इस प्रकार कहकर आनन्दमग्न नन्दनन्दन बार-बार उस कलावती राधा का स्मरण करते हुए नन्दमहल में चले जाते हैं। राधा भी कला निधान कृष्ण को जल क्रीड़ा में प्रवृत्त हुआ जान कर सखियों के साथ यमुना में स्नान करती हैं और रात्रिजागरण से उत्पन्न नेत्रों की लाली को जल से धो देती हैं और सखियों के साथ घर चली जाती हैं।

(क) कथावस्तु का आधार

'गोपालविलास' कृष्ण-भक्ति से परिपूर्ण एक महाकाव्य है। सम्पूर्ण ब्रजमण्डल इसका क्षेत्र है। कवि ने अपने महाकाव्य के लिये चिरपरिचित राधाकृष्ण की प्रणय कथा का चयन किया है। यह लोक विश्रुत कथानक के रूप में अनेक शताब्दियों से जन मानस में अमूल्य निधि की भाँति सुरक्षित रहा है। इस काव्य के द्वारा सरस्वती जी ने भी राधामाधव की उस जगद्विमोहिनी गाथा का गायन किया है जो एक विश्वव्यापी दार्शनिक संगीत के रूप में भक्त जनों का कण्ठहार बना हुआ है।

श्रीमद्भागवत महापुराण ही एक मात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसे कृष्ण भक्ति एवं कृष्ण के बाल्यकाल के जीवन-चरित्र पर एक सर्वोत्कृष्ट रचना कहा जा सकता है। कृष्ण में पूर्ण भगवत् तत्व की प्रतिष्ठा करने के लिये ही इसकी रचना की गई है। महर्षि व्यास गोपवेशधारी कृष्ण के रसिक शिरोमणि स्वरूप पर अधिक मुग्ध हैं। उन्होंने गोपियों के साथ कृष्ण की रासलीलाओं का एकान्त मनोयोग पूर्ण ध्यानावस्थित होकर अत्यन्त मनोहारी एवं प्रभावोत्पादक शैली में चित्रण किया है जो अन्यत्र पुराणों में कहीं भी प्राप्त नहीं है। इसलिये 'रासपञ्चाध्यायी' भागवत में भगवान की कौस्तुभमणि मानी जाती है। सरस्वती जी भी इस रासलीला पर अत्यन्त आसक्त हैं। इसी कारण से 'गोपालविलास' के द्वितीय और तृतीय सर्ग इसी रस से आप्लावित हैं। यह भागवती रास ही उनके कथानक का प्रधान अङ्ग है। रासलीला के आरम्भ में ही उन्होंने राधा माधव का प्रथम मिलन कराया है।

व्यास जी ने भागवत के माध्यम से सच्चिदानन्द घन पूर्ण पुरुष परमेश्वर के रूप में नन्दनन्दन कृष्ण को प्रस्थापित कर उन्हें सौन्दर्य माधुर्य औदार्य, सौजन्य शौर्य आदि दिव्य गुणों से विभूषित किया है और अपने कथानक का नायक बनाया है। उसी प्रकार गोपाल विलास में भी वही पुराण पुरुष भगवद्गुण गण श्रवण से द्रवित चित्त में अभिव्यक्त होने वाले निरूपम सुख संविद्रूप, दुःख की छाया से सर्वथा और सर्वदा अस्पृश्य, भक्ति रस के एक मात्र सर्वातिशायी माहात्म्य, प्रेम रस सागर समुद्भूत षोडश कलापूर्ण कृष्णचन्द्र ब्रजेशनन्दन के रूप में विराजमान हैं। वे ही इस कथा के सूत्रधार हैं और नायक भी है।

'गोपालविलास' के कर्ता ने अपने इस महाकाव्य की कथा के लिये अन्यान्य पुराणों एवं महाकाव्यों का पर्याप्त उपयोग किया है, किन्तु सर्वाधिक सामग्री भागवत महापुराण से ही ली है। भावों के साथ-साथ भाषा भी समान ही मिलती है। है। किन्तु ऐसे स्थल सम्पूर्ण काव्य में दो चार ही हैं।

गोपालविलास का कथानक श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध पूर्वार्ध से लिया गया है। इस कथानक में दशम स्कन्ध के प्रथम तैंतीस अध्यायों का सारांश दिया हुआ है।

गोपालविलास के प्रथम सर्ग में दशम स्कन्ध के एक से तेईसवें अध्याय तक की लगभग सभी कृष्ण लीलाओं का वर्णन किया गया है। यद्यपि यह भागवत की भाँति विस्तार पूर्वक नहीं है। कृष्ण जन्मोत्सव का वर्णन भी विस्तृत नहीं है किन्तु भावुकता पूर्ण हुआ है। इस महोत्सव के वर्णन में सरस्वती जी ने भागवत की अपेक्षा गर्ग संहिता के प्रति अपने रुचि अधिक प्रदर्शित की है। इसीलिये उन्होंने कृष्णजन्म का वर्णन करने के लिये गर्ग संहिता का भी आश्रय लिया है।

द्वितीय और तृतीय सर्ग में दशमस्कन्ध के उनतीसवें अध्याय से लेकर तेतीसवे अध्याय अर्थात्महारास पर्यन्त का समस्त कथानक समाविष्ट है। चौंतीसवें अध्याय में वर्णित "शंखचूड" में कवि ने कोई रुचि प्रदर्शित नहीं की है। पैंतीसवे अध्याय में "वृन्दावन" में गोपिका "युगल गान" का द्वितीय सर्ग के कुछ श्लोकों में वर्णन मिलता है। द्वितीय सर्ग में दशम स्कन्ध के उन्तीसवें अध्याय की कथा है। कवि ने अपने इस सर्ग की विषय वस्तु का नाम "भगवदाश्रय" दिया है। भागवतकार ने उन्तीसवें अध्याय की कथा को 'रासवर्णन' के नाम से अभिहित किया है। अध्याय तीस से तेंतीस तक का कथानक तृतीय सर्ग में दिया गया है और इसे "केशव रास केलि." कहा है।

चतुर्थ सर्ग की कथावस्तु को कवि ने अपनी भाषा में "तस्मिन् विह्वल राधिकाविकथनैः सर्गस्तुरीयोगतः"। इसमें राधा के विरह की मार्मिक झांकी प्रस्तुत की है। इस सर्ग की कथा कवि की अपनी मौलिक उद्भावनाओं पर ही आधारित है।

कथानक को क्रम बद्ध करने के लिये शृङ्गार रस पूर्ण काव्यों में नायक और नायिका की अत्यन्त विश्वसनीय और अन्तरंग सखी अथवा दूती की कल्पना संस्कृत साहित्य में कोई नवीन बात नहीं है। वह दो प्रेमियों को उनके पारस्परिक संदेशों का आदान-प्रदान कराके उन्हें प्रणय सूत्र में आबद्ध करती है। वह दोनों के गूढ़ रहस्यों से परिचित रहती है। गीति-काव्यों में दूती की कल्पना एवं उसकी गति विधियाँ प्राचीन काल से ही प्राप्त होती है। जयदेव के गीत गोविन्द में दूती ही अनेक स्थलों पर टूटे हुए कथानक को अग्रसर करती है। गोपाल विलास के कवि ने भी इस प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हुए दूती का उपयोग कथानक को अधिक रोचक बनाने और अक्षत रखने के लिये किया है। दूती वृन्दावन में सर्वत्र भ्रमण करती हुई विरहातुरा राधा का सदेश लेकर कृष्ण के समीप पहुँचती है। इस सर्ग में वर्णित राधा का विरह अनेक पुराणों में प्राप्त होता है। भागवत में तो राधा नाम का कोई पात्र ही नहीं है किन्तु भक्तों के लिये राधा भागवत में विद्यमान है। भक्ति साधकों की दृष्टि में राधा भागवत में उसी प्रकार अप्रकट रूप में है जिस प्रकार दूध में नवनीत रहता है। मधुर रस के साधकों ने भागवत में भी राधा को खोज निकाला है। इस श्लोक में उन्हें राधा की झांकी प्राप्त होती है।

[1]अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो तामनयत् रहः ॥

रास की समाप्ति पर एक प्रसङ्ग में कोई गोपी कहती है कि अवश्य ही सर्वशक्तिमान प्राण वल्लभ कृष्ण की यह अनन्य आराधिका रही होगी । इसीलिये उस पर प्रसन्न होकर वे उसे एकान्त में ले गये हैं और हमको यहीं छोड़ दिया है।

गोपालविलास के तृतीय सर्ग में रास के पश्चात् गोपाङ्गनायें कृष्ण के साथ एक गोपी को देखती है जिसे वे अन्य गोपियों से दूर एकान्त में ले जाते हैं। वह इतना अधिक मधुर मोहक गायन करती है जिसे सुनने के लिये इन्द्र शत शत नेत्रों की अपेक्षा शतशत श्रवण प्राप्त करने की कामना करते हैं जिनसे वह इस सुरपुर में अप्राप्त अभूतपूर्व संगीत की मधुर स्वरावली को सुन सके ।

[2]यामुन तीरे स्थल जल नलिनी सङ्गम लालसमलयसमीरे
यामिनि जाति प्रतिहत तमसि क्षीरपयोनिधि महसि बिहारे ।
कामपि तन्वीं मधुरिपु सहितां गीतमनोभव समुदय गीतां
वीक्ष्य सकामो दशशत नयनः कर्णमलिप्सत् नयन समानम् ॥

भागवत की गोपियों के विरह वर्णन में गोपाल विलास की राधा का विरह वर्णन अवश्य समानता रखता है । दशम स्कन्ध के तीसवें अध्याय में जब कृष्ण के लिये विरह व्यथित गोपाङ्गनायें अपनी उस सखी को कृष्ण के लिये असाधारण विलाप करते हुए दूर से देखती हैं जिसे कृष्ण अपने साथ एकान्त में ले गये थे। वे तत्काल उसके समीप पहुँचकर उसे सान्त्वना देती है और उसके सामने ही कृष्ण के इस निर्दयता पूर्वक व्यवहार के लिये उपालम्भ देती है। इन गोपबालाओं का विरह वर्णन निश्चित रूप से भागवत में अत्यन्त प्रभावशाली रूप में उपलब्ध होता है । उसी वर्णन के आधार पर गोपाल विलास के कवि ने अपनी नितान्त नवीन कल्पनाओं एवं हृदय द्रावक अपनी मौलिक उद्भावनाओं के साथ सजाकर राधा की गम्भीर विरहव्यथा को सजीव रूप में चित्रित किया है जो अति व्यापक एवं विस्तृत है।

इसके अतिरिक्त विरह विधुरा राधा की मनोव्यथा का वर्णन करते समय नैषध के चतुर्थ सर्ग में वर्णित दमयन्ती के विरह वर्णन का प्रभाव भी कवि के हृदय पर अवश्य रहा होगा ।

पञ्चम सर्ग में वृन्दावन का वर्णन किया गया है । दूती के भ्रमण करने के लिये कवि ने वृन्दावन को अपने हृदय की कोमलतम अनुभूतियों से विभूषित किया है। यद्यपि इस वृन्दावन वर्णन के सूत्र भी पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, गर्ग संहिता, भागवत आदि में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। किन्तु गोपाल विलास के

---

१. भागवत १०/३/२८।

१. गोपाल विलास ३/८८।

वृन्दावन का सौन्दर्य पुराणों से सर्वथा भिन्न है। इस विषय में गोपाल विलास पुराणों की परम्परागत वर्णन शैली से पूर्णतया मुक्त है। वह नैषध, शिशुपालवध आदि महाकाव्यों के अधिक निकट है। सरस्वती जी का वृन्दावन अपने अन्दर आवृद्ध बनिता सबके आमोद प्रमोद और आनन्द विनोद के लिये सामग्री संजोये हुए है। इस वृन्दावन में किसी के लिये प्रवेश निषिद्ध नहीं है। इसमें व्रजवासी प्रेमी युगल पुष्प चयन का आनन्द लेते हैं। महाकाव्य में पुष्प चयन का वर्णन करना कवियों की अपनी परम्परा रही है। इसीलिये सभी प्रसिद्ध काव्यों में इसके दर्शन होते हैं। सरस्वती जी के पुष्प चयन की तुलना शिशुपाल वध के पुष्प चयन से की जाती है। सरस्वती जी के वृन्दावन में भील शबर युवक युवतियाँ अपनी परम्परागत वेशभूषा में वृन्दावन में स्वच्छन्द विचरण करते हैं। यहाँ के पशु पक्षी अपनी नैसर्गिक शत्रुता भूलकर एक साथ प्रेम पूर्वक निवास करते हैं। आद्यन्त वृन्दावन में भ्रमण करती हुई दूती राधा का सन्देश लेकर माधव के दर्शनार्थ तीव्रगति से चल देती है।

षष्ठ सर्ग में दूती को कृष्ण के समीप पहुँचने में संध्या का झुट पुटा हो जाता है। अतः वह दूर से ही कृष्ण को देखकर उनकी रूप राशि के विषय में अनेक कल्पनायें करती है। तभी घोर अन्धकार से दिशायें भर जाती हैं। वहाँ अन्धकार के अनेक आलङ्कारिक सजीव चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। यद्यपि ये कवियों की परम्परागत मान्यताओं के आधार पर ही अधिक हैं, फिर भी कवि की मौलिकता के दर्शन भी अवश्य होते हैं। रात्रि को कवि ने अपने वर्णन कौशल से वणिक् स्त्री के रूप में अथवा चन्द्रतल्प पर शयन करती हुई कमनीय कामिनी के रूप में चित्रित किया है। चन्द्रोदय वर्णन निश्चित रूप से अत्यन्त आह्लादक एवं मनोन्मादक है। पूर्णेन्दु बिम्ब को रजत चषक समझकर वृन्दावन वासी युवक युवतियाँ पान गोष्ठियों के आयोजनों में व्यस्त दिखाई देते हैं। रात्रि के अनेक रूप चन्द्रमा के अनेक चित्र अन्धकार का यथातथ्य स्वरूप सजाकर सरस्वती जी ने अपने रचना-कौशल का तो परिचय दिया ही है। साथ ही कथानक को रोचकता भी प्रदान की है। महाकाव्यीय परम्परा का पालन करने के लिये भी इस प्रकार के विषयों का कलापूर्ण प्रस्तुतीकरण महाकाव्यकार के लिये आवश्यक हो जाता है। इसीलिये पानगोष्ठियों आदि के ये वर्णन पूर्व कालीन महाकाव्यों का थोड़ा बहुत आधार अवश्य लिये हुए मिलते हैं।

सप्तम सर्ग के कथानक का आधार सरस्वती जी का अद्वैतवाद है। जीव और ब्रह्म, आत्मा और परमात्मा, प्रकृति और पुरुष की भाँति राधा और कृष्ण भी दो नहीं है अपितु एक ही परम तत्व दो रूपों में आभासित होता है। कृष्ण ही राधा है और राधा ही कृष्ण है। अपने इस अद्वैत सिद्धान्त को चरितार्थ करने के लिये ही उन्होंने राधा के बिना कृष्ण के हृदय की दयनीय स्थिति का अत्यन्त मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत किया है। पाठक का हृदय कृष्ण को राधा के

विरह में अत्यन्त व्यथित देखकर द्रवित हो उठता है। अपनी प्रेयसी के वियोग में विदग्ध माधव के हृदय का जैसा करुण क्रन्दन गोपाल विलास में मिलता है ऐसा सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में दर्शनों के लिये भी प्राप्त नहीं है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण राधा कृष्ण में द्वैत भावना रखने वाले साधकों को घोर नरकगामी होने का शाप देती है। सरस्वती जी का यह अद्वैतवाद उपनिषदों का तो प्राण है ही पुराणों ने भी इसका पूर्ण समर्थन किया है। ब्रह्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, आदि ने राधा माधव को एक ही तत्व स्वीकार किया है। इसी दार्शनिक एवं पौराणिक आधार पर सरस्वती जी ने सप्तम सर्ग के कथानक को खड़ा किया है।

अष्टम सर्ग के कथानक को कवि विरहाग्नि से दग्ध अत्यन्त शिथिल एवं श्री विहिन राधा की दयनीय दशा से आरम्भ करता है। इसके लिये कवि ने नैषध की दमयन्ती को आधार बनाया है। अपनी सखियों की अनुपस्थिति में राधा दमयन्ती की भाँति अपने प्रियतम से वियुक्त बनी हुई अनेक प्रकार से करुण विलाप करती है। दमयन्ती की सखियों की भाँति ही राधा की सखियाँ भी उसके प्रियतम कृष्ण के प्रति उसे आश्वस्त करती हैं। दमयन्ती की ही भाँति राधा भी मन्दिर में जाकर शङ्कर भगवान से अपने प्रियतम कृष्ण का सम्पूर्ण प्रेम प्राप्त करने का वरदान माँगती है।

नवम सर्ग में दूतिका सखियों सहित राधा को लेकर कृष्ण मिलन के लिये चल देती है। इस प्रकार के वर्णन अनेक गीति काव्यों में मिलते हैं किन्तु गोपाल विलास एक महाकाव्य है अतः कवि ने राधा कृष्ण के मिलनोपक्रम को महाकाव्य के उपयुक्त धरातल पर आसीन करने के लिये अपनी मौलिक भावनाओं द्वारा भव्य रूप प्रदान किया है।

दशम सर्ग में राधा माधव का मिलन होता है। कवि ने इसी सर्ग में राधा माधव का मिलन कराकर इस महाकाव्य में वर्णित भक्ति को रस सिद्ध करने का एक अद्वितीय आयोजन किया है। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार का प्रयास अन्य किसी महाकाव्य मे प्राप्त नहीं है।

(ख) मौलिकता, परिवर्तन और परिवर्धन

यह पूर्व ही कहा जा चुका है कि इस महाकाव्य का कथानक भागवत पुराण से लिया गया है। जिस कथानक को सरस्वती जी ने चुना है वह संक्षिप्त होते हुए भी अत्यन्त व्यापक है। इसीलिये कवि की अपनी मौलिक कल्पनाओं से समृद्ध बना हुआ यह छोटा सा कथानक ग्यारह सर्गों के इस विशालकाय काव्य को अपनी परिधि में समाहित किये हुए है। सरस्वती जी ने अपने काव्य के लिये इस कथा वस्तु का चयन भक्ति रस को एक स्वतन्त्र पुरुषार्थ सिद्ध करने के लिये किया है।

अत: उन्होंने भागवत से लिये गये इस कथानक का अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिये अपनी इच्छानुसार उपयोग किया है। यही कारण है कि जिससे उन्हें इस कथा में पर्याप्त परिवर्तन एवं परिवर्धन करना पड़ा है।

रस सिद्धि करने वाले प्रत्येक महाकाव्य के लिये नायक के साथ-साथ नायिका का प्रस्तुतीकरण भी नितान्त अनिवार्य है। इसके बिना रस सिद्धि असम्भव है। यही कारण है जिससे सरस्वती जी ने राधा को इस महाकाव्य की प्रधान नायिका के पद पर समासीन किया है। गोपालविलास का आरम्भ ही उन्होंने राधा के नामोल्लेख से ही किया है। रस सिद्धि के लिये राधा को अपने काव्य की नायिका बनाने के कारण ही उन्हें भागवत से ली गई इस कथा को तृतीय सर्ग के पश्चात् पूर्णतया परिवर्तित करना पड़ा है।

वस्तुत: दशम स्कन्ध के तैंतीसवे अध्याय तक की कथा तृतीय सर्ग में ही समाप्त कर दी गई है। चतुर्थ सर्ग से अन्त तक का समस्त कथानक कवि की मौलिक भावनाओं के आधार पर ही स्थित है।

भागवत दशम स्कन्ध के प्रथम तेईस अध्यायों की कथा को कवि ने प्रथम सर्ग में ही समाप्त कर दिया है। अध्याय चौबीस और पच्चीस की इन्द्र मख भंग और गोवर्धन धारण की कथा का वर्णन यज्ञ पत्नियों पर अनुग्रह से पूर्व ही केवल एक श्लोक में ही पूर्ण कर दिया है। जबकि भागवत में यह वर्णन यज्ञ पत्नियों पर अनुग्रह के पश्चात् हुआ है और विस्तार सहित किया गया है। अध्याय छब्बीस से अट्ठाइस तक की घटनाओं में कवि ने कोई रुचि नहीं ली है। कृष्ण जन्म का वर्णन भी भागवत में सम्पूर्ण चार अध्यायों और आधे पंचम अध्याय में विस्तार सहित हुआ है। इसे गोपाल विलास में कुछ श्लोकों में ही सीमित कर दिया है। वस्तुत: कवि गोपाल की माधुर्य्य लीलाओं के रसास्वादन के लिये इतने आतुर बने हुए हैं कि उन्होने कृष्ण की गोवर्धन-धारण तक की समस्त ऐश्वर्य लीलाओं का वर्णन एक ही सर्ग में समाप्त कर दिया है। पूतना बध की घटना का कोई उल्लेख कवि ने नहीं किया है। सम्भव है इस प्रकार के भयानक और उद्वेग कारक वर्णन को उन्होंने भक्ति रस के अनुपयुक्त समझकर छोड़ दिया हो। यद्यपि भक्त लोग इस घटना की गणना भी भगवान कृष्ण की अन्य मधुर लीलाओं में ही करते हैं। कवि द्वारा इस प्रकार के परिवर्तन गोपाल विलास के कथानक को सरल, व्यवस्थित एवं गतिशील बनाने के लिये और उसें पौराणिक प्रभाव से मुक्त करने के लिये ही किये गये प्रतीत होते हैं।

द्वितीय सर्ग की कथा भागवत के दशम स्कन्ध अध्याय उन्तीस से ली गई है। जिसे भागवत कार ने 'रासक्रीडा' नाम दिया है। किन्तु सरस्वती जी इस सर्ग की कथा को "भगवदाश्रय" के नाम से पुकारते हैं "तत्रान्तर्हि कथाश्रयो भगवतस्सर्गोद्वितीयोऽत्यगात्"। क्योंकि रास भक्ति रस की चरम परिणति है। इसका

आनन्द प्राप्त करने के लिये भक्त को सर्वप्रथम भगवदाश्रय प्राप्त करना होगा। पूर्णतया भगवान का आश्रय स्वीकार किये विना उस "रसो वै सः" के अलौकिक रस की सम्प्राप्ति असम्भव है। भगवदाश्रय प्राप्त करने के पश्चात् ही भक्त रास के उस दिव्य रस का आस्वादन करने की पात्रता प्राप्त कर लेता है। इसीलिये गोपियाँ भगवान का आश्रय प्राप्त करने के लिये केलि कानन में कृष्ण की शरण में पहुँचती हैं। इस समय सम्पूर्ण बन प्रान्त अन्धकार में लीन रहता है। किन्तु राधा जैसे ही रास भूमि में पदार्पण करती हैं तभी पूर्ण चन्द्रमा का उदय होता है और सम्पूर्ण केलि कानन चन्द्र ज्योत्स्ना से चमत्कृत हो जाता है। भागवत में ऐसा नहीं है। वहाँ वृन्दावन में गोप रमणियों को 'गोपाल विलास' की भाँति कालकूटान्धकार में भटकना नहीं पड़ता। वहाँ तो गोपियों के आने से पूर्व ही सम्पूर्ण वृन्दावन पूर्णचन्द्र की किरणों से स्नान किये हुए रजत धाम जैसा बना प्रतीत होता है। यह परिवर्तन सम्भवतः सरस्वती जी ने राधा के अलौकिक महत्व को प्रदर्शित करने के लिये ही किया है। क्योंकि वे पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर नन्दनन्दन की योगमाया है। उस अनादि ब्रह्म की अनादि सहचरी हैं। यही कारण है जिससे द्वितीय सर्ग की कथा में जहाँ गोपियों का प्रेम गिरि निर्झर की भाँति प्रबल वेग के साथ मुखरित हुआ है वहाँ कवि ने राधा के प्रेम की अत्यन्त गहन एवं गम्भीर झाँकी उपस्थित की है। इस सर्ग का कथानक भागवत के उन्तीसवें अध्याय की भाँति ही कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने के साथ-साथ ही समाप्त हो जाता है।

भागवत के दशम स्कन्ध, अध्याय तीस से तैंतीसवे अध्याय तक के कथानक का गुम्फन गोपाल विलास के तृतीय सर्ग में किया गया है। इसमें कृष्णान्वेषण से लेकर महारास तक की कथा का वर्णन है। गोपाल विलास में कवि तृतीय सर्ग का आरम्भ भागवत के तीसवें अध्याय की भाँति ही करते हैं। किन्तु तीसवें अध्याय के कृष्णान्वेषण, इकत्तीसवें अध्याथ के 'गोपी गीतम्' और बत्तीसवें अध्याय के "गोपी सान्त्वनम् ' की कथा को तृतीय सर्ग के प्रथम अट्ठाईस श्लोकों में ही पूर्ण कर देते हैं। सरस्वती जी की गोपिगाँ भी भागवत की ही भाँति कृष्णान्वेषण करती हैं किन्तु वह बहुत दूर तक नहीं चलता। केवल ग्यारह श्लोकों में ही पूर्ण हो जाता है। इकत्तीसवें अध्याय के गोपी गीत को जो विरहाकुल गोपियों का करुण विलाप है उसे सरस्वती जी ने मिलन का संगीत बनाकर रास के अन्तर्गत इसी सर्ग में समाविष्ट कर दिया है। बत्तीसवें अध्याय की "गोपीसान्त्वनम्" की कथा भी कृष्णान्वेषण के तत्काल पश्चात् प्रारम्भ होकर कुछ श्लोकों में ही समाप्त हो जाती है। इसके पश्चात् गोपाल विलास में तृतीय सर्ग के उन्तीसवें श्लोक से लेकर सर्ग के अन्त तक की कथा भागवत के पैंतीसवें अध्याय के वर्णन के आधार पर ही विकसित की गई है।

यह समस्त परिवर्तन सरस्वती जी ने कथा प्रवाह को गतिशील बनाने के

लिये ही किया है। इकत्तीस अध्याय का 'गोपी गीतम्' जिसे वास्तव में महाकाव्योपयुक्त वर्णन नहीं कहा जा सकता, हां ! वह पुराण का विषय अवश्य बन सकता है। इसी प्रकार 'गोपी सान्त्वनं' में भी भागवत द्वारा गोपियों को दिये गये उपदेश को सरस्वती जी ने महाकाव्य के अनुपयुक्त समझकर छोड़ दिया है।

भागवत की रास पञ्चाध्यायी में कृष्ण अपने भगवत् तत्व का अपने श्रीमुख से ही अनेक बार वर्णन करते हुए मिलते हैं किन्तु गोपाल विलास में एक बार भी ऐसा नहीं हुआ है।

चतुर्थ सर्ग से प्रारम्भ होने वाला कथानक सरस्वती जी की मौलिक सृष्टि के अन्तर्गत आता है।

द्वितीय और तृतीय सर्ग में राधा और कृष्ण में पूर्वराग की सृष्टि करने के पश्चात् चतुर्थ सर्ग में राधा के विरह का हृदयग्राही वर्णन किया गया है। भक्ति रस की सिद्धि के लिये ही राधा के विरह वर्णन को कवि ने महाकाव्यीय शैली में प्रभावशाली रूप प्रदान किया है। वह विरह कथा अत्यन्त चित्तोद्रावक है। हृदय को द्रवित करना ही सरस्वती जी की इस काव्य साधना का लक्ष्य है। यद्यपि राधा के इस विरह वर्णन पर भागवत में चित्रित गोपियों के विरह वर्णन की छाया स्पष्ट दृष्टिगत होती है। फिर भी इस सर्ग की कथा कवि की अपनी मौलिक कल्पना है। विरह की दशों दशाओं का वर्णन कवि के कौशल का परिचायक है। सरस्वती जी ने रसायन में इस दशमी भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना है, अतः उसकी सिद्धि उन्होंने राधा के विरह वर्णन के माध्यम से ही इसी चतुर्थ सर्ग में की है—

[1]होता विधाता मम रोमराजी
कुशा वसन्तो यजमानराजः।
धर्मस्त्वया दुःसह विप्रयोगः
फलं मदीया दशमी दशैव ॥

सम्पूर्ण पञ्चम सर्ग में कवि ने नन्दनन्दन की क्रीडा भूमि वृन्दावन का वर्णन किया है। श्रोताओं को आनन्द प्रदान करने के लिये महाकाव्य में वन शैलादि का वर्णन अनिवार्य है, अतः सरस्वती जी ने इसका वृहदायोजन किया है—

[2]अर्थवादाधिकरणे वन शैलादि वर्णनम्।
श्रोतृणां सुखमात्रार्थमिति भट्टै रुदाहृतम् ॥

इसके अतिरिक्त सरस्वती जी ने दूती की कल्पना की है जो विरहातुरा राधा का सन्देश लेकर कृष्ण के समीप आती है। अतः उसके भ्रमण के लिये तथा अपनी कथा को विकसित और परिवर्धित करने के लिये वृन्दावन का विस्तृत वर्णन आवश्यक हो जाता है। इस वृन्दावन में निवास करने वाले पशु पक्षी सब गोपाल

---

१. गोपाल विलास ४/२८। २. भक्ति रसायन ३/२५।

की रूप माधुरी एवं प्रेममाधुरी का निरन्तर पान करते हुए अपनी सहज स्वाभाविक शत्रुता को भूलकर गोपाल की गोलोक पुरी में आनन्द के साथ वास करते हैं। यहाँ के तृण वीरुध तरुलतायें भी गोपाल की कृपा से ही सतत आनन्दोल्लास के साथ लहलहाते रहते हैं।

सरस्वती जी ने रसायन में वैकुण्ठ और द्वारिका की अपेक्षा वृन्दावन की भक्ति को तीव्रतीव्रा कहा है। इसलिये उन्होंने उस भक्ति का प्रदर्शन करने के लिये उसके उपयुक्त ही वृन्दावन को अत्यन्त सौन्दर्य शाली बनाया है और गहन तन्मयता के साथ उसका वर्णन किया है। इसी कारण भागवत की यह कथा गोपाल विलास में पर्याप्त परिवर्तित रूप में मिलती है। अपने पञ्चम सर्ग की कथा को सरस्वती जी ने 'कानन वर्णन' ही नाम दिया है। "तस्मिन्कानन वर्णनेन वलितस्सर्गोऽत्यगात्-पञ्चमः" इस सर्ग में अस्ताचलगामी सूर्य का, रात्रि और चन्द्रोदय का तथा रजत चषक की भाँति दिखने वाले चन्द्र की ज्योत्स्ना में गोप युवक युवतियों की पान गोष्ठियों आदि का वर्णन करके कवि ने महाकाव्य के पञ्चम सर्ग की इस कथा को पौराणिक वर्णन से भिन्न रचकर इसे अधिक रोचक बनाने का अवसर प्राप्त कर लिया है।

सम्पूर्ण वृन्दावन में भ्रमण करती हुई तथा प्रकृति के विविध दृश्यों का अवलोकन करती हुई दूतिका अन्त में कृष्ण के समीप पहुँचती है। तभी प्रदोश काल हो जाता है। छटे सर्ग का आरम्भ यहीं से होता है। सन्ध्या के झुटपुटे में मुकुन्द दूतिका दूर से ही कृष्ण के अलौकिक रूप लावण्य का दर्शन कर उस औपनिषदिक पुरुष के विषय में विविध प्रकार की कल्पनायें करती है और उनके अङ्गप्रत्यङ्गों में प्रकृति के विविध उपमानों के दर्शन करती है। अन्त में वह कृष्ण के चरणों में उपस्थित होकर विरह ज्वर से दग्ध राधा की दयनीय दशा का वर्णन करती है। दूती द्वारा राधा की दुःसह विरह व्याधि को सुनकर कृष्ण का शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। कृष्ण इतने भावविभोर हो जाते हैं कि उनका रोम-रोम राधा के लिये तड़पने लगता है। दूतिका को यही करना था। अतः वह अपने इस कार्य का सम्पादन करके कृष्ण से नमस्कार करती है और उनके पास से उठकर चल देती है। फिर वह कृष्ण के ध्यान में मग्न बनी हुई राधा के समीप पहुँच जाती है। इस सर्ग की कथा का नाम कवि ने "मुकुन्द दूत वचन" दिया है। यह सरस्वती जी की अपनी मौलिक सृष्टि है। भागवत में यह वृत्त नहीं मिलता अतः वहाँ यह सब कुछ नहीं है।

सप्तम सर्ग का कथानक "ब्रह्मवैवर्तपुराण" में कृष्ण द्वारा की गई राधा की स्तुति का ही परिवर्धित रूप है। इस सर्ग में राधा से वियुक्त कृष्ण की विरहावस्था के अनेक असाधारण चित्र है। कृष्ण की यह विरह व्यथा की कथा संस्कृत साहित्य

में अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। सरस्वती जी चतुर्थ सर्ग में राधा को कृष्ण से और सप्तम सर्ग में कृष्ण से राधा को वियुक्त करके दोनों को एक दूसरे से मिलने के लिये व्याकुल बनाते हैं। इससे वे यह बताना चाहते हैं कि राधा और कृष्ण दो नहीं अपितु एक ही हैं। अखण्ड ब्रह्माण्डाधिपति अपनी मूल प्रकृति रूप राधा से शक्ति प्राप्त करके शक्तिमान बने हुए द्वैत रूप में आभासित होते हैं। जिस प्रकार शक्ति के बिना शक्तिमान का कोई अस्तित्व नहीं होता उसी प्रकार राधा के बिना कृष्ण की कोई सत्ता नहीं। सप्तम सर्ग की इस कथा को कवि ने "मुकुन्द मुग्ध गदितः" नाम दिया है। "तत्राख्यात मुकुन्द मुग्ध गदितः सर्गोत्यगात्सप्तमः"। भागवत की कथा में न राधा है और न राधा की सखी है और ना ही इस प्रकार का वार्तालाप है। अतः इस सर्ग की कथा का भी कवि की अपनी ही मानसिक सृष्टि के आधार पर विकास हुआ है।

अष्टम नवम तथा दशम सर्ग कवि की अपनी स्वतन्त्र सृष्टि हैं। इन तीनों सर्गों की रचना पौराणिक परम्परा पर न होकर महाकाव्यीय शैली में ही की गई है। ये तीनों सर्ग कवि की अपनी मौलिक उद्भावनाओं पर ही आधारित है। भागवत में इस प्रकार का कोई वर्णन प्राप्त नहीं है।

एकादश सर्ग में सखियों सहित राधा और कृष्ण रात्रि में हुई अपनी रति क्रीड़ाओं के प्रसङ्ग में मनोविनोद करते हैं। प्रातःकाल का वर्णन करते हुए कवि ने श्लेष का खुल कर प्रयोग किया है। प्रातः काल के अनेक दृश्य कवि की मौलिकता के साक्षी हैं। प्राचीन कवियों की परिपाटी पर कवि अपनी रचना की प्रशंसा करते हुए सज्जनों की अभ्यर्थना तथा दुर्जनों की दुष्टता का बखान करते हैं। यह सब कुछ कवि का अपना ही है। इस सर्ग में कहीं से कुछ भी नहीं लिया गया है तथा यह पूर्णतया मौलिक है।

(ग) पूर्ववर्ती काव्यों का प्रभाव

प्रत्येक कवि अपनी रचना आरम्भ करने से पूर्व अपने पूर्वज साहित्यकारों की रचनाओं से प्रेरणा प्राप्त करता है और उसी के आधार पर अपनी रचना प्रस्तुत करके भविष्य के लिये नई मान्यताओं की स्थापना करता है। यदि वह महाकाव्य जैसी प्रौढ़ पद्धति को अपनाना चाहता है तब उसे प्राचीन तथा अर्वाचीन लक्षण ग्रन्थों एवं ख्याति प्राप्त महाकाव्यों का भी अध्ययन करना होता है। निश्चित रूप से वह उनसे प्रेरणा लेकर ही अपने महाकाव्य की रूप रेखा का निर्माण करता है। अपने काव्य का विषय एवं कथानक निश्चित करने के पश्चात् पात्रों का चयन एवं उनके कार्य क्षेत्र का निर्धारण करता है और अन्त में विभाव अनुभाव और सञ्चारी भावों का संयोजन करके अभीष्ट रस की सिद्धि करता है। गोपाल विलास की रचना करते समय यही सब सरस्वती जी ने भी किया है।

इस समस्त प्रक्रिया की पूर्ति के लिये उन्होंने भी अनेक प्रसिद्ध महाकाव्यों एवं उच्चकोटि के लक्षण ग्रन्थों का अवलोकन किया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इन की भक्ति रस सम्बन्धी समस्त रचनाओं से मिलता है। काव्य प्रकाश की एक पंक्ति उनकी भक्ति रसायन में लगभग उसी रूप में मिलती है। साहित्य दर्पण का एक संसृष्टि शंकर अलङ्कार का उदाहरण गोपाल विलास में अपने भाषा एवं भाव साम्य के साथ मिलता है।

[1]देवः पायादपायान्नः स्मेरेन्दीवरलोचनः।
संसार ध्वान्त विध्वंस हंसः कंस निसूदनः।।
[2]राधा भृंगार सरसी मरालः कमलालयः।
पाटलाक्षि पदः पायादपायात्कोऽपिगोकुलम्।।

इसी प्रकार गीत गोविन्द, नैषध, माघ, किरात, अभिज्ञानशाकुन्तल, भागवत, पद्म-ब्रह्मवैवर्त-अग्नि पुराण एवं ब्रह्मसंहिता, गर्गसंहिता आदि का प्रभाव उनके इस महाकाव्य के कला पक्ष एवं भावपक्ष दोनों पर अवश्य परिलक्षित होता है। सरस्वती जी ने अपने इस महाकाव्य की रूप रेखा प्रसिद्ध आलङ्कारिक आचार्य विश्वनाथ द्वारा रचित साहित्य-दर्पण के आधार पर निश्चित की है। आचार्य ने महाकाव्य के लिये जिन उपकरणों को अनिवार्य रूप से मान्य स्वीकार किया है, उन सब का समायोजन सरस्वती जी द्वारा अपने इस महाकाव्य में किया गया है। "गोपाल विलास में प्रयुक्त काव्य विधा" नामक शीर्षक के अन्तर्गत इसका विवरण इसी निबन्ध में विस्तार सहित किया गया है।

गोपाल विलास के पूर्ववर्ती काव्यों ने इसके कला पक्ष को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया और इसके भाव पक्ष को भी स्पर्श किया है।

नैषधकार का अनुकरण करते हुए सरस्वती जी ने अपने इस महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर एक प्रथक श्लोक द्वारा अपना तथा अपने गुरु का परिचय देते हुए अपने काव्य का नाम उसका प्रयोजन एवं सर्गस्थ विषय वस्तु का निर्देश "शार्दूल विक्रीडित छन्द के माध्यम से ही किया है। इसी छन्द का प्रयोग नैषधकार ने भी किया है—

श्री हर्षं कविराजराजि मुकुटालङ्कार हीरः सुतं।
श्री हीरः सुषुवे जितेन्द्रियचय मामल्लदेवी च यम्।

---

१. साहित्य दर्पण पृ० ६२२।
२. गोपालविलास १/१।

'तच्चिन्तामणि मन्त्र चिन्तन फले शृङ्गार भङ्ग्यामहा- ।
काव्ये चारुणि नैषधीय चरितेसर्गोऽयमादिर्गतः ॥

सरस्वती जी सन्यास ग्रहण के साथ ही सांसारिक माता पिता का परित्याग कर चुके थे। अतः उन्होंने अपने आध्यात्मिक पिता तपने गुरु श्रीमाधव सरस्वती के चरणों की वन्दना श्लिष्ट भाषा में की है।

'श्रीभत्कृष्ण सरस्वती गुरु पद द्वन्द्वाम्बुजानन्दिना ।
धीर श्री मधुसूदनेनयतिनानन्दात्मज प्रीतये ।
यद्गोपालविलास संज्ञितमिदंकाव्यं कृतं कौतुकात् ।
तस्मिन् माधव बालकेलिकथकः सर्गोऽयमादिर्गतः ।।

दोनों स्थानों पर छन्द साम्य के साथ-साथ भाषा और भाव साम्य भी दर्शनीय है।

'माघ' और 'भारवि' दोनों ही महाकवियों ने अपने महाकाव्यों में अनेक स्थानों पर अनेक चित्र काव्यों का विचित्र प्रयोग किया है। दोनों ने ही गोमूत्रिका खङ्ग बन्ध मुरजबन्ध सर्वतोभद्र षडार चक्र बन्धगत प्रत्यागत आदि अनेक प्रकार के चित्र काव्यों का पाण्डित्य पूर्ण प्रदर्शन किया है। शिशुपालबध और किरातार्जुनीय में इसका प्रयोग अपने प्रचण्ड ज्ञान का परिचय देने के लिये ही हुआ है। सरस्वती जी ने भी गोपाल विलास में सर्वतोभद्र मुरजबन्धषडारचक्रबन्ध गतप्रत्यागत आदि से अपने काव्य की कथा को गुह्य गम्भीर और गोपनीय बनाने का प्रयत्न किया है। किन्तु सरस्वती जी ने इस विचित्र काव्य शैली का प्रयोग उस स्थान पर ही किया है जहाँ इसका प्रयोग करना अत्यावश्यक है। गोपाल विलास कोई साधारण, सस्ती शृङ्गारिक रचना नहीं है अपितु यह सरस्वती जी का ब्रह्म चिन्तन है। अतः उन्होंने इस अद्भुत शैली का प्रयोग उस समय किया है जब दूतिका रजनी का राकेश से प्रथम मिलन कराने वाली संध्या की भांति राधा माधव का प्रथम मिलन कराती हुई उन दोनों से कहती है—

'राधा कानन काधारा धाम साध्व ध्वसामधा ।
का सा ताजि जिता सा का नध्व जिध्र ध्वन सर्वतोभद्रः ।

दूतिका राधा माधव का संयोजन कराती हुई दोनों से क्या कहती है? इसे सरस्वती जी ने रहस्यमय ही रहने दिया है। इसे सर्व साधारण का विषय न बनाकर परमात्म चिन्तकों और चित्त द्रुति प्राप्त भक्तों के लिये ही सुरक्षित रक्खा है।

निःसन्देह चित्र काव्य, की एक विचित्र विधा है जो प्राचीन काल से ही प्रचलित है। कविगण अपने काव्य को गुह्य एवं गोप्य बनाने के लिये इस प्रकार के

---

१. नैषध १/१४५ २. गोपालविलास १/८१।
३. वही २/३५।

विविध बन्धों का चित्रण करते थे जिससे अवांछित और अयोग्य व्यक्ति उनके काव्य रस का आस्वादन न कर सके।

किन्तु इन लौकिक महाकाव्यों में केवल मनोरंजन की ही सामग्री मिल सकती है। चित्त को पूर्ण द्रवित करके अखण्ड आनन्द की उपलब्धि के लिये उनमें कुछ नहीं है। अतः परमभक्त सरस्वती जी जैसे परिव्राजकाचार्य की यह रचना शृङ्गार के माध्यम से अध्यात्म की संदेश वाहिका बनी हुई 'रसो वैसः' की सिद्धि करती है। अतः इस विषय के गूढ़ एवं गोप्य होने में कोई सन्देह ही नहीं है।

इसी प्रकार की एक अन्य शैली का प्रयोग सरस्वती जी ने उस समय किया है जब राधा अपने रूप लावण्य का सम्पूर्ण शृङ्गार किये हुए सर्वप्रथम गोपाल के सम्मुख उपस्थित होती हैं। नन्दनन्दन गोपाल उस लीलामृत की मदिरा को नेत्रों से पीकर अनंग के रङ्ग में सिक्ताङ्ग होकर किसी भी प्रकार की शङ्का को पूर्णतया मन से निकाल देते हैं। शङ्का क्या है? इसका क्या परिणाम होता है? इन सब प्रश्नों का उत्तर कवि ने इस पद में दिया है, जिससे यह अत्यन्त गूढ़ बन गया है और साधारण जन की पहुँच से परे हो गया है।

[1]राधयोपनता रामा शांकातो धन कान्तता।
तान्त कानध कान्ताशा मारातान पयोधरा॥

इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि सरस्वती जी ने काव्य की इस विचित्र शैली का प्रयोग विशेष लक्ष्य की सिद्धि के लिये ही किया है।

सम्भव है महाकवि माघ से उन्हें यह प्रेरणा मिली हो। माघ ने भी सर्वतो भद्र का प्रयोग किया है—

[2]सकारना नारकास कायसाद दसायका।
रसाहवा न्याह सारनाद वाद दवा दना॥

महाकवि भारवि ने भी अपने 'किरातार्जुनीय' में इस शैली का प्रयोग किया है।

माघने षडारचक्रबन्ध का प्रयोग किया है।

[3]सत्वं मान विशिष्टमाजिरभसादालब्ध्य भव्यः पुरो।
लब्धाघक्षय शुद्धिरुद्धुर तर श्रीवत्स भूमिर्मुदा॥
मुक्त्वा काममपास्तभीः पर मृग व्याधः सनादं हरे।
रेकौघे समकालमभ्रमुदयोरापैस्तदाऽऽतस्तरे॥

सरस्वती जी ने भी षडारचक्रबन्ध का प्रयोग किया है जिसमें ग्रन्थकार का

---

१. गोपालविलास २/४२।
२. माघ १६।२७।
३. वही १६/१२०।

नाम भी है। इस श्लोक के विषय में पाण्डुलिपि में यह लिखा मिलता है—"ग्रन्थ कवि नामाङ्कित षडारचक्रबन्धः वह श्लोक निम्न प्रकार से है—

[1]सद्भावाय न तत्र गोपमहविश्वस्तस्वधुर्यम्बुदेक्षिप्त्वा।
अम्येति सलोक पालमतुली वैयात्य सूश्चातकः।
बद्धो धर्मरयेण लग्नमनसं तं स्वीकृदन्वीक्षते।
तेनासौ समुपेक्षितो भवति चेदेतेनक सेव्यते॥

इसी प्रकार माघ ने मुरजबन्ध का प्रयोग किया है जो निम्न प्रकार है—

[2]सा सेना गमनारम्भे रसना सीदना रता।
तारना दज ना मत्त धीरना गमना मया॥

सरस्वती जी भी मुरजबन्ध का प्रयोग निम्न श्लोक में करते हैं।

[3]स्मरणाच्चरणारक्ता चरणाभरणा खा।
वारणारमणा रम्रा धारणाच्चरणारतम्॥

अनेक श्लोकों का वह समूह जो एक ही क्रिया द्वारा सम्पूर्ण अर्थ को अभिव्यक्त करता है। युग्म, कुलक, कलापक आदि नामों से अभिहित होता है। पाँच से पन्द्रह तक के श्लोकों वाला कुलक कहा जाता है। इस प्रकार की शैली को दोनों ही महाकवियों ने अपने काव्यों में प्रचुरता से अपनाया है। सम्भवतः उन्हीं से प्रभावित होकर सरस्वती जी ने भी अपने गोपालविलास में अनेक स्थानों पर युग्म, कुलक और कलापकों का प्रयोग किया है।

सरस्वती जी नैषध के कलापक्ष से ही प्रभावित नहीं हैं अपितु उसके भाव पक्ष ने भी उनको अपनी ओर आकृष्ट किया है। सरस्वती जी नैषध की विरहातुरा दमयन्ती से प्रभावित हुए हैं क्योंकि उनका चित्त जितना विरह वर्णन में रमता है उतना मिलन में नहीं। अतः उन्होंने नैषध की भांति ही गोपालविलास के चतुर्थ सर्ग में राधा का विरह वर्णन प्रस्तुत किया है। छन्द भी दोनों स्थानों पर एक ही प्रयुक्त हुआ है। नैषधकार विरह विधुरा दमयन्ती का चित्रण निम्नप्रकार से करते हैं—

"[4]वदन गर्भ गतं न निजेच्छया शशिनमुज्झतिराहुरसंशयम्।

अर्थात् दमयन्ती के मुख में निवास करने वाला और अभिशप्त रस वाला राहू उसे अपनी इच्छा से ही नहीं छोड़ रहा है।

गोपालविलास की विरहिणी राधा के मुख चन्द्र की छवी को भी राहु ने ग्रस लिया है—

---

१. गोपालविलास २/५०।
२. माघ १९/२९। ३ गोपालविलास २/३८।
४. नैषध ४/६५।

[1]"मुख रुचामिहिका कलुषी कृतं विरह राहुहतं हिमदीधितिम्"

दमयन्ती विरह ज्वर के तीव्र दाह से दग्ध हो रही है सखियाँ उसको स्वस्थ बनाने के उपयों में संलग्न हैं। वे अनेक प्रकार के उपचार करती हैं। कोई उसके मुख में जल डालती है कोई उसके स्तनों पर कमलदल रख रही है, कोई पंखा झल रही है, कोई उसके उरोजों पर हिम रख कर उन्हें शीतल बनाना चाहती है—

[2]न्यधित कापि मुखे सलिलं सखी।
व्यधित कापि सरोजदलैः स्तनौ।
न्यधित कापि हृदि व्यजनानिलम्।
न्यधित कापि हिम सुतनो स्तनौ॥

विरह की इसी तीव्र ज्वाला में जलती हुई राधा को भी उसकी सखियाँ अनेक प्रकार से शीतलता प्रदान करने का अथक प्रयास कर रही हैं।

[3]धृत पटीर पय सद्रुसीरिका कमलिनी व्यजनानिल वीजिताम्।
अति सासह्य सखीगण पाणिभिः मृदित पादतलां मृदुचन्दनैः॥

दमयन्ती की मुख कान्ति के साथ-साथ उसका शरीर भी अतिशय क्षीण हो गया है। अब सखियाँ अत्यन्त निकट से भी उसकी वाणी नहीं सुन पातीं। इस समय वह इतनी क्षीण हो गई हैं जिससे उसके श्वासों पर भी शंका होने लगती है—

[4]अथ कले! कलय श्वसितिस्फुटं चलति पक्ष्म चले परिभावय।
अधर कम्पनमुन्नयमेनके! किमपि जल्पति कल्पलते! श्रृणु॥

गोपालविलास की राधा भी इतनी क्षीण काय हो गई है जिससे उनकी सखियों को उनके जीवन में भी सन्देह उत्पन्न होने लगता है—

[5]सहचरी वचन श्रुत माधव श्रवणमभिलत्पुलकाङ्कुरैः।
श्वसिति किं किमुनेति विशङ्किनी विदधती सुषितां सखी॥

दमयन्ती को कोकिल कलरव तनिक भी सहन नहीं होता उसकी ध्वनि कानों में पड़ते ही वह व्याकुल हो जाती है। इसी लिये वह सखियों से कहती है कि इस कोयल की ध्वनि को क्या तुम फिर सुनना चाह रही हो? दमयन्ती को कोकिल कलरव का भ्रम हो रहा है—

[6]विधु विरोधि तिथेरभिधायिनीं।
ननु न किं पुनरिच्छसि कोकिलाम्॥

---

१. गोपालविलास ८/६।
२. नैषध ४/१११।
३. गोपालविलास ८/२।
४. नैषध ४/११३।
५. गोपालविलास ८/८।
६. नैषध ४/१०३।

राधा की सखियाँ भी तनिक सा कोकिल स्वर सुनते ही तत्काल राधा के कानों को ढक देती हैं जिस से वह ध्वनि उसके कानों में न पहुँच जाय—

[1]अयि पिकावलि मञ्जुल जल्पिते पिहितकर्ण पुटोमुहुरालिभिः ॥

दमयन्ती की सखियाँ दमयन्ती को सान्त्वना देती हुई कह रही हैं कि नल तो सदा तुम्हारे हृदय में ही निवास करते हैं फिर तुम व्यर्थ ही क्यों कष्ट सहन कर रही हो ?

[2]हृदय एव तवाऽस्ति स बल्लभः ।
तदपि किं दमयन्ति ! विषीदसि ।

राधा की सखियाँ भी राधा को धैर्य बंधाती हुई यही आश्वासन दे रही हैं कि तुम तो नन्दनन्दन की अनन्य प्रेयसी हो, हे मृदुलांगि । फिर तुम व्यर्थ ही अपने इस कोमल शरीर को विरहाग्नि में क्यों झुलसा रही हो—

[3]"अपि कथं मृदुलाङ्गि ? मधुद्विषः प्रियसखी प्रथसेहृदयव्यथाम्" ।
त्वमयसेकुसुमेषु शरव्यथां प्रियतमेसतिनन्दतनूद्भवे ॥

सिद्धार्थ के विवाहोत्सव का वर्णन करता हुआ बुद्धचरित का कवि कहता है कि काम मद से शराबोर कोई युवती सिद्धार्थ को अपने कठोर पीन स्तनों से आच्छादित कर रही है—

[4]मदेनावर्जिता नाम तं काश्चित्तत्र योषितः ।
कठिनै पस्पृशु पीनैः सहितैः वल्गुभिः स्तनैः ।।

गोपालविलास में कुछ इसी से मिलता जुलता वर्णन प्राप्त होता है ।

[5]पीनस्तनावर्जित पूर्व विग्रह कन्दर्प दर्पात्भुजवल्लिनिर्जितम् ।
निपीडयन्ती कुपितेव माधवं राधादधाराङ्कुरिताङ्ग वल्लरीम् ।।

नैषध में घोर अन्धकार का वर्णन करने के लिये कवि ने आकाश को उल्टा कटाह बनाया है और उस पर सूर्य रूप दीपक की लौ से जो कज्जल बनता है क्या वही रात में अन्धकार के रूप में पृथ्वी पर गिर रहा है ?

गोपालविलास के कवि ने भी पूर्ण चन्द्रमा को कामदेव का शराव बनाया है

[6]ऊर्ध्वार्पितन्युब्जकटाहकल्पे यद्व्योम्नि दीपेन दिनाधिपेन ।
न्यधापितद्भूममिलत् गुरुत्वं भूमौतमः कज्जलमस्खलत्किम् ॥

---

१. गोपालविलास ८/३ । २. नैषध ४/१०८ ।
३. गोपालविलास ८/६ ।
४. बुद्ध चरित ४/४६ । ५. गोपालविलास १/२३ ।
६. नैषध २२/.१ ।

गोपालविलास के कवि ने भी पूर्णचन्द्रमा को कामदेव का शराव बनाया है जिस पर वह अपनी पत्नी रति की आँखों को सुन्दर बनाने के लिये काजल तैय्यार करता है—

[1]पाण्डुच्छायैः विरहविपदं प्रापितानां मनोभिः ।
चक्रे चन्द्रं परिणत कलं कामदेवः शरावं ।
प्रायो रत्यानयन युगलं कज्जलैर्भूषयिष्यन् ।
ज्वाला जालं तदनु तनुते कौमुदी छद्नाधः ॥

सरस्वती जी ने प्रसिद्ध महाकाव्यों में से लगभग सभी का अध्ययन किया था ! शिशुपाल वध में एक स्थान पर इन्द्रप्रस्थ की युवतियाँ कृष्णागमन की पूर्व सूचना देने वाले उन पटह दुंदुमी आदि विविध वाद्यों की ध्वनि को सुनकर कृष्ण दर्शन के लिये व्याकुल हो जाती हैं । दर्शनों की तीव्र उत्सुकता के करण वे सुध बनी हुई वे अपने आभूषणों को उल्टे सीधे कहीं के कहीं अङ्गो पर लगाकर दौड़ पड़ती हैं—

[2]रभसेन हार पद दत्तकाञ्च्यः प्रतिमूर्धजंविहित कर्णपूरकः ।
परिवर्तिताम्बर युगा समापतन् वलयीकृत श्रवण कुण्डलास्त्रिक् ॥

गोपालविलास की गोपियाँ भी कृष्ण मिलन के लिये अत्यन्त लालायित बनी हुई अपने आभूषणों को अङ्गों में उल्टे सीधे पहन कर चल देती हैं ।

[3]अनङ्गसेनादिवराङ्गनास्तदाकृष्णत्तुला कोटि विनिर्मिताङ्गदाः ।
कटीर हारा पद बद्ध कुण्डली कुचान्त काञ्चीक्वणिता बन ययुः ॥
स्मरोत्सुका कङ्कण कर्णभूषणाः, रतिप्रियाद्यादयिता कलानिधेः ।
अलक्तकालिप्त कुचास्सचन्दनाः पदद्वये नेत्र युगे सकुङ्कुमाः ॥

इन्द्रप्रस्थ की युवतियों की भाँति गोपालविलास की गोपरमणियाँ भी तुला-कोटियों को अङ्गदों के स्थान पर, कटिपर हार, पैरों में कुंडलियाँ उरोजों पर काञ्ची पहन कर कृष्ण मिलन के लिये जाती हैं । इस समय वे बेसुध बन जाती हैं जिसके कारण कंगनों को कानों में पहनकर स्तनों पर अलक्तक का लेप करके, पैरों में चन्दन लगाकर नेत्रों में कुङ्कुम का काजल डाल लेती है । अभूत पूर्व शृङ्गार सज्जा के साथ वे अपने प्रियतम की मधुर झांकी पाने की लालसा में बन की ओर भागी जा रही हैं । कृष्ण दर्शन के लिये माघ में भी इसी प्रकार भाव विह्वल बनी हुई कोई इन्द्रप्रस्थ की नागरिका इतनी उतावली बनी हुई है कि वह शृङ्गार करती हुई अपनी प्रसाधिका के हाथ से अपना पैर छुड़ाकर भाग खड़ी होती हैं । उसे देखकर कविमाघ कहते हैं कि एक पैर में ही लगे हुए महावर से वह पार्वती अर्धनारीश्वर रूप को चरितार्थ कर रही है—

---

१. गोपालविलास ७/८ । २. माघ १३/३२ ।
३. गोपालविलास २/१८-१९ ।

[1]व्यतनोदपास्य चरणं प्रसाधिकाकरपल्लवाद्रसवशेनकाचम
द्रुतयावकैक पदचित्रिताऽवनिं पदवीं गतेव गिरिजा हरार्धताम् ॥

गोपालविलास में भी कोई गोप तरुणी शीघ्रता वश अपने एक ही स्तन को चंदन से चर्चित कर कृष्ण मिलन के लिये चल देती है। कवि कहते हैं कि एक साधारण से गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले गोपाल कृष्ण को जीतने की कामना से वह श्वेत हिमाद्रि और स्वर्णिम हेमाद्रि जैसे दो प्रसिद्ध पर्वतों को धारण करके गोपाल के समीप पहुँचने के लिये आकुल बनी हुई है।

[2]कंदर्प कीर्तिः कनकोज्ज्वलङ्गी।
श्रीखण्ड लिप्तैककुचं वहन्ती।
गोवर्धनोद्धारि जिगीषयेव।
प्रालेय हेमाद्रिधरा रराज ॥

गोपाल विलास में पान गोष्ठियों का आयोजन भी सरस्वती जी ने किया है जिस पर माघ की छाया स्पष्ट दृष्टिगत होती है।

गोपालविलास की एक पान गोष्ठी में कोई रसिक गोप युवक अपने हाथ में मधुपात्र लेकर अपनी प्रेयसी को मधुपान कराना चाहता है—

[3]करकृत मधुपात्रं पाययिष्यन् कलमम्।
कुवलय दल चित्रं वीक्ष्यनेत्र ध्रियाक्तम् ॥

'शिशुपाल वध' की पानगोष्ठी में भी कोई युवक अपनी प्रियतमा पत्नी से मद्य पात्र प्राप्त करता है। इसलिये मधु के स्वाद में उसे अत्यधिक रसवत्ता का आनन्द प्राप्त हो रहा है—

"[4]दत्तमिष्टतमया मधु पत्युर्बाढमाप पिबतो रस वत्ताम्"

गोपालविलास की पानगोष्ठी में भी भ्रमरों से डरी हुई कोई युवती विभ्रम वश नेत्र बन्द कर लेती है और पान पात्र को फेंक देती है।

[5]क्वचनववरराङ्गी विभ्रमद्भ्रङ्गभीता।
मुकुलित नयनाब्जापात्रमुज्झाञ्चकार ॥

इसी प्रकार "शिशुपाल वध" में भी पान पात्र में पानोत्सुका युवती के नेत्र के प्रतिबिम्ब को कमल समझ कर कोई भ्रमर उसे सूंघना चाहता है और विभ्रम में पढ़ जाता है। क्योंकि भ्रमणशील में विवेक कहा ?

---

१. माघ १३/३३।
२. गोपालविलास २/२०।
३. गोपालविलास ६/४७। ४. माघ १०/६।
५. गोपालविलास ६/४८।

विम्बितं[1] भृतपरिस्रुति जानन् भाजने जलजमित्यबलाया: ।
घ्रातुमक्षि पतति भ्रमर: स्म भ्रान्तिभाजि भवतिक्व विवेक: ।।

माघ में भ्रमर गुञ्जन से युक्त स्वादिष्ट और शीतल मदिरा से युवक गण अपनी इन्द्रियों को तृप्त कर रहे हैं।

[2]स्वादुनि प्रणदिताऽलिनि शीते निर्ववारमधुनीन्द्रियवर्ग: ।।

गोपालविलास में भी वृन्दावनवासी युवक भी नववधुओं के हास परिहास का आनन्द लेते हुए भ्रमर कुल कलरव कलित मद्य का स्वाद ले रहे हैं।

[3]क्वचन नववधूटी हास्य लास्याति लोभ्यम् ।
भ्रमर कुल निषेव्यं मद्यमास्वादयन्त: ।।

व्रजवासी गोपों की गोपालविलास में भी एक पान गोष्ठी चल रही है। जिसमें वे अपने पीने के पश्चात् बची हुई मदिरा अपनी प्रिय गोपरमणियों को पिलाते हुए उनका चुम्बन कर रहे हैं और आनन्दित हो रहे हैं।

[4]स्वमुख सरसिजेभ्य: पीत शेषं प्रियाभ्य: ।
सरस मधुददानांश्चुम्बनान्मोदमीयु: ।।

माघ में भी प्रेमी युगल इसी प्रकार पान क्रीड़ा के साथ-साथ काम क्रीड़ा में व्यस्त दिखाई देते हैं।

[5]पीतवत्यभिमतेतुल्यस्वादमोष्ठ रुचकं विदद्क्षौ ।।

गोप युवा समाज की पान गोष्ठियों को मदमस्त बनी हुई युवतियों के विभिन्न भ्रूविलासों और नव वधुओं के वाक् विन्यासों ने और अधिक उन्मादक एवं मोहक बना दिया है—

[6]अथ युवती जनानां सालसान् भ्रू विलासान् ।
अकृत नव वधूनां वाग्विलासान् च सीधु ।।

पान गोष्ठियों में सम्मिलित नवोढाओं की वक्र वाक्य रचना ने माघ को भी आकृष्ट किया है। इसी भाव का चित्रण उन्होंने अपने निम्न श्लोक में किया है

[7]प्रातिभं त्रिसरकेण गतानां वक्रवाक्यरचना रमणीयम् ।

गोपाल विलास के रचयिता ने पुष्प चयन की महा काव्यीय परम्परा का

१: माघ १०/५ ।
२. माघ १०/३ ।
३. गोपालविलास ३।४८ । ४. वही ६।४८ ।
५. माघ १०।८ ।
६. गोपालविलास ६।४५ ।
७. माघ १०।१२ ।

भी सफलता पूर्वक निर्वाह किया है। गोपालविलास में उन्होंने अपने प्रेमियों के साथ पुष्प चयन करती हुई नव वधुओं के अनेक दृश्यों का चित्रण किया है।

वृन्दावन में कोई मालाकार नवोढ़ा पुष्प चयन में व्यस्त है। उसके पञ्जे ऊपर को उठे हुए हैं, पैरों की उंगलियाँ पृथ्वी में धंस रही हैं, इसी स्थिति में शरीर को साधे हुए वह अपने कार्य में दत्त चित्त है। यद्यपि इस मुद्रा में उसकी नाभि दिखाई देने लगी है, त्रिवली स्पष्ट हो जाती है केश पाश से मल्लिका की माला स्खलित होकर नीचे गिर रही है और स्तनपालिका अनावृत हो गई है—

[1]'उन्नमच्चरणमंगुलि गाढ क्रान्त भूमि शरलीकृत कायम्।
व्यक्त नाभि विगलद्वलि केशभ्रस्तमल्लिविवृत स्तनपालिः॥

"शिशुपाल वध" में भी कोई युवती शरीर की इसी मुद्रा में पुष्प चयन के लिये तत्पर है। मृदुचरणतलाग्र पर खड़ी होने के कारण उसके कुच कुम्भों का भार उसके लिये असह्य हो रहा है—

[2]'मृदुचरणतलाग्रदुःस्थितत्वादसहतराकुचकुम्भयोर्भरस्य।

माघ का "मृदुचरणतलाग्रस्थितत्वात्" दोनों एक ही भाव का वहन कर रहे हैं।

"अभिज्ञान शाकुन्तल" भी सरस्वती जी के प्रिय ग्रन्थों में रहा है। अतः उन्होंने जब अपने "त्वयिस्थिते" श्लोक की रचना की होगी तब उनके भाव-प्रवाह में शकुन्तला का "कःपौरवे" यह पद कहीं कोने में बह रहा होगा।

[3]"त्वयिस्थिते शास्तरि दुर्जनानाम् त्वदेकनाथामबलामनङ्गः"
[4]"कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरिर्दुर्विनीतानाम्"

सरस्वती जी अत्यन्त उदार सहृदय रसिक ब्रह्म वेत्ता सन्त हैं। उन्होंने शकुन्तला के मृग शावकों को वृन्दावन का भ्रमण कराया है और उन्हें यमुना तट पर कृष्ण की रमण रेती पर वृन्दावन के पादपों की सघन छाया में सुलाया है—

[5]'मृगीमृगेन प्रतिलभ्यमाना कर्णाग्र कन्डूयन् द्रुङ्गिनपातैः।
शेते नदी सैकत शीतलासु छायासु वृन्दावन पादपानाम्॥

सरस्वती जी के इस श्लोक पर शकुन्तला के निम्न श्लोक की छाया स्पष्टतया दृष्टिगत हो रही है—

[6]'कार्या सैकतलीन हंस मिथुनास्रोतोवहामालिनी
पादास्तामभितः विषण्णहरिणाः गौरीः गुरो पावनाः

---

१. गोपालविलास ५/३२। २. माघ ७/४८।
३. गोपालविलास ४/५४।
४. शकुन्तला १/२१।
५. गोपालविलास ४/३०। ६. शकुन्तला ६/१७।

शाखालम्बित वल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे: कृष्ण मृगस्य वाम नयनं कण्डूयमानांमृगीम् ।।

वस्तुत: इसमें गोपालविलास का यह निम्न श्लोक और मिल जाय तब यह शकुन्तला के "कार्या सैकत" श्लोक की पूर्णाभिव्यक्ति कर देता है।

[1]"कृष्णसारतरुणास्तरु मूले पीत शीत सलिलास्तृणतृप्ता: ।
निद्रिता: प्रियतमा मुख वक्त्रा: कुत्रचित्तटगता: सरसीनाम् ।।

अष्टम सर्ग में कवि ने राधा के विरह वर्णन में 'ब्रह्म वैवर्त' पुराण से अवश्य सूत्र प्राप्त किये हैं। इस पुराण के कृष्ण जन्म खण्ड में विस्तार सहित विरहिणी राधा का मार्मिक चित्रण किया है। विरहानल में दग्ध राधा की सखियाँ किसी भी प्रकार से अपनी प्रिय सखी को स्वस्थ करना चाहती है। कोई चन्दन का लेप करती हैं। पाटीर पङ्क के ऊपर सजल कमलदल बिछाकर राधा सोती हैं। गोपालविलास के चतुर्थ सर्ग में विरह व्यथिता राधा की दशा भी यही है। वहाँ राधा स्वयं कहती हैं कि मुझे सखियां कमलों की शैय्या पर सुलाती हैं।

[2]"सखि जनै शयितास्मि कुशेशये" ।

'ब्रह्म वैवर्त पुराण' प्रकृति खण्ड अध्याय पचपन के तिहत्तरवें श्लोक से एक सौ छै श्लोक तक कृष्ण द्वारा राधा का स्तवन किया गया है जो वास्तव में अत्यधिक गम्भीर है। इसमें कृष्ण की दीनता पूर्ण उक्तियाँ गोपालविलास के सप्तम सर्ग में विरहाकुल कृष्ण के अधिकथनों से साम्य रखती हैं—

[3]शक्तो न रक्षितुं त्वां च यान्तिप्राणास्त्वया विना ।
विनाधिष्ठातृ देवीं च को वा कुत्र च जीवति ।।

इसी को अधिक कलात्मक रूप में प्रस्तुत करते हुए सरस्वती ने कृष्ण की स्वांदशा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

राधे[4] राका हिमकर करा मण्डलं चण्डभानोः
न्यक्कुर्वन्तो जलज नयने जीवनं मे हरन्ति
त्वद्वैधुर्यात्मदन दयितं बन्धबाहुं दधानोः
धुन्वन् स्वैयं विधुमुखि हठात् किन्नयेज्जीवनं मे ।।

---

१. गोपालविलास ५/२४।
२. वही ८/१६।
३. ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृति खण्ड अध्याय ५५/१५।
४. गोपालविलास ७/१६।

ब्रह्म वैवर्त पुराण में राधा की स्तुति करते हुए कृष्ण कहते है कि हे राधे ! तुम वैकुण्ठ में लक्ष्मी हो कवियों की सरस्वती हो और पुण्य क्षेत्र भारत में सती पार्वती हो—

'महालक्ष्मी'[1] च वैकुण्ठे भारती च सतांप्रसूः
पुण्य क्षेत्रे भारते च सती त्वं पार्वती तथा

इसी भाव को अभिव्यक्त करती हुई दूतिका विरहाकुल राधा की विषम वेदना का वर्णन करती हुई कृष्ण से कहती है।

'कृतमदन विरूपे चन्द्रकोद्‌भासि मौलौ
धृतमलयज मूर्तौ हार कर्पूर गौरे
भवति शिव पदेयत् विद्यमानेऽपि गौरीम्
अभिभवति किमेतत् त्वत्प्रियांपञ्चबाण: ।।

जिसने अपनी कोपाग्नि से काम को भस्म कर दिया है, जिसके जूड़े में बाल चन्द्रमा उद्‌भासित हो रहा है, जिसने गौर वर्ण का कर्पूर हार धारण किया हुआ है, उस आप नन्दनन्दन को शिव पद पर विद्यमान जानकर भी यह अधम काम आपकी प्रियतमा सती पार्वती की अवमानना करना चाहता है।

यह पौराणिक अद्वैतवाद शाङ्कर अद्वैतवाद से भी कहीं अधिक मधुर है। इसीलिये सम्भव है सरस्वती जी ने इससे प्रभावित होकर अपने महाकाव्य में इसे स्थान दिया है —

'शोभास्वरूपा चन्द्र त्वं त्वां बिना न स सुन्दरः

राधा की अलौकिक शोभा को प्राप्त करने के लिये चन्द्रमा को गोपालविलास में महान कष्ट साध्य तप करना पड़ा है—

'प्रायस्तस्या वदन सुषमामीहमानः सुधांशुः
ज्योत्स्ना जालं ज्वलन निवहं सर्वतः सम्प्रसार्य
ऊर्ध्वं कुर्वन् चरणयुगलीकृत्य लम्बं कराग्रम्
ध्वान्तं धूमं पिबति तपसे सुरधुनीतोरसंस्थः ।।

ब्रह्म वैवर्त पुराण में कृष्ण राधा की स्तुति करते हुए कहते हैं—कि हे राधिके ! हे प्रिये ! तुम्हारे बिना कामिनी बन्धु काम का कोई अस्तित्व नहीं है।

'न कामः कामिनी बन्धुस्त्वयारत्याबिना प्रिये।

---

१. ब्रह्म वैवर्त पुराण—प्रकृति खण्ड ५५/७९।
२. गोपाल विलास ७/४।
३. ब्रह्म वैवर्त पुराण—प्रकृति खण्ड ५५/८०।
४. गोपालविलास ५/३।
५. ब्रह्म वैवर्तपुराण प्रकृति खण्ड ५५/८१।

इसी का महा काव्यीय रूप गोपालविलास में निम्न प्रकार से प्राप्त होता है— ।

सीता'तीतं तरुणी मम हे ! चन्द्रनीहार हारे !
कान्त्या हीनं मदन दयिता कान्ति सन्ताप कान्ते !

गोपालविलास कीं राधा भी मन्मथ का सौन्दर्य हैं, मदन दयिता रति की कांति के लिये सन्ताप उत्पन्न करने वाली है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता हैं कि सरस्वती जी ने गोपालविलास के कथानक को आकर्षक, रोचक एवं मनमोहक बनाने के लिये अनेक महाकाव्यों, रीति ग्रन्थों एवं पुराणों से ली गई सामग्री को अधिक उत्कृष्ट सुरुचिपूर्ण एवं भव्य रूप में प्रस्तुत किया है।

---

१. गोपालविलास ७/१४।

४ | गोपाल विलास का वर्ण्य विषय

श्री मधुसूदन सरस्वती ने नन्दनन्दन गोपाल को प्रसन्न करने के लिये कौतुक वश 'गोपाल विलास' नामक इस अद्भुत महाकाव्य की सृष्टि की है। अपने इस महाकाव्य के नायक पद पर उन्होंने महाभारत के अग्रदूत वासुदेव कृष्ण को नहीं अपितु नन्दात्मज यशोदानन्दन, वृन्दावनविहारी, गोचारणरस रसिक, गोपीरमण, राधापति गोपाल को ही प्रतिष्ठित किया है। ऐसा करके कवि ने अपने काव्य के वर्ण्य विषय को भी स्पष्ट कर दिया है। इस काव्य में कवि ने उन्हीं गोपाल की अलौकिक लीलाओं की प्रेम रस परिपूर्ण काव्यमयीपयस्विनी प्रवाहित करके त्रिताप संत्रस्त प्राणियों के अन्तःकरण को अद्भुत भक्ति रसामृत का पान कराया है।

(१) इस काव्य का विषय अनादि है—यह विषय काल तथा देश की परिधि से परे है। सम्प्रदाय प्रवर्तक आचार्यों के विभिन्न साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के आग्रह से सर्वथा स्वतन्त्र है। यह विषय अत्यन्त संवेदनशील होने के कारण जीव मात्र के हृदय में नित्य-निहित अपने अत्यन्त अभीष्ट परमानन्द की आनन्दात्मक सहज अभिव्यक्ति के रूप में विद्यमान रहता है। आज से लाखों वर्ष पूर्व इसी धराशिरोमणि भारत भू पर अपने उसी परम प्रियतम के प्रति उसी अकारण करुण के लिये एकान्त आनन्द से द्रवित होकर [1]ऋग्वेद के ऋषि अपनी रहस्यमयी बाणी में इसी विषय का श्रवण करते हुए कहते हैं कि हे आनन्दमय प्रियतम ! हम सब के आप ही उपमा रहित एकमात्र असाधारण पति हैं तथा समस्त भुवनों के राजा हैं।

गोपाल विलास की गोपियाँ भी एकमात्र उस परम प्रियतम कृष्ण के अन्य किसी को न जानती है और न किसी को अपना पति मानती हैं।

इसी प्रकार कोई अन्य [2]ऋषि अपने अनन्य-प्रेमास्पद प्रेम स्वरूप परमात्मा को अपनी बाणी का विषय बनाते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार पति अपनी प्रियतमा पत्नी से मिलने के लिये आता है उसी प्रकार परम प्रभु परमात्मा भी आते हैं।

वह पति परमात्मा परम रमणीय प्रतीत होने वाली पदार्थ परम्परा में सर्वश्रेष्ठ अथवा अन्तःकरण की अत्यन्त रागात्मक वृत्तियों से भी अतिशय प्रेम का

१. पतिवभूवासमोजनानामेको विश्वस्यराजा ऋग्वेद ६/३६/४।

२. पतिरिव जायां अभिनोन्येतु मर्तादिवः सविता विश्ववारः।

—ऋक्० १०/१४९/४।

आस्पद है। इसीलिये [1]ऋग्वेद के ऋषि प्रेम पूर्ण गद्गद वाणी में आदेश देते हैं कि तुम सब उस एकमात्र परम प्रियतम की स्तुति करो।

इसी प्रकार की अशरीरी वाणी का श्रवण कर आनन्दातिरेक से आत्म-विभोर होकर यजुर्वेद के [2]ऋषि प्रियाओं के इस प्रियतम पति का आह्वान करते हैं।

यह काव्य भी वृन्दावन वासिनी प्रियाओं गोपाङ्गनाओं के एकमात्र प्रियतम की गाथा है। इस काव्य का विषय लीला निकेतन गोपीरमण रसिक शिरोमणि रासेश्वर के सौन्दर्य सागर से सतत समुद्भूत ललित लावण्य की तरल तरङ्गों का प्रेममय संगीत है। यह दो प्रेमपूर्ण प्रेमियों का अद्वैत एकान्त प्रेमालाप है।

(२) इसका क्षेत्र अनन्त है—यह विषय व्रजरज जनित तृण वीरुध से लेकर अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक तक को अपने अङ्क में समाये हुए हैं। यह विषय वृन्दावन की उन सभी जड़ तरु लताओं कुसुम कलिकाओं सर सरसियों कुञ्ज वाटिकाओं, गोप-गोपाङ्गनाओं गोधन और गोवर्धन सबको सौन्दर्य निधि माधव के सान्निध्य से परम रमणीयता प्रदान करता है। यह विषय ही उन्हें अपने एकमात्र प्रियतम प्राण-वल्लभ की सेवा में अहर्निश संलग्न रखता है। यह गोलोक की विरजा नदी के तटों से आरम्भ होकर वृन्दावन में कालिन्दी के कूलों पर कछारों पर प्रकट होकर सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है।

(३) यह विषय भावलोक की अलौकिक यात्रा है—पञ्चभौतिक शरीरों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह [3]प्रकृति और पुरुष का रतिक्रीडन् आत्मरमण एवं आत्म मिथुन है जिसका सम्बन्ध अन्तर्जगत के भाव-विभव से है। भाव का अर्थ केवल मात्र कल्पना नहीं है अपितु भाव का अर्थ सत् है जिसका कभी नाश नहीं होता "नासतोविद्यते भावोनाभावोविद्यते सतः" गीता के इस कथन से भाव का अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाता है। यह प्रत्येक जीव में अनादि काल से नित्य निवास करता है। यह 'एकोऽहं वहुस्याम्' की मूक अभिव्यक्ति है। इसे ही वैष्णव साहित्य में उच्चातिउच्च प्रेम की पराकाष्ठा कहा गया है। उन्होंने भाव का अर्थ सर्वोच्च प्रेम माना है। वैष्णव साहित्य में भगवान श्यामसुन्दर सच्चिदानन्द गोपाल श्रीकृष्ण को 'रसराज' और रासेश्वरी नित्यनिकुञ्जेश्वरी राधा को महाभाव कहा गया है। गोपाल विलास के कवि ने अपने वर्ण्य विषय के माध्यम से इन्हीं राधा माधव के

---

१. प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुहि। —ऋक्० ८/१०३/१०।

२ प्रियाणां त्वां प्रियपतिंहवामहे। —शुक्ल यजु: २३/१९।

३ आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेषः ब्रह्मविदां वरिष्ठः मुण्डकोपनिषद् ३/१/४।

मिलन के ताने-बाने से चत्कृत बनी हुई उनकी प्रणय लीलाओं एवं रति-क्रीडाओं का प्रदर्शन करके अद्वैत भक्ति रस को स्वतन्त्र पुरुषार्थ के रूप में सिद्ध करने का प्रयास किया है जिसमें उन्हें शत-प्रतिशत सफलता प्राप्त हुई है। इस भक्ति रस के आलम्बन रहे हैं श्रीकृष्ण। इस महाकाव्य में भी वे नायक हैं। अतः सर्वप्रथम कृष्ण चरित्र का वर्णन किया जाता है—

कृष्ण चरित्र का वर्णन

श्रीकृष्ण का वैविध्यपूर्ण अत्युदात्त चरित्र चिरकाल से ही भारतीय जनमानस पर छाया हुआ है। वे उत्तरवैदिक काल से लेकर आज तक के सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में सर्वाधिक चर्चित रहे हैं। श्रीकृष्ण आज भी भारतीय संस्कृति के सर्व-प्रमुख प्रवक्ता संरक्षक एवं उन्नायक बने हुए हैं। सर्वप्रथम यह नाम हमें वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। वासुदेव कृष्ण को देवकी का पुत्र और आंगिरस का शिष्य बताने वाला मन्त्र 'छान्दोग्योपनिषद्'[1] में मिलता है। [2]कौषीतकी ब्राह्मण भी छान्दोग्य की पुष्टि करता हुआ कृष्ण को मन्त्रदृष्टा ऋषि के रूप में प्रतिष्ठित कर उनके सर्वतोमुखी व्यक्तित्व की उद्घोषणा करता है।

इससे सिद्ध हो रहा है कि उत्तरवैदिक काल से ही कृष्ण भारतीय जनमानस की श्रद्धा के केन्द्र बन चुके थे। उपनिषदों के अन्तिम काल में उपलब्ध पौराणिक साहित्य में श्रीकृष्ण सर्वोच्च स्थान पर विराजमान हैं।

श्रीमद्भागवत पुराण में कृष्ण चरित्र अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ सर्वोत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है। भागवत का प्रतिपाद्य विषय एकमात्र कृष्ण तत्व ही है। जो उस निर्गुण निराकार परात्पर पूर्णतम तत्व का ही रूपान्तर मात्र भगवत् तत्व है। इसे स्पष्ट करते हुए भागवतकार [3]कहते हैं कि—अव्यक्त रूप में रहने वाले उस अद्वय और ज्ञानमय परम तत्व की संज्ञा ब्रह्म और परमात्मा है और व्यक्त होकर वही भगवत् तत्व का पद ग्रहण कर लेता है। व्यास जी ने अपने सम्पूर्ण विशाल साहित्य में परात्पर पूर्ण ब्रह्म तत्व को भगवत् तत्व के रूप में प्रतिष्ठापित करके भगवान के सर्वोच्च आसन पर कृष्ण को समासीन किया है। वे अन्य अवतारों को [4]परमात्म तत्व के अंश से उत्पन्न हुआ मानते हैं। किन्तु उन्होंने कृष्ण को पूर्ण परब्रह्म

---

१. तद् वैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्राय उक्त्वा उवाच।
—छान्दोग्योपनिषद् ३/१७/६।

२. कृष्णाह तदाङ्गिरसो ब्राह्मणान् छन्दसीय तृतीय सवनं ददर्श।
—'कौषीतकी ब्राह्मण'—अध्याय ३।

३. वदन्तितत्त्वविदस्तत्वं यद् ज्ञानमव्ययम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानितिचशब्द्यते॥ —भागवत १/२/११।

४. एते चांशकला पुंसः कृष्णस्तुभगवान् स्वयम्॥ —वही १/३/२८।

परमेश्वर का स्वरूप प्रदान किया हैं और उन्हें साक्षात्--ऋग्वेदीय 'पुरुष सूक्त' के विराट् पुरुष और विष्णु सूक्त के पुरुषोत्तम विष्णु के पद पर अधिष्ठित किया है।

इस समस्त पौराणिक साहित्य में वर्णित अलौकिक ऐश्वर्य के स्वामी, परमेश्वर के साकार विग्रह सृष्टि सम्राट् के रूप में स्थित वासुदेव कृष्ण आज तक सर्वदेश सर्वकाल एवं सर्वजन की श्रद्धा के एकमात्र केन्द्र बने हुए हैं। अनेक पुराणों में प्रख्यात गोप वेशधारी उनका वह विश्व विमोहक एवं कोटिकाम विनिन्दक माधुर्यरस परिपूर्ण रूप जीवमात्र के मन की रूप पिपासा को शान्त करने का एकमात्र अधिष्ठान बना हुआ है। इस प्रकार वे कृष्ण रूपमाधुरी और चरित्रमाधुरी के सामञ्जस्य हैं तथा सर्वोत्तम सदाशय हैं।

श्रीकृष्ण गोपाल की उसी रूपमाधुरी पर मुग्ध—सरस्वती जी ने उन्हीं परमानन्द स्वरूप अमृत पुरुष की सुधामयी भक्तजन आह्लादिनी लोकमनरञ्जन-कारिणी लीलाओं का चित्रण कर अपनी कोमलकान्तपदावली के माध्यम से तथा अपने काव्यकला नैपुण्य से उस सौन्दर्य सुधारस का पान कराया है जिसे पीने के पश्चात् सब रस विरस एवं नीरस प्रतीत होने लगते हैं। वही माधुर्य मूर्ति जो गीता के शाश्वत पुरुष दिव्यातिदिव्य अज एवं विभु हैं। वे ही इस महाकाव्य के नायक गोपाल हैं, नन्दनन्दन हैं, बन-बिहारी हैं, असुरनिकन्दन हैं, प्रेमीजनमन रञ्जन हैं, रास रस सारसागर हैं। वे अनन्य प्रेमास्पद गोपी बल्लभ एवं राधा शृङ्गार[1] सरसी के मराल हैं। वे कमलालय हैं।

प्रस्तुत महाकाव्य 'गोपाल विलास' में वर्णित कृष्ण-चरित्र के विकास को स्पष्ट रूप में हृदयङ्गम करने के लिये उसे कुछ शीर्षकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है—

(१) गोपालकृष्ण परब्रह्म परमेश्वर के साकार विग्रह पुराण पुरुष विष्णु हैं—

प्रस्तुत महाकाव्य 'गोपाल विलास' के नायक नन्दनन्दन गोपाल परब्रह्म के साक्षात् स्वरूप हैं। वे क्षीरसागर में निवास करते हैं। वे लक्ष्मीपति पतगेन्द्र केतु विष्णु सर्पराजशेष की सुधा किरण मण्डल से मण्डित शुभ्रवर्णा[2] शैय्या पर विराजमान रहते हैं। वे[3] पुराण पुरुष हैं।

---

१. राधा शृङ्गार सरसी मरालः कमलालयः।
पाटलाक्षि पदः पायादपायात्कोऽपिगोकुलम्॥ —गो० वि० १/१।

२. यस्मिन्सुधाकिरणमण्डल शुभ्रवर्णां शैयामहीन्द्रमकरोत्पतगेन्द्रकेतुः।
—वही १/९।

३. शुभ्रारविन्दमुकुलान्तरसन्निविष्टं भृङ्गायमाणवपुषं पुरुषं पुराणं, जामातरं जलधिजासहितं तटिन्यो यत्रामृतैरनुदिनं बहुमानयन्ति।
—वही १/१०।

श्वेत कमल कलिका में अवस्थित मधुप के समान श्यामवर्ण विशिष्ट उन अपने पुराण पुरुष जामाता को लक्ष्मी सहित समस्त सरितायें सतत पाद्यार्घ्य समर्पित कर अपने को धन्य मानती हैं।

उन गोपाल के रोम[1] विवरों में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड निवास करते हैं। वातायनान्तर्गत अणु की कान्ति के समान स्फटिक मणि सम्पुट में स्थित मृगमद की आभा वाले वे हरि क्षीरसागर में नित्यशयन करते हैं।

गोपाल के जन्मोत्सव पर नन्द महल में सारा व्रज उमड़ा पड़ रहा है। सर्वत्र आमोद-प्रमोद का अथाह सागर लहरें मार रहा है व्रज नरेश नन्द जैसे ही पीताम्बर धारण कर उत्सव में उपस्थित होते हैं तत्काल विशाल जन सागर उमड़ पड़ता है और सारा वातावरण पीताम्बरमय हो उठता है। उस उल्लसित जन-समूह में सूर्यदेव[2] अपनी पत्नी छाया को वहाँ न पाकर गोप वेशधारी—विष्णु के सान्निध्य में पहुँचकर भी गहन सन्ताप का अनुभव कर रहे हैं।

गोपिकायें जानती हैं कि हमारे प्रियतम गोपाल कोई साधारण मानव नहीं हैं अपितु साक्षात् क्षीरसागरशायी भगवान विष्णु हैं। इन्हीं से ब्रह्मादि देवताओं ने कंसादि राक्षसों का नाश करने के लिये प्रार्थना की थी। इसी लिये वे एक दिन गोपाल से पूछती[3] हैं कि कंसादि राक्षसों का नाश करने के लिये जो प्रार्थना आपसे देवताओं ने की थी वह कितने दिन में पूर्ण होगी। इस परम उत्कण्ठा से भरे हुए उन व्रज रमणियों के हृदय उस समय अत्यन्त उल्लसित हो रहे थे।

रास रस की घनघोर वर्षा से वृन्दावन का केलि कानन गायन वादन तथा नर्तन से आगुञ्जित हो रहा है। उस समय अपने प्रियतम लीला निकेतन नन्दनन्दन में पूर्णतया लीन हो जाने के लिये वेसुध बनी हुई गोप रमणियों को देखकर कवि अपने काव्य रस रसिकों को स्मरण कराते हैं कि ये केवल गोपाल ही नहीं हैं अपितु सृष्टि के कण-कण में व्याप्त विष्णु हैं। रास रस का पान कर मदोन्मत्त बनी हुई

---

१. यद्रोमकूपविवरैः जगदण्डकोटिर्वातायनान्तर्गताणु समानकान्तिः,
सोऽयं हरिस्फटिक सम्पुटकैणनाभिः, साम्यंश्रितः स्वपितियस्यसदाङ्कमध्ये।
—वही १/११।

२. पीताम्बरे व्रजपतेर्भवन प्रविष्टे पीताम्बरत्वमगमत् व्रजवासिमात्रम्।
छायां तदा प्रियतमामनिरीक्ष्यमानु विष्णुपदान्तरगतोऽपि बभूव तप्तः।।
—वही १/५८।

३. सम्प्रार्थितः सुरगणैरनिशंमुरारिः कंसादि नाशकरणायदिनैः कियद्भिः।
उत्कंठया परमया व्रजसुन्दरीणाम् सर्वव्रितस्तरुणिमानसलञ्चकार।।
—गो० वि० १/७६।

कोई गोपिका विष्णु[1]पत्नी लक्ष्मी के स्तनों से सतत संसेवित कृष्ण के चरण कमल का मर्दन कर अद्भुत आनन्दरस में मग्न हो रही है।

रास के समापन पर भी सरस्वती जी बताना चाहते हैं कि यह सब उस कोटि ब्रह्माण्डाधिपति लक्ष्मी के एकमात्र स्वामी भगवान विष्णु का क्रीड़ा विलास है। [2]वासन्ती मल्लिका की आमोद से आप्लावित गोप रमणियाँ विविध रसमयी लीलाओं के स्वामी लीला निकेतन लक्ष्मीपति विष्णु गोपाल की निरन्तर सेवा करके आनन्दित हो रही हैं।

सृष्टि सम्राट परम प्रभु परमेश्वर नन्दनन्दन गोपाल प्रेम[3]पूर्वक स्मरण किये जाने पर मूक अजों को भी वधस्थल से मुक्त कर देते हैं, तब फिर ऐसे नित्य शरणागतों के लिये उनकी अकारण करुणा के विषय में कहने को क्या रह जाता है। ऐसे प्रभु गोपाल मालती मालाओं के समान अपनी अनन्य प्रेयसी गोपाङ्गनाओं की कोमल भुजाओं में आबद्ध हो जाते हैं।

अनेक मुमुक्षु[4] संन्यासी जिस परम प्रभु परमात्मा के चरणों में पूर्णतः प्रणत होकर माया के कोटि-कोटि विभ्रमों से मुक्ति पाकर उनके अमृतमय परम पद को प्राप्त कर लेते हैं वे भगवान नन्दनन्दन स्वयं ब्रज रमणियों के विभ्रमों से भ्रान्त होकर उनके वश में हो जाते हैं।

सौन्दर्य निधि मदन मोहन की सुन्दरता से देदीप्यमान बने हुए इस वृन्दावन का एक-एक कण और एक-एक तृण उनकी चरणरज श्री से सौभाग्यशाली बना हुआ है। अतः इसका सौन्दर्य वर्णनातीत हो गया है। जहाँ साधारण [5]मृगाङ्क दिन में प्रकाशित नहीं होता तथा कृष्णपक्ष में भी उसके दर्शन नहीं होते किन्तु यहाँ वृन्दावन

---

१. पायोधि पुत्रीकुचपालिपालितं पादाम्बुजं कापि ममर्द गोपिका।
—वही ३/२१।

२. बसन्तमल्लिकामोदशालिन्यो गोपवल्लभाः,
लीलाकरणलक्ष्मीशशीलनेन मुंददधुः॥ —वही ३/५६।

३. शामनैर्वन्धनैर्यः स्मृतोमोचयत्याजान् किं पुनः तद् पदध्यायिनः।
स प्रभुर्मालतीमालिकाबन्धुभिः बन्धनं प्रापितो गोपिका बाहुभिः॥
—वही ३/६०।

४. यत्पदध्यानतो न्यासिनः कोटिशोविभ्रमैर्मोचितास्तत्पदं प्रापिताः।
स स्वयं बन्धनं प्रापितो विभ्रमान्निर्भरं विभ्रमैः सुभ्रुवां नन्दजः॥
—गो० वि० ३/६१।

५. नोदिवा न च कुहू तिथि दोपा संगतोनभसि भातिमृगाङ्कः।
लब्धविष्णुपद कानन सङ्गा सन्ति सन्ततरुचोऽत्र मृगाङ्काः॥
—वही ५/५५।

में गोप वेशधारी भगवान विष्णु के परम पावन चरणों की सगति पाकर अनेक मृगाङ्क नित्य कान्तिमान बने रहते हैं।

विधाता ने आकाश में एक ही [1]ऋक्षपति का निर्माण किया है जो क्षयरोग से ग्रस्त है किन्तु यहाँ गोपाल के इस परम पावन वृन्दावन में अनेक ऋक्षपति गोपाल विष्णु के अमृतमय पद को पाकर अपने पशुतापूर्ण पापों से मुक्त बने हुए सम्पूर्ण सन्तोष के साथ निवास करते हैं।

उसी पुरुषोत्तम विष्णु ने अपने चरणों से वामन[2] रूप धारणकर तीनों लोकों को माप लिया था जिससे पराभूत होकर दैत्यराज बलि पाताल में चले गये थे। इन्हीं विष्णु ने राम बनकर शङ्कर के प्रचण्ड कोदण्ड के साथ ही अनेक वीर शिरोमणियों की भुजाओं के बल को विखण्डित कर दिया था। वे अखिल ब्रह्माण्ड नायक इस गोप वेश में कामदेव के द्वारा स्वर्ण रेखा सी चम्पक मालाओं के बन्धन में बँध गये हैं।

वामन द्वारा यह बलिबन्धन का कथानक अनेक पुराणों में विस्तार सहित प्राप्त होता है। किन्तु इस कथा का मूल ऋग्वेद का विष्णु सूक्त ही है। इस सूक्त के सभी मन्त्र यह सिद्ध करते हैं कि वामन वही विष्णु हैं जो अपने पराक्रम युक्त कार्यों से सब से स्तुति किये जाते हैं। जिस विष्णु के तीन विस्तीर्ण चरणों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड निवास करता है वे विष्णु स्तुति योग्य हैं। जिस विष्णु के मधुर, दिव्य, अमृत से पूर्ण, कभी क्षीण न होने वाले तीन पद विन्यास आश्रितों को आनन्द पहुँचाते हैं, जो विष्णु विस्तीर्ण पृथ्वी लोक द्युलोक एवं अन्तरिक्ष लोक को अकेले ही सारे अर्थात् चौदह भुवनों को पृथ्वी, जल, तेज, इन धारण कराने वाले पदार्थों से युक्त बनाकर धारण किये हुए हैं। वह मन्त्र निम्न प्रकार है।

[3]प्रतद्विष्णु स्तवते वीर्येणमृगो न भीमः कुचरोगिरिष्ठः
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्तिभुवनानिविश्वा।।
यस्य त्रीपूर्णमधुना पदान्यक्षीयमाणाः स्वधयामदन्ति
य उत्रिधा नु पृथिवीमुद्यामएकोदाधारभुवनानि विश्वा।।

---

१. एक ऋक्षपतिरस्ति विधात्रा निर्मितो नभसि सक्षयदोषः।
अत्र ऋक्षपतयोगतदोषाः प्राप्त विष्णुपद सङ्गमतोषाः।।
—वही ५/५६।

२. बद्धपुरा येन बलि, पुरद्विषः कोदण्ड दोर्दण्ड मदश्च खण्डितः।
पञ्चेषुणा चम्पकदाम बन्धनं सम्प्रापिताः सोऽपि सुवर्णरेखया।।
—वही १०/५८

३. ऋग्वेद १/१५४।

गोपालविलास में उन्हीं अमृत[1] मय चरणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—प्रात:काल गोपाल के वक्षस्थल पर लाक्षारञ्जित अपने चरण चिन्ह को देखकर लज्जित बनी हुई मृगनयनी राधा से और कमल नेत्र कृष्ण से दूतिका कहती है कि इन्द्र, ब्रह्मा एवं शिव आदि देवता पारिजात पुष्पों की अञ्जलि के साथ सृष्टि के स्वामी नन्दनन्दन गोपाल की प्रेयसी की चरणरज को अपने शिरों पर धारण करने के लिये सदैव उत्कण्ठित रहते हैं। इस समय गोपाल कृष्ण कुङ्कुम युक्त कमल रज से अलंकृत चरणों के मधुप क्यों बने हुए हैं।

अत: ये त्रिजगत् सुखाश्रय ब्रजेश तनय ही पुराण पुरुष विष्णु हैं। प्रकृति के अणु-अणु में व्याप्त वही पर ब्रह्म परमेश्वर जो सरस्वती जी की "अद्वैतसिद्धि:" के ब्रह्म हैं, इस "गोपाल विलास" महाकाव्य के नायक पुराण पुरुष नन्दनन्दन गोपाल हैं।

२. श्रीकृष्ण विश्व विमोहिनी वंशी के स्वामी हैं—

सरस्वती जी ने इस 'गोपाल विलास' महाकाव्य के आरम्भ में ही कंस रिपु की वंशी का परिचय निम्न प्रकार से दिया है।

[2] वंशी कंस रिपोर्जीयात् गीत माध्वीकभृद्वनी
प्रत्यूह करिणां कण्ठीरवीयति यदा रव: ॥

अर्थात् कंसारि कृष्ण की वह वंशी चिरंजीव रहे जिसकी मधुरतम स्वर लहरियों से वृन्दाटवी सतत समृद्ध बनी रहती हैं और जिसका रव कंस जैसे मदोन्मत्त हाथियों की उद्दण्डता को ध्वस्त करने के लिये सिंह के समान गर्जना करता है।

गोप तरुणियां अपने प्रियतम की वंशी के मधुर गुञ्जन को सुनकर अपनी सुध-बुध खो बैठती है। इस जगद्विमोहिनी वंशी के स्वर जैसे ही उनके कानों का स्पर्श करते हैं वैसे ही उनके नेत्र, मन, प्राण कृष्ण के मिलन के लिये अत्यन्त अधीर हो जाते हैं और गोपाल के बिना व्याकुल होकर तड़पने लगते हैं। वृन्दावन में स्वच्छन्द विचरने वाला वह अनंग बरबस अपने प्रचण्डतम बाणों से उन्हें पीड़ित करने लगता है। अपनी इस मनोव्यथा को शान्त करने के लिये वे अपनी लोक-लाज, कुल-मर्यादा, शील आदि सभी कृत्रिम बन्धनों का परित्याग कर अर्धरात्रि में ही परवश बनी हुई अपने प्रियतम के मुखचन्द्र से नि:सृत सुधारस का पान करने के लिये उद्विग्न

---

१. अलक्तकै: चित्रमुरोमुरद्विष: समीक्ष्य राधामपि लज्जयाकुलाम्।
पुनर्जगाद प्रसरन्मुखद्युति: मृगीदृशं कञ्च दृशं च दूतिका ॥
गोपालविसास ११/३० ॥

यदंघ्रिशोभा शिरसोऽनुरञ्जिनी सपारिजाताविधिशक्र शूलिनाम्।
सकुङ्कुमः श्रीर्मधुपोऽधुना कथं पदाङ्कितः पङ्कजरेणु रूषितः ॥
गोपालविलास ११/३१

२. गोपालविलास १/३।

हो जाती हैं और तत्काल उनके समीप चल देती हैं। यद्यपि सर्वत्र घोर अन्धकार का साम्राज्य है। कृष्ण के शरीर की कान्ति के समान स्निग्ध कस्तूरिका की आभा वाले अन्धकार से सम्पूर्ण दिशायें भरी हुई हैं किन्तु उन्हें यदि कोई चिन्ता है तो बस केवल अपने प्रियतम के निकट शीघ्र से शीघ्र पहुँचने की है। वंशी के मधुर स्वर उन्हें निमन्त्रण दे रहे है जिससे वे और भी अधिक व्याकुल हो रही हैं। मोहन के वंशीनाद के साथ ही उनका मन तो केलिकानन में पहुँच चुका है अब वे अपने शरीर को भी शीघ्रातिशीघ्र वहां पहुँचाना चाहती हैं—

अथमुररिपुकाय: स्निग्धकस्तूरिकाभम्
व्रज जनकुलबाला: ध्वान्त वृन्दं विलोक्य
कृतसमयवचस्तन्नन्दसूनो: स्मरन्त्य:
कुसुम शरपरीता वेणुनादेन जाता: ।। गोपालविलास २/१४ ।।

वस्तुत: वंशी में यह असाधारण सामर्थ्य कहाँ से आया ? उसमें इतनी क्षमता कैसे हो गई ? तनिक सी सूखे बांस की वंशी का अस्तित्व ही क्या है ? वस्तुत: यह शक्ति उसकी अपनी नहीं है। वह तो केवल अपने स्वामी गोपालकृष्ण के अन्तर्नाद को ही प्रतिध्वनित करती है। शास्त्रों के अनुसार भगवान कृष्ण ही इस अनादि नाद के कारण हैं, वे स्वयं नादरूप हैं—

वन्दे तं सच्चिदानन्दं माधवं मुरलीधरम् ।
नाद रूपं परं ज्योतिर्नादरूपो परोहरि: ।। संगीतदर्पण १/१ ।।

महाप्रलय के पश्चात् सृष्टि के प्रथम प्रभात में उस हिरण्य गर्भ परमात्मा का यह शब्दात्मक संकल्प होता है—"एकोऽहंबहुस्याम्" मैं एकाकी हूँ बहुत हो जाऊँ। तभी इस अनादि नाद की सृष्टि होती है। इसी नाद ब्रह्म को शब्द ब्रह्म का बीज माना गया है जिसका गुण यह शब्द ही है।

योगी जन इसी अनाहद नाद का श्रवण अपने षट चक्रों में करते हैं। इसी नाद की नित्य साधना से वे ब्रह्म की सिद्धि करते हैं।

श्याम सुन्दर नन्द सुवन गोपाल तो उस हिरण्यगर्भ परमात्मा के ही विग्रह हैं। अत: श्रीकृष्ण स्वरूप में इस नाद का भी पूर्णावतार हुआ था। गोपाल की इस परमानन्दमयी मुरली का यह मधुर निनाद ही वह नादावतार है। इस नाद का महात्म्य भी उतना ही असीम और अनन्त है जितना गोपालकृष्ण का वैभव है। संगीत दर्पण में कहा गया है कि स्वर सम्राज्ञी सरस्वती इस नाद के असीम और अनन्त सागर में डूब जाने के भय से ही वक्षस्थल पर सदा तूँबी धारण किये रहती हैं। इस अपार नाद के सागर को पूर्णतया वे भी नहीं जानती।

नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती.
अद्यापि मज्जन भयात् तुम्बं वहति वक्षसि ।। संगीतदर्पण १/५ ।।

इसीलिये सरस्वती जी ने भी अपने काव्य के आरम्भ में ही गोपाल श्रीकृष्ण के इस नादावतार वंशी का ऐश्वर्य गान किया है। इस वंशी का चमत्कार कितना अद्भुत है इसे बताते हुए सरस्वती जी कहते हैं कि गोपियां इसके स्वरों को सुनते ही जड़ की भाँति व्यवहार करने लगती हैं। यह वंशी की ध्वनि उन्हें इतना परवश कर देती है कि जिससे वे तत्काल गृह कार्य छोड़कर उस वंशी वादक के समीप बन की ओर भागने लगती हैं। उनके सब व्यापार विक्षिप्तों की भाँति होने लगते हैं। यह इस वंशी निनाद का ही चमत्कार है जिसके कारण वे यह निश्चय करने में भी असमर्थ हो जाती हैं कि प्रियतम से मिलन के लिये जाते समय कौन-सा आभूषण किस अङ्ग में धारण करना है। इस अर्ध विक्षिप्तावस्था में की गई उनकी अद्भुत शृङ्गार सज्जा को देखिये—

निपीय पीयूष सहोदरं रवं मधुद्विषो वेणुविनिर्गतं ततः

अपूर्व भूया विभवैर्मनोभुवा विभूषितास्ताविपिनंद्रुतं ययुः ।।

गोपालविलास २/१७ ।।

वे चरणों में धारण किये जाने वाले नूपुरों को भुजा में पहने जाने वाले अंगदों के स्थान पर सजाती हैं। गले में धारण किये जाने वाले हार को वे कटि पर लपेट लेती हैं। कानों के कुण्डलों को पैरों में बाँधती हैं। काँची को स्तनों पर सजा कर मधुर ध्वनि करती हुई विचित्र रूप में अपने प्रियतम के समीप चल देती हैं।

अनंगसेनादि वरांगनास्तदाक्वणत्तुलाकोटि विनिर्मितांगदाः

कटीर हाराः पदबद्ध कुंडलीकुचान्तकाञ्ची क्वणिता बनं ययुः ।।

गोपालविलास २/१८ ।।

रति प्रिया आदि गोपाल की अन्य प्रेयसियां तो और भी अद्भुत रूप में अपने प्राणेश्वर को प्रसन्न करने के लिये बन की ओर प्रस्थान करती हैं। इस वंशी-नाद ने उन्हें इतना आत्म विमुख बना दिया है जिससे प्रियतम से मिलन के लिये जाने से पूर्व अपना मुख दर्पण में देखने का समय भी उनके पास नहीं है। इसकी उन्हें कोई चिन्ता भी नहीं है। वे जानती हैं कि जिसका यह मुख है वह स्वयं इसे देखेगा। वे इतना अवश्य जानती हैं कि प्रियतम के समीप शृङ्गार करके जाना है। इसीलिये वे गोपतरुणियां कंगन को कानों में पहनती हैं और स्तनों को अलक्तक से सजाती हैं। चरणों में चन्दन का लेप करती हैं और नेत्रों में अंजन के स्थान पर कुङ्कुम लगाकर शीघ्रता से चल देती हैं। यह सब गोपाल की विश्व विमोहिनी वंशी का ही चमत्कार है।

स्मरोत्सुकाः कंकण कर्णभूषणारतिप्रियाद्यादयिताकलानिधेः

अलक्तकालिप्त कुचाः सचन्दना पद द्वयेनेत्र युगे सकुंकुमाः ।।

गोपालविलास २/१९ ।।

गोप रमणियों के लिये यह कंसरिपु की वंशी का रव काम शरासन की टङ्कार बनकर मलयज वायु के संसर्ग से सीसी की ध्वनि करता हुआ उनके हृदयों को बींधकर उनके प्राणों में एक विचित्र हलचल उत्पन्न कर देता है। उनके अंग अपने वश में न रहकर किसी अन्य के वश में हो जाते हैं। वह अन्य ही उनका अनन्य आराध्य गोपाल है। उनके वेणु रस का सतत पान करने वाली गोपियां गोपाल की शुल्क दासियां बनी हुई हैं। वंशीरव ही उनका शृङ्गार है उसको श्रवणों से पीकर वे अनन्य सौन्दर्य और माधुर्य की ध्वजायें बनी हुई हैं। इस वंशी का निनाद ही वे शुल्क रूप में लेती हैं और इसके बदले में श्याम के चरणों में अपना जीवन सर्वस्व समर्पित कर देती हैं—

टङ्कारः स्मर धनुष प्रतञ्चिकाया
शीत्कारोमलयज वातयोग जातः
शृङ्गारो व्रज बनितारतामृतानाम्
कंसारेरथ मुरली रवो बभूव ॥ गोपालविलास २/३० ॥

गोपाङ्गनाथ क्रीड़ा बन में वेणु रूप पौष्प चाप से सन्नद्ध हुआ मानकर उस रमण के चरणों में पहुँचने की तीव्र लालसा लिये हुए भी वे भय के कारण विद्युन्मालाओं की भाँति अधिक चंचल बनी हुई बन पथ पर अग्रसर हो रही हैं। गोपियों को रस सिक्त करने के लिये गोपाल इस वेणु रूप पौष्प चाप की प्रत्यञ्चा पर अपनी सुधा माधुरी में भीगे हुए और लीला लावण्य में वुझे हुए अपने कटाक्षों के तीक्ष्ण बाणों को रखकर उन पर प्रहार करते हैं। अपने प्राणधन के इन मर्मान्तिक प्रहारों से वे आनन्द विभोर हो जाती हैं। गोपाङ्गनायें गोपाल की प्राण वल्लभा राधा का ही विस्तार मात्र हैं। इसीलिये गोपाल विलासकार ने राधा को अन्य गोपियों की अपेक्षा उच्च स्थान एवं विशिष्ट सन्मान प्रदान किया है। सरस्वती जी ने गोपाङ्गनाओं को तो श्याम की मुरली के केवल नाद से ही तृप्त कर दिया है जो केवल श्रवणों का ही विषय है। किन्तु राधा को जिस स्वर माधुरी का पान कराया है वह नाद मात्र नहीं है। वह एक असाधारण एवं अलौकिक अनिर्वचनीय दिव्य पेय है जिसे पीकर ब्रह्मानन्द का रस भी तुच्छ प्रतीत होने लगता है। राधा उसी "वेणु सीधु' के रस से आनख शिख आप्लावित बनी हुई हैं। राधा का रोम-रोम मोहन की मुरली से निसृत सुधाआसव से अभिसिक्त होकर अनन्त आनन्द में लीन हो रहा है। इसे पीकर वे काम सागर से उत्पन्न चन्द्रज्योत्स्ना बनी हुई है। माधव के अधरों से प्रवाहित होने वाली इस मदिरा का पान कर उनका हृदय अपने प्रियतम के काम बाणों से क्षत-विक्षत होकर मर्मान्तक पीड़ा से अत्यधिक व्यथित है। इसीलिये कृष्ण के क्रीड़ा कानन में पदार्पण करते समय भी वे अत्यधिक गम्भीर बनी हुई थीं और केलिकानन में भी सब से अन्त में पहुँची थीं।

पञ्चबाणविशिखेन पीड़िता बेणुसीधुनिनदैरथोद्धता
आजगाम दयितं कलानिधिं राधिका मदन सिन्धुचन्द्रिका ।।

गोपालविलास २/३७ ।।

रास अपनी चरम सीमा पर है । समस्त केलिकानन में रस का सागर हिलोरे मार रहा है । गोपियों के कर कमलों में हिलते हुए कङ्कणों के गुञ्जनों से पदाङ्गदों की झङ्कारोंसे, कटि तट पर पड़ी हुई किंकिणियों की किलकारियों से समस्त दिशायें व्याप्त हो रही हैं । तभी उस शृङ्गार सागर से पूर्णेन्दु की भाँति वंशी रव उत्पन्न होता है जो अमृत पिचु को भी तुच्छ बनाने वाला है । गोपवधुओं की धैर्याटवियों को तोड़-तोड़ कर गिरा रहा है । जो नील कण्ठ के क्रोध से भस्मीभूत कन्दर्प द्रुम को फिर से जीवित कर रहा है · पाषाणों को द्रवित और श्रुतियों को सफल बना रहा है तथा सतीसाध्वी पतिव्रताओं को पथ भ्रष्ट करने वाला है ।

पीयूषम्पिचुमन्दयन्नुकुलवधू धैर्याटवीं त्रोटयन्
कन्दर्पद्रुममिन्दुशेखररुषाभस्मान्तमुज्जीवयन्
ग्रावाणां द्रवयन् श्रुतिं सफलयन् साध्वी पदं प्रोञ्छयन्
शृङ्गारार्णव शीतरोचिरुद्भूत्कंसारि वंशीरवः ॥

गोपालविलास २/५४ ॥

श्याम की मुरली नाद का अवतार है । उसी से शब्द जगत् की उत्पत्ति और विस्तार हुआ है । अतः वह समस्त स्वरों और लय आदि की भी स्वामिनी है । रास में यही संगीत का संचालन करती है । रास के अवसर पर लास्यनृत्य में द्रुत, विलम्बित और मध्य लयों को उत्पन्न करने वाली तथा गोप रमणियों को अनुरञ्जित करती हुई माधव की मुरली का रव उत्पन्न होता है ।

'स्मर मनोरम लास्य परम्परा द्रुत विलम्बितमध्य लयानथ
विदधतीर्युवतीरनुरञ्जयन् मुरहरोऽप्यकरोन्मुरलीरवम् ।।[1]

इस वंशी का प्रभाव केवल व्रज तक ही सीमित नहीं है । यह कोटि ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म परमेश्वर के अनादि-नाद की प्रतिनिधि बनी हुई है । केवल गोपाङ्गनायें ही इसके सम्पूर्ण रहस्य को सम्यक् जानती हैं । देवाङ्गनायें इसके ऐश्वर्य और माधुर्य से परिचित नहीं है । तभी तो मोहन के वंशीरव को सुनकर उनके मन में अनेक प्रकार के तर्क उत्पन्न होते हैं । इसकी ध्वनि को सुनकर वे सोच रही हैं कि क्या यह गोपाङ्गनाओं के स्वर्ण शैलों की कन्दराओं में शयन करने वाले कामसिंह की गम्भीर ध्वनि तो नहीं हैं ? क्या विधाता ने इस अश्रुत पूर्व ध्वनि का निर्माण करने वाले उपकरणों की दरिद्रता के कारण मेघ गर्जन की रचना की है ? क्या यह माधुर्य

---

१. गोपाल विलास ३/६३ ।

रस की चरम परिणति तो नहीं हैं ? अथवा यह पीयूष पाथोधि के प्रबल प्रवाह की प्रचण्ड ध्वनि तो नहीं है ?

[1]किमेणी दृग वक्षोरुहगिरिदरीकामपारीन्द्रनिद्रा
दरिद्रत्वाद्धात्राव्यरचि विधिना मेघ विस्फूर्जितालिः
किमुद्यन्माध्वीक द्रवपरिणतिः किन्नुपीयूषसिन्धुः
मधुद्रोग्धुर्वंशीध्वनिरिति सुरस्त्रीकदम्बैः व्यर्तकि ॥

नन्दनन्दन की इस मुरली ने पञ्चम राग पर विजय प्राप्त की हुई है इसलिये पञ्चशरस्फुट कान्तिकदम्ब नन्दनन्दन इस वंशी से ही काम-कलाओं से आकुल हुई गोपबधुओं के हृदय को अन्तर राग से परिपूर्ण कर देते हैं।

अतः इस वंशी की ध्वनि का अद्भुत प्रभाव तीनों लोकों में व्याप्त है क्योंकि इसके स्वामी त्रिलोकी के नाथ हैं और इस समस्त सृष्टि के सम्राट हैं।

३. गोपालविलास के कृष्ण अलौकिककर्मा हैं—

गोपालविलास भगवान् की माधुर्य लीलाओं से परिपूर्ण महाकाव्य है। इस काव्य का क्षेत्र गोकुल और वृन्दावन तक ही सीमित है। सरस्वती जी ने अपने इस काव्य के नायक गोपाल को पूर्ण-प्रभुता-सम्पन्न पुराण पुरुष के रूप में चित्रित किया है। अतः गोपाल विलास में सम्पादित उनका प्रत्येक कार्य अलौकिक एवं अद्भुत है।

गीता में भगवान् ने स्वयं कहा है—

[1]"जन्म कर्म च मे दिव्यम्"

नन्द नन्दन इस काव्य में सर्व प्रथम कंस के कारागार में शंख चक्र गदा पद्मधारी, अमित तेजस्वी, सर्वालङ्कार विभूषित चतुर्भुज रूप में ही दर्शन देते हैं। भगवान् के इस अलौकिक रूप को देखकर वसुदेव अश्रुपूर्ण नेत्रों से दोनों हाथ जोड़ कर उनकी प्रार्थना करते हैं—

[2]शौरिः क्रमेणदरचक्रगदाब्जपाणिम्
ज्ञात्वा चराचरगतिं पतिमिन्दिरायाः
सन्धाय पाणि युगलं शिरसा नतेन
तुष्टावभाव गलदस्त्रकलाकुलाक्षः ॥

जन्म लेने के तत्काल पश्चात् वे वसुदेव को आदेश देते हैं कि तुम मुझे गोकुल ले चलो और वहाँ से नन्द कन्या को यहाँ ले आओ, उसी समय भगवान् कृष्ण के प्रताप और प्रभाव से वसुदेव के पैरों में पड़ी हुई प्रचण्ड लौह बेड़ियां स्वतः ही चटक कर टूट पड़ती हैं।

---

१. गोपाल विलास ३/६४।

१. गीता ४/६। २. गोपाल विलास १/२१।

प्रीतः समादिशदमुं पतिरिन्दिरायाः[१]
मां गोकुलं नय समानय नन्द कन्याम्
निर्भिन्न लौह निडोऽय बभूव शौरिः

भगवान् की आज्ञानुसार वसुदेव जी गोपाल को लेकर मथुरा के कारागार से गोकुल के लिये चल देते हैं। वे मार्ग में यमुना पार करते हैं। यमुना इस सुखद अवसर को अपने हाथ से क्यों जाने देती। अतः उसने भी कोटि ब्रह्माण्ड नायम वासुदेव के चरणों का स्पर्श पाकर अपने को धन्य बना लिया—

[२]कृत्वाकलिन्द तनयांमिलितांपदान्ते ॥

सम्पूर्ण संसार के लिये स्वयं भय स्वरूप कंस कृष्ण के जन्म से पूर्व ही वह उनसे इतना भयग्रस्त रहता था कि विष्णुलोक को जाते समय नन्द कन्या के द्वारा की गई आकाश वाणी से ही वह विष्णु से इतना भयभीत हो गया था जिससे वह कारागार में एक क्षण के लिये भी नहीं ठहर सका और तत्काल अपने सभा सदों के साथ अपने घर में घुस गया।

[३]विष्णोः पदं गतवतीमथ विष्णुमायाम्
पूर्णेन्दु बिम्ब बदनामवलोक्य कंसः।
स्वीयन् तदीय वचनेन विबुध्यमृत्युम्
विष्णोर्भयात्प्रकृतिभिः भुवनविवेश ॥ गो० वि० १।३४

यमलार्जुन के रूप में कुवेर पुत्रों का उद्धार, ब्रह्मा का मोहभङ्गः, गोवर्धन धारण, महा हलाहल के स्वामी नागों का निग्रह आदि इस प्रकार के अद्भुत कर्म है जो किसी भी प्राकृत मनुष्य द्वारा असम्भव हैं।

श्री कृष्ण नेदो दो गोपियों के बीच में अपना एक-एक स्वरूप प्रकट करके अपनी प्रियतमाओं को रास का अलौकिक आनन्द प्राप्त कराया।

[४]वैडूर्यशङ्कु कनकैर्निबद्धं मध्ये समारोप्य समन्ततोऽस्य
द्वयोर्द्वयोरन्तरितस्तरुण्योः रासे बिहर्तुं स चकार चेतः। वही ३।४०

श्री कृष्ण की नृत्य कला निपुणता भी एक, अलौकिक कृत्य है जो सांसारिक बुद्धि से परे की बात है। शिवनृत्य 'ताण्डव' कहा जाता है और पार्वती के नृत्य को 'लास्य' कहते हैं। परन्तु श्री कृष्ण का रास मण्डल का नृत्य सर्वथा अलौकिक है। इस प्रकार के अद्भुत कार्य आज तक संसार के किसी महापुरुष ने प्रदर्शित नहीं किये। गोवर्धन को केवल एक अङ्गुली पर धारण करना क्या अद्भुत कर्म नहीं है? जिसका दूसरा उदाहरण सम्पूर्ण जगत् में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

---

१. गोपाल विलास १/२२। २. वही १/२३।
३. गोपालविलास १।३४। ४. वही ३/४०।

(ख) राधावर्णन—

इतिहास की परिधि में राधा कब आईं यह निश्चय करना अत्यन्त कठिन कार्य है। फिर भी यत्रस्तत: इतिहास ग्रन्थों में बिखरी हुई जो भी सामग्री उनके विषय में प्राप्त है उस का मूल्याङ्कन एवं जो तथ्य उपलब्ध हैं उनका विवेचन करना आवश्यक हो जाता है।

संस्कृत काव्यों में सर्वप्रथम गोपाङ्गनाओं का परिचय महाकवि भास द्वारा रचित 'बाल चरित नाटक' में मिलता है। वहाँ गोपियों के प्रसङ्ग में उनके रूप सौन्दर्य का भावुकता पूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। इस 'बाल चरित' में कृष्ण गोपियों से प्रगाढ़ प्रेम करते हुऐ मिलते हैं। उनके साथ वे नृत्य करते हैं उनके लिये यमुना से दुर्लभ पुष्पों का चयन करते हैं।कृष्ण उनके सौन्दर्य कीभूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। इतिहास के विद्वानों ने भास का समय ईसा से चौथी पांचवी शताब्दी पूर्व माना है।

'हाल' की 'गाथा सप्तशती' ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी की एक रचना है जो प्राकृत भाषा में है। हाल का संस्कृत नाम शालिवाहन था जो ईसा की प्रथम शताब्दी में 'प्रतिष्ठानपुर' में राज्य करते थे। उन्होंने अपनी सप्तशती का परिचय देते हुए कहा है कि इस का संग्रह मैंने प्राकृत की करोड़ों गाथाओं में से किया है। इसमें स्पष्ट रूप से राधा का नामोल्लेख किया गया है।

'मुहमारुएण कण्ड गोरजंराहिआए अवणेन्तो।
एदाणं बल्लीनांमण्णाणवि गोरुव हरसि॥[1]

संस्कृत रूपान्तर

मुखमारुतेन कृष्ण गोरजो राधिकायाअपनयन्।
एतासां बल्लवीनामन्यासामपि गौरवं हरसि॥

इसी गाथा सप्तशती का निम्न श्लोक जीवगोस्वामी ने अपनी प्रसिद्धरचना "उज्ज्वलनीलमणि" में उद्धृत किया हैं जो निम्न प्रकार हैं—

'लीलाहि तुलि असेलो रक्खउवो राहिआत्यन यू कंसे।
हरिणो ढ़म समागम सज्झस वे वलि ओ हत्थो॥[2]

यहाँ भी (राहिआ) राधिका का वर्णन उपलब्ध होता हे। 'हाल' ने सप्तशती की ये गाथायें प्राकृत की करोड़ों गाथाओं में से संकलित करके सम्पादित की हैं। उनके इस कथन से यह स्वत: सिद्ध हो जाता है कि इस प्रकार की गाथायें सप्तशती से पूर्व जन मानस में पर्याप्त प्रचलित थीं।

महा कवि कालिदास मेघदूत' में मयूर पुच्छ से विभूषित गोप वेश धारी विष्णु की रूप माधुरी पर मुग्ध बने हुए कहते हैं—

---

१. गाथा सप्तशती १/८९। २. वही १/१२३।

[1]'रत्नच्छाया व्यतिकर इव प्रेक्ष्यतेतत्पुरस्तात्
बल्मीकाग्रात्प्रभवतिधनुः खण्डमाखण्डलस्य ।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुटित रुचिना चोपवेशस्य विष्णोः ॥

अर्थात् हे मेघ ! तुम्हारा यह श्यामल शरीर उद्दीप्त कान्ते वाले मयूर पिच्छ से विभूषित गोपवेशधारी विष्णु के श्याम शरीर के समान अत्यधिक कान्ति को प्राप्त करेगा।

'रघुवंश' में भी विष्णु वाहन गरुड, यमुना में निवास करने वाले कालिय नाग, कौस्तुभमणिधारी कृष्ण एवं उनके वृन्दावन तथा गो वर्धन आदि का वर्णन भी चार श्लोकों में प्राप्त होता है —

[2]'यस्यावरोधस्तनचन्दनानाम्
प्रक्षालनात्वारि विहार काले ।
कलिन्द कन्या मथुरांगतापि
गंगोर्मि संसक्तजलेव भाति ।।

मथुरा में आकर कलिन्द कन्या गंगा की लहरों से मिले हुए जल वाली सी दिखाई देती है क्योंकि कृष्ण के साथ गोपियों ने जल विहार में इसके तट पर अपने स्तनों का चन्दन धोया है। चन्दन श्वेत होता ही हैं अतः यमुना का जल मथुरा में गंगाजल के समान श्वेत प्रतीत होता है।

[3]'त्रस्तेन तार्क्ष्यात् किल कालियेन
मणिंविसृष्टं यमुनौकसा यः ।
वक्षस्थलेनापि रुचं दधानः
स कौस्तुभं ह्रेपयतीव उष्णम्'।

यहाँ भी कौस्तुभ मणि, कालियनाग आदि का वर्णन स्पष्ट मिलता है।

[4]'सम्भाव्य भर्तारममुं युवानम्, मृदुलप्रवालोत्तर पुष्प शय्ये ।
वृन्दावने चैत्ररथादनूने निर्विश्यतां सुन्दरि ! यौवन श्री ।।

यहाँ पर भी वृन्दावन का वही श्रृङ्गार रसपूर्ण चित्रण है।

[5]'अध्यास्य चाम्भः पृषतोक्षितानि शैलेय गन्धीनि शिलातलानि
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यंकान्तासु गोवर्धन कन्दरासु ।।

यहां भी वृन्दावन का वही मनोरम चिरप्रसिद्ध रमणीय चित्र प्रस्तुत किया

---

१. मेघदूत पूर्वमेघ १५ ।

२. रघुवंश ६/४८ । ३. वही ५/४९ ।

४. वही ६/५० । ५. वही ६/५१ ।

गया है। वर्षा ऋतु में वृन्दावन के मयूरों का नृत्य देखकर मुग्ध बने हुए कालिदास गोवर्धन की कमनीय कन्दराओं का आनन्द ले रहे हैं।

सभी कृष्ण काव्यों में यही सामग्री प्राप्त होती है जिसका वर्णन कालिदास ने किया है।

सप्तम शताब्दी के मध्य वर्तमान प्रसिद्ध नाटककार श्री भट्टनारायण ने अपने नाटक 'वेणीसंहार' के आरम्भ में मंगलाचरण करते हुए भगवान का स्तुतिगान निम्न प्रकार से किया है—

'कालिन्द्या पुलिनेषु केलि कुपितामुत्सृज्य रासेरसम्।
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रु कलुषां कंसद्विषोराधिकाम्।
तत्पाद प्रतिमा निवेशित पदस्योद्भूत रोमोद्गते
अक्षुण्णोऽनुनय प्रसन्नदयिता दृष्टस्य पुष्णातु वः॥

नवीं शताब्दी के काश्मीर के प्रसिद्ध आलङ्कारिक विद्वान आनन्द वर्धन ने अपने 'ध्वन्यालोक' में किसी अपने पूर्ववर्ती कवि के द्वारा रचित इन दो श्लोकों को उद्धृत किया है, जिनमें राधा कृष्ण की लीलाओं का वर्णन मिलता है—

'तेषां गोप वधू विलाससुहृदां राधा रह साक्षिणाम्
क्षेमं भद्र कलिन्द शैलतनयां तीरे लता वेश्मनाम्।
विच्छिन्ने स्मर तल्पकल्पन मृदुच्छेदोपयोगेऽधुना
ते जाने जरठीभजन्ति विगलन्नीलत्विषः पल्लवाः॥

'दुराराधा सुभग यदनेनापि मृजतः
तवैतत्प्राणेशा जघनवसने नाश्रुपतितम्॥
कठोरं स्त्री चेतस्तदलमुपचारैः विरमहे
क्रियात् कल्याणं वो हरिरनुयेष्वेव मुदितः॥

ऊपर दिये गये इस विस्तृत विवरण से यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि इतिहास के पृष्ठों में लगभग एक सतश्र वर्ष पूर्व भी राधा इसी रूप में विद्यमान थी जिसमें आज है—

वस्तुतः राधा कौन थी? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये उपनिषदों में अन्तिम काल से लिखें जाने वाले उस विस्तृत पौराणिक वाङ्मय का अवलोकन करना होगा, जिसे लोक साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है और जिसके चरित्र नायक स्वयं श्री कृष्ण बने हुए हैं। कृष्ण वहाँ पर ब्रह्म परमेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किये गये हैं।

---

१. वेणी संहारनाटक १।१।
२. ध्वन्यालोक पृ० २१४ चौखंबा प्रकाशन
३. वही पृ० ५१४।१५ ,,

जिस प्रकार वेदान्तियों ने उस परात्पर ब्रह्म के साथ माया का और सांख्य ने पुरुष के साथ प्रकृति का संयोजन किया हैं उसी प्रकार पौराणिकों ने भी उस पुराण पुरुषोत्तम के साथ उनकी मूल प्रकृति राधा की स्थापना की है। गोपालविलास की राधा ही पुराणों में उस आत्माराम[1] की आत्मा बनी हुई है।

पद्म[2] पुराण में शङ्कर नारद से कहते हैं कि हे नारद ! राधा अपनी चैतन्य आदि नित्य विभूतियों से इस जगत् प्रपञ्च का गोपन करती हैं अर्थात् रक्षण करती हैं, इसी लिये ये गोपी कहलाती हैं वे ही कृष्ण की आराधना में तन्मय रहने के कारण राधा हैं। कृष्णमयी, कृष्ण स्वरूपा होने से वे परा देवता हैं। श्री कृष्ण के आह्लाद का मूर्तिमान स्वरूप होने के कारण मनीषी जन उन्हें श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति कहते हैं। दुर्गादि त्रिगुणात्मिका शक्तियाँ उनकी कला के कोटि कोटवंश से ही प्रादुर्भूत होती हैं—'गर्ग संहिता' में ब्रह्मा स्वयं श्री कृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं कि— :

[3]अनादिमाद्यं पुरुषोत्तमोत्तमं श्री कृष्ण चन्द्रंनिजभक्त वत्सलं
स्वयं त्वसंख्याण्डपतिं परात्परं राधापतिं त्वां शरणं व्रजाम्यहम् ॥
त्वं ब्रह्म चेयं प्रकृतिस्तटस्या कालोपदेया च विदुः प्रधानम्
महा यदा त्वं जगदङ्कुरोऽसि राधा तदेयं सगुणा च माया ॥

छान्दोग्योपनिषद् के ऋषि उस ब्रह्म तत्व का वर्णन श्याम और शबल के रूप में करते हुए कहते हैं कि मैं श्याम से शबल ब्रह्म की ओर शबल ब्रह्म से श्याम ब्रह्म की प्रपत्ति करता हूँ—

[4]श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्ये

गर्ग संहिता के आचार्य भी साक्षात् पुरुषोत्तम कृष्ण के तेज का दो रूपों में दर्शन करते हुए कहते हैं—

[5]"श्यामं च गौरं विदितं द्विधामहस्त्वमेव साक्षात्पुरुषोत्तमोत्तमः"

नारदपञ्चरात्र' में शिव नारद से कहते हैं कि राधा ब्रह्मस्वरूपा परम

---

१. आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका—स्कन्द पुराण ३।११

२. अन्तरङ्गैस्तथा नित्यविभूतेश्चिदादिभिः, गोपनादुच्यते गोपी राधिका कृष्ण वल्लभा देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका पर देवता सर्व लक्ष्मी स्वरूपा सा कृष्णाह्लादस्वरूपिणी अतः सा प्रोच्यते विप्र ! ह्लादिनीतिमनीषिभिः तत्कला कोटि कोटंयशादुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिका पद्म पुराण पाताल खण्ड ८१।६३–६५।

३. गर्ग संहिता—गोलोक खण्ड १६।२२–२५

४. छान्दोग्योपनिषद् ८।१३/१

५. गर्ग संहिता—गोलोक खण्ड १६।२८

निर्लिप्ता हैं और संसारासक्ति से सर्वथा शून्य हैं । प्राकृत गुणों से सर्वथा रहित होने के कारण वे निर्गुण हैं । प्रपञ्चातीत स्वरूप में स्थित रहने के कारण वे पराशक्ति हैं । जिस प्रकार ब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण प्रकृति से परे हैं उसी प्रकार राधा भी ब्रह्म स्वरूप निर्लिप्ता है और प्रकृति से अतीत है । नारद ! समय पर उनका आविर्भाव और तिरोभाव होता है । हरि की भाँति वे भी अकृत्रिमा, नित्या और सत्य रूपा है—

सर्वथा विष्णुमाया च सत्य नित्या सनातनी,
ब्रह्म स्व रूपा परमानिर्लिप्तानिर्गुणा परा
यथा ब्रह्म स्वरूपश्च श्री कृष्ण प्रकृतेः परः
तथा ब्रह्म स्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा
आविर्भावस्तिरोभावस्तथा कालेन नारदः
अकृत्रिमा च सा नित्या सत्य रूपा यथा हरिः

४।५०–५४ द्वि० रा० नारदपञ्चरात्र

पुराणों में प्रतिपादित राधा उस सच्चिदानन्द स्वरूप पर ब्रह्म की भाँति सच्चिदानन्द स्वरूपा हैं । उन्हीं की स्वरूप भूता शक्ति हैं । उन्हीं में कृष्ण आह्लादन प्राप्त करते हैं । इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है । "ब्रह्मवैवर्तपुराण" में ब्रह्मा स्वयं राधा से कहते हैं कि तुम श्री कृष्ण की अर्धाङ्गिनी हो और श्रीकृष्ण स्वयं राधा हैं अथवा तुम राधा हो और वे स्वयं श्रीकृष्ण हैं । इस विषय का किसी तत्व वेत्ता ऋषि ने निरूपण किया हो यह मैंने वेदों में कहीं नही देखा है ।

त्वं कृष्णाङ्गार्ध सम्भूता तुल्या कृष्णेन सर्वतः
श्री कृष्णस्त्वमयं राधा त्वं राधा वा हरि स्वयम् ।
नहि वेदेषु मे दृष्टमिति केन निरूपितम्

ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण जन्म खण्ड अ० १५।१०१–१०२

'ब्रह्मवैवर्त' में श्री कृष्ण स्वयं इस रहस्य को स्पष्ट करते हुए राधा से कहते है कि हे सति ! जो तुम हो वही मैं हूँ । हम दोनों में किञ्चिन्मात्र भी भेद नहीं है ।

जिस प्रकार दुग्ध में धवलता अग्नि में दाहकताशक्ति और पृथ्वी में गंध नित्य विद्यमान रहती है उसी प्रकार मैं तुम में सदा निवास करता हूँ—

[1]यथा त्वं च तथाहं च भेदो हि नावयोर्ध्रुवम्
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहिका सति ।
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहं त्वयि संततम्

इन दोनों में भेद बुद्धि रखने वाले के लिये पुराणकार ने अत्यन्त भयङ्कर

---

१. ब्रह्मवैवर्त पुराण १५।६५–६६ ।

दण्ड निश्चित किया है। वे कहते है कि जो नराधम हम दोनों अर्थाप् राधा और राधा और कृष्ण में भेद बुद्धि रखता है वह जब तक सूर्य और चन्द्रमा स्थित हैं तब तक के लिये काल सूत्र नामक नरक में निवास करता है—

[1]आवद्योः भेद बुद्धि च यः करोति नराधमः
तस्य वासः काल सूत्रे यावच्चन्द्र दिवाकरौ ।।

स्कन्द पुराण ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, ब्रह्मवैवत पुराण गर्ग संहिता, नारद पञ्चरात्र आदि में राधा के व्यक्तित्व का विकास अपनी चरम परिणति पर पहुंचा हुआ है। स्वयं कृष्ण तथा ब्रह्मा शङ्कर, नारद, इन्द्र आदि सभी उनकी स्तुति करते हुए मिलते है। तत्व वेत्ताओं ने परब्रह्म पुरुषोत्तम श्री कृष्ण की अर्धाङ्गिनी राधा को मूल प्रकृति के रूप में अपने चिन्तन का केन्द्र बनाया है। योगियों ने कामजयी बनने के लिये काम के वीज ममन्नल्की के रूप में उनका जय किया है, तथा भक्तों ने मदन मोहन की विश्व विमोहिनी शक्ति के रूप में उनकी आराधना की है। रास 'स रसिकों ने रासेश्वरी एवं नित्य निकुञ्चेश्वरी के रूप में उनके दर्शन किये है।

राधा के इसी भव्य रूप से प्रभावित होकर सरस्वत जी ने अपने इस महाकाव्य के प्रथम श्लोक में राधा को निम्नरूप में प्रस्तुत क्रिया है—

[2]राधा श्रृङ्गार सरसी मरालः कमलालयः
पाटलाक्षिपदः पायादपायात् कोऽपि गोकुलम् ।।

राधा श्रृङ्गार सरसी है और कृष्ण उसमें नित्य निवास करने वाले मराल है। अर्थात् कृष्ण रसराज श्रृङ्गार हैं और राधा उस श्रृङ्गार रस की अधिष्ठात् देवी हैं। वे कृष्ण की प्रिया है और कृष्ण उनके प्रियतम है। वे कमलालय है और राधा कमल हैं। कृष्ण पद्मालय हैं और राधा पद्मा है।

[3]पद्मालयापि तपनीय विडम्बिरूपा
राधी भविष्यति बने वसतः प्रिया में ।।

इससे स्पष्ट हो रहा है कि राधा कृष्ण की पत्नी है और कृष्ण राधा के पति है।

राधा का कृष्ण से क्या सम्बन्ध हैं? इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिये उन्होंने राधा के लिये राधी शब्द का प्रयोग किया है जो उनके व्याकरण ज्ञान को तो प्रकत करता ही है साथ ही उनके दार्शनिक दृष्टि कोण को भी स्पष्ट करता है। पाणिनि व्याकरण ने राधी की सिद्धि निम्न प्रकार से की है—

[4]"अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्य कर्तारिच्वि:"

---

१. ब्रह्म वैवर्त पुराण कृष्ण तना खण्ड १५।६७।
२. गोपालविलास १।१ ३. वही १।१५
४. अष्टाध्यायी ५।४।५०

इस सूत्र की वृत्ति के अनुसार विकारात्मतां प्राप्तवत्यां प्रकृतौ वर्तमानात् विकार शब्दात् स्वार्थे च्विर्वा स्यात् करोत्यादिभिर्योगे, अर्थात् विकार को प्राप्त होने वाली प्रकृति के अर्थ में वर्तमान विकार वाचक सुबन्त शब्द से स्वार्थ में च्वि प्रत्यय विकल्प से हो कृ, भू और अस् धातु के योग में किन्तु "अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्" यह वार्तिक निर्देश देता हैं कि अभूत के तद्भाव विषय में अर्थात् जो पहिले वैसा न हो उसके वैसा होने के अर्थ में च्वि प्रत्यय होना चाहिये। अत: राधा शब्द से भू धातु के योग में प्रस्तुत सूत्र से च्वि प्रत्यय होता है। च्वि का सर्वापहारी लोप होने पर 'अस्यच्वौ' सूत्र से राधा में धा के 'आ' को 'ई' हो जाता है। इस प्रकार राधी की सिद्धि होती है। इस राधी शब्द का अर्थ होता है—जो राधा नहीं है वह राधा बनी हुई हैं अत: गोपालविलास की राधी राधा न हो कर वस्तुत: उस पुराण पुरुष क्षीरसागरशायी विष्णु की पत्नी पद्मा ही है जिसने वृन्दाबन में राधा का रूप धारण किया है।

सरस्वती जी ने अपने इस काव्य में आरम्भ से ही गोपाङ्गनाओं की अपेक्षा राधा को उच्च आसन पर विराजमान किया है। गोपियों के दर्शन केवल अभिसारिकाओं के रूप में ही होते है किन्तु राधा उनकी जीवन सर्वस्य बनी हुई है।

गोपिया वृन्दावन में कृष्ण के समीप केलि कानन में केवल अभिसार हेतु ही आती हैं किन्तु राधा में इस प्रकार की कोई कामना दृष्टिगत नहीं होती। उनमें गोपियों की भाँति कोई उत्सुकता नहीं है और ना ही अभिसरण के लिये इतनी तीव्र आकुलता है। उनमें अपने अहम् के मंगल की कोई वासना शेष नहीं है। उनमें केवल अपने प्रेमास्पद गोपाल के ही पूर्ण सुख की कामना रहती है। यही प्रेम और माधुर्य की साधना है और इस साधना का मूर्तिमान रूप ही राधा है।

राधा कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति हैं। सभी शास्त्रों ने भगवान को सच्चिदानन्दमय स्वीकार किया है। वैष्णवाचार्यों के अनुसार भगवान् के सत् अंश की शक्ति का नान सन्धिनी, चिदंश की शक्ति का नाम संवित् और आनन्दांश की शक्ति का नाम ह्लादिनी है।

वैष्णवों के प्रामाणिक ग्रन्थ 'भगवत्संदर्भ' में उन शक्तियों का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है—

[2]"भगवान् सदैव सौम्येदग्र आसीदित्यग्र सद् रूपत्वेन व्यपदिश्यमानो यया सत्तां दधाति धारयति च सा सर्वदेशकाल द्रव्यादि प्राप्तिकरी सन्धिनी, तथा ह्लाद रूपोऽपि यया संविदुत्कर्ष रूपया तं ह्लादं संवेदयति च साह्लादिनीति विवेचनीयम्।

भगवान की इस शुद्ध सत्व रूपा ह्लादिनी शक्ति का सार है विशुद्ध प्रेम, जिसमें एक मात्र अपने प्रियतम कृष्ण को प्रसन्न करने की दिव्य वृत्ति रहती है।

---

१. अष्टाध्यायी ७।४।३२ २. भगवत् सन्दर्भ ११८।

यही प्रेम रस अथवा माधुर्य रस उत्तरोत्तर उच्च स्तर पर पहुंचकर भाव रूप में परिणत होता है क्योंकि रस की सत्ता बिना भाव के और भाव की उपस्थिति बिना रस के हो ही नहीं सकती। अतः कृष्ण रस राज है और राधा भाव सम्राज्ञी है।

प्रेम की घनीभूत प्रगाढ़ अवस्था का नाम ही भाव है इस भाव की गहनतम अवस्था महाभाव कही जाती है। इसी महाभाव की चरमाभिव्यक्ति राधा में प्रगाढ़ रूप में प्राप्त है। वैष्णवाचार्यों के अनुसार इस महाभाव के मोदन और मादन दो रूप है। इनमें मादन सर्वोत्कृष्ट है जिसके दर्शन केवल राधा में ही सम्भव हैं। मादन अर्थात् दिव्य काम से उत्पन्न उद्वेग अथवा कामातिरेक। इसे ही सरस्वती जी कामजा भक्ति कहते हैं। इसी कामजा भक्ति से उत्पन्न मादन भाव से मदोन्मत्त बनी हुई राधा सर्वप्रथम 'गोपालविलास' के द्वितीय सर्ग में निम्न रूप में दिखाई देती हैं—

स्मरोद्धतामन्मथ बाण विक्षता।
मदालसा घूर्णदराल लोचना।
अनङ्गसेनादि सखी निषेविता।
वनं गता दन्तिगताथ राधिका[1]।।

प्रेमातिरेक से उद्धत और प्रेमबाणों से क्षत विक्षत हृदयवाली प्रेम मद से अलसाये हुए अर्धनिमीलित नेत्रों वाली राधिका अनङ्गसेना आदि अपनी अन्तरङ्ग सखियों के साथ गजगति से केलिकानन में पहुँची।

राधा सतत कृष्णमयी हैं अतः अपने प्रियतम के सम्पूर्ण ऐश्वर्य की स्वामिनी हैं। इसी कारण उनके केलि कानन में उपस्थित होते ही सम्पूर्ण अन्धकार समूल नष्ट हो जाता है और कृष्ण का केलि कानन चन्द्रज्योत्स्ना से स्नाव दिखाई देने लगता है। क्रीड़ा वन बीथिकाओं में स्थित ताल तमाल श्वेत हो जाते हैं। तभी राधा के साथ गोपाल का प्रथम परिचय कराती हुई दूतिका कृष्ण से कहती है कि हे कृष्ण। कामदेव के बाणों से पीड़ित बनी हुई तथा तुम्हारी मुरली की मधुर मादक मदिरा का पान कर मदोन्मत्त राधा कामोदधि को आन्दोलित कर देने वाली चन्द्रज्योत्स्ना की भांति सम्पूर्ण कलाओं के स्वामी अपने श्रीकृष्णचन्द्र के समीप आई हैं।

'पञ्चबाण विशिखेन पीड़िता बेणु सीधुनिनदैरथोद्धता।
आजगाम दयितं कलानिधिं राधिका मदन सिन्धु चन्द्रिका।

अपने प्रियतम के प्रेम में आनखशिख आप्लावित राधा को तृषित दृष्टि से देखते हुए कृष्ण उस लावण्यामृत से सम्भृत पुष्करणी में मीनांक की शंका से तैरने लगते हैं और राधा की रूप माधुरी का सम्यक् अवगाहन करते हुए सोचते है कि क्या इस शृङ्गार रस सार सरसी के तटों पर स्थित दो चल स्थल सरोजों से दो कनक कदली

---

१. गो० वि० २/२५। वही २/३६।

उत्पन्न हुए हैं अथवा स्वर्ग गङ्गा के स्वर्ण पुलिनों पर ये दो हेमाद्रि स्थित हैं या खञ्जनों के द्वारा किये गये अन्धकार को दूर करने के लिये सुधाकर की श्वेत आभा वाला कौमुदी का बन्धन तो नहीं है या यह कामदेव का धन बनी हुई राधा ही तो नहीं हैं। यह निश्चय कर लेने के पश्चात् कि यह तो मेरी वही परम प्रेयसी राधा ही हैं, गोपाल कृष्ण उस माधुर्य की महिमा से मण्डित लीलामृतमय मदिरा का नेत्रों से पान करके उस लावण्य रस में सर्वाङ्ग शराबोर हो जाते हैं। तदनन्तर उनके चित्त में उठने वाली प्रत्येक शंका स्वयमेव समाप्त हो जाती है—

'चलस्थल सरोजयोः किमिह हेमरम्भोदयः।
सुवर्ण पुलिन स्थिते वियति काञ्चनाद्रिद्वयम्।
सुधा महसि खञ्जनैस्तमसि कौमुदीबन्धनम्।
धनं कुसुमधन्विनः किमुत राधिका राजते।
नीपीय नेत्र पात्राभ्यांलीलामृतकदम्बकम्।
अथानङ्गरसार्द्राङ्गः शंका पङ्कमलं जहौ॥

राधा के इस अदृष्ट पूर्व सौन्दर्य का दर्शन करके नन्दनन्दन के नेत्र मधुप मद-मस्त हो जाते हैं।

राधा के साथ केलि कानन में पहुँची हुई गोपरमणियां गोपाल के साथ विभिन्न प्रकार की क्रीडायें करती हैं। नन्दनन्दन गोपाल भी उनके साथ विविध मुद्राओं में रमण करते हैं। गोपाङ्गनाओं के कटि प्रान्तों पर पड़ी हुई करधनियों का मधुर गुञ्जन होने लगता है, उरोजों पर हिलते हुए हार और अधिक चञ्चल बन जाते हैं पैरों में पड़े हुए नूपुर झनझनाने लगते हैं, कर कङ्कणों के कोलाहल से सम्पूर्ण केलि कानन मुखरित हो जाता है। किन्तु राधा इस सबसे उदास बनी हुई तटस्थ दृष्टा की भांति सब कुछ देखती रहती हैं। उस सम्पूर्ण वातावरण में निर्लिप्त सी बनी हुई अपने प्रियतम के उस अत्यन्त ऊर्जस्वित रूप को देखती हैं और कुछ अधिक गम्भीर बन जाती हैं। उस समय गोप रमणियां कृष्ण से ऐसे चिपटी हुई थी—जैसे घनश्याम से विद्युत लिपटी रहती हैं, किन्तु राधा का मन उस सबसे परे कहीं अन्यत्र अपने प्रियतम में खोया हुआ था।

गोपियों के बीच से कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं। गोपियाँ कृष्ण के लिये तड़पने लगती हैं! लता तरुओं से कृष्ण के विषय मे पूछती फिरती है, किन्तु राधा इसमें भी कोई सहयोग नहीं देती। उन्हें इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि वे जानती है कि कृष्ण मेरे है और मेरे पास मेरे हृदय में विराजमान है।

कृष्ण पुनः गोपाङ्गनाओं के मध्य प्रकट होते है। विरहातप से मूर्छित उन

---

१. गोपालविलास २/४०-४१।

नव कलिकाओं में नवजीवन का सञ्चार होने लगता है, वे प्रफुल्लित हो जाती हैं और अपने प्रियतम का स्वागत करती हैं। यहाँ भी राधा कोई उत्साह प्रदर्शित नहीं करती है। राधा का प्रेम अत्यन्त गम्भीर है वह छलछलाता नहीं अपितु हृदय में गहराता है। राधा कृष्ण को पूर्णतया एकमात्र अपना बनाना चाहती हैं वे उन पर पूर्ण विजय प्राप्त करके अपना पूर्ण साम्राज्य उन पर स्थापित करना चाहती हैं। अपनी इस तीव्र लालसा को पूर्ण करने के लिये वे अपनी विकट भ्रकुटियों के व्याज से चम्पक की कान्ति के समान और नवपल्लवों के वर्ण वाली अपनी भुज वल्लरियों में काम कार्मुक को साधे हुए हैं, उनके स्वर्ण शिखरों पर गंगा के श्वेत प्रवाह का हार लहरा रहा है। इस समय काम की सेना बनी हुई कमल नेत्रा राधा उस काम चाप पर अपने कुटिल कटाक्षों के तीक्ष्ण बाणों को रख कर नन्दनन्दन पर स्वच्छन्द रूप से तीव्र प्रहार कर रही हैं—

'कांदर्प्यं कार्मुकं किमुरहर विजये विभ्रतीभ्रूमिषेण।
प्रोद्यच्चाम्पेयपाशौ किसलय रुचिरौ बाहुवल्ली बहन्ती ॥
[1]स्वर्गङ्गापूरहारा सुरगिरि कुचभृन्मन्मथोर्वीन्द्र सेना।
राधा राजीव नेत्राकिरदितिर्निशितान्सायकान् दग्निपातान् ॥

गोप युवतियाँ नन्दनन्दन को पुनः अपने बीच में पाकर उनका स्वागत करती हैं और अपने कुचकुङ्कुमाङ्कित उत्तरीयों से बनाये गये आसन पर कृष्ण को सुख पूर्वक समासीन करती हैं। तदनन्तर उनकी सेवा में संलग्न हो जाती हैं वे उन्हें नीलमणि निर्मित सिंहासन पर इन्द्र के समान विराजमान देखकर उन माधुर्योदधि के सौन्दर्य सुधारस का पान करने के लिये मचलने लगती हैं और अधीर होकर कामाधिपति गोपाल की रूप माधुरी पर आक्रमण कर उसकी लूट आरम्भ कर देती हैं। कोई मुकुन्द के मुखेन्दु से निर्गत ताम्बूल कल्क को अपने कर पल्लव पर धारण करती हैं, कोई गोपयुवती पद्मा कुचपालि पालित उनके पादपद्म का मर्दन करती हैं, कोई गोप तरुणी उन्हें अपने गाढालिङ्गन में आबद्ध कर लेती है, कोई मदन मोहन के कपोलों पर उन्मुक्त बिखरी हुई अलकावलि को व्यवस्थित करने के व्याज से उनके कपोलों का चुम्बन कर लेती है।

गोप रमणियों द्वारा निःशङ्क होकर उस रूप निधि की इस प्रकार से होती हुई खुली लूट को राधा सहन नहीं कर सकी। तब उन्होंने मदनाविष्ट होकर श्याम के पूर्व विग्रह को अपने पीन स्तनों में छिपा लिया और कुपित सी होती हुई उन्होंने अपने प्रियतम को अपने भुज पाशों में जकड़ लिया जिससे उनकी अङ्ग बल्लरी भी रोमाञ्चित हो गई—

---

१. गोपालविलास ३/१६।

[1]पीनस्तना र्वाजत पूर्वं विग्रहं कन्दर्प दर्पात्भुजवल्लिनिर्जितम् ।
निपीडयन्ती कुपितेव माधवं राधा दधाराङ्कुरिताङ्गवल्लरीम् ।।

इसके पश्चात् महारास का विशाल आयोजन होता है। गोपियाँ गोपाल के साथ इच्छानुकुल रमण करती हैं। श्याम भी उनके साथ विविध प्रकार से रास क्रीड़ा में आनन्द लेते हैं। समस्त केलिकानन रसाप्लावित हो जाता है। वृन्दावन मत्तमयूर की भांति नृत्य करने लगता है।

रास के इस दैवी उपक्रम में राधा के कहीं दर्शन नहीं होते। गोपियाँ कृष्ण लीलाओं का अनुकरण करती हैं राधा उनमें भी कहीं दिखाई नहीं देती। कवि रास के मध्य में "राधिकाद्यानन्दुः" केवल इतना कहकर नाम मात्र के लिये राधा को प्रस्तुत करते हैं।

फिर सम्पूर्ण रासलीला में राधा के कहीं दर्शन नहीं होते। सम्भवतः इसका कारण यही हो सकता है कि सरस्वती जी ने अराधा पद्मा को राधा के रूप में उपस्थित करके उन्हें श्रीकृष्ण की अनन्य प्रियतमा पत्नी के शीर्षस्थ पद पर प्रतिष्ठित करके उनके उपयुक्त उन्हें सन्मान दिया है क्योंकि गोपाङ्गनायें राधा की ही अंग संग सहचरियां मात्र हैं। एक प्रकार से वे राधा का ही विस्तार मात्र हैं और उन्हीं की सृष्टि हैं। राधा मूल हैं गोपियाँ उस मूल का प्रसार है। अतः राधा को उन्होंने गोपाङ्गनाओं से ही नहीं गोपाल से भी ऊँचे आसन पर समासीन किया है—

[2]"ऊर्ध्वं मुराराति पदं यदार्पितापुण्येनकेनापितथापिचञ्चला'

पूर्व जन्म में किये गये अति पुण्यों के कारण ही राधा गोपाल से भी अधिक उच्च पद प्राप्त किये हुए हैं।

भागवत में राधा नाम का कोई पात्र नहीं है किन्तु एक गोपी इस प्रकार की अवश्य है जिसे भागवतकार ने अत्युच्च पद प्रदान किया है। उसने भगवान कृष्ण की विशेष आराधना की है इसीलिये उसे माधव गोपाल के अधर पान करने तक का अधिकार प्राप्त है—

"[3]तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैःपदानियत्" ।
यैकापहृत्य गोपीनां रहोभुङ्क्तेऽच्युताधरम् ॥

इतना ही नहीं उस गोपवधू को नन्दनन्दन गोपाल अपने स्कन्धों पर आरूढ कर वन प्रान्त में कहीं एकान्त में ले जाते हैं। भगवान का यह स्वभाव है कि वे अपने अनन्य प्रेमियों के योगक्षेम को स्वयं वहन करते है। "तेषा नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं

---

१. वही ३/३२।
२. गो० वि० १०/६६।
३. भागवत १०/३०।३०।

वहाम्यहम् । वहन क्रिया स्कन्धों अथवा सिर के द्वारा ही सम्भव है। यही कार्य वे भागवत में भी करते हैं—

"[1]इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम्'

इसी प्रकार की कोई एक गोपी 'गोपालविलास' में भी है। अन्य सब गोपियाँ जब रास में कृष्ण के साथ रमण कर रही थी तब वह कृष्ण की एकान्त आराधना में व्यस्थ थी। जब गोपीवृन्द अपने आन्तरिक कृष्ण को खोकर उनका बाहर आनन्द ले रही थी तब वह सौभाग्यशालिनी गोपी बाहर के कृष्ण को विस्मृत किये हुए अन्तरगुहा में विराजमान अपने प्रियतम का सान्निध्य पाकर मग्न बनी हुई थी। वे ही ये राधा हैं जो स्थल कमलिनी हैं और जिनसे सङ्गम की लालसा लिये हुए कृष्ण कालिन्दी के एकान्त तट पर ले जाते हैं। जहाँ मन्दमलय समीर मस्ती से बह रहा है। पूर्णशरदेन्दु ने जिसे अपगी चन्द्रिका के विभव से क्षीर सागर बना दिया है। रास मण्डल से दूर निर्जन स्थान पर माधव के साथ रमण करती हुई उस तन्वी के मदनोन्मादक संगीत की लहरियों का पान करने के लिये सहस्र नेत्रों वाले इन्द्र भी सहस्रों श्रवण प्राप्त करने के लिये लालायित हो जाते है, जिनसे वे इस अश्रुत पूर्व सरस स्वरावलि का बार-बार पान कर सकें—

[2]यामुनतीरे स्थल जल नलिनी सङ्गमलालसमलय समीरे।
यामिनिजानि प्रतिहत तमसि क्षीर पयोनिधिमहसि विहारे।
कामपि तन्वीं मधुरिपु सहितांगीतमनोभव समुदय गीताम्।
वीक्ष्य सकामो दशशतनयनः कर्णमलिप्सत् नयन समानम्॥

इससे सिद्ध हो रहा है कि कृष्ण अन्य गोपियों की अपेक्षा राधिका को अपने हृदय में कितना उच्च स्थान देते है, क्योंकि राधा उनकी अनन्य प्रेयसी हैं और उनसे सतत अभियुक्त रहती हैं। उनके हृदयारविन्द में माधव मधुप सर्वदा भृङ्गायमाण रहता है। यही जानकर कृष्ण, राधा के हृदय मैं अपने प्रेम को और लधिक अभिवृद्ध करने के लिये बड़े कौतुहल के साथ राधा को अकेला छोड़कर वन में कहीं अन्तर्धान हो जाते है—

[3]सदैव राधाहृदयारविन्दे भृंगायमानोऽप्यरविन्द नाभिः।
तत्प्रेम वृद्धि विदधद्वनान्तादन्तर्दधेक्वापिकुतूहलेन॥

राधा उनके बिना बिरहानल में जलने लगती हैं। कृष्ण के वियोग में वे उस सरसी की भांति बन गई हैं जिससे श्यामधन विमुख हो गये है और जिसे शरद ऋतु के सूर्य ने तपाकर शुष्क बना दिया है। इस विरह वेदना से अत्यन्त दीन हीन बनी

---

१. भागवत १०।३०।३२। २. गो० वि० ३।६८।
३. गो० वि० ४।१।

हुई राधा को देखकर वृन्दावन में निवास करने वाली कोई मालाकार वधू उन्हें सान्त्वना देती हुई कहती है कि राधे ! तुम तो दामोदर को प्राणों से भी अधिक प्रिय हो उनके हृदय में तुम्हारे लिये अत्यन्त प्रेम है फिर तुम इस विरह ताप में क्यों सन्तप्त हो रही हो—

[1]दामोदर प्राणसमे ! न कामोन्यूनोऽस्ति कश्चित्तव किं कृशासि ।
इत्युक्तवत्यामथ दूतिकायां रुदन्मुखी तां निजगाद राधा ॥

दूतिका के इन सहानुभूति पूर्ण वचनों को सुनकर राधा के हृदद में निरन्तर जलने वाली विरहाग्नि और अधिक प्रज्वलित हो जाती है । उनका रोम रोम नन्द-नन्दन गोपाल के लिये तड़पने लगता है । वे उस मालाकार वधू को अपनी दूतिका बनाकर उसे कृष्ण के समीप यह निवेदन करने के खिये भेजती हैं कि उनके बिना यह विरहानल का तीव्र दाह मेरे हृदय को विदग्ध कर देना चाहता है । यह पाटीर पङ्क और मलयानिल स्वयं हलाहल का कार्य कर रहे हैं । रात मे यह चाँद मेरे ऊपर अग्नि वर्षा करने के लिये ही आकाश में आता है ।

राधा संयोग कालीन स्मृतियों में खोई खोई सी उस दूती से कहती हैं कि यह गजमुक्ताओं की माला जो कृष्ण ने कभी स्वयं अपने हाथ से मेरे गले में पहनाई थी अब यही वियोग के क्षणों में भयङ्कर भुजङ्गी की भांति मुझे नित्य डसती रहती है—

[2]हारावलि मे हृदये कृतासीत् त्वया हरे ! या गज मौक्तिकानाम् ।
सा नाथ नित्य भुजगी भवन्ती दुनोति चित्तं वत किं विधेयम् ॥

हे दूतिके ! मुझे स्मरण है जब प्राणधन श्याम ने अपने कमल चरणों से स्पर्श कर इस दुष्ट अशोक को समद्दत किया था । उनके चरणों से सम्मानित होकर भी यह पाप बुद्धि अपने ऊपर इन कोकिलबधुओं को आश्रय प्रदान कर मुझे निरन्तर पीड़ा पहुँचाता है—

[3]सम्मानितस्ते पद पल्लवाभ्यां नीवस्तरूणामधिपः पुराभूत् ।
स पाप बुद्धि परपुष्ट दुष्टानाश्रित्य मां व्याकुलयत्यजस्रम् ॥

अन्त में राधा दूती से कहती है कि हे दूति के ! मेरी ओर से कृष्ण के चरणों में यह निवेदन अवश्य करना कि गोप रमणियों के नेत्रों को सफल मनोरथ बनाने वाले आपके मुखारविंद के दर्शन न पाकर आपके बिना मेरा यह शरीर अन्य किसी योग्य नहीं है अब यह केवल अग्नि का ही उपभोग बनकर रह गया है—

[4]"बिनाभवन्त यदनन्य योग्यंभवेन्मदङ्गं ज्वलनोपभोग्यम्"

---

१ गो० वि० ४।५। २. वही ४।२४।
३. गो० वि० ४।१६। ४. वही ४।५३।

राधा के इस अत्यन्त करुणापूर्ण विलाप को सुनकर दूती का हृदय भी द्रवित हो जाता है। वह भाव विह्वल हो जाती है और राधा से कहती है कि हे कमल नयने ! मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम्हारे तीक्ष्ण कटाक्षों से आहत होकर कृष्ण तुम्हारे विना कहीं वे लताओं के एकान्त कुन्जों में शयन कर रहे होंगे और अपनी इस काम व्याधि की बाधा को शान्त करने के लिये वहाँ तुम्हारे नाम का जप कर रहे होंगे जो काम पर विजय प्राप्त करने के लिये संसार में केवल एक मात्र अमोघ मन्त्र है—

[1]शङ्के पङ्केरुहमुखि ! तवापाङ्गभल्लेनभिन्नः ।
प्रायः शेते शिशिर लवलीमल देशे सकृष्णः ।
[2]त्वद्गोत्रं वा जपति मदनव्याधि बाधोपशान्त्यै ।
सिद्ध मन्त्रं जगति विजये यद्बलात्पुष्पधन्वा ॥

राधा के पास से चलकर वृन्दावन में विचरण करती हुई दूती कृष्ण के निकट पहुँचती है। राधा की मनोव्यथा का मनन करती हुई और उसके काम ग्रस्त मुख की क्षीण कान्ति का चिन्तन करती है । दूतिका अपनी वाक्चातुरी से विरह वेदना से अत्यन्त दीन हीन बनी राधा की दयनीय दशा का और उसके मन की मर्मान्तिक व्यथा का यथार्थ एवं सजीव चित्रण करती है और कृष्ण के हृदय में राधा के लिये सघन सहानुभूति जाग्रत करने का प्रयास करती हुई कहती है कि हे श्याम जलधर ! वह कोमलाङ्गी माधवी काम के प्रचण्ड तप से सन्तप्त होकर पूर्णतया शुष्क हो गई है। हे सदय ! अब उसके ऊपर करुणा करिये और उस काम भूमि राधा के रस विहीन हृदय को अपने प्रेमरस से आप्लावित करिये। हे श्याम ! प्रत्येक रात्रि में अपने स्वामियों से अभिसिक्त होकर ही कोमलतायें उल्लास को प्राप्त होती हैं—

[3]जलधर ! मृदुलाङ्गी माधवी शोषमागात्
खरतर मधुमित्र स्फूर्जितेनातिवेलम् ।
कुरु सदय रसार्द्रां कामभूमीमिदानीं
निशिनिशि परिसिक्ता बल्लिरुल्लासमेति ॥

दूतिका गोपाल के हृदय में राधा के प्रति उनके पूर्वानुराग को तीव्र करने के लिये राधा के असाधारण सौन्दर्य का उनके मादक माधुर्य का तथा मोहक लावण्य का हृदय ग्राही वर्णन करके मनमोहन गोपाल को मुग्ध बनाती हुई अन्त में कहती है कि हे मधुप ! यद्यपि तुम इस कुमुदवनी की रसपूर्ण पुष्पित लताओं के प्राणधन बने हुए हो फिर भी तुम्हें अपनी उस कोमल कलेवरा चन्द्र बिम्बानना कनक कान्ता परम प्रेयसी पद्मिनी का सेवन अवश्य करना चाहिये—

---

१. वही ४।५५ । २. वही ४।५७ ।
३. गो० वि० ६।५२ ।

'यदपि बहुरसानांपुष्पितानां लताना
मपि कुमुद्वनीनां चञ्चरीक प्रियोऽसि।
तदपि कनक कान्तिर्पद्मिनी कापि कान्ता
रजनिकर मुख श्री प्रेयसी सेवनीया ॥[1]

यह कहकर दूतिका कृष्ण को नमस्कार करके वहाँ से चल देती है और राधा के समीप पहुँचकर उन्हें सखियों के मध्य नन्द नन्दन के ध्यान में मग्न पाती है।

इधर दूतिका के चले जाने के पश्चात् गोपाल कृष्ण राधा का स्मरण करके व्याकुल हो जाते हैं। दूतिका के मुख से राधा की करुण गाथा सुनकर कृष्ण अत्यन्त व्यथित हो जाते हैं। वे इतने आत्म विह्वल हो गये है जिससे उनके अन्तर्मन में निरन्तर रमी हुई अपनी प्रेयसी राधा उन्हें बाह्य जगत में सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है। सम्पूर्ण जगत् उनके लिये राधामय हो गया है। पूर्णेन्दु बिम्ब में उन्हें राधा अपने मुख पर मृगमद की काली बिन्दु लगाये हुए और हृदय पर ज्योत्स्ना का प्रभा भास्वित हार धारण किये हुए दिखाई दे रहो हैं। राधा के वियोग में अत्यन्त अधीर बने हुए गोपाल अपनी सुध बुध खो देते हैं—

गोपाल कृष्ण के उस हृदय द्रावक करुण कुन्दन को सुनकर दूतिका राधा के पास जाती है और कहती है कि हे राधे! तुम अपने हृदय को क्यों पीड़ित कर रही हो? श्याम तुम्हारे वियोग में स्वयं अत्यन्त अधीर बने हुए हैं। कोमलाङ्गी! शीघ्रता से चलकर उनके विरह वेदना से व्यथित और काम वाणों से आहत हृदय को शीतलता प्रदान करो। तुम उनकी परम प्रेयसी हो उनके रहते हुए तुम व्यर्थ ही इस विरह वेदना से अपने को क्यों जरजर बना रही हो? दूती की इस सुधारस सिञ्चित मधुर वाणी के श्रवण मात्र से ही उनके निष्प्रभ नेत्रों में नवीन ज्योति जगमगाने लगती है। अपने प्रियतम के समागम की लालसा से उनके कृशाङ्गों में नूतन शक्ति का सञ्चार होने लगता है, जिसे देखकर दूती उन्हें श्याम के समीप चलने के लिये प्रेरित करती है। वह कहती है कि गजगामिनि! अब बिना समय नष्ट किये अपने प्रियतम से मिलन का आयोजन करो। शरीर पर आभूषण धारण करो और चन्दन मिश्रित केशर से अपने अङ्गों को सुवासित करके मन्मथ बाणों से व्यथित अपने प्रियतम को प्रसन्न करो।

दूती के इस मधुर आग्रह को स्वीकार कर शारद शशाङ्क मुखी राधा अपनी सम्पूर्ण श्रृङ्गार सज्जा कर शोणाम्बर धारण करती है और अपनी अन्तरङ्ग सखियों को साथ लेकर श्रृङ्गार सागर मुकुन्द को अभिनन्दित करने के लिये उद्यत हो जाती है—

---

१. गोपाल विलास ६/५५

[1]राधापि शारद शशाङ्कमुखी सखीभिः
श्रृङ्गार सिन्धुमभिनन्दयितुं मुकुन्दम् ।
राकेव साकमुडुभिः समुदञ्चदिन्दुः
शोणाम्बरं वरतनुः समलञ्चकार ॥

इस समय अपने प्रियतम के ध्यान में मग्न आनन्दातिरेक के कारण राधा स्वयं को खगकुल कलरव से व्याप्त स्वर्ण वल्लरी की भाँति रति के एक मात्र स्थान उस किशोर तरु के आलिङ्गन में आवद्ध अनुभव करती हुई विचित्र विभ्रम के वशीभूत हो जाती हैं—

[2]कूजत्कङ्कण किङ्किणीकारुणत्कारीक्वणन्नूपुराः
किञ्चित् किञ्चिदुदञ्चतिस्भमुरजित् कैशोरलीलामृतम् ।
चञ्चलपत्रिखाकुलंरतिपदं वृक्षं समालिङ्गिता
राजत्काञ्चनवल्लरीव विपिने राधादधे विभ्रमम् ॥

मार्ग में जाते हुए राधा शङ्कर के मन्दिर में पहुँचकर उनसे प्रार्थना करती हुई केवल यही वर माँगती है कि मेरा मन निरन्तर एक मात्र नन्दनन्दन में ही रमण करता रहे—

[3]नन्दस्य सूनोः रमतां निरन्तरं स्वान्तं मदीयं यदि वास्तु त्वत्कृपा ।"

उधर शिव मन्दिर से निकलकर राधा मधुर मुस्कान बिखराती हुई अपनी सखियों के साथ हास परिहास में व्यस्त हो जाती हैं इधर मुदितमना दूतिका कृष्ण के पास से आती है और सखियों को वहीं छोड़कर यह कहती हुई राधा का हाथ पकड़कर अपने साथ ले जाती है कि यह समय एक भी क्षण व्यर्थ खोने का नहीं है—

[4]"नायंक्षणः कौतुक योग्य इत्यमूः सम्वार्यराधां परिगृह्य सागमत् ।"

यहाँ से राधा को लेकर कदम्ब कानन में पहुँच जाती है और राधा से कहती है कि हे सुन्दरि ! तुम्हारे प्राण प्रिय नन्दनन्दन इसी वन में निवास करते हैं ।

वहीं कहीं किसी वृक्ष की छाया में विश्राम करते हुए मदन मोहन गोपाल अपने श्रवणों से दूतिका की बाणी से निसृत इस मधुर सुधा रस का पान करके और अधिक मदोन्मत्त हो जाते हैं । तदनन्तर कमलापति कृष्ण नितान्त चञ्चल बने हुए दूती से पूछते हैं कि मेरी वह परम प्रेयसी राधा कहाँ है ?

[5]तत्कर्णपात्रेण वचःसुधासवं पीत्वाप्रमत्तः सबलानुजोऽभवत् ।
कुत्रेति राधा बचनेन चापलं नीतोनितान्तं कमलापतिः पुनः ॥

राधा भी मदन मोहन के मुख चन्द्र की चन्द्रिका का पान कर चकोरी के

१. गो० वि० ८/५६ ।
२. गो० वि० ६/५१ । ३. वही० १०/११ ।
४. वही १०/२६ । ५. वही० १०/३५ ।

समान अत्यन्त अधीर हो जाती है। इन्दिरापति मुकन्द भी तीव्र उत्सुकता के साथ देखकर उसी प्रकार लालायित हो आते हैं जिस प्रकार पन्नगाशन गरुड़ अपने सामने पीयूष पात्री को देखकर उसका पान करने के लिये बेचैन हो जाता है। उसी प्रकार राधा भी अपने कान्त के काम बाणों से आहत होकर जड़ बन जाती हैं और श्याम के पास जाने में भी स्वयं को असमर्थ पाती हैं—

[1]तामीहमानोऽभवदिंदिरापतिःपीयूष पात्रीमिव पन्नगाशनः।
राधापि कान्तं प्रतिकाममार्गणैः भिन्नानना तं गमनाय नाशकत्॥

अपने प्रियतम नन्दनन्दन के सान्निध्य में स्थित राधा से दूतिका यह कहकर चली जाती है कि मैं एक क्षण के लिये तुम्हारी सखियों के पास जाती हूँ और उनसे तुम्हारे लिये सरोजावलि लेकर अभी आती हूँ। तदनन्तर राधा अपने प्रियतम के समीप कुञ्ज में पहुँच जाती है। वहाँ वे अपने प्रियतम को पाकर आनन्द मग्न हो जाती हैं। राधा माधव के इस मिलन की सिद्धि के लिये ही सरस्वती जी ने गोपालविलास की रचना की है।

(ग) रास वर्णन

श्रुतियों में उस परात्पर पूर्ण ब्रह्म तत्व को विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है। "तैत्तिरीय उपनिषद्" उने अन्न प्राण मन विज्ञान आदि बताने के पश्चात् अन्त में आनन्द के नाम मे उस ब्रह्म का वर्णन निम्न प्रकार से करता है—

[2]आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि
जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति॥

अर्थात् यह निश्चय पूर्वक जान लिया गया है कि आनन्द ही ब्रह्म हैं, आनन्द स्वरूप परात्पर तत्व से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर आनन्द के द्वारा ही जीवित रहते हैं और अन्त में उस आनन्द स्वरूप में ही प्रविष्ट हो जाते हैं। इस आनन्द ब्रह्म की साधना ही ऋग्वेद से लेकर आज के सम्पूर्ण आध्यात्मिक साहित्य में सर्वत्र प्राप्त होती है।

इस आनन्द ब्रह्म का स्वरूप रसमय है। इसे द्वितीय बल्ली में पहले ही बताया जा चुका है कि जिस आनन्द ब्रह्म से यह सृष्टि उत्पन्न होती है इस का मूल वह रसमय सर्वेश्वर स्वयं ही है—

[3]"यद्वैतत्सुकृतम् रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति।"

अर्थात् सृष्टि की रचना कर उसी में प्रविष्ट होकर रहने वाले वे परब्रह्म परमात्मा निश्चित रूप से रस स्वरूप हैं। उस रसमय परात्पर ब्रह्म को पाकर ही यह जीवात्मा परमानन्द का अनुभव करता है।

---

१. गो वि० १०।३९।
२. तैत्तिरीय उपनिषद् ३।६।   ३. वही २।६।

अतः जो आनन्द इस दृश्यमान जगत् का कारण है उसका मूल यह रस ब्रह्म ही है, जो लीला पुरुषोत्तम रस ब्रह्म के नाम से विख्यात है। लीला पुरुषोत्तम कौन है? इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए कृष्ण स्वयं गीता में कहते हैं—

[1]यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपिचोत्तमः।
अतोऽस्मिन् लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

हे अर्जुन! क्योंकि मैं नाशवान् जड़ पदार्थों से तो सर्वथा अतीत हूँ हो मैं अविनाशी अक्षर जीवात्मा से भी उत्तम हूँ, इसीलिए लोक में और वेद में मैं पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। अतः जो क्षर से अतीत है और अक्षर तत्व से उत्तम है वही रसमय है और वही पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं। जिस प्रकार समूर्तधूप ही अमूर्त सुगन्ध का विस्तार करता है वैसे ही समूर्त रसतत्व के अवलम्बन से ही अमूर्त आनन्द तत्व का आलोक विस्तृत होता है। जैसे धूप ही सौरभ की प्रतिष्ठा है वैसे ही रस ही आनन्द की प्रतिष्ठा है। सविशेष रस ब्रह्म में ही निर्विशेष आनन्द प्रतिष्ठित है। इसीलिये रस रूप भगवान कृष्ण को गीता ने ब्रह्म की प्रतिष्ठा बताया है—

[2]"ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्य च।"

अर्थात् मैं निश्चित रूप से उस अव्यय अमृत रसमय ब्रह्म की प्रतिष्ठा हूँ। भगवतपाद आचार्य शङ्कर ने गीता के अपने भाष्य में प्रतिष्ठा का अर्थ प्रतिमा किया है। उनकी दृष्टि में कृष्ण ही स्वयं ब्रह्म की प्रतिष्ठा हैं ब्रह्म का स्वरूप हैं। भागवत में भी अनेक स्थानों पर श्रीकृष्ण को 'विश्वात्मा' अखिलात्मनामात्मा' आदि विशेषणों से विभूषित किया है—

[3]अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान् भूतभावनः।
कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नोवदविस्तरात्॥
[4]कृष्णमेनमवेहित्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥

राजा परीक्षित शुकदेव जी से प्रार्थना करते हैं कि हे मुनिराज! भूतभावन भगवान श्रीकृष्ण ने यदुवंश में अवतीर्ण होकर जो-जो कार्य किये हैं उन्हें विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करिये। शुकदेव जी बताते हैं कि हे राजन्! तुम निश्चित रूप से श्रीकृष्ण को सब प्राणियों की आत्मा समझो संसार का कल्याण करने के लिये ही उन्होंने अपनी माया से मनुष्य शरीर धारण किया है। तात्विक दृष्टि से ये पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर ही हैं।

---

१. गीता १५।१८।
२. गीता १४।२७। ३. भागवत १०.१.३।
४. वही १०।१४।५५।

श्रीकृष्ण विश्व की आत्मा हैं और यह आत्मा सबको सर्वाधिक प्रिय है। प्रत्येक प्राणी अपने से अथवा अपनी आत्मा से ही अनन्य प्रेम करता है। पुत्र आदि में जो घनिष्ठ प्रेम दिखाई देता है वह इस आत्मा के ही कारण है। पुत्र के लिये पुत्र प्रिय नहीं होता आत्मा के लिये पुत्र प्रिय होता है। इसलिये यह आत्मा—

[1]"प्रेयोपुत्रात् प्रेयोवित्तात् प्रेयस्यादन्यस्मात् सर्वस्मात् प्रेष्ठसन् प्रेयसामपि।"

अतः यह आत्मा अन्य समस्त सांसारिक पदार्थों के साथ-साथ पुत्र वित्त आदि से भी सर्वाधिक प्रिय हैं। फिर विश्वात्मा श्रीकृष्ण तो प्राणी मात्र की आत्मा हैं। अपने हृदय वृन्दावन में श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा उनके प्रत्यक्ष दर्शन करने वाले भक्तों के लिये तो वे प्राणों के प्राण, प्रिय पदार्थों में सर्वाधिक प्रिय और सब रसों के एक मात्र रस है।

यही रस स्वरूप आनन्दमय विश्वात्मा श्रीकृष्ण महाकाव्य गोपालविलास के काव्य रस के व्यपदेश से नन्द यशोदा के प्राण प्रिय पुत्र के रूप में गोप बालाओं के प्राणप्रिय प्रेमी के रूप में तथा राधा के प्राणवल्लभ परम प्रियतम के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।

गोपाल विलास के द्वितीय और तृतीय सर्ग में रास का वर्णन हैं। इन दोनों सर्गों में रसराज श्रीकृष्ण की परम दिव्य लीलाओं के अनेक दृश्य चित्रित हैं। निज स्वरूपभूता एवं महाभाव रूपा आह्लादिनी शक्ति राधा तथा उन्ही राधा की काय व्यूह रूपा गोपाङ्गनाओं के साथ की गई भगवान की रसमयी क्रीडाओं का चित्रण है। 'रास' शब्द का मूल रम है और रस स्वयं भगवान् कृष्ण ही हैं। उन्हें ही 'रसो वै सः' कहा गया है।

यह 'रसो वै सः' ही समस्त रसों का कारण है। यह मूल ही जब अनेक रसों के रूप में प्रकट होकर अनेक रसों का अनन्त रसास्वादन कराता है अथवा यही रस जब रस समूह के रूप में व्यक्त होकर स्वयं ही आस्वाद, आस्वादक, और आस्वाद्य बन जाता है और विभिन्न आलम्बनों और उद्दीपनों के रूप में क्रीड़ा करता है, वही रास कहलाता हैं।

यह रास वस्तुतः परम उज्ज्वल परमात्म रस का ही एक दिव्य प्रकाश है। इस परम रस की सर्वाधिक स्फूर्ति कृष्ण प्रेम स्वरूपा गोपियों के हृदयों में ही होती है। इस अमृत रस का पान करने के लिये गोपी बनना होगा।

इस रास लीला का आरम्भ गोपालविलास के द्वितीय सर्ग से ही हो जाता है। कात्यायनी व्रत परायणा व्रज देवियों को दिया हुआ वर कृष्ण को स्मरण है। अतः वे अपने दिये हुए वर को सफल बनाने के लिये वृन्दावन में प्रवेश करते हैं।

---

१. बृहदारण्यकोपनिषद् ४।५।६।

नन्द नन्दन को अभिसरण के लिये उद्यत देखकर ऋतुराज वसन्त अन्य समस्त ऋतुओं सहित कृष्ण का स्वागत करने के लिये वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। अभिसार के लिये अत्यन्त उत्सुक बनी हुई गोप रमणियों की इस चिर अभीप्सित मनोकामना को पूर्ण करने के लिये नन्दनन्दन कृष्ण अमृतरस वर्षिणी वंशी की मादक स्वरावलि से और अपने मदनोन्मादक गायन से वातावरण को और अधिक उत्तेजित बना देते हैं। गोपरमणियाँ भी इस चित्तोद्रावक स्वर लहरी के सुनते ही कृष्ण के दिये हुए समय का स्मरण करती हैं और तत्काल उनके समीप पहुँचने के लिये व्याकुल हो जाती हैं। जो जिस स्थिति में है वह उसी प्रकार से अपने प्राण वल्लभ से मिलने के लिये चल देती है। वे केलिकामा मदान्ध बनी हुई इस घोर अन्धकार में वन के ऊबड़ खावड़ पथ पर गिरती पड़ती केलि कानन की ओर अग्रसर हो रही है। वे स्मरोत्सुका बनी हुई कङ्कणों को कानों में पहन कर जा रही है। वे साक्षात् शृङ्गार वापी बनी हुई हैं, काम सन्ताप का समूल विनाश करने वाली है, सुमनों के साथ सम्वर्धित हुई सम्भोग वल्लियाँ हैं वे कामाङ्कुरा और काम यश का विस्तार करने वाली हैं वे कामोत्सव की शोभा हैं तथा काम मतंग गामिनी हैं—

'शृङ्गार वापी स्मर ताप नाशिनी
सम्भोग वल्ली कुसुमेषु वर्धिनी
कामाङ्कुरा काम यशोविसारिणी
कामोत्सवा काम मतङ्गगामिनी ॥[1]

एक-एक कर सभी गोप तरुणियां रसाधिपति रासेश्वर कृष्ण के आश्रय में पहुँच रही हैं। सबसे अन्त में अपनी अनङ्गसेना आदि अन्तरङ्ग सखियों के साथ काम वाण से क्षत विक्षत हृदय वाली राधा गजगति से रास भूमि में पहुँचती हैं। इसी समय पूर्ण चन्द्रमा का उदय होता है। तभी काम चाप की टङ्कार के समान ब्रज-बालाओं का शृङ्गार बन कर कृष्ण की मुरली के मादक स्वर गूँजने लगे। चारों ओर गोप रमणियों की कामसेना के पदाङ्गदों की प्रचण्ड ध्वनियाँ सुनाई देने लगीं। जिन्हें सुनकर कृष्ण का हृदय कम्पित होने लगा और उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया। इसी अवसर पर किसी दूती ने कृष्ण से राधा का प्रथम परिचय कराया। उस लीलाभृत कदम्बक का नेत्रों से पान कर नन्दनन्दन भी काम रस से पूर्णतया अभिसिक्त हो जाते हैं और राधा के प्रति अपने मन से प्रत्येक प्रकार की शङ्का का त्याग कर देते हैं अपने सामने उन असंख्य गोपियों को देखकर कृष्ण उनका स्वागत करते हैं और उनसे इस अर्धरात्रि में कन्टकाकीर्ण वन में आने का कारण पूछते है। कृष्ण उनसे कहते हैं कि कुल कामिनियां रात्रि में अपने पतियों का परित्याग कर घर से बाहर नहीं निकलती। अतः तुम मेरे इस कथन को सुनकर, वसन्त तिलक वृन्दा-

---

१. गोपाल विलास २/२२।

बन को और यमुना के तटों को सर्वत्र चन्द्रज्योत्स्ना में स्नात देखकर अपने-अपने घरों को तत्काल लौट जाओ।

गोपाल कृष्ण की इस निर्मम वाणी को सुनकर उनके हृदयों पर सहसा वज्र-पात सा हो जाता है। अब भविष्य में सदा विरह की तीव्र ज्वाला में जलते रहने की कल्पना मात्र से ही उन कोमलाङ्गी गोपाङ्गनाओं के कोमल कलेवर कमलनियों की भाँति थर-थर कांपने लगते हैं। अन्त में वे इस असह्य वेदना से मूर्छित हो जाती हैं—

[1]"सरोजिनी सङ्गसमीरणेन प्रकम्पिताङ्ग्योमुमुहुर्वराङ्ग्यः"

पुनः तनिक सावधान होकर वे कृष्ण से कहती हैं कि अभी-अभी आपने अपने श्रीमुख से निवेदन किया है कि कुल वधुएँ रात्रि में अपने पतियों को इस प्रकार नहीं छोड़ती किन्तु आपके अतिरिक्त इस संसार में हमारा अन्य कोई पति नहीं है। तुम्हीं हमारे काम हो और हम तुम्हारी कामिनियां हैं। तुम्हीं हमारे एक मात्र प्रियतम हो और हम आपकी प्रियतमायें हैं। हमारे नेत्रों में तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई निवास नहीं करता, हम अन्य किसी को नहीं जानतीं।

[2]प्रियेति जगती तले प्रियतमं भवन्तं बिना।
नकञ्चन दृगञ्चलोच्छलित काम ! विद्मो वयम् ॥

इस समय चन्द्र ज्योत्सना से वृन्दावन के दिग्दिगन्त शराबोर हो रहे हैं। कदम्ब कानन पुष्प-परागों से आरञ्जित हो रहा है। अपनी प्रियाओं की अमृत रस में भीगी हुई यह मधुर वाणी सुनकर नन्दनन्दन भाव विभोर हो जाते हैं। गोपियों के हृदयों में अपने प्रति इस अनन्य प्रेम को देखकर व्रजेशनन्दन काम बाणों से विह्वल बन जाते हैं। तदनन्तर अपनी प्रेयसियों के हृदयों में उत्पन्न इस तीव्र अनुराग को और अधिक प्रवुद्ध करने के लिये अपना मधुर एवं मनोन्मादक गायन आरम्भ करते हैं—

[3]ततः कदम्ब कानने प्रसून धूलि धूसरे
कुमुद्वतीपतिद्युति प्रकाशिते दिगन्तरे
वचो निशम्य सुभ्रवां मनोजबाण विह्वलः
प्रिया मनो मनोभवं विवर्धयन् हरिर्जगौ ॥

तत्काल गोप रमणियों के साथ रास आरम्भ हो जाता है। मधुर संगीत की लय पर रास मण्डल में काम सर्वस्व कृष्ण के शिरोभूषण के साथ-साथ असंख्य मयूर पिच्छ मस्ती से मचलने लगते हैं। अपने प्रियतम को इस समय आनन्दोन्मत्त देखकर

---

१. गोपाल विलास २/४६। २. वही २/४८।
३. वही २/५१।

गोपाङ्गनाओं के मधुर हास से रास मण्डल गुञ्जित हो जाता है। चञ्चल कुण्डल उनके कपोलों पर केलि करने लगते हैं। तभी गोपाल उन मदनोन्मत्त गोप तरुणियों को आलिंगन आबद्ध करमें उनका चुम्बन करते हैं और काम रस से आतुर बनी हुई अपनी प्रेयसियों के चन्दन चर्चित उरोजों का चुम्बन एवं जंघाओं का मर्दन कर उन्हें और अधिक रसाकुल बना देते हैं—

[1]ततः सनन्द नन्दनः चल.शिखण्डमण्डनः
सहास रास मण्डले कपोल लोल कुण्डले
त्रपाकरः क्षपाकरः स्फुरन्मुखो नितम्बिनी
चुचुम्ब चन्दनाङ्कितः स्तनद्वयोरुमर्दनः ॥

रास क्रीड़ा में गोप युवतियों के कटि तटों पर रेंगती हुई किङ्किणियों की किलकारियों से करतालिका वादन में तीव्रगति से आन्दोलित होने वाले असंख्य कङ्कणों के कलरव से नृत्य के समय पदाङ्गदों की झनझनाहट से केलिकानन के दिग्-दिगन्त आगुञ्जित हो जाते हैं।

[2]कटीर रिङ्गि किङ्किणी कराब्ज कङ्कण क्वणैः।
झणत्झणत्पदाङ्गदस्वनैश्च संचिता दिशः॥

उसी समय श्रीकृष्ण की पीयूष वर्षिणी वंशी के मादक मधुर स्वरों ने, रास रस का पान कर आत्मविमुग्ध बनी हुई गोप बधुओं की धैर्याटवी को ध्वस्त कर दिया और उनके सर्वोत्तम साध्वी पद को सदा-सदा के लिये पोंछ डाला। शङ्कर की क्रोधाग्नि से भस्मीभूत कंदर्प को पुनः जीवित कर उसे अत्यन्त उग्र बना दिया। कृष्ण की वंशी की ध्वनि ने रास मण्डल के शृङ्गारार्णव में चन्द्रमा की भाँति उदित होकर सम्पूर्ण वातावरण को अत्यधिक आह्लादित बना दिया।

[3]पीयूषप्पिचु मन्दयन् कुलवधूधैर्याटवीं त्रोटयन्
कन्दर्पद्रुममिन्दु शेखर रुषा भस्मान्तमुज्जीवयन्
ग्रावाणां द्रवयन् श्रुति सफलयन् साध्वीपदं प्रोञ्छयन्
शृङ्गारार्णव शीतरोचिरुदभूत्कंसारि वंशीरवः॥

तदनन्तर अपने मुखों की कान्ति से चन्द्रमा को निष्प्रभ बना देने वाली उन गोप रमणियों को अपने हाथों में लेकर नन्दनन्दन गोपाल पद्मराग से पङ्किल बने हुए रासमण्डल में रास रस पान से उन्मत्त बनी हुई मधुकारियों के मण्डल मे विहार करने लगते हैं और उन चपलाओं की कान्तियों से चमत्कृत हो जाते हैं।

---

१. गोपाल विलास २/५२। २. वही २/५३।
३. वही २/५४।

[1]परिगृह्य करे रमणी निकर
मुख दीधिति निन्दित शीतकरम्
भ्रमतिस्म चरत् भ्रमरी निकरे
विपिने घन नीरज धूलिभरे ।।

गहन नील नीरद की आभा वाले नन्दनन्दन गोपाल रास मण्डल में रस वृष्टि कर रहे हैं। उनके चारों ओर असंख्य मयूर पिच्छ नर्तन कर रहे हैं। वर्षाकालीन नव कदम्ब की कान्ति वाले श्याम घन गोपाल अपने चारों ओर मचलती हुई उन चपलाओं के विविध विलासों से आनन्दित हो रहे हैं।

[2]घनवारि विभूषित नील वपुःपरिनर्तितकेकिशिखण्डगणः
सघन समयो नव नीपरुचिश्चपला द्युतिभिर्मघभिन्मुमुदे ।।

गोपाङ्गनायें भी उस जगत् विजयी काम सम्राट् को अत्यन्त निकट पाकर अपने हृदय में समा लेना चाहती है तथा उस परमानन्द प्रेमघन में लीन हो जाने के लिये मचल रही है। नाटयाचार्य—भरत मुनि द्वारा निर्दिष्ट नृत्यकला में दक्ष ये गोप रमणियाँ नटवर कृष्ण के साथ निमग्न हो रही हैं। आनन्दातिरेक के कारण उस संगीत की स्वर लहरियों में भाव विभोर बनी हुई उन हर्षोन्मत्त गोप बालाओं की बीणाओं के स्वर गूंजते हुए ऐसे लग रहे हैं मानों उनकी शृंगारामृत सरसी के तट पर स्थित युवा चक्रवाक् युगल रूप उनके उरोज अपने अन्तर्घोषों को प्रतिध्वनित कर रहे हों।

[3]बीणानामजनिरवस्तदाङ्गनानां, संगीते मुरमथन प्रहर्षिणीनाम्
शृङ्गारामृत सरसी रथाङ्गयूनोरुद्घोषः किमु कुचयोरमूत्तदासाम् ।।

रास क्रीड़ा में व्यस्त गोप तरुणियां इस समय पूर्णतया गोपाल के गाढालिंगन में आबद्ध हैं। अब वे काम देव के कण्ठ में पड़ी हुई नील कमलनियों और चम्पक मालाओं की भांति सुशोभित हो रही हैं।

[4]किं कुसुमेषोः कण्ठ विभूषा नील सरोजा चम्पकमाला
नन्द तनूजालिङ्गन काले रेजुरमन्द गोप सुदत्यः ।।

अत्यधिक उन्मत्तता के कारण रासलीला में गोपीरमण गोपाल के नखों से गोप युवतियों की चोलियाँ फट जाती हैं जिन्हें देखकर ऐसा लगता है कि शम्बर का बध करने के लिये विभिन्न प्रकार के तीक्ष्ण बाणों का प्रयोग किया गया हो। रसिक शिरोमणि कृष्ण के साथ सम्पन्न हो रही इस रासलीला में गोपांगनायें इतनी आत्म विस्मृत हो जाती हैं जिससे उन्हें रास क्रीड़ा में शिथिल होकर कटि से नीचे स्खलित होते हुए अपने उत्तरियों का भी बोध नहीं रहता।

---

१. गोपाल विलास २/५६। २. वही २/५९।
३. गोपाल विलास २/६३। ४. वही २/६४।

[1]'कान्त नखान्तैर्भिन्न निचोलाः शम्बरहन्तुर्बाणविभिन्नाः
रास विहारे गोप सुदत्यः स्रस्त दुकूलं नोद्धृतवत्यः ॥

इस समय रास लीला अपनी चरम सीमा पर थी। तभी सहसा गोपतरुणियों की हृद्वनी में लहलहाते हुए काम रसाल को और अधिक अभिवृद्ध करने के लिये नन्द नन्दन गोपाल वहीं अन्धकार से भरे हुए ताल तमालों के बन में अन्तर्धान हो जाते हैं।

अपने बीच से अचानक कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर गोप युवतियां बेसुध हो जाती हैं। विक्षिप्ताओं की भांति वे सारे वृन्दावन में तरु लताओं से कृष्ण के विषय में पूछतीं फिरती हैं। अन्त में सन्ध्या समय अन्धेरा होने पर अत्यन्त निराश होकर वे कृष्ण के श्रीचरणों से अङ्कित मधुपों के मधुर गुञ्जनों से व्याप्त यमुना के तट पर पहुँचती हैं जहाँ मन्दार सुमनों से सुरभित समीर मन्द-मन्द बह रहा है। वहीं अपने प्रियतम गोपाल के वियोग में व्यथित बनी हुई गोपियां विविध प्रकार से हृदय द्रावक विलाप करने लगती हैं। अपने प्रेमियों के लिये अकारण करुण, अत्यन्त उदार एवं कोमल हृदय कृष्ण उनके मध्य प्रकट हो जाते हैं। अपने प्राण प्रिय मनमोहन को देखते ही उन मृगनयनियों के नेत्रों में अति तरलता आ जाती है। वे सब एक साथ उठकर अपने प्रियतम का स्वागत करती हैं। तत्पश्चात् कुत्र कुङ्कुमों से रंग-बिरंगे बने हुए अपने उत्तरियों से वे कृष्ण के लिये एक सुन्दर सा आसन बनाकर उस पर उन्हें समासीन करती हैं और सब प्रकार से उनकी सेवा में संलग्न हो जाती हैं।

[2]''तदीय सेवामिषतः समन्ततः'

वे भली भांति जानती हैं कि उनके गोपाल किस प्रकार की सेवा से सर्वाधिक प्रसन्न होते हैं। अतः वे अपने रास-रस रसिक प्राणधन नन्दनन्दन को अपने सामने सुख पूर्वक विराजमान देखकर वे सौन्दर्य माधुर्य निधि गोपाल के लावण्य रस की लूट आरम्भ कर देती हैं। कोई गोप युवती उनके अङ्गों को अपने गाढालिङ्गन में आवद्ध कर लेती है और कमल दलों से उन पर व्यजन करने लगती है, कोई अन्य गोपरमणी अपने कान्त के कपोलों पर खेलती हुई अलकों को व्यवस्थित करती हुई उनके मुख का चुम्बन कर लेती है—

[3]'लोलाल कान् कान्तकपोल सङ्गतीन
सम्वृण्वती कादि चुचम्ब तन्मुखम्
अन्या तदंगानि विमृज्य पाणिना
सबीजयामास सरोजिनी दलैः ॥

---

१. गोपाल विलास २/६६। २. वही ३/२०।
३. वही ३/२४।

केलि कोप में कोई गोप बाला अपने प्रियतम गोविन्द से अत्यधिक रुष्ट है। अतः वह मौन बनी हुई अपने हृदय में अपने प्राणधन का चिन्तन कर रही है। किन्तु गहन रोष के कारण वह कनक कामिनी रत्न जटित धरा की भाँति सुशोभित हो रही है।

[1]क्रीडारुषा कापि विधाय मौनं तत्पाद पद्मं हृदि चिन्तयन्ती
रोमाञ्चिता स्वर्णरुचिश्चकासते रत्नाङ्कुरा हेममयी महीव ॥

रास क्रीड़ा के लिये सन्नद्ध कोई गोप तरुणी अपने नेत्रों को मृगमद की बिन्दुओं से सजाये हुए है और मस्तक पर चन्दन का त्रिपुण्ड लगा हुआ है जूड़े में बाल चन्द्रमा को बांधे हुए है। वह प्रचण्ड कामवेग से क्रोधाविष्ट बनी हुई दूसरी चण्डी की भाँति अपने प्रिय के मुख को उसी प्रकार से अपलक निहार रही है जैसे गर्वोन्मत्ता चण्डी नीलकण्ठ को अपने नेत्रों से पी जाना चाहती हों।

[2]मृगमद पृषत विलोचन भाला,
मलयज नवविधुमण्डित मौलिः।
मुररिपुमुखमपरैक्षत चण्डी,
गिरिश वदनमिव गर्वित चण्डी ॥

चारों ओर से अपने ऊपर अपनी प्रेयसियों के निरन्तर इस प्रकार के प्रहार होते हुए देखकर गोपाल भी अधीर हो जाते हैं, क्योंकि किसी अन्य कोकिल कण्ठी ने अपने प्रियतम के हृदय में अपने विवेक रूप हरिण के साथ निरन्तर रहने वाली उस धृति रूप हरिणी को काम व्याध के धनुप पर बाण चढ़ाकर सदा-सदा के लिये सुला दिया है।

[3]हरिणीं धृतिं मुरहरस्य हृद्वने
सहितां विवेक हरिणेन सन्ततम्
विदधेऽपरान्यभृत मञ्जु भाषिणी
सुमनो धनुर्मृगयुर्मार्गणाहताम् ॥

इस समय रासलीला में कृष्ण को पूर्णतया धृष्ट, अधीर एवं अत्युग्र बना देखकर गोपांगनाओं के हृदय अत्यधिक चिन्ताग्रस्त हो जाते हैं। वे सोच रही हैं कि जिस इन्द्र ने अपने वज्र से जिन धरणी धरों को ध्वस्त कर दिया था वे आज तक उत्पन्न नहीं हुए। हमारे प्रियतम रास-रस रसिक कृष्ण उस इन्द्र के ही सहोदर हैं। अतः कुछ पता नहीं वे आज हमारे साथ किस प्रकार का व्यवहार करेंगे। इसी गहन चिन्ता के कारण उनके उरोज शिखरों में कम्पन होने लगता है और वे अत्यन्त क्षुब्ध

१. गोपालविलास ३/२५। २. वही ३/२६।
३. वही ३/२७।

हो जाती हैं उनके शरीर से पसीना बहने लगता है, क्योंकि वे जानती हैं कि जिन शैल शिखरों को इन्द्र ने ध्वस्त किया था वे तो मिट्टी पत्थर कङ्कड़ आदि के बने हुए थे किन्तु हमारे वक्षोज शैल तो स्वर्णिम है इन्हें ये मदनोन्मत्त माधव किस प्रकार छोड़ देंगे। अतः इन पर अवश्य भयङ्कर आक्रमण होने वाला है।

[1]देवेन्द्र वज्रादभवन्नपक्षाः क्षोणीधरास्तस्य सहोदरोऽयम्।
कर्ता किमद्येति तदा वधूनां वक्षोज शैलेषु वभूव कम्पः॥

एषः भ्राता गोत्रभेत्तुः पुरस्तात्
बालक्रीडोत्पाटितक्ष्मा धरेन्द्रः
एवं क्षोभः स्वेदधाराविरासीत्
बालावक्षः स्वर्णभूमीधराणाम्॥

व्रजेन्द्र नन्दन कृष्ण सर्वान्तर्यामी हैं। वे उनके हृदय की बात को जान गये। तभी अपनी प्रेयसियों के केश पाशों को अपने हाथों से पकड़कर उन पर चुम्बनों की वर्षा कर देते हैं और उनके पृथुल पयोधरों का निर्ममता पूर्वक मर्दन करने लगते हैं। बदले में अपने प्रियतम से इन चिर अभीप्सित अमूल्य उपहारों को पाकर गोप रमणियां अद्‌भुत सुषमा से सुशोभित हो रही है।

[2]कर कच ग्रह संग्रह चुम्बनात्
अनुकुच द्वय निर्दय मर्दनम्,
मधुरिपोः प्रतिलभ्य वरांगना
निरुपमां सषमामथ ता दधुः॥

क्योंकि नन्दनन्दन गोपाल सम्पूर्ण गुणों के एक मात्र आलय हैं। अतः रास क्रीड़ा के समय वे अपनी प्रियतमाओं के भुज गुणों से अपने कण्ठ का बन्धन सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। सम्भवतः इसीलिये इन कामिनियों के कुचों से निरन्तर क्रीड़ा करने वाले उनके हारों ने गाढ़ालिंगन के समय अपनी गुणावलियों का परित्याग कर दिया है।

[3]गुणालयत्वादबलाभुजाभ्यां मुरारिरप्यायतकण्ठ बन्धम्।
इतीव तासां कुच सङ्गिहारा जहुर्गुणालि परिरम्भ काले॥

रास क्रीड़ा में बार-बार नन्दनन्दन गोपाल के नखाघातों से विदीर्ण हुए गोप रमणियों के स्तन मण्डल ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानों वृन्दावन के इन ताम्रवर्ण के गदराये हुए आम्रफलों को किसी शुक ने अपनी चञ्चु से क्षत-विक्षत कर दिया है।

---

१. गोपालविलास ३/२९-३०। २. वही ३/३३।
३. वही ३/३४।

[1]मुहुर्नखाघात विदारितानि वभुर्बधूनां कुचमण्डलानि ।
आम्राणि ताम्राणि यथा वनीनां शुकस्य चञ्चुक्षत सङ्कुलानि ।।

कृष्ण अपनी प्रियतमाओं के बिम्बाधरों को बड़ी तन्मयता के साथ देख रहे हैं और सोच रहे हैं कि इनके ये अधर जो बाहर से ही सुधामाधुरी सार के स्वाद को भी तुच्छ बनाने वाले हैं । तब इनके अन्दर का रस कैसा अलौकिक होगा ? सम्भवतः यही जानने के लिये नन्द नन्दन ने गोपवधुओं के अधरों को अपने दन्त क्षतों से भर दिया है ।

[2]अधरौ कुरुते रसं सुधाया मधुरिमणा बहिरन्तरेऽस्ति किं वा
अधरे रदन क्षत वधूनां मधुहन्ताकृतवानितीव बुद्ध्वा ।।

तदनन्तर गोपाल कृष्ण ने जिसमें स्वर्ण बांधे गये थे ऐसे वैदूर्यमणि निर्मित शङ्कु को रास मण्डल के मध्य में स्थापित कर उसके चारों ओर मण्डलाकार खड़ी हुई प्रत्येक गोपतरुणीयुगल के मध्य में अपने आपको स्थित करके उनके साथ रास में विहार करने का मन में निश्चय किया ।

[3]वैदूर्यं शङ्कुं कनकैर्निबद्धं मध्ये समारोप्य समन्ततोऽस्य
द्वयोर्द्वयोरन्तरितस्तरुण्योः रासे विहर्तुं सचकार चेतः ।।

इस नितान्त विचित्र रासलीला से रास मण्डल में अत्यधिक तीव्रता आ जाती है । जिससे गोप युवतियों के कङ्कण अत्यन्त चञ्चल हो जाते हैं, कनक किङ्किणियाँ चीत्कार करने लगती हैं । पदाङ्गदों की मधुर ध्वनि तीव्रता के साथ मुखरित होने लगती है । वेणु और वीणाओं की तीव्र ध्वनियों से क्रीड़ा कानन गुञ्जायमान हो जाता है । इस प्रकार कृष्ण रमणियों की मधुर रस वर्षिणी करतालिकाओं के साथ रसिक शिरोमणि रासेश्वर कृष्ण का रासोत्सव सम्पन्न होता है ।

[4]ततस्तरल कङ्कणं कनक किङ्किणी कूजितम्
पदाङ्गदरणत्कृतं मधुवेणु वीणा रवम्
रसाल रमणी करोत्तरलतालाकुलम्
वभूव रमणी गणैः मुरहरस्य रासोत्सवः ।।

रास की चरम परिणति पर रास-रस का पान कर मदनमदोन्मत्त मधुकरियां कृष्ण के साथ नर्तन गायन वादन करती हुई इतनी रस विह्वल हो जाती है जिससे उनकी वाणी भी स्खलित होने लगती है—

[5]पीत्वामत्ता मधमधुपाली शीला बाला बलसहत्वेन
साकं नृत्ये सरस मनस्का गीतं चक्रुः स्खलितवचस्काः ।।

---

१. गोपालविलास ३/३७ ।
२. वही ३/३८ । ३. वही ३/४० ।
४. गोपालविलास ३/४१ । ५. वही ३/६२ ।

(घ) प्रकृति चित्रण—

प्रकृति मानव जीवन की चिर सहचरी है। इसी के सान्निध्य में रहकर वह अपने जीवन के समस्त क्रिया कलापों का सम्पादन करता हैं। प्रकृति की पाठशाला में अध्ययन करने के पश्चात् ही वह जीवन के रहस्यों और उसके शाश्वत मूल्यों का निकट से ज्ञान प्राप्त करता है। प्रकृति मानव के जटिल प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करती है। कभी उसकी हृत्तन्त्री के कोमल तारों को झङ्कृत कर उसके जीवन को नूतन लय प्रदान करती हैं।

अनादि काल से ही ऋग्वेद की ऋचाओं, यजुर्वेद के मत्रों अथर्व के तन्त्रों और साम के गीतों में इस प्रकृति का ही गुणगान किया गया है। इसके विविध रूपों को देखकर ही मानव हृदय ने सम्वेदन शीलता का प्रथम पाठ पढ़ा होगा, जिसका निरन्तर अभ्यास करने के कारण ही वह अपने अन्तर में विविध भावों का एक विशाल कोष समाहित किये हुए है। तभी तो उसने प्रकृति के तनिक से कटाक्ष मात्र से ही अनेक बार सुख-दुख, हास-विषाद, चिन्ता-प्रसन्नता, राग-द्वेष दया-घृणा उत्साह-प्रेम की अनुभूति की हैं और येन केन प्रकारेण उन्हें अभिव्यक्त किया है।

भारतीय साहित्य में कवियों द्वारा किया गया प्रकृति का चित्रण दो रूपों में ही प्राप्त होता है, जिन्हें काव्य की भाषा में आलम्बन और उद्दीपन कहा जाता है। जब कवि केवल प्रकृति को ही अपने भावों का विषय बनाकर उसका यथावत वर्णन करता है, अथवा अपने सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर जब वह स्वतन्त्र रूप से प्रकृति के सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है वही प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण कहा जाता हैं। किन्तु जब काव्य कार अपने पात्रों में हर्ष-विषादादि को प्रकृति पर आरोपित करके उसके हर्ष विषादादि मय चित्रों को अङ्कित करता है तब उसे प्रकृति का उद्दीपन रूप में प्रस्तुतीकरण कहा जायेगा। भारतीय साहित्य कारों ने इन दो रूपों में ही प्रकृति का उपयोग अपनी रचनाओं में अधिकतर किया है। स्वतन्त्र रूप से भी प्रकृति के यथार्थ स्वरूप का चित्रण हुआ है।

गोपालविलास के कवि भी प्रकृति के कुशल चितेरे हैं। उन्होंने अपने इस महाकाव्य के लिये जिस चिरपरिचित प्रणय कथा का चयन किया है, उसका जन्म वृन्दावन की वीथिकाओं में हुआ है। गिरिराज गोवर्धन की उपत्यकाओं में पल्लवित होकर कालिन्दी के कछारों और कदम्ब के कुञ्जों में पुष्पित और पल्लवित होकर आज भी भारतीय मानस को रसाप्लावित बना रहा है। रसायन में स्वयं सरस्वती जी ने रस की अभिव्यक्ति करने वाले काव्य के बन शैलादि का वर्णन श्रोताओं के मनोरञ्जन के लिये आवश्यक माना है।

'अर्थवादाधिकरणे बन शैलादि वर्णनं,
श्रोतृणां सुख मात्रार्थमिति मँट्टरुदाहृतम्" ॥

गोपालविलास एक महाकाव्य है जिसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। साहित्य

---

१ भक्ति रसायन ३।२५।

दर्पण कार ने महाकाव्य के लिये दिन रात, सूर्य, चन्द्रमा, प्रभात सन्ध्या, बन पर्वत, नदी निर्झर तरु लतायें, सरसी-सरोवर, आदि का वर्णन अनिवार्य रूप से आवश्यक घोषित्त किया है। सरस्वती जी ने भी प्रकृति के इन सभी उपकरणों के प्रयोग द्वारा अपने इस काव्य के कलेवर को समृद्धि शाली बनाकर इसके द्वारा इसके आत्म स्व-रूप रस की सिद्धि की हैं।

साधारणतया कालिदास के पश्चात् और विशेष रूप से लक्षण ग्रन्थों के उत्तर काल में अधिकतार कवि राज्याश्रित ही मिले ते हैं जो केवल अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के माध्यम से ही अपने राजपण्डित के सम्मानित पद को सुरक्षित रखने के लिये अपने काव्य में विचित्रता एवं दुरुहतालाने का कृत्रिम प्रयास करते थे। इन कवियों द्वारा प्राकृतिक वस्तु व्यापार के अन्तराल में उतर कर उसका साङ्गोपाङ्ग पूर्ण श्लिष्ट एवं सजीव चित्र आङ्कित करने का प्रयत्न ही शिथिल करदिया गया था। विषय का अर्थमात्र ग्रहण करना हो उनका लक्ष्य रहता था।

किन्तु सरस्वती जी गोपालविलास में प्रकृति के एक सिद्ध हस्त चित्रकार के रूप में अवतीर्ण हुए है। उन्होंने वृन्दावन को अपनी सरसतम अनुभूतियों से सजाया हे। अपने हृदय की मधुरतम कल्पनाओं से उसका श्रृङ्गार किया है, क्योंकि यह उनके इष्ट देव की रमण स्थली है केवल देवताओं की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले इन्द्रोद्यान के कल्पतरु से भी अत्याधिक उत्कृष्ट वृन्दावन के कल्पतरू को जो प्राणी मात्र की इच्छाओं को पूर्ण करता है, अपने प्रिय अलङ्कार श्लेष के माध्यम से इतनी तन्मयता के साथ प्रस्तुत किया है जिससे उसके अंग प्रत्यग का सौन्दर्य साकार हो जाता हैं। अपने नायक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की वह कितनी कोमल सरस एवं भावपूर्ण अभिव्यक्ति है—

सरस्वती जी के इस कल्पतरु पर प्रेम के अङ्कुर आये हुए हैं पिक रव से यह आपूरित है, शुक (शुकदेवजी) एव नील कण्ठ (शङ्कर) से सदा सेवित है। हंसों (परमहंसों) को अत्यन्त प्रिय है, मधु प्रसूनों के स्तवकों से भरा हुआ है जिन पर मधुप मण्डली (भक्तमण्डली) मंडरा रही है। अन्त में वे ऐसे किसी कल्प तरू की सब प्रकार से सेवा करने का निर्देश देते हैं।

'प्रेमाङ्कुरं पिकरवं शुक नील कण्ठं,
हंस प्रियं प्रिय कदम्ब कधुप्रसूनम्।
पीयूष हारि कुसुमेषु रतालिवृन्दं
वृन्दावने कमपिकल्प तरुमजामः॥

---

१. गोपालविलास १/४

वृन्दावन की लतायें कितनी संवेदन शील है, इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है। कोई तरुण मधुप सरससुकुमारी नव मल्ली पर आकर बैठ जाता है। अपने प्रिय शठ की यह धृष्ठता देखकर समीप खड़ी हुई मालती अपने प्रिय के वियोग में कांपने लगती है और रोप के कारण पृथ्वी पर लोट पोट हो रही है।

[1]आससाद सरसां सुकुमारीं चञ्चरीक तरुणो नव मल्लीम्।

किं विलोक्य तदियं वलदङ्गी मालती भुवि पपात वियोगात्॥

सहसा मदमस्त कुञ्जरों के गण्डस्थलों से उडकर गुञ्जन करते हुए मधुप वृन्द को भ्रमवश काले बादलों से होने वाली रिम झिम समझकर ही क्या इन शखियों ने प्रसन्नता के कारण मधुर-मधुर गुनगुनाना आरम्भ कर दिया है।

[2]मत्तकुञ्जरघटाकट कण्डूद्भूतषट्पदध्वनितानाम्।

नीरदागम धिया मुदितानां शंखिनां किमभवत् सुखनादाः॥

गजयूथों को श्याम मेघ, उनकी चमकती हुई, श्वेतदन्त पङ्क्तियों को बकावलि और उनके विशाल गण्डस्थलों से झरती हुई मद बिन्दुओं को वर्षा की बूंदे समझकर वर्षा ऋतु के भ्रम में पडे हुए मयूरों ने मस्ती के साथ नृत्य करना आरम्भ कर दिया—

[3]वीक्ष्यवारिदधियाद्विरदौघान्, दन्तदीधिति मिलद्बक पंक्तीन्।

गण्ड मण्डलगलद्मदबिन्दून् ताण्डवानि विदधुःशितिकण्ठाः॥

कहीं-कहीं वन प्रान्त में क्षितिज से उठते हुए शारदीय मेघ को देख कर और उसे सिंह समझकर चातकों के साथ युवा मयूर भी अत्यधिक भय के कारण सहम से जाते हैं, अतः वे आने वाले भय की चिन्ता में मौन होकर नेत्र बन्द कर लेते हैं। भय जन्म स्थिति का कितना स्वाभाविक चित्रण है—

[4]उत्पतन्तमभिवीक्ष्य मृगेन्द्र शारदाभ्र पटलं प्रतिबुध्य।

चातकैस्सह शिखण्डि युवानो मौनिनोनयनमुद्रणमीयुः॥

वृन्दावन की सरसियों के तटों पर हरी हरी कोमल घास खाकर और शीतल जल पीकर पूर्णतया तृप्त बने हुए मृग वृक्षों की शीतल छाया में निद्रा का आनन्द ले रहे हैं—

[5]कृष्णसार तरुणास्तरुमूलेपीत शीत सलिलास्तृणतृप्ताः।

निद्रिताः प्रियतमामुख बध्राः कुत्रचित्तटगतारसरसीनाम्॥

वृन्दावन के क्षितिज पर पश्चिम में तिरोहित होते हुए निस्तेज सूर्य को

---

१. गोपालविलास ५/१६। २. वही ५/२०।

३. वही ५/२१।

४. गोपालबिलास ५/२२। ५. वही ५/२४।

सरस्वती जी ने कैसा मधुर रूप प्रदान किया है। अपनी दिन भर की यात्रा के अन्तिम क्षण में वह किसी मदन मुग्धा तरुणी के साथ खेलने का उपकरण बना हुआ है।

'चरमगिरि गुहाग्रं प्राङ्गणे भानु बिम्बम्।
जतुगुडकमपूर्वं हिङ्गुलोद्दाम धाम ॥
व्यरचि मदन मुग्धा क्रीडनार्थं विधात्रा।
किमुतरजनिकान्ताभाल सिन्दूर बिन्दुः ॥[1]

अस्ताचल की गहन गुहा के आंगन में पहुँचा हुआ रवि बिम्ब तीव्र सिन्दूरी बना हुआ लाक्षा पिण्ड की भाँति आभासित हो रहा है। मानों विधाता ने किसी मदन मुग्धा कामिनी के खेलने के लिये उसे एक खिलौना मात्र बना दिया है। या फिर यह राका रमणी के भाल पर लगी हुई सिन्दूर की गोल-गोल बिन्दू है।

हिम कणों से अश्रु पूरित नेत्रों वाली मानिनी प्रियतमा पद्मिनी को जगा कर दिनकर अपने हाथों से उसके मुख को बार-बार स्पर्श करता है और अपने प्रति बिम्ब रूप से उसके चरणों में गिर रहा है। किन्तु प्रातः समीरण के व्याज से क्रोध में कांपती हुई वह मानिनी अपने मुख को धुन रही है मानो अपने प्रिय के कोम करो से अपने मुख का स्पर्श करने के लिये उसे बार-बार मना कर रही है। प्रियतम के चरणों में गिरजाने पर भी अलियों (भ्रमरों-सखियों) द्वारा सावधान किये जाने पर भी उस स्वाभिमानिनी ने अपने मान का परित्याग नहीं किया—

'क्रमेण भानु प्रतिबुध्य पद्मिनी मनस्विनीमम्बुमुखीं हिमाम्बुभिः।
करेण तस्या मुखमामृशन्मुहुः पपात पादे प्रतिबिम्ब रूप धृत् ॥
प्रभात वातछलतः प्रकम्पिता पुनः पुनर्नेति मुखं विधुन्वती।
प्रिये पदान्ते पतितेऽपिनालिभिः प्रबोधिताप्युन्नतमानमुज्जहौ ॥[2]

यद्यपि प्रकृति के उद्दीपन विभाव का चित्रण सभी रसों को आस्वाद्य बनाता हैं किन्तु अत्यन्त सुन्दरता के साथ इसकी जितनी सबल एवं मार्मिक अनुभूति और अभिव्यक्ति रस राज शृङ्गार के माध्यम से सम्भव हैं, उतनी अन्य रसों के द्वारा नहीं। शृङ्गार रस के संयोग वियोगात्मक दोनों पक्षों को ही प्रकृति अपनी उद्दीपन सामग्री से उत्कृष्टता प्रदान करती है।

गोपालविलास में शृङ्गार रस अपनी चरम सीमा को प्राप्त है। विरह और मिलन दोनों का ही प्रदर्शन अत्यन्त भावुकता पूर्ण हुआ है। उद्दीपन सामग्री भी यहाँ प्रचुरता से प्राप्त है, जिस प्रकार प्रकृति के आलम्बन रूपों के भव्य चित्र ऊपर

---

१. गोपालविलास ६/२४।
२. गोपालविलास ११/७३-७४

प्रस्तुत किये गये हैं उसी प्रकार प्रकृति के उद्दीपन रूपों को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया जायेगा।

प्रकृति नायक-नायिका में उद्बुद्ध रत्यादि स्थायी भावों को उद्दीप्त कर उनमें रसता का सञ्चार करती है और उन्हें चर्वणा के योग्य बनाती है। गोपाल एवं गोपाङ्गनाओं की प्रेम भावनाओं को उद्दीप्त करने के लिये कवि ने व्रज के प्राकृतिक वैभव का इच्छानुकूल उपयोग किया है।

विरह विधुरा राधा अतीत की स्मृतियों में खोई हुई अपने प्रियतम नन्द नन्दन के वियोग में विलखती हुई कह रही हैं कि मधुमल्लिका के मधुर मकरन्द का पान करने के लिये ये लोभी मधुप उस समय मेरी वेणी में लिपटे रहते थे और अपने मधुर गुञ्जन से मुझे आनन्दित करते थे किन्तु वे ही आज दैव दुर्विपाक की विचित्र लीला से विरह की इन घड़ियों में मेरे कानों में शल्य की भाँति चुभकर मुझे व्यथित कर रहे हैं—

'भृङ्गावली या कवरी निविष्टा।
माध्वीक लुब्धा मधुमल्लिकानाम् ॥
कालेन सैव श्रुति शल्य भावं ॥
व्रजत्यहो तन्मलिनेन चित्रम् ॥[1]

यह बाल पुन्नाग जिसका आलवाल बनाकर मैंने प्राण पन से परिश्रम करके इसका पालन-पोषण किया था, अब वही अपने नवीन कुसुमाङ्कुरों और नूतन पल्लवों से सुसज्जित होकर निःशङ्क बना हुआ मेरे प्राणों के साथ खेलना चाहता है—

'पुन्नाग बालोऽपि कृतालवालः।
सम्वर्धितः प्राण परिश्रमेण ॥
स एव पुष्पाङ्कुर पल्लवौघैः।
प्राणैर्मम क्रीडति निर्विशङ्कम् ॥[2]

मिलन का एक-एक क्षण हृदय की बहुमूल्य धरोहर बनकर विरहाग्नि को उद्दीप्त करता है। राधा भी मिलन के उन मधुर क्षणों का स्मरण करती हुई कह रही है कि तुमने स्वयं अपने हाथों से गज मुक्ताओं की वह सुन्दर हारावलि जो मेरे गले में डाली थी। हे प्रियतम! तुम्हारे वियोग में आज वही काल सर्पिणी बनकर मेरे हृदय को सन्तप्त कर रही है। यह विधि का ही विधान है, इसमें किया ही क्या जा सकता है?

'हारावली में हृदये कृतासीत्।
त्वया हरे! या गज मौक्तिकानाम् ॥[3]

---

१. गोपालविलास ४/९। २. वही ४/१४
३ वही ४/२५

सा नाथ नित्यं भुजगीं भवन्ती ।
दुनोति चित्तं बत किं विधेयम् ॥

बन में सर्वत्र प्रेमी युगल साथ-साथ निवास कर रहे हैं, जिन्हें देखकर एकाकिनी राधा के हृदय में हूक सी उठती है। वे उस मृगी के सोभाग्य कीं सराहना कर रही है जो मधुर कटाक्षों के साथ अपने प्रियतम द्वारा कर्णाग्र कण्डू का आनन्द प्राप्त कर अपने प्रियतम के साथ वृन्दावन के वृक्षों की शीतल छाया में कालिन्दी की कोमल सिकता पर शयन करती है।

[1]मृगी मृगेन प्रतिलभ्य माना कर्णाग कण्डूयन दृङ्गिपातैः ।
शेते नदी सैकत शीतलासु छायासु वृन्दावन पादपानाम् ॥

वृन्दावन में प्रेमी युगलों की प्रणय लीलाओं को देखकर राधा की विरह ज्वाला और अधिक उद्दीप्त हो जाती है।

राधा देख रही है कि रात्रि में अपनी प्रेयसी से पृथक् रहने वाला चकोर प्रभात वेला में मिलन के लिये अत्यन्त आतुर बना हुआ चन्द्रकिरणों से क्षरित होने वाले देवोपभोग्य पीयूष को छोड़कर अपने नयनाञ्चलों से अपनी प्रेयसी चकोरिका के चञ्चपुट का पान करता हुआ तृप्ति नहीं पा रहा है।

[2]विहाय गीर्वाण गणोपभोग्यं, सुधाकरं मन्मथ बाणभिन्नः ।
पिबन्न तृप्तो नयनाञ्चलाभ्यां चकोरिका चञ्चुपुट चकोरः ॥

राधा के सामने ही वृन्दावन में सर्वत्र सब प्रेयसियाँ अपने-अपने प्रेमियों के साथ वसन्त के स्वागत में आनन्द मग्न हो रही हैं। अपने सामने राधा देख रही है कि अपने पुष्प स्तवकों के भार से झुकी वासन्ती की शाखा पर बैठकर कोकिल रमणियाँ अपने प्रेमियों के अङ्गसङ्ग का आनन्द पाकर अपने में नहीं समा पा रही है। अत्यधिक आनन्द के कारण उनका अंग प्रत्यंग उल्लसित हो रहा है और वहीं पर मंडराती हुई मधुप सुन्दरियाँ भी मधुर गायन में मस्त बनी हुई है।

[3]आरुह्य शांखा स्तवकानताया वासन्तिकायाः पर पुष्ट रामाः ।
कान्ताङ्ग सङ्गोल्लसिताङ्ग यष्टिः भृङ्गाङ्गना गीतमलञ्चकार ॥

प्रकृति के मानवी करण में सरस्वती जी सिद्धहस्त है प्रकृति भी प्राणवान है अतः वह भी अन्य प्राणियों की भाँति ही सुख दुख हर्ष विषाद की अनुभूति करती है। वृन्दावन की लता वल्लरियाँ तो इस विषय में और भी अधिक संवेदनशील हैं। निम्न उदाहरण प्रस्तुत है—

१. गोपालविलास ४/३० ।
२. वहीं ४/३७ ।
३. वही ४/८० ।

'मां विहाय विपिने वनमाली राधिका रति रसेषु निमग्नः
इत्यनल्प विगलन्मधुधारां चिन्तयन्त्यनुसवंगलदस्रा।
माधवी स्तवक मञ्जुलदिव्यद्वर्तु लस्तनभरानमदङ्गी
रञ्जितालिघनसार परागैः रोदितिस्म मधुपौघरवैः किम् ॥

अर्थात् मुझे इस वन में अकेला छोड़कर वनमाली माधव राधा के साथ रति-क्रीड़ा में लीन हो गये हैं। इस प्रकार निरन्तर चिन्तन करती हुई और अनुक्षण अपनी प्रभूत पराग सम्पदा को अश्रुओं के रूप में गिराती हुई अपने दिव्य वर्तुलाकार स्तनों के भार से झुके हुए अङ्गों वाली और सघन मकरन्द बिन्दुओं से रंग-बिरंगी बनी हुई माधवीलता मधुपों के गुञ्जनों के व्याज से रुदन करती हुई अपने हृदय की प्रचण्ड विरह-वेदना को प्रकट कर रही है।

वृन्दावन के सहज सौन्दर्य को देखकर कृष्ण का विरहाकुल हृदय अत्यन्त पीड़ित हो रहा है। वे पूर्व स्मृतियों में खोये हुए हैं। संयोग काल के उन मिलन स्थलों को देखकर व्याकुल बने हुए कृष्ण कह रहे हैं कि हे मृगनयनी राधे! भोली-भाली चितवन से सकरुण देखने वाले ये मृग कभी हमारे हृदयों में आनन्द का सञ्चार करते थे और कालिन्दी के तट पर कुञ्जों में मंद पवन के झोकों से झूमते हुए ये बाल मन्दार, तरुओं से लिपटी हुई और सुमन सम्पदा से समृद्ध बनकर अठखेलियाँ करती हुईं लतायें आज मेरे दुर्दैव के कारण ये सभी मेरी मधुर-मधुर अभिलाषाओं को भस्म करने के लिये अग्नि की लपटें बनी हुई हैं—

'सारङ्गी हग् ! सदयनयनाः ये मृगामोदवाहाः
ये: कालिन्दीतट परिसरे मन्द-मन्दारबालाः।
फुल्लाभूमीरुहकरगता वल्लरीणां निकायाः
राधे ! दैवं फलितमधुना तेऽपि जाताः हुताशाः ॥

विरह विदग्ध माधव कह रहे हैं कि राधा का सौन्दर्य ही वृन्दावन की समस्त प्राकृतिक छटा को रमणीय बनाये हुए हैं। यहाँ निवास करने वाले पशु-पक्षी अपने-अपने भाग के अनुसार राधा के अङ्गों की सुषमा लेकर सौन्दर्यशाली बने हुए हैं। हरिण रमणीयों ने राधा के नेत्रों से ही चपलता का पाठ पढ़कर अपने नेत्रों को जगत प्रसिद्ध बना लिया है। चंवरियों ने राधा की अलकावलि से ही अपने वैभव-शाली केशों का सौन्दर्य प्राप्त किया है। उसके कुचों की कान्ति से ही कोक युगल कान्तिमान बना हुआ है। राधा की मदमाती गति से हंस तरुणियों ने धीर गम्भीर गति और उसकी वाणी के माधुर्य से ही कोकिल कान्ता ने अपने कण्ठ मे इतनी मधुरता और मादकता प्राप्त की है।

---

१. गोपाल विलास ५/१०/११।
२. वही ७/१५।

[1]हक् चापल्यं हरिण तरुणी केशपाशं चमर्यः
कोकद्वन्द्वस्तन युगरुचिर्हंसकान्ता गतिश्च ।
माधुर्यं तद्वचन निहितं वल्गुकण्ठी कुहूवाङ्
मन्येऽरण्ये सुतनु सुषमां भागशोनीतवत्यः ॥

विरहातुर कृष्ण वृन्दावन के कण-कण और तृण-तृण में राधा के दर्शन कर रहे हैं । उनके लिये यहाँ राधा स्वयं कामदेव की बाटिका बनी हुई है । इस बाटिका में लहलहाती हुई द्राक्षा लताओं ने राधा की बाणी के माधुर्य से ही मधुरता प्राप्त की है ! यहाँ दाडिमों में जो वर्तुलाकारता एवं कठोरता दृष्टिगत होती है वह उन्हें राधा के स्तनों से ही मिली है । राधा का सहज हास ही यहाँ की प्रफुल्लित मल्लिकाओं का सौरभ है, यहाँ की मालती में राधा की भुजाओं का सौन्दर्य झलकता है, स्थल कमलनियों ने कोमलता और कमनीयता राधा के चरणों से ही ली है । राधा की जंघाओं से ही ऊर्ध्वरम्भा पीनता और रमणीयता प्राप्त करता है । अन्त में कृष्ण अत्यन्त अधीर होकर कामना करते हैं कि अब मैं कुसुम-सायक की सुमन-स्थली राधा के दर्शन कब करूँगा ।

या[2] मृद्वीका वचनरचने दाडिमी या कुचाभ्यां
या सन्मल्ली सहज हसितेमालती या भुजाभ्याम् ।
ऊर्ध्वोरम्भास्थल कमलिनी या पदाभ्यां, पुनस्तां
क्वालोकेऽहं कुसुम धनुषो राधिकां पुष्पबाटीम् ॥

विरह बाधा ने राधा को अत्यन्त जीर्ण शीर्ण बना दिया है उसके श्वाँस की गति इतनी मन्द हो गई है जिससे सखियों को उसके जीवन के प्रति शङ्का उत्पन्न होने लगती है हिम कणों की वर्षा से क्षीण कान्ति वाले उनके मुखचन्द्र को राहु ने ग्रस लिया है । अब वह केवल टिम-टिमाते तारों का हार पहिने हुए और शरीर पर हरि चन्दन का लेप किये हुए शीत-ऋतु की अन्धकार से भरी हुई भयानक काली रात्रि के समान दिखाई देने लगी है ।

[3]मुखरुचामिहिका कलुषीकृतं विरहराहु हृतं हिमदीधितिम् ।
विदधतीं सितहार सुतारकां हिमतमी सदृशी हरिचन्दनैः ॥

विरह ज्वर के तीव्र ताप से सन्तप्त होकर अत्यन्त क्षीण बनी हुई राधा ग्रीष्मकालीन सरिता के समान शुष्क प्राय हो गई है । इसकी केशरूप शैवल राशि शुष्क हो गई है, इससे उदासीन होकर गजराज ने भी उस पर अपना आवागमन

---

१. गोपाल विलास ७/३० ।
२. वही ७/३६ ।
३. गोपाल विलास ८/६ ।

बन्द कर दिया है, हंस भी उसमें विहार करने के लिये नहीं आते, कोकिल स्वर भी अब उसके आसपास वृक्षों पर नहीं सुनाई देता है। वह मलिन कमलिनी के समान मुख वाली निरन्तर किसी ऐसे नव श्यामघन के आने की प्रतीक्षा में जीवित है जो अपने मधुर रस से उसके अङ्गों का सिञ्चन करके उसे विगत नव-यौवन का रूप लावण्य प्रदान करेगा।

'स्खलितकुन्तलशैवलशालिनीविरतवारणराजगतागतं
मलिनमीननिकेतननीरजां, गतमरालविहारपिकस्वराम्।
कमलिनी मलिनीकृत काननां, नवपयोदतनुं मनसागताम्
खर निदाघ नदीमिव राधिकां वरतनुं शयितामवदच्छनैः॥

रीतिकालीन कवियों की भाँति सरस्वती जी ने अपने प्रकृति चित्रण में केवल वस्तुओं की गणना कराकर उनका ज्ञानमात्र ही नहीं कराया है, अपितु हृदय की घनीभूत अनुभूतियों के आधार पर ही उन्होंने प्रकृति के रसमय एवं हृदयग्राही स्वरूप का चित्रण प्रस्तुत किया है।

प्रकृति के केवल कोमल कुसुम ही नहीं कठोर काँटों के चित्रण में भी उन्होंने अपनी कुशलता का परिचय दिया है। वन में केवल पुष्प ही नहीं होते कंटक भी होते हैं। उनका अपना भी एक सौन्दर्य होता है।

सरस्वती जी काँटों में भी रस का सञ्चार करना जानते हैं। उन्हें अपने काव्य का विषय बनाकर अपनी मधुर कल्पनाओं से सजाया है।

'कुत्रचित् त्रुटितुकञ्चुकचेलाः स्रस्तनीविवसनाः श्लथनेत्राः
केलि सद्य मिलिता इव कान्तैस्तावर्सुविकट कंटकि वृक्षैः।
सङ्कुचत्कमलकोमलवक्त्राः सीतकृतानि विविधानि दधत्यः
कंटकाकुलपदानमदङ्ग्यः पाद सज्जितकराक्वचिदासन्॥

कहीं वृन्दावन के काँटों वाले वृक्षों के विकट वनों में विचरण करने वाली गोप सुन्दरियों के कञ्चुक काँटों में अटक कर फट रहे हैं और काँटों में उलझकर उनकी नीवी बन्धन तथा अन्य वस्त्र खिसककर नीचे गिर रहे हैं। उनके नेत्र कमल मुरझा गये हैं। इस रूप में वे ऐसी लग रही हैं मानों उन्होंने अभी-अभी अपने-अपने प्रियतमों से रमण किया हो।

दूसरा चित्र भी कुछ इसी प्रकार का है। कंटकाकीर्ण वन पथ पर चलते समय गोप रमणियों के कमल की कान्ति वाले कोमल मुख निष्प्रभ हो गये हैं और उनसे काँटों की चुभन के कारण बार-बार चीत्कार की ध्वनि निकल रही है। काँटों से चरणों के क्षत-विक्षत हो जाने पर वे अपने अङ्गों को झुकाये हुए घुटनों पर हाथ

---

१. वही ८/७-८। २. वही ५/३४/३५।

रखकर चल रही हैं। कितना सजीव एवं स्वाभाविक चित्रण है। प्रत्येक रेखा का अङ्कन सुस्पष्ट है एवं भावाभिव्यक्ति में समर्थ है। इस प्रकार के प्रकृति के अनेक मनोहारी एवं प्रभावोत्पादक शब्द चित्र गोपाल विलास में आदि से अन्त तक प्राप्त होते हैं। मुद्रा चित्रण एवं प्रकृति के मानवीकरण में सरस्वती जी सिद्धहस्त हैं। उनके प्रकृति-चित्रण की यह अपनी ही विशेषता है।

गोपाल विलास के कवि ने प्रकृति के अन्य अनेक उपकरणों का वर्णन भी अपने इस महाकाव्य में किया है। प्रभात सन्ध्या, षड्ऋतु, अरण्य, गिरि-निर्झर, काकोलूक, सूर्य-चन्द्रमा आदि के अनेक भव्य रूप इस काव्य में प्राप्त होते हैं।

प्रभात का वर्णन

प्रभात के लिये कवि ने पृथक् से एक सम्पूर्ण सर्ग दिया है। इस काव्य के ग्यारहवें सर्ग का विषय ही कवि ने प्रभात वर्णन निश्चित किया है। इस सर्ग में प्रभात के अनेक मनोरम चित्र मिलते हैं—

प्रातःकाल का समय है कुमुदवतीनाथ चन्द्रमा की किरणों से म्लान मुख वाली तथा अत्यन्त खिन्न बनी हुई नलिनी की यह दीन-हीन दशा देखकर सूर्य अपने लाल-लाल क्रोध पूर्ण नेत्रों से चन्द्रमा की ओर देखता है और अपनी अनन्य प्रेयसी नलिनी को अपने कोमल-कोमल स्वर्णिम करों के स्पर्श से प्रसन्न एवं प्रफुल्लित बना रहा है—

[1]मयूखमाली नलिनीं मनोरमां कुमुदवतीनाथविमर्दिताननां।
विलोकयन् लोहित लोलविग्रहः समासरत्पादतलेन तां स्पृशन्॥

इसी प्रकार कवि गोकुल में प्रातःकाल सम्पन्न होने वाले क्रिया-कलापों का सजीव एवं रुचिपूर्ण वर्णन करते हुए प्रातःकाल का स्वाभाविक दृश्य उपस्थित कर देते हैं—

[2]बधान बन्धं नय, मुञ्च, मोचय, प्रयाहि, भाण्डं मम शीघ्रमानय।
इदं वदद्भिः व्रजवासिभिर्वृतं मुदानदद्भिः वृषभैर्विराजितम्॥

इस ब्रह्म वेला में गोदोहन आदि के साथ कहीं ब्राह्मण बटुक वैदिक मन्त्रों का पाठ कर रहे हैं कहीं ब्रजाङ्गनायें दधिमन्थन के घर-घर घोष के साथ प्रातः-कालीन मंगल गीतों के स्वरों को मिला रही हैं। कहीं-कहीं अपनी माताओं के स्तन पान के लिये आतुर गोवत्सों की हुङ्कारों के उत्तर में गो समूह प्रातःकाल आनन्द में भरा हुआ रम्भारव कर रहा है—

---

१. गोपाल विलास ११/७२।

२. वही ११/४६।

व्रजाङ्गना मंगलगीतिसङ्कुलं, समाकुलं मन्थनघर्घरस्वनैः ।
[1]इतस्ततो वत्सतरालिहुङ्कृतैः गवां कदम्बैश्चनदद्भिरावृतम् ॥
द्विजार्भक ब्रह्मरवेणनिर्भरं करम्बितं वेणुमनोज्ञ निःस्वनैः ।
[2]गृहे गृहे दीपकरैः कुलाङ्गनाकुलैः क्वणन्नूपुर चारुरिङ्गणैः ॥

सन्ध्या का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि वन में सन्ध्या समय सर्वत्र हरि (कृष्ण) की कृष्ण कान्ति व्याप्त है इसीलिये ब्रह्मा ने इस सायंकाल के समय पुनरुक्ति की आशङ्का से ही हरि (सूर्य) की कान्तिमान किरणों को तिरोहित कर दिया ।

[3]प्रोद्भासिते हरेः कान्त्या बने हरि मरीचयः ।
धान्नान्तं प्रापिता सायं पौनरुक्त्याविशङ्कया ॥

गोपाल विलास के द्वितीय सर्ग के आरम्भ में सभी षड्ऋतुएँ काव्य नायक गोपाल कृष्ण का स्वागत करने तथा उन्हें आनन्दित करने के लिये बारी-बारी से आकर वृन्दावन में एकत्रित हो जाती हैं । कंदब, केतकी, जाती, तथा यूथिका आदि की अपनी पुष्प सम्पदा से सुवासित बनी हुई वर्षा ऋतु मालाकार वधू की भाँति वृन्दावन को अलङ्कृत करने के लिये उपस्थित होती है । तत्पश्चात् रक्त-कमलों, नील-कमलों तथा कुमुदालियों को अपने अङ्क में भरे हुए राजरानी की भाँति शरद-ऋतु भी वन में पदार्पण करती है । तदनन्तर कुन्द, मन्दार प्रियंगु तथा लोध्र आदि की पुष्प-पराग से दिग्वधुओं के मुखों को आरञ्जित करती हुई अपनी सुमन-सम्पदा से सुसज्जित होकर हेमन्त और शिशिर माधव गोपाल की सेवा करने के लिये वन में उपस्थित होती हैं—

[4]कदम्ब केतकी जाती यूथीभिः काननान्तरम् ।
अलञ्चकार वर्षा श्रीमालाकार वधूरिव ॥
रक्तोत्पलालिराजीवराजिनी कुमुदालिभिः ।
शरद्वनं गता रेजे राजदारानु कारिणी ॥
विचित्रीकृत्य दिक्कान्ता मुखं सरस कुङ्कुमैः ।
कुसुमैः कुन्दमन्दार फलिनी लोध्रशाखिनाम् ॥
संगतौ नवपुष्प श्रीबल्लरी प्रेयसी गणैः ।
हेमन्त शिशिरौ यातौ माधव सेवितुं बने ॥
ऋतुराजं पुरस्कृत्य वसन्तमृतु सञ्चयः ।
नन्दनन्दनपादाब्जद्वन्द्वरागो मुदं दधौ ॥

---

१. गोपाल विलास ११/४३ ।
२. वही ११/४४ ।
३. वही २/१० । ४. वही २/५–६ ।

अरण्य भारतीय आध्यात्मिक साधना के केन्द्र रहे हैं। विशाल आरण्यक साहित्य का निर्माण हिमालय की अधित्यकाओं में अविरल गति से कलकल करने वाले निर्झरों के सान्निध्य में और सरिताओं के एकान्त तटों पर ही हुआ है। अनादि काल से ही भारतीय अरण्य इस देश की संस्कृति का मूलाधार रहे हैं। इसीलिये महाकाव्यकारों ने अपने काव्यों में अरण्य जीवन की मनोहर झाकियां प्रस्तुत की हैं। कुशल कवि अरण्य के वर्णन में निम्न विषयों का चित्रण अवश्य करते हैं—

[1]अरण्येऽहि वराहेभयूथ सिंहादयोद्रुमाः।
काकोलूक कपोताद्याभिल्लभल्लदवादयः॥

गोपाल विलास के कवि भी अपने इस महाकाव्य के सम्पूर्ण पञ्चम सर्ग में वृन्दावन का विभिन्न अनुभूतियों के साथ विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करके अपने प्रकृति प्रेम का परिचय देते हैं। वे वृन्दावन में निवास करने वाले अहिबराहों का तथा उनकी निवास स्थली का संश्लिष्ट तथा मनोहारी वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

[2]निर्झरैरिव झरन्मकरन्दैः पङ्किलावसुमतीं प्रतिलभ्य-
मुस्त सुस्थमनसस्तरुमूले दष्ट्रिणः क्वचिदयुः सुखनिद्राम्॥

निर्झरों की भाँति झरती हुई मकरन्द की निरन्तर वर्षा से पङ्किल भूमि पाकर वहीं मोथे में प्रसन्न मन से भयङ्कर विषधर आनन्दपूर्वक शयन कर रहे हैं।

अद्वैत साधक सरस्वती जी की दृष्टि जन-मन की सहानुभूति से वञ्चित तथा लोकमानस द्वारा तिरस्कृत काक तथा उलूकों तक भी पहुँची है। छोटे से छोटे वनचर के लिये भी उनके हृदय में असीम स्नेह है। इसीलिये उन्होंने समाज से तिरस्कृत इन लघु प्राणियों को भी अपने काव्य का विषय बनाया है—

[3]काकैरुलूकाः सहसारमेयैः शशावृषादैर्गिरिका समेताः।
श्येनैरसख्यैः शिशवस्समेता बिरोधिनोऽन्येऽपि समेत्यनित्यं
मित्राणि मित्रैरिव मोदमानाः परस्परं प्रेमभरं भजन्ते॥

नन्दनन्दन के वृन्दावन में काकों के साथ उलूक, श्येनों के साथ शशक मूषकों के साथ गिरिकायें एकत्रित होकर क्रीडा कर रहे हैं। गोपाल की कृपा से ये विरोधी पक्षी भी प्रेम के साथ एक स्थान पर रहते हैं।

कहीं पारावत मस्ती से मधुर राग अलापता हुआ कामाङ्कुरित अङ्गों वाली अपनी प्राण प्रिय प्रेयसी का आलिङ्गन कर रहा हैं। कपोत रमणी भी अपने प्रियतम की मधुर स्वर लहरी को सुनकर राजकुमारी की भाँति मधु ऋतु का आनन्द ले रही है—

---

१. साहित्यदर्पण ३७३।
२. गोपाल विलास ५/२३।
३. वही ४/५०।

[1]पारावतोऽपि श्रवणाभिराममनङ्गरङ्गैरिव घूर्णमानः
गायन्मनोजाङ्कुरिताङ्गवल्लरीमालिङ्गति प्राण समासमानाम् ।
कपोत रामा रमणीयगीता पीतामृताशान्त तरोरधस्तात्
पतिं भजन्ती कमनीयरूपा भूपाल बालेवमधौ चकास्ते ॥

भिल्लकोल किरातों का भी भारतीय संस्कृति के संरक्षक के रूप में योगदान रहा है। आदिकाल से ही भारतीय संस्कृति के संरक्षण में सहयोग देने वाले वनवासी गिरिवासी भिल्लकोल किरातों को आदि कवि वाल्मीकि ने भी अपने महाकाव्य में सम्मान सहित स्थान दिया है। अतः सरस्वती जी ने भी अपने काव्य में उनका स्मरण किया है—

[2]ऊर्ध्वबद्धकच संचय गुच्छाच्छादिता शितिपटैः कटि देशे ।
गुम्फगुम्फन भयानकनासा भासकारि नयनानन भासः ॥
अन्धकार रुचितस्करदेहा भास्करात्मज सहोदर रूपाः ।
सज्जकार्मुक शिलीमुखघोषैः भीषित द्विरदसिंहनिकायाः ॥
स्कन्ध लम्बिखरधारकुठाराः कच्छसज्जित यमोपम बाणाः ।
धातुभिर्वपुरलङ्कृतवन्तः कानने क्वचित्भिल्ल युवानः ॥

गोविन्द की कृपा से वृन्दावन में भील युवक भी निर्भय होकर विचरण कर रहे हैं। उनके सिर पर बालों का जूड़ा बँधा हुआ है कटि पर श्वेत पट लिपटा हुआ है, भयङ्कर मोटी नासिका है, मुख और नासिका हृदय में भय उत्पन्न करने वाले हैं। उनकी देह गहन अन्धकार की भाँति एकदम काली है। वे धनुषों पर चढ़े हुए अपने बाणों से भयजनक ध्वनि उत्पन्न कर रहे हैं जिससे हाथी और सिंह भी भयभीत हो जाते हैं। उनके कन्धों पर तीक्ष्ण धार वाले कुठार लटके हुए हैं। विविध गैरिक आदि धातुओं से अपने शरीरों को अलङ्कृत बनाये हुए हैं।

वृन्दावन में निवास करने वाले ऋक्षपति गोपाल के श्री चरणों की कृपा से पूर्णतया स्वस्थ प्रसन्न एवं निरोग रहते हुए आनन्द पूर्वक विचरण करते हैं किन्तु विधाता ब्रह्मा का बनाया हुआ ऋक्षपति आकाश में लटका रहता है और क्षय रोग की भयङ्कर पीड़ा से सदा ग्रस्त रहता है।

[3]एक ऋक्षपतिरस्ति विधात्रा निर्मितो नभसि सक्षय दोषः ।
अत्र ऋक्ष पतयो गत दोषाः प्राप्त विष्णु पद सङ्गम तोषाः ॥

भारतीय संस्कृति में सूर्य की उपासना अपना एक महत्त्व पूर्ण स्थान रखती है। मुख्यतम नव ग्रहों में सूर्य उत्कृष्टतम ग्रह हैं। इसीलिये महाकाव्यों में सूर्य का

---

१. गोपाल विलास ५/४१-४२।
२. वही ५/४२ से ४४।
३. गोपाल विलास ५/५६।

वर्णन मिलता हैं। सूर्य का वर्णन करने वाले महाकाव्यकार को सूर्य से सम्बन्धित निम्नलिखित विषयों का उल्लेख अवश्य करना चाहिये—

[1]सूर्येऽरुणता रविमणिचक्राम्बुज पथिकलोचन प्रीतिः।
तारेन्दु दीपकौषधि घूकतमश्चौर कुमुद कुलटार्तिः॥

गोपाल विलास के कवि ने भी सूर्य के अनेक रूप चित्रित किये हैं। सूर्य के अनेक संश्लिष्ट एवं सजीव चित्र अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार से प्रसङ्गानुसार इस काव्य में प्राप्त होते हैं—

उदित होते हुए दिनपति की अरुणता के दर्शन करिये—

[2]अथोच्चकासे पुरहूतपालितादिगङ्गनाभानु करेण लालिता
रथाङ्गरामा सुदृशोरुशीलिता तथैव याशूत्कुसुमेषु कीलिता।
विधौप्रवालसुतिपुञ्जगञ्जिनीपुरन्दराशा करिकुम्भ रञ्जिनी
मनोरमानङ्गलता प्रभञ्जिनी मनस्विनी बल्लिलविन्न सञ्जिनी॥

इन्द्र द्वारा पालित तथा दिनकर करों से लालित प्राची को देख कर चकवाक बधू के नेत्रों में एक सुखद उल्लास का सञ्चार होने लगता है। यही प्राची की लाली कुसुमों में कीलित सी हो गई है। और किसलयों की कान्ति को क्षीण बनाने वाली तथा पूर्व दिशा के करि कुम्भ को रक्तिम बनाने वाली है, कामलता का विच्छेद करने वाली और मानिनियों के मान पर प्रहार करने वाली है।

काव्य नायक गोपाल कृष्ण के चक्र बनकर सूर्य देव प्राची से उदित हो रहे हैं। कवि कहते हैं कि अग्नि की चिङ्गारियों सी तेज पूर्ण किरणों से अलङ्कृत बना हुआ निर्धूम अग्नि के मण्डल की भाँति अत्यन्त देदीप्यमान तथा राक्षसों की रक्त पङ्क से सने हुए ये प्राची पुत्र सूर्य मुररिपु कृष्ण के भयङ्कर चक्र की भाँति दृष्टिगत हो रहे हैं।

[3]अतिस्फुलिङ्गैः किरणैरलङ्कृतं विधूय धूमध्वज हेलिसङ्कुलम्।
अथासुरासृक् चयरोचिषाञ्चितं चकार चक्रं सदृश मधुद्विषः॥

सूर्य को 'कुलटार्ति' भी कहा गया है। गोपाल विलास में भी वह वार विलासिनियों के लिये अत्यन्त निराशा का कारण बताया है। क्योंकि भोर होते ही वेश्याओं का व्यापार समाप्त हो जाता है—

[4]वराङ्गना संदधती घृताम्बरा रराज सिन्दूर परम्परावरा।
निराशिनीं वार विलासिनीं वरामुपानयन्ती स्फुटपद्म सम्पदा॥

तृतीय सर्ग में रात्रिभर रास क्रीड़ा में निमग्न गोपियाँ प्रातःकाल प्राची में

---

१. साहित्य दर्पण पृ० ३७४।
२. गोपाल विलास ११/१–२।
३. गोपाल विलास ११/७१।
४. वही ११/३।

सूर्य के सारथी अरुण को क्रीडान्तक के रूप में उपस्थित होते हुए देखकर कलावती राधा अपनी सखी प्रभावती से कहती है—

[1]आशां समीक्ष्य बलरिपोः प्रभावतीमह प्रियां मुरमथन कलावती ।
हेयामिनी रमण सहोदराननाः क्रीडान्क सवितुरुदेति सारथिः ।।

सूर्य की भाँति चन्द्रमा को भी महाकाव्य के वर्ण्य विषय में सम्मानित स्थान प्राप्त है । चन्द्रमा का वर्णन करने के लिये प्रत्येक कवि अपने काव्य में अवश्य अवसर निकाल लेते हैं और अपनी विविध कल्पनाओं के रंगों से उसका शृङ्गार करते हैं । महाकाव्यकार को चन्द्रमा का वर्णन निम्न प्रकार से प्रस्तुत करना चाहिये ।

[2]कुलटा चक्राम्बुरुह विरहित मोहा निरोज्ज्वलयम् ।
जलधि जन नेत्र कैरव चकोर चन्द्राइम दम्पति प्रीतिः ।।

गोपाल विलास के कवि ने भी चन्द्रमा के लगभग इन सभी रूपों को अपने काव्य में अनेक स्थलों पर मार्मिक परिस्थितियों मेंप्रसङ्गानुकूल प्रदर्शित किया है ।

राधा रमण गोपाल अपनी प्रिय सहचरी के वियोग में अत्यन्त व्यथित हैं । वे कहते हैं कि इस समय रजनी पति राकेश मुझे काम के क्रूर चक्र की भाँति प्रतीत हो रहा है, जिसका निर्माण वज्र वृन्दों से किया गया है । इनका कार्य हम जैसे विरहियों के प्राण लेना है । इसके मध्य में मरकत मणि निर्मित कठोर नील शङ्कु जड़ा हुआ है । इससे मेरा हृदय राधा के लिये अधिक शङ्कालु बन रहा है, क्योंकि इस शङ्कु को देखकर नील कमल के समान नेत्रों वाली राधा की क्या दशा हुई होगी—

[3]क्रूरः कामः शिशिर किरणं निर्मितं बज्रवृन्दैः
चक्रे चन्द्रं विरहिजनता-चक्र चक्रं च हन्तुम् ।
तत्राप्यन्तर्ग्रथितकनकादिन्द्र नीलाङ्कशङ्कुं
शङ्कै पङ्केरुहदलदृशस्तादृशः का दशा स्यात् ।।

स्वैर विहारिणी कुलटाओं के नेत्रों में यह शीत रश्मि शशाङ्क तीक्ष्ण शल्य की भाँति चुभता है ।

[4]पथि-पथि कुलटानां निक्षिपन् कन्टकानां ।
शतमख दिशमिन्दुर्मण्डयन् पौरुहूतीम् ।।

जैसे-जैसे कुमुद बन्धु राकेश आकाश के छोरों पर अपने कोमल-कोमल करों को फैलाते हैं वैसे ही कैरविनी का मुख मण्डल अत्यन्त प्रमुदित एवं प्रफुल्लित होने लगता है—

---

१. गोपाल विलास ३/८० । २. साहित्य दर्पण पृ० ३७४ ।
३. वही ७/७ । ४. वही ६/२८ ।

[1]स्पृशति कुमुद बन्धौ अम्बरान्तं करेण।
प्रचुर मुख विकासः कैरविण्या बभूव ॥

सामने प्राची से चन्द्रमा को उठता हुआ देखकर कवि अनेक प्रकार की कल्पनाओं में खोजाते हैं। यह शशि, विरही कोकों को शोक सरसी में डुबाता हुआ ध्वान्त वृन्द पर विपदाओं की वर्षा करता हुआ मृगलोचनाओं के प्रणय मानाब्धि को अगस्त की भाँति शुष्क बनाता हुआ तथा कमल कुञ्जों पर गाज गिराता हुआ सा प्रतीत हो रहा है।

[2]कोकानांमिथुनेषुशोकसरसी संरक्त पङ्करुहः
पान्थानांतरुणीषु बाढ विरहज्वालाजटालोऽनलः।
ध्वान्तानांपरमाविपन् मृगदृशांमानाब्धिकुम्भोद्भवः।
पद्मानां पदमापदां कुमुदनीबन्धुर्विरेजे पुरः॥

अपनी गृह वाटिकाओं में उद्यानों में पुष्प चयन करना भारतीय ललनाओं के लिये एक चिर परिचित कला है। इसीलिये साहित्य के आचार्यों ने भी महाकाव्य में पुष्प चयन का अवसर उपस्थित होने पर कवि के मार्ग दर्शन के लिये निम्न निर्देश दिये हैं—

[3]पुष्पावचयं पुष्पार्पणार्थिने दयिते।
मानाद्यं गोत्रस्खलनेनर्ष्याविक्रोक्ति सम्भ्रमाश्लेषाः॥

सरस्वती जी ने भी पुष्प चयन के अनेक मधुर चित्र इस महाकाव्य में चित्रित किये हैं जो अत्यन्त भावुकता पूर्ण एवं स्वाभाविक हैं।

वृन्दावन में पुष्प चयन करती हुई कोई मालाकार बधू पंजों के बल पर खड़ी हुई है, पैरों की अगुलियाँ पृथ्वी में धंस रही हैं, शरीर सीधा तना हुआ है। इस स्थिति में उसकी नाभि अनावृत हो गई है तथा त्रिवलियाँ विगलित हो गई हैं, केशों से मल्लिका की मालायें नीचे खिसक रही हैं, स्तन तट स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं, कटि पर केश फैल गये हैं, भुजलता वृक्ष शाखा के साथ-साथ हिल रही है और उसकी दृष्टि पुष्प पर केन्द्रित है। ऐसी अनेक मालाकार युवतियाँ राधा माधव के शृङ्गार के लिये नित्य वृन्दावन में पुष्प चयन करती है। यह एक सम्पूर्ण चित्र है, जिसका अङ्कन लेखनी से नहीं हृदय-तूलिका से किया गया है। आदि से अन्त तक शरीर की सूक्ष्म से सूक्ष्म क्रिया पर भी कवि की दृष्टि पहुँची है। पुष्प चयन की यह सम्पूर्ण प्रक्रिया अत्यन्त सहज एवं सरस है—

---

१. वही ६/४१। २. वही २/२६।
३ साहित्य दर्पण पृ० ३७४।

[1]उन्नमत चरणाङ्गुलि गाढ क्रान्त भूमि शरली कृत कायम्
व्यस्त नाभि विगलद्वलि केश भ्रस्तमल्लि विवृतस्तनपाली।
श्रोणि लम्बित कच, भुजवल्लीलग्नलोल विटपार्पित दृष्टिः
कुर्वचित्तरल हार बलाकं संचिकाय तरुणी कुसुमानि॥

संसार में जहाँ प्रकाश की सर्वत्र प्रशंसा होती है, वहाँ अन्धकार भी अपना एक पृथक सौन्दर्य रखता है। उसका भी अपना एक महत्त्व है, एक मूल्य है। कृष्णाभिसारिकाओं का तो वह परम हित वाहक सहयोगी मित्र है। अतः वह भी महाकाव्य के वर्णनीय विषयों में समुचित स्थान प्राप्त किये हुए है। अन्धकार का वर्णन उसकी प्रभावोत्पादकता को प्रकट करने के लिये कवि निम्न रूपों में करते हैं—

[2]अति सान्द्रत्व विश्वलोप समर्थता।
आकस्मिक समारम्भो निःशङ्कमभिसारिका॥

प्रस्तुत महाकाव्य में भी अन्धकार का अनेक रूपों में वर्णन किया गया है। अन्धकार जीवन की गति को अवरुद्ध करने वाला एक तामसी विकार है। इस पर विजय प्राप्त कर अपने परमेष्ट की उपलब्धि ही मानव का चरम लक्ष्य है।

वृन्दावन के केलिकुञ्जों में व्याप्त ध्वान्त वृन्द में गोप रमणियाँ अपने प्रियतम नन्दनन्दन श्यामघन की रूप राशि का दर्शन कर कृतार्थ होना चाहती है। तभी वे इस कालकूटान्धकार को पार करती हुई अपने प्रियतम के निकट पहुँचने के लिये व्यग्र हैं—

[3]अथमुररिपुकायः स्निग्ध कस्तूरिकाभम्।
व्रज जन कुल बाला ध्वान्त वृन्द विलोक्य॥

सर्वत्र वृन्दावन के कुञ्जों में तथा कछारों में तम चूर्ण की वृष्टि हो रही है। फिर भी वे गोपाल के साथ क्रीड़ा करने की कामना लिये हुए ऐसे भय प्रद अन्धकार में भी काममदान्ध बनी हुई अपने पथ पर निःशङ्क चली जा रही है—

[4]परिचरति समन्तात्कालकूटान्धकारे
प्रचलति कुलपाली शील दुग्धाब्धिपूरे।
अति चपल मनोभू मन्दर प्रेम बन्धा
अमृत हरिरत श्री केलि कामा मन्दान्धाः॥

प्रकाश में प्रकृति विभिन्न रूपों, नामों, जातियों आदि में विभक्त रहती है।

---

१. गोपाल विलास ५/४०–४१।
२. साहित्य दर्पण पृ० ३७४।
३. गोपाल विलास २/१४।
४. वही २/१५।

किन्तु अन्धकार में वही पूर्ण अद्वैत का रूप धारण कर लेती है। गोपाल विलास के कवि भी अद्वैत के साधक है। अतः अपने इष्ट देव का श्याम वर्ण ही उन्हें सर्वत्र दृष्टिगत होता है। इसीलिये उन्होंने अन्धकार के चित्रण में प्रगाढ़ रुचि प्रदर्शित की है—

[1]तदनुघनतमोभिरज्ञापिते दिग्विभागे
पथिपथि मनुजानामेवमासीत्प्रजल्पः।
किमजनिघन सघः, किं नभो भाण्ड भङ्गः
किमु मधु निहन्तुः कान्तिरद्वैतमाप॥

भारतीय साहित्य के प्रसिद्ध महाकाव्यों के नायक क्षत्रीय ही हैं। क्षत्रियों के लिये सुरापान व्यसन नहीं अपितु मनोरञ्जन का माध्यम माना जाता रहा है। विजयोल्लास का समारोह तो इसके बिना सम्भव ही नहीं है। इसीलिये महाकाव्यों में सुरापान को सन्मान प्राप्त हुआ है। सुरापान का वर्णन लगभग सभी महाकाव्यों में निम्न प्रकार से किया गया है—

[2]सुरापाने विकलतास्खलनं वचने गतौ।
लज्जामानच्युति प्रेमाधिक्यं रक्तेक्षणभ्रमाः॥

सरस्वती जी ने अपने इस काव्य को सब प्रकार से एक आदर्श महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। अतः उन्होंने महाकाव्यों में वर्णन योग्य अधिक से अधिक विषयों का समावेश कर इस महाकाव्य की रचना की है। अतः सुरापान के भी अनेक सरस वर्णन इस काव्य में मिलते हैं—

वृन्दावन वासी गोप वृन्द दिन भर गोपालन के श्रम साध्य कार्य से मुक्त होकर रात्रि में पूर्ण विश्राम का आनन्द ले रहे हैं। चन्द्रमा को अपनी पूर्ण चन्द्रिका के साथ नभ में रजत चषक की भाँति चमकता हुआ देखकर वे अपनी-अपनी प्रेयसियों के साथ सुरापान में प्रवृत्त हो रहे हैं। मधुपान से मदोन्मत्त बनी हुई कामिनियों का मान पूर्णतया भङ्ग हो जाता है। उन नवयुवतियों के नेत्र अलसाये हुए से हो रहे हैं तथा उनकी वाणी काम विलास से पूर्ण मादक बनी हुई है—

[3]रजत चषक भासं वीक्ष्य राका शशाङ्कम्
समजनि मधुपातुं कामिनां काम भूमा।
अथ युवति समेता सीधु पाने प्रवृत्ताः
मनसिज तरु कन्दं किन्नु सेक्तुं सकामा॥

---

१. वही ६/३०। २. साहित्य दर्पण ३७४।
३. गोपाल विलास ६/४५।

[1]समजनि मधु सङ्गान्मानिनी मानभङ्गः
कुसुम शर रसाले पल्लवः प्रादुरासीत् ।
अथ युवति जनानां सालसान् भ्रू विलासान्
अकृत नव वधूनां वाग्विलासान् च सीधू ।।

महाकाव्य की विषयवस्तु में जलकेलि के लिये भी आलङ्कारिकों ने निर्देश दिया है। अतः गोपाल विलास में भी जलकेलि के अनेक चित्र उपलब्ध होते है। उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं।

केलि कानन में नन्दनन्दन के साथ रात्रि भर रति क्रीड़ा में रत रहने से अलस वदना शिथिल कलेवरा राधा प्रातःकाल अपनी अन्तरंग सखियों के साथ यमुना तट पर जाती हैं। रात्रि जागरण से उनके नेत्रों में भारीपन है। रात्रि की सुखद स्मृतियों में लीन राधा यह समझकर कि कृष्ण भी जल केलि में हमारे साथ हैं वे भी जल केलि में प्रवृत्त होती हैं। वे भी अपनी सखियों के साथ इच्छानुकूल स्नान करती हैं।

[2]कलानिधानं जल केलि संगतम्
कलावती सापि विबुध्य राधिका ।
विगाहमाना सलिलं सखी जनैः
जहौ निशा जागर घूर्णनं दृशोः ।।

राधा को प्रातः स्नान करता हुआ देखकर सरवस्ती जी आनन्द विभोर हो जाते हैं। वे कहते हैं कि स्वयं कामदेव इस यज्ञ को कराने वाले विशिष्ट याजक के रूप में उपस्थित हों और वासन्ती यज्ञ से रजनी मदनोन्मत्त बनी हुई हो ऐसे में हरि मुख से नि.सृत सोम रस का पान करने वाली राधा ने रात्रि में सम्पन्न यज्ञ की समाप्ति पर शुद्धि के लिये ब्राह्मणों द्वारा पठित वेद मन्त्रों के साथ प्रातःकाल स्नान किया है।

[3]मनोजमासाद्य विशिष्ट याजकम्
वसन्त यागेन समाप्य यामिनीम् ।
मुदाभिषेकं हरिवक्त्र सोमपा
चकार किं सावभृथ द्विजेरितैः ।

राधा की अन्य सखियाँ भी स्नान करती हुई जल-क्रीड़ा का आनन्द ले रही हैं। जल में स्पष्ट दिखाई देने वाले उनके उन्नत प्रथुल पयोधर युवकों के मनों को हरने वाले हैं—

---

१. गोपाल विलास ६/४६ ।
२. वही ११/५८ ।
३. वही ११/५६ ।

[1]व्रजाङ्गनास्ताःपरितःपरस्परं, प्रियालिभिः सेकमवापजामुनम् ।
विकासमानो नु पयोधर श्रिया, मनांसि यूनांस्तिमितानिचक्रिरे ।।

राधा के साथ सखियों की इस जल क्रीड़ा से यमुना स्वयं कुङ्कुम, मञ्जरियों से मण्डित हो रही है। इस समय यह नील मणियों के समान नीली कान्ति वाली कालिन्दी गोपांगनाओं की हार लताओं और स्वर्णाभरणों से विचित्र बनी हुई रंग-बिरंगी दिखाई दे रही है—

[2]कलिन्द कन्यापि तदा सखीजनैः विगाहिता कुङ्कुममञ्जरी रुचा ।
किमिन्द्रनीलौघविनिर्मिताबभौ करम्बिता हारलतैव हाटकैः ।।

ऊपर प्रस्तुत किये गये इस विस्तृत विवरण से यह अनायास ही स्पष्ट हो जाता है कि महाकाव्य के लिये जिन विषयों का वर्णन आवश्यक बताया गया है वे सभी गोपाल विलास में उपलब्ध है।

———

१. गोपाल विलास ११/६० । २. वही ११/६५ ।

५ | गोपालविलास का कलापक्ष

(क) गोपालविलास में प्रयुक्त काव्य विधा—

साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने समस्त वाङ्मय को दो भागों में विभक्त किया है जो दृश्य एवं श्रव्य के नाम से जाने जाते हैं। इनमें दृश्य काव्य रंग मञ्च की वस्तु है। उसके लिये अभिनय की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है। बिना अभिनय के उसे हृदयङ्गम् नहीं किया जा सकता।

नाटच साहित्य के अजिरिक्त सम्पूर्ण वाङ्मय श्रव्य काव्य की परिधि में ही समाहित हो जाता है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार जो भी श्रवण का विषय है वह सब श्रव्य काव्य के अन्तर्ग आता है। वहाँ दृश्य कुछ भी नहीं हैं। इसीलिये उन्होंने श्रव्य का दृश्य से व्यवच्छेद करने के लिये ही अपनी कारिका में मात्र शब्द का प्रयोग किया है। 'श्रव्यं' श्रोतव्य मात्रं तत्' अर्थात् श्रव्य काव्य केवल मात्र श्रवण की ही वस्तु है। तदनन्तर वे इस श्रव्य काव्य को दो भागों में विभाजित करते हैं, जिनमें एक गद्य काव्य तथा तुसरा पद्यकाव्य है।—[२]"तद्पद्यगद्यमयं द्विधा"।

उन्होंने पुनः इस पद्य काव्य का विभाजन महाकाव्य तथा खण्ड काव्य के रूप में किया है। भारतीय मनीषियों ने 'महाकाव्य' के जिस स्वरूप की कल्पना की है वह संसार के साहित्य में अद्वितीय है। यहाँ के तत्वज्ञों ने इस सृष्टि के स्वामी को "कविर्मनीषीपरिभू स्वयंम्' के नाम से पुकारा है। उनकी मान्यता के अनुसार यह संसार उस अनादि कवि द्वारा विरचित एक महाकाव्य है। अतः इस संसार में जो भी कल्पना भाव विचार मानव जीवन को सत्‌चित् और आनन्द की ओर प्रेरित कर सकता है वही महाकाव्य का विषय बन सकता है। इसीलिये लक्षण ग्रन्थों के प्रणेताओं ने महाकाव्य को मानव जीवन के उत्कृष्टतम मूल्यों का संग्रहालय बनाने का प्रयास किया है, जिससे मार्गदर्शन प्राप्त कर मनुष्य मात्र अपने पशुत्व का दमन कर देवत्व की ओर अग्रसर होता है।

महाकाव्य के अतिरिक्त पद्य काव्य का दूसरा भेद खण्ड काव्य कहा जाता है। इसका विषय एक देशीय होता है। यह महाकाव्य की भांति व्यापक न होकर जीवन

---

१. साहित्व दर्पण ६।३१३।

२. वही ६।३१३।

की किसी एक विशेष घटना से सम्बद्ध होता है। जैसे मेघदूत, ऋतुसंहार आदि अथवा वे काव्य इसके अन्तर्गत आते हैं जिनमें किसी देवता, द्विज अथवा राजा का गुणगान किया जाता है। इस प्रकार के खण्ड काव्य एकार्थ प्रवण होते हैं और महाकाव्य के अनेक लक्षणों से हीन होते हैं। इनमें भाषा का भी कोई नियम नहीं होता।

पद्य काव्य की इन अनेक विधाओं के सन्दर्भ में गोपालविलास में प्रयुक्त काव्य विधा का पर्यालोचन हमारा लक्ष्य है। क्योंकि इसके रचयिता ने इसे एक महाकाव्य का स्वरूप प्रदान किया है। अतः सर्वप्रथम महाकाव्य की दृष्टि से ही इस पर विचार करना उचित होगा।

आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य की रूपरेखा निश्चित करते हुए उसमें मुख्यतया निम्न तत्वों का होना अनिवार्य बताया है—

[1]सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एक वंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृङ्गार वीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक सन्धयः।
इतिहासोद्‌भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गास्युः तेष्वेकञ्च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तु निर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दाखलादीनां सतां च गुण कीतंनम्।
एक वृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्य वृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह।
सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
सन्ध्या सूर्येन्दु रजनी प्रदोषध्वान्त वासराः।
प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तु बन सागराः।
सम्भोग विप्रलम्भो च मुनि स्वर्ग पुराध्वराः।
रण प्रयाणोपयम मन्त्र पुत्रोदयादयः।
वर्णनीयाः यथायोगं सांगोपाङ्गा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेयकथा सर्गं नाम तु।

---

१. साहित्य दर्पण ६/३१५-३२५ कारिका।

आचार्य दण्डी ने भी अपने 'काव्यादर्श'[1] में महाकाव्य की रूपरेखा प्रस्तुत की है किन्तु इसमें ऐसी किसी नवीनता का उद्घाटन नहीं हुआ है जिसका निर्देश दर्पणकार ने नहीं किया है। यह महाकाव्य सर्गबद्ध होता है इसमें एक ही नायक होता है जो धीरोदात्त गुणों से युक्त कोई श्रेष्ठ कुलोद्भव क्षत्रिय होता है अथवा कोई देवता होता है या एक ही उत्तम कुल में उत्पन्न अनेक राजा भी नायक हो सकते हैं। शृङ्गार वीर अथवा शान्त रसों में से एक रस अङ्गी रूप में होना अनिवार्य है शेष रसों का वर्णन भी अङ्ग रूप में होना चाहिये। महाकाव्य का कथानक इतिहास प्रसिद्ध होता है अथवा अनादि काल से जनमानस में सुरक्षित कोई लोक कथा होती है।

इस प्रस्तुत महाकाव्य गोपालविलास का प्रबन्ध ग्यारह सर्गों में किया गया है। इसका प्रत्येक सर्ग एक दूसरे से पूर्णतया सम्बद्ध है। सर्ग न बहुत बड़े हैं न बहुत छोटे। लगभग प्रत्येक सर्ग में प्रबन्ध काव्य के साथ मुक्तक का भी रसास्वादन कराने के लिये कुलक, कलाप कलापक आदि मुक्तक की अनेक विधाओं का प्रयोग भी किया है। आठ आठ श्लोकों के कुलक इस महाकाव्य में प्राप्त हैं।

भारतीय साहित्याचार्यों ने महाकाव्य के नायक के विषय में पर्याप्त मन्थन किया है। आचार्य विश्वनाथ[2] ने नायक के विषय को केवल एक ही कारिका में समाप्त कर दिया है। उनके मत से नायक त्यागी कुलीन दक्ष और श्रीपति रूप यौवन से युक्त, उत्साही दक्ष लोक रञ्जक तेजस्वी विशिष्ट वैदग्ध्य तथा सद्वृत्त से सम्पन्न होता है।

आचार्य धनञ्जय[3] ने नायक को कुछ अन्य गुणों से सम्पन्न माना है। उनके अनुसार नायक विनम्र मधुर त्यागी, चतुर दक्ष प्रिय वक्ता, लोकरक्षक, मनवचन कर्म से पवित्र, बाणी का धनी, उच्च कुलोद्भव, स्थिरमतिवाला, तथा युवक होता है। वह सदसद्विवेकिनी बुद्धि का स्वामी होता है। वह उत्साही अद्भुत प्रज्ञावाला, कला

---

१. सर्गबन्धोमहाकाव्यमुच्यतेतस्यलक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तु निर्देशो वापितन्मुखम्, इतिहास कथोदभूतामितरद्वासदाश्रयम् चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्तनायकं नगरार्णव शैलर्तु चन्द्रार्कोदयवर्णनैः, उद्यान सलिलक्रीडा मधुपानरसोत्सवैः विप्रलम्भैः विवाहैश्च कुमारोदय वर्णनै।
—काव्यादर्श १/१४-१७

२. त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको यौवनोत्साही, दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता। —साहित्य दर्पण ३/३०

३. नेताविनीतोमधुरस्त्यागीदक्षः प्रियंवदः रक्तलोकशुचीवाग्मीरूढ वंशोस्थिरः युवा युध्युत्साह स्मृतिप्रज्ञाकलामान समन्वितः शूरोदृढश्चतेजस्वी शास्त्र चक्षुश्चधार्मिकः। —दशरूपक २/१-२

प्रेमी तथा स्वाभिमान से युक्त होता है। शूरवीर दृढ़व्रती तेजस्वी शास्त्रों का ज्ञाता धार्मिक होता है।

गोपालविलास केनायक—

इस महाकाव्य के नायक पद पर इस सृष्टि के स्वामी कोटि ब्रह्माण्ड नायक क्षीर सागर शायी लक्ष्मीपति भगवान विष्णु के साकार विग्रह ब्रजेशनन्दन गोपाल कृष्णचन्द्र हैं। इस महाकाव्य में उनका आविर्भाव चतुर्भुज रूप में ही होता है। ये 'गोपवपु-धारी चतुर्भुज भगवान विष्णु ही योगियों के द्वारा भगवान कहे जाते है।

इसके अतिरिक्त ये भगवान विरुद्ध धर्मा भी है। विरुद्ध धर्मों का आश्रय होने के कारण ही ये पूर्णतम हैं क्योंकि जो विरुद्ध धर्मा नहीं होता वह पूर्ण भी नहीं होता इसीलिये श्रुतियों ने ब्रह्म परमात्मा अथवा भगवान को विरुद्ध धर्मी कहा है।

[2]अणोरणीयान् महतो महीयान्।

वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान से भी महान हैं।

[3]"आसीनो दूरे ब्रजति शयानोयाति सर्वतः" अर्थात् वह बैठा हुआ भी दूर तक जाता है, सोता हुआ भी सर्वत्र गमन करता है। "तदेजति[4] तन्नैजतितद्दूरेत-द्वन्तिकेतदन्तस्य सर्वस्य तद् सर्वस्यास्यवाह्यतः" वह गतिशील है और गतिशून्य भी वह समीप है और दूर भी है, वह इस सम्पूर्ण जगत के अन्दर भी है और बाहर भी है। "अजोऽपि[5] सन्नव्ययात्मा, सम्भवाम्यात्ममायया" मैं अजन्मा और अव्यय होकर भी थपनी माया से उत्पन्न होता हूँ।

इस विवरण से यह सिद्ध हो जाता है कि इस महाकाव्य के नायक भगवान कृष्ण अपने विरोधी गुणों के कारण परम योगी होकर भी महान भोगी बने हुए हैं। अविभक्त होकर भी दो दो गोप तरुणियों के मध्य अपने विविध शरीरों में विभक्त होकर रास में विहार करते हैं दृश्य होकर भी क्षण भर में ही गोपाङ्गनाओं के साथ रमण करते करते अन्तर्धान हो जाते हैं। केवल नन्दनन्दन के रूप में परिच्छिन्न रहते हुए भी समस्त ब्रह्माण्ड के मन प्राण आत्मा बने हुए हैं। अजन्मा होकर भी वे इस काव्य में जन्म ग्रहण करते हैं। पूर्णकाम होकर भी उनमें अपनी प्रेयसी गोपललनाओं के साथ केलि करने की कामना निरन्तर बनी रहती है। वे परम चतुर होकर भी

---

१. वदन्तितत् तत्व विदस्तत्वंयत् ज्ञानमद्वयम्, ब्रह्मेति, परमात्मेतिभगवानि-तिचशब्दयते। —भागवत १/२/११

२. कठोपनिषद् १/२/२०।

३. कठोपनिषद् १।२।२१।

४. ईशावास्योपनिषद् १।५।

५. श्रीमद्भगवद्गीता ४।६।

अपनी प्रेमिकाओं के लिये मुग्ध बने रहते हैं और राधा के लिये तो वे विक्षिप्तों जैसा व्यवहार करते हुए मिलते हैं। वे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होकर भी गोपियों के इतने आधीन हैं कि वे जैसा चाहती हैं उन्हें वैसा नाच नचाती है, वे सर्वथा और सर्वदा उनके वश में रहते हैं।

इन विरोधी गुणों के कारण नन्दनन्दन गोपाल ऐसे अलौकिक नायक शिरोमणि बन गये हैं जिन्हें अलङ्कार शास्त्रियों की परिभाषाओं के पाशों में नहीं बांधा जा सकता। फिर भी एक महाकाव्य की दृष्टि से इसके नायक की विवेचना करना हमारा दायित्व है।

धनञ्जय के अनुसार महाकाव्य का नेता विनम्र, मधुर, त्यागी, दक्ष और लोकरञ्जक होता है।

'गोपालविलास' के नायक गोपाल कृष्ण समस्त गुणों के एक मात्र अधिष्ठान है। वे स्वभाव से अत्यन्त विनम्र हैं। वे कोमलाङ्गी गोपाङ्गनाओं को इतनी रात गये घोर अन्धकार में वृन्दावन के कंटकाकीर्ण पथ पर चल कर अपने पास निर्जन वन में आया हुआ देखकर आश्चर्य चकित हो जाते हैं। ऐसी विचित्र स्थिति में भी किसी प्रकार के आवेग अथवा उद्वेग के बिना अपनी अत्यन्त कोमल एवं विनम्र वाणी में उनका स्वागत करते हैं। तत्पश्चात् उनसे इतनी रात में निर्जन वन में इस प्रकार एकाकी आने का कारण पूछते हैं। उनके मौन रहने पर बड़ी नम्रता पूर्वक वे अनन्य शुभ चिन्तक एवं एकमात्र अभिभावक के रूप में उन्हें समझाते हैं कि इतनी रात्रि में कुल वधुएँ अपने प्रियतमों का त्याग नहीं करती हैं। अतः इस सहज रमणीय बने हुए वसन्त दून वृन्दावन को तथा सर्वत्र चन्द्रिका धौत कालिन्दी के कूलों को मादकता से पूर्ण देखकर और मेरी वाणी पर ध्यान देकर तुम सब तत्काल अपने-अपने घरों को लौट जाओ। उनका यह आचरण उनके उदात्त चरित्र का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

[1]स्वागता प्रियतमा मुखैरिप्रच्छतिस्मतदनुप्रियवाचा।
कण्टकौघ कठिनैमृदुपादाः कानने निशिकथं कुलबालाः॥

[2]दृष्ट्वा वसन्त तिलकं विपिनं समन्तात्।
इन्दोः करैश्च रुचिरं पुलिनं तटिन्या॥
आकर्ण्यमद्गिरमितप्रतियात गेहं।
नक्तं प्रियं प्रियतमा न परित्यजन्ति॥

महाकाव्य का नायक नम्र होने के साथ-साथ मधुर भी होता है। गोपाल

---

१. गोपालविलास २।४३।
२. वही २।४४।

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक......10357

विलास के नायक माधुर्य के अवतार हैं। क्या इससे भी अधिक कोई मधुरता की कल्पना की जा सकती है जैसी अपने नायक के विषय में गोपालविलास के कवि ने की है ? वे वृन्दावन में स्थित ऐसे कल्पतरु हैं जो प्रेम के अङ्कुरों से सुशोभित है कोकिल की कोमल एवं मधुर स्वरावलि से कूजित है, शुक नीलकंठ एवं हंसों को वह अत्यन्त प्रिय हैं। मधु सम्भृत सुमनावलि से समृद्ध है, अमृत रस को तुच्छ बना देने वाले जिसके पुष्पों पर मधुपावलि गुञ्जन करती रहती है। गोपालिका की कुच घटिकाओं के पटीर जल से जिसका सम्वर्धन हुआ है, जो कामदेव से भी कहीं अधिक सुन्दर है और चन्द्रमा से कहीं अधिक कान्तिमान है। नन्द महल के आंगन का यह चलता फिरता तरु गोपङ्गनाओं के शृङ्गार का सार है, हम सदा इसकी शरण में रहें।

[1]प्रेमाङ्कुरं पिक रवं शुकनील कंठम्।
हंसप्रियं प्रिय कदम्ब मधु प्रसूनम्।
विश्वार्ति (पीयूष) हारि कुसुमेषु रतालि वृन्दं।
वृन्दावने कमपि कल्पतरुं भजामः।
[2]गोपालिका कुच घटीय पटीर नीर।
सम्वर्धितं मदन सुन्दरमिन्दु कान्तम्।
नन्दाङ्गणे कमपिजङ्गममङ्गनानां।
शृंगारसारमनिशं तरुमाश्रयामः।।

महाकाव्य का नायक लोकरञ्जन एवं लोक रक्षण के लिये अपने सुख का भी परित्याग कर देता है। गोपालविलास के नायक इसी प्रकार के परम त्यागी एवं परोपकार परायण व्यक्ति है। वे अपने प्रेमी जनों के लिये अपना सर्वस्व भी समर्पित करने के लिये तत्पर रहते हैं। जब राधा की सखी गोपाल से कहती है कि इस बन का कोई देवता ही राधा पर कुपित है जिसके कारण राधा की दशा इतनी दयनीय हो गई है। इस पर गोपाल तत्काल सखी से कहते हैं कि तुम्हें इस वन देवता को पूजा आदि से सन्तुष्ट करना चाहिये। उसे प्रसन्न करने के लिये तुम मेरा सर्वस्व भी उसे दे सकती हो यदि वह राधा की कामना को पूर्ण करने वाला सिद्ध होता है।

[3]देवोऽसौ विपिन भुवः प्रसादनीयः पूजाभिर्बलिविभिवैः सगीत वाद्यैः।
सर्वस्वं मम भवती ददाति तस्मै राधायां यदि भविता सकाम दाता।।

---

१. गो० वि० १।५।　　२. वही १।७।
३. वही ६।१३।

इससे बड़ा त्याग और क्या हो सकता है। वे अपनी प्रेयसी राधा की मनोकामना पूर्ण करने के लिये अपना जीवन सर्वस्व भी समर्पित करने को तत्पर हैं।

गोपालविलास के नायक क्षत्रियों के प्रसिद्ध यदु कुल में उत्पन्न एक महामानव हैं। लोकरञ्जन उनके जीवन का साध्य है। वे जब तक गोकुल में रहते है तब तक निरन्तर जन मानस को व्यथित एवं आतङ्कित करने वाले राक्षसों का संहार करने में संलग्न रहते हैं। वृन्दावन में जाकर भी उनका यह साधुओं के परिमाण एवं दुष्टों के विनाश का कार्य निरन्तर चलता रहता है—

[1]सर्वर्तु सर्वकुसुमैः सुविराजमानं।
वृन्दावनं बलयुतः सखिभिः प्रविश्य।
सञ्चारयंस्तरणिजा पुलिनेषु वत्सान्।
वत्साद्यधेनुकबकान्निजधान कृष्णः॥

महाकाव्य का नायक परमोत्साही होता है। गोपालविलास के नायक गोपाल असीम उत्साह के स्वामी हैं। वे अपने अत्यन्त प्रिय व्रजवासियों को प्रत्येक प्रकार की आपदा से सुरक्षित रखने के लिये सदैव तत्पर रहते हैं। उनकी रक्षा के लिये वे अपने जीवन को भी काल के गाल में डाल सकते हैं। वे यमुना को निरन्तर अपनी विषाक्त फूत्कारों से अपेया बना देने वाले कालिया नाग के विशाल परिवार में एकाकी ही कूद पड़ते है और उन्हें नाथकर उनका निग्रह करते हैं। उन काल कराल सर्पों का विनाश करने में उन्हें कितना विकराल बनना पड़ा होगा यह तो केवल कल्पना का ही विषय है। निःसन्देह ऐसी अद्वितीय साहासपूर्ण वीरता के दर्शन अन्यत्र दुर्लभ हैं।

[2]नागान्निगृह्यमृतकाल कराल रूपान्।
कृत्वा कलिन्दतनयाममृत प्रवाहाम्॥

यद्यपि समस्त व्रज मण्डल कंस के अत्याचारों से संत्रस्त है किन्तु उसे अपने श्याम के शौर्य पर पूर्ण विश्वास है। व्रज के आबाल वृद्ध वनिता सभी इस तथ्य से पूर्णतया परिचित हैं और आश्वस्त हैं कि एक दिन हमारे नन्द नन्दन व्रज चन्द्र ही कंस को सदा सर्वदा के लिये ध्वस्त करेंगे। अहर्निश केवल गोपालन में ही व्यस्त रहने वाली राजनीति से पूर्णतया अनभिज्ञ ग्रामीण गोपियाँ भी अपने गोपाल के शौर्य को अच्छी प्रकार जानती हैं तभी तो वे एक दिन एकान्त में अपनी इस उत्सुकता को शान्त करने के लिये गोपाल से पूछती हैं—

---

१. गो० वि० १।७०। २. वही १।७३।

[1]सम्प्रार्थितः सुरगणैरनिशं मुरारिः
कंसादि नाश करणाय दिनैः कियद्भिः ।
उत्कण्ठया परमया व्रज सुन्दरीणां
सर्म्वत्रितस्तरुणीमानसमलञ्चकार ॥

महाकाव्य का नायक युवा होता है। भागवत के अनुसार गोपाल कृष्ण ग्यारह वर्ष दो मास तक ही व्रज में रहे तत्पश्चात् मथुरा चले गये थे। गोपाल विलास में भी उनकी शैशव बाल एवं कैशोर लीलाओं का ही वर्णन किया गया है। अतः गोपालविलास में उनके युवा होने का प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ किशोरावस्था में की गई उनकी लीलाओं के अनेक चित्र इस काव्य में उपलब्ध हैं। राधा उनकी किशोर लोलाओं का तन्मयता के साथ स्मरण करती हुई विभ्रम में पड़ जाती है—

[2]कूजत्कङ्कण किङ्किणीकणरुणत्कारी क्वणन्नूपुरा
किञ्चित्किञ्चिदुदंचतिस्ममुरजित्कैशोरलीलामृतम् ।
चञ्चत्पञ्चरवाकुलंरतिपदं वृक्ष समालिङ्गिता
राजत्काञ्चनवल्लरीवविपिने राधा दधे विभ्रमम् ॥

गोपाल विलास के नायक की विलक्षण बौद्धिक मानसिक एवं शारीरिक विदग्धता के दर्शन हमें उस समय होते हैं जब वे अपनी प्रेयसी राधा के वियोग में अत्यन्त व्यथित होकर अपनी सुध बुध खो देते हैं। वे राधा के लिये ऐसी अलौकिक कल्पनायें और ऐसी अभूतपूर्व उद्भावनायें करते हैं जो उनके हृदय की गहनतम वेदना का तो परिचय देती ही हैं साथ ही उनकी बौद्धिक प्रखरता का भी पूर्णतया उद्घाटन करती हैं।

महाकाव्य के नायक सुश्रीक अर्थात् श्रीपति होते हैं। लौकिक महाकाव्यों के नायक अपनी एक सीमित राज्य लक्ष्मी के ही स्वामी हो सकते हैं। किन्तु इस महाकाव्य गोपाल विलास के नायक अखिल ब्रह्माण्डाधिपति हैं और जन्मतः साक्षात् इन्दिरापति के रूप में अपने माता-पिता को दर्शन देते हैं—

[3]शौरिक्रमेणदर चक्र गदाब्ज पाणिम् ।
ज्ञात्वा चराचर गति पतिमिन्दिरायाः ॥

यज्ञानुष्ठानों एवं धार्मिक कर्मकाण्डों में निष्ठा रखने वाले ऋषियों को यह विश्वास हो या न हो किये गोपाल ही इस चराचर जगत की एक मात्र गति हैं और इस समस्त विश्व विभव के एक मात्र स्वामी हैं तथा लक्ष्मी के पति हैं। किन्तु ऋषि पत्नियाँ तो उन्हें साक्षात् श्रीपति के रूप में ही उनके दर्शन करके उस सौन्दर्य के सागर में अपने को लीन कर देना चाहती हैं—

---

१. गो० वि० १/७६। २. वही ६/५१।
३. गो० वि० १/२१।

'दत्वान्नंमणिभाजनैः वहुरसं सौन्दर्यं पाथोनिधौ।
सन्तप्योक्षिभुगं मनश्च मधुप पादाम्बुजे श्रीपतेः ॥[1]

इस प्रकार महाकाव्य के नायक में अलङ्कार शास्त्रियों ने जिन प्रमुख एवं विशिष्ट गुणो की स्थापना की है वे सभी गुण गोपाल विलास के नायक में पूर्ण रूप से प्राप्त होते हैं।

गोपाल विलास महाकाव्य का कथानक—

अलङ्कार शास्त्रियों ने महाकाव्य के कथानक के लिये जिन विशेष गुणों की कल्पना की है वे सभी गोपाल विलास में विद्यमान हैं। इस महाकाव्य का कथानक भारतीय इतिहास की एक ख्याति प्राप्त चिर नवीन घटना है। अनेक पहाकवियों ने इस कथानक को अपने काव्यों तथा महाकाव्यों का विषय बनाया है। यह कथानक पिछली अनेक सहस्राब्दियों से भारत के जनमानस को आन्दोलित करता रहा है।

राधामाधव की यह चिर प्रसिद्ध प्रणय गाथा ही इस महाकाव्य की कथा वस्तु का आधार है। अग्निपुराण ब्रह्म पुराण, ब्रह्म वैवर्त पुराण, भागवत महापुराण गर्ग संहिता आदि पुराण कारों ने इसी कथानक को अपनी-अपनी कल्पनाओं के अनुसार चित्रित किया है। अतिप्राचीन पौराणिक काल से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों ने इस अद्‌भुत प्रेम कथा को अपने हृदय की गहन अनुभूतियों से सजाया है। सरस्वती जी ने भी इस चिर नूतन प्रेमाख्यान को अपने काव्य कला कौशल से अत्यन्त रमणीय बनाकर भगवद्‌भक्ति के प्रति अपनी मान्यता को प्रकट करने के लिये नितान्त नवीन रूप में प्रस्तुत किया है।

मानव जीवन की चरमाभिव्यक्ति के लिये भारतीय मनीषियों ने धर्म अर्थ काम मोक्ष इस वर्ग चतुष्ट्य की पुरषार्थों के रूप में कल्पना की है। उनमें से एक की सिद्धि अनिवार्य रूप से महाकाव्य में होनी ही चाहिये। मानव जीवन के चरम लक्ष्य के रूप में मोक्ष को सभी ने स्वीकार किया है किन्तु सरस्वती जी ने मोक्ष निरपेक्ष भक्ति को ही परम पुरुषार्थ के रूप में प्रतिपादित किया है। सरस्वती जी मोक्ष नहीं चाहते विष्णु का परम पद चाहते हैं। अपने इस महाकाव्य के अन्तिम सर्ग में वे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि मेरा यह काव्य विष्णु के परम पद की प्राप्ति कराता है—

[2]"तथाप्येतत्काव्यं परिचरति विष्णोः पदम्"

काम इस महाकाव्य का प्राण है। पृथ्वी सहित इन्द्र शिव ब्रह्मा आदि सभी

---

१. वही १/८०।
२. गो० वि० ११/८९।

प्रमुख देवताओं का काम पुराण पुरुषोत्तम भगवान विष्णु का काम, वसुदेव देवकी का काम, नन्द यशोदा का काम, और अन्त में राधा माधव का काम। इस प्रकार इस महाकाव्य में सर्वत्र काम की ही साधना और आराधना की गई है। नन्द नन्दन गोविन्द गोपाङ्गनाओं के काम ही तो है जो उनके परमाराध्य बने हुए हैं। इन सबके अन्तर में विद्यमान काम के विविध कलात्मक क्रिया कलापों से ही इस महाकाव्य का कलेवर अधिक कल्पना प्रधान बन गया है। परोक्ष रूप से धर्म और अर्थ का चिन्तन भी इस काव्य में प्राप्त होता है।

अलङ्कार शास्त्रियों की मान्यता के अनुसार महाकाव्य के कवि को अपने काव्य के आरम्भ में सर्वप्रथम ईशवन्दना, अपने इष्टदेव की स्तुति, आशीर्वचन अथवा अपने काव्य की विषय वस्तु का निर्देश करने वाले पद्यों को प्रस्तुत करना चाहिये।

इस महाकाव्य के प्रथम श्लोक में ये सभी तत्व समन्वित रूप में एक साथ उपलब्ध होते हैं—

'राधा श्रृङ्गार सरसी मरालः कमलालयः।
पाटलाक्षिपदपायादपायात्कोऽपि गोकुलम् ॥

अपने महाकाव्य के इस प्रथम श्लोक के द्वारा कवि भगवान वासुदेव की स्तुति करते हुए उनसे गोकुल की प्रत्येक प्रकार के अनिष्ट से रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं। ये भगवान वासुदेव राधा की श्रृङ्गार सरसी में सतत निवास करने वाले मराल हैं।

'राधा श्रृङ्गार सरसी' का कथन करके कवि ने अपने काव्य के वर्ण्य विषय की ओर इङ्गित कर दिया है, क्योंकि यह महाकाव्य आदि से अन्त तक राधा के श्रृङ्गार रस से अभिसिक्त है जिसका पान करने वाला कोई कमलालय निवासी हंस ही हो सकता है।

ये राधा माधव ही कवि के इष्ट देव भी हैं। इस सम्पूर्ण काव्य में सर्वत्र उन्हीं का गुण गान किया गया है। कवि ने स्वयं अपने इस महाकाव्य के प्रथम श्लोक में परोक्ष रूप से जहाँ इस काव्य की विषय वस्तु एवं नेता का निर्देश किया है वहाँ अपने काव्य नायक की रमणस्थली गोकुल नगरी की प्रत्येक आपत्ति से रक्षा करने की आशीर्वादात्मक प्रार्थना भी की है।

साहित्य मर्मज्ञ के अनुसार महाकाव्य का कवि अपने काव्य में कहीं न कहीं अपने काव्य कौशल से ऐसे अवसर निकाल लेता है जब वह समाज में दुष्टों की निन्दा करके एक प्रकार से उन्हें दण्डित करता है तथा सज्जनों की प्रशंसा करके उनका सन्मान करता है। 'गोपाल विलास' के कवि ने भी ऐसा ही किया है। वे भी अपने काव्य की प्रशस्ति के साथ-साथ दुष्टों की निन्दा तथा सज्जनों की प्रशंसा करते हैं—

---

१. गोपाल विलास १/१।

'मद्वाणी सरसी विचित्रसुरसा नालीकलीलावती
स्वच्छान्तः पृथु रोम हर्ष जननी विश्वम्भरामोदिनी ।
भद्रोपद्रवकारिणः खरमुखाः दुष्टाशयाः शूकराः
एणाः मा विलसन्तु सन्ति परितपञ्चाननाः सज्जनाः ॥

कवि परम्परानुसार महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में पृथक्-पृथक् वृत्तों का प्रयोग होता है किन्तु एक सर्ग में एक ही छन्द का होना आवश्यक माना गया है तथा सर्ग की समाप्ति पर सर्ग में प्रयुक्त छन्द से भिन्न अन्य छन्द का प्रयोग अनिवार्य है जिसमें सर्ग की अग्रिम कथा का निर्देश होता है। 'गोपाल विलास' में इस मान्यता का अक्षरशः पालन किया गया है । सर्ग के अन्त में एक अथवा एक से अधिक श्लोकों में अग्रिम सर्ग की कथा का निर्देश किया गया है। उदाहरण के रूप में चतुर्थ सर्ग का अन्तिम श्लोक उद्धृत किया जा सकता है । जब राधा की सखी राधा से यह कहकर वन में चली जाती है कि मुझे कितना भी प्रयत्न करना पड़े किन्तु मैं नन्दनन्दन गोपाल को तुम्हारे करतल में प्राप्त कराकर रहूँगी । अग्रिम पञ्चम सर्ग में वह इस कार्य की सिद्धि के लिये अपना तीव्र प्रयत्न आरम्भ कर देती है।

²तीरं तीरं तपन दुहितुः पुष्पितानां द्रुमाणाम्
मूलं मूलं नव किसलयाशोक शोण निकुञ्जम् ।
भ्रामं भ्रामं तवकर तलं प्रापयेन्नन्द सूनुम्
सम्भाष्यैवं प्रहसितमुखी दूतिकागाद्वनान्ते ॥ गो० वि० ४/६१ ।

महाकाव्य में आठ से अधिक सर्गो का गुम्फन होता है। सर्ग न बहुत बड़े होने चाहिये और न बहुत छोटे । किसी किसी सर्ग में एक से अधिक वृत्तों का भी प्रयोग किया जाता है ।

गोपाल विलास महाकाव्य में ग्यारह सर्ग है। इनमें से कोई भी सर्ग न तो असाधारण रूप से बहुत बड़ा है और न बहुत छोटा। सभी सर्ग लगभग समान सामग्री वाले हैं । सरस्वती जी ने इस महाकाव्य के दूसरे और तीसरे सर्ग में लगभग पचास प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है । सम्भवतः उन्होंने अपने से पूर्व दो प्रसिद्ध महाकाव्यों के प्रणेताओं की परम्परा का पालन करने के लिये ही ऐसा किया है। शिशुपाल बध' का चतुर्थ और 'किरातार्जुनीय' का पञ्चम सर्ग आदर्श रूप में उनके सामने उपस्थित थे ।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रजनी, प्रदोष, ध्वान्त दिवस प्रातः मध्याह्न मृगया शैल ऋतु बन सागर आदि का वर्णन भी होना चाहिये सरस्वती जी ने 'गोपाल विलास' में इन सबका समायोजन करके इसे

---

१ गो० वि० ११/६१ । २. वही ४/६१ ।

महाकाव्य के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। इन सब सन्ध्या आदि का वर्णन इससे पूर्व चतुर्थ अध्याय में वर्ण्य विषय के अन्तर्गत किया है।

(ख) गोपाल विलास में रसपरिपाक

काव्य के शब्दार्थ रूप कलेश्वर में उसकी रस रूप आत्मा के साक्षात्कार को सभी काव्य मर्मज्ञों ने सर्व सम्मति से एक लोकोत्तर अनिर्बचनीय आनन्दानुभूति स्वीकार किया है। उस रस के बिना काव्य की वही दशा होती है जो दशा आत्मा के बिना शरीर की होती है।

प्रस्तुत महाकाव्य गोपाल विलास के कवि अद्वैत दर्शन के अद्वितीय विद्वान है। उन्होंने समस्त संस्कृत साहित्य में उपलब्ध इस अपने प्रकार के एकमेव महाकाव्य द्वारा अद्वैत भक्ति के अनुपम रस का आस्वादन कराया है, वह अन्यत्र कहीं भी काव्य जगत् में प्राप्त नहीं है। अतः इस लौकिक काव्य में अभिव्यक्त उस अलौकिक रस को हृदयंगम करने के लिये वैदिक ऋषियों से लेकर प्रमुख साहित्याचार्यों की रस विषयक मान्यताओं का विवेचन करना, आवश्यक हो जाता है।

श्रुतियों में रस के विषय में स्पष्ट रूप से दिशा निर्देश करने वाला तैत्तिरीय उपनिषद् का यह मन्त्र प्राप्त होता है—

"[1]यद्वैतत्सुकृतं रसो वै सः। रसं
ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।
कोह्येवान्यात्कः प्राण्याद् यदेषः
आकाशआनन्दो न स्यात् एषः ह्येवानन्दयति।"

निश्चिच रूप से ये सुकृत नाम से कहे गये पर ब्रह्म परमात्मा ही रस स्वरूप हैं। क्योंकि यह जीवात्मा इस रस को प्राप्त करके ही आनन्द युक्त होता है। यदि यह आनन्द स्वरूप और आकाश की भाँति व्यापक परमात्मा न होता तब कौन जीवित रह सकता था? और कौन प्राणों की क्रिया कर सकता था? अतः निःसन्देह रूप से सिद्ध है कि ये सबमें व्याप्त आकाश रूप परमात्मा ही सब को आनन्द प्रदान करते हैं। जब आनन्द स्वरूप एकमात्र परमात्मा ही है तब दूसरा कौन आनन्द दे सकता है।

'छान्दोग्योपनिषद्' के ऋषि भी इसी परमात्म रस को समस्त रसों में स्थित एक मात्र रस मानते हैं।

"[2]स एव रसानां रसतमः परमः परार्धं"

विशाल आध्यात्मिक साहित्य के विश्रुत सृष्टा महर्षि वेद व्यास ने रस को ही काव्य का एक मात्र जीवन स्वीकार किया है—

---

१. तैत्तिरीयोपनिषद् २/७।   २. छान्दोग्योपनिषद् १/४/५।

[1]"वाक् वैदग्ध प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्"

यद्यपि काव्य में वाणी की विदग्धता को प्रमुख मानागया है किन्तु काव्य का जीवन तो एक मात्र रस ही है।

तमसा के तट पर आदि कवि वाल्मीकि अपने अन्तर से स्वतः स्फुटित जिस छन्दोमयी वाणी की पुनः-पुनः आवृत्ति करके आनन्दातिरेक से आत्म विभोर हो रहे थे उसका एक मात्र कारण उसमें ध्वनित होने वाली रस रूप आत्मा की ही तीव्रानुभूति था। इसी गुण रीति अलङ्कार विहीन किन्तु रस पूर्ण रचना को आधार रूप में उद्धृत करके अपने 'ध्वन्यालोक' में आचार्य आनन्दवर्धन ने "ध्वनि-रात्मा काव्यस्य" इस रस विषयक सैद्धान्तिक सूत्र की सृष्टि की है।

भरतमुनि का रस सूत्र—इस रस रूप आत्मा का साक्षात्कार किस प्रकार किया जा सकता है? इस जटिल प्रश्न का उत्तर सर्वप्रथम प्राचीनतम नाट्याचार्य भरतमुनि ने "विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगात् रस निष्पत्तिः" इस सूत्र के द्वारा किया है। जिसका अर्थ है कि विभाव, अनुभाव, और संचारी भावों के संयोग से रस निष्पन्न होता है। सभी रसान्वेषी काव्य मर्मज्ञ इन भरत मुनि को ही रस प्रक्रिया का आदि प्रवर्तक मानते हैं।

नाट्य शास्त्र पर अनेक भाष्य लिखे गये हैं जो इस समय प्राप्त नहीं हैं। किन्तु इस रस सूत्र के अनेक व्याख्याताओं का परिचय अवश्य प्राप्त होता है। उन्होंने अपने सम्प्रदायों एवं स्वतन्त्र विचारों के आधार पर भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये हैं। उनका मत वैपरीत्य भी इस सूत्र में आये केवल 'संयोगात्' और 'निष्पत्ति' इन दो पदों पर ही है। इन व्याख्याताओं में सर्व प्रथम स्थान 'भट्टलोल्लट' का है।

भट्टलोल्लट—

इनका मत उत्पत्तिवाद के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये संयोग का अर्थ उत्पाद्य उत्पादक सम्बन्ध से निश्चित करते हैं और निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति मानते हैं। उनकी मान्यता के अनुसार रस सहृदय सामाजिक के अन्त.करण में उत्पन्न न होकर विभावादि के द्वारा उत्पन्न होता है।

शंकुक—

भट्टलोल्लट के सिद्धान्त का खण्डन करते हुए शंकुक अपने अनुमितिवाद की स्थापना करते हैं। उनके अनुसार रस सूत्र के संयोग शब्द का अथ अनुमाप्यानु-मापक सम्बन्ध से स्पष्ट करते हैं और निष्पत्ति का अर्थ अनुमिति मानते हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने विभावादि को चित्र तुरंगवत माना है।

भट्टनायक—

इन्होंने लोल्लट के उत्पत्तिवाद और शंकुक के अनुमितिवाद को निरस्त

---

१. अग्निपुराण ३३८/३३।

किया और भुक्तिवाद के सिद्धान्त की प्रतिष्ठापना की। इनके अनुसार संयोग का अर्थ भोज्यभोजक सम्बन्ध से निश्चित होगा और निष्पत्ति का अर्थ भुक्ति होगा। साथ ही इन्होंने रस परिपाक के लिये भावकत्व और भोजकत्व व्यापारों की भी कल्पना की है।

अभिनवगुप्त—

इनके सिद्धान्त को 'अभिव्यक्तिवाद' के नाम से जाना जाता है। इन्होंने 'संयोगात्' का अर्थ 'व्यङ्ग्यव्यञ्जक भावरूपात्' और निष्पत्ति को व्यक्ति कहा है। ये आनन्दवर्धन के ध्वनि सिद्धान्त का पोषण करते हुए रस को ध्वनि का एक प्रकार 'रस ध्वनि' मानते हैं। इनके अनुसार रस व्यङ्ग्य है और इसकी उपलब्धि व्यञ्जना द्वारा ही सम्भव है। अतः रस अभिव्यक्त होता है। इन्होंने रस को लौकिक साधन निरपेक्ष सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भौतिक भावानुभव से नितान्त भिन्न नित्य नवीन चिर रमणीय ब्रह्मास्वाद सहोदर कहा है।

आनन्दवर्धन—

अभिनव गुप्त का रस सिद्धान्त व्यक्तिवादी आचार्य आनन्द वर्धन द्वारा अनेक वर्ष पूर्व प्रतिपादित किया जा चुका था। वे ही ध्वनिवाद के सर्वप्रथम प्रवर्तक हैं। जहाँ अभिनव गुप्त केवल रस ध्वनि को ही काव्य की आत्मा कहते हैं, वहाँ आचार्य आनन्द वर्धन चमत्कारोत्पादक गुण रीति अलङ्कारादि सभी को ध्वनि के अन्तर्गत मानते हैं। इसीलिये इन्होंने ध्वनि के वस्तुध्वनि अलंकार ध्वनि और रस ध्वनि ये तीन प्रकार निश्चित किये हैं, जो सभी एक मात्र व्यञ्जना के ही विषय हैं। इन्हें ही वे काव्य की आत्मा मानते हैं।

आचार्यमम्मट—

ये भी ध्वनिवाद के प्रमुख एवं प्रबल समर्थक हैं। इन्होंने ध्वनिकाव्य को ही सर्वोत्कृष्ट काव्य माना है। जहाँ वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यङ्ग्यार्थ अतिशय चमत्कारी हो उसे ही इन्होंने ध्वनिकाव्य कहा है।

[1]"इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः।"

आचार्य मम्मट ने इस ध्वनि के दो भेद किये हैं—

(१) लक्षणामूलक ध्वनि (२) अभिधामूलक ध्वनि। इस अभिधामूलक ध्वनि को इन्होंने विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि कहा है। फिर इसे भी दो प्रकार की माना है (१) असंलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि (२) संलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि। जहाँ वाच्य और व्यंग्य का क्रम लक्षित न होता हो वह असंलक्ष्यक्रम और जहाँ वाच्य (विभावादि) और व्यंग्य (रस) का क्रम लक्षित होता हो वह संलक्ष्यक्रम ध्वनि है। इनके भी अनेक भेदोपभेद करके ध्वनि को इक्यावन प्रकार की बताया है। किन्तु इन्होंने मुख्य रूप से ध्वनि के वाच्यतासह और वाच्यता असह ये दो भेद किये हैं। वाच्यता

१. काव्यप्रकाश २/१/४।

सह के अन्तर्गत वस्तु ध्वनि और अलंकार ध्वनि आते हैं तथा वाच्यता असह को रस ध्वनि कहा जाता है।

(१) गोपाल विलास के कवि सरस्वती जी की रस विषयक मान्यता—

सरस्वती जी ने भक्ति के लक्षण ग्रन्थ के रूप में 'भगवद्भक्ति रसायन' की रचना की थी। इसके तृतीय उल्लास में सरस्वती जी ने भक्ति रस का सांगोपांग प्रतिपादन किया है। इसी रसायन में भक्ति रस के विषय में प्रश्न करते हुए वे कहते हैं कि यह रस क्या है ? जिसमें इस रस की प्रतीति होती है, वह रसाधार कौन है ? इस रस का प्रत्यायक कौन है ? और इस रस की प्रतीति किस प्रकार की होती है।

ननु कोऽयं रसो नाम किं निष्ठो वाभवेदसौ।
अस्यप्रत्यायकः कोवा प्रतीतिरपि कीदृशी॥ भक्ति रसायन ३/१।

रस क्या है ? इसके उत्तर में सरस्वती जी कहते हैं कि विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों के सहयोग से सुख रूप में अभिव्यक्त होने वाला स्थायी भाव ही रस कहलाता है।

विभावैरनुभावैश्चव्यभिचारिभिरप्युतः।
स्थायीभाव सुखत्वेन व्यज्यमानो रसः स्मृतः॥ भक्ति रसायन ३।२।

स्थायीभाव को स्पष्ट करते हुए सरस्वती जी कहते हैं कि भगवद्गुणगण श्रवण से तैलधारावत पूर्णतया द्रवित हुए चित्त में स्थिर रूप से स्थित जो भगवदाकार रूप वासना है, उसे ही स्थायीभाव के नाम से जाना जाता है और फिर वहीं परमानन्द रूप से व्यक्त होकर रसता को प्राप्त होता है। क्योंकि भगवान स्वयं परमानन्द स्वरूप हैं, अतः वे स्वयं ही पूर्ण द्रवित हुए चित्त में सदा सर्वदा के लिये स्थित होकर स्थायीभाव के रूप में पूर्ण रसता को प्राप्त होते हैं।

स्थायीभाव गिरातोऽसौ वस्त्वाकारोऽभिधीयते
व्यक्तश्च रसतामेति परानन्दतया पुनः।
भगवान् परमानन्द स्वरूपः स्वयमेव हि
मनोगतस्तदाकारो रसतामेति पुष्कलम्॥ भक्ति रसायन १।९–१०।

किन्तु भगवान को आलम्बन विभाव माना जाता है, फिर वे स्थायीभाव के रूप में किस प्रकार हो सकते हैं ? इसका उत्तर देते हुए सरस्वती जी कहते हैं कि भगवत् रूप बिम्ब की सोपाधिक प्रतिबिम्बात्मक प्रतीति ही स्थायीभावता को प्राप्त होकर रस की निष्पत्ति करती है। अतः भक्ति रस में आलम्बन विभाव और स्थायीभाव में उसी प्रकार की भिन्नता का आभास होता है जिस प्रकार एक होते

हुए भी जीवात्मा और परमात्मा लोक व्यवहार में बिम्ब प्रतिबिम्ब रूप से भिन्न माने जाते हैं।

इस रस का आधार कौन है? इस विषय में सरस्वती जी कहते हैं कि आत्म[1] स्वरूप होने के कारण सुख का कोई आधार नहीं होता क्योंकि श्रुतियों ने उसे नेति-नेति कहा है। फिर इस आत्म स्वरूप रस का आधार क्या होगा? इसका उत्तर देते हुए सरस्वती जी कहते हैं कि प्रत्यक्ष में जो सुख की अनुभूति होती है उसको अभिव्यक्त करने वाली सहृदय सामाजिक की सात्विक अभिलाषा पूर्ण वृत्तियाँ ही होती हैं और इन वृत्तियों का आधार उसका अपना अन्त:करण ही होता है। वही इस रस का भी आधार होता है।

सरस्वती जी के अनुसार सहृदय सामाजिक का अर्थ है—अलौकिक वेदादि का अथवा लौकिक रसादि व्यञ्जक वृत्तियों वाले काव्यों का निरन्तर श्रवण करके भगवत् गुणगण कीर्तन आदि का आस्वादन करने वाला व्यक्ति। यहीं पर सरस्वती जी लौकिक और अलौकिक रस का भेद स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि काव्यार्थनिष्ठ रत्यादिस्थायीभाव लौकिक होते हैं और रसानुभविता सहृदय सामाजिक के अन्त:करण में रहने वाले वे ही स्थायीभाव समान विषयक होने पर भी अलौकिक होते हैं। क्योंकि बोध्य अर्थात् लौकिक काव्य या अलौकिक वेदादि में रहने वाले रत्यादि सुख दु:ख उत्पन्न करने वाले होते हैं। किन्तु बोधृ निष्ठ होने पर वे केवल सुख व्यञ्जक ही होते हैं। बोधृ निष्ठ भाव निश्चित रूप से दु:ख के अहेतु होते हैं। सरस्वती जी अपनी भक्ति रसायन में कहते हैं—

काव्यार्थनिष्ठा रत्याद्या: स्थायिन: सन्ति लौकिका:
तद्बोधृनिष्ठास्त्वपरं तत्समाअप्यलौकिका:।
बोध्यनिष्ठा यथा स्वं ते सुख दुखादि हेतव:
बोधृ निष्ठास्तु सर्वेऽपि सुखमात्रैक हेतव:॥

भक्ति रसायन ३।४–५।

किन्तु इससे करुण आदि की रसता पर कोई आघात नहीं होगा क्योंकि सहृदय सामाजिक के अन्त:करण में रहने वाले स्थायी भाव का आलम्बन भगवान ही होते हैं जो नित्य सुखमय है।

अतो न करुणादीनां रसत्व प्रतिहन्यते।
भावना बोधृनिष्ठानां दु:खाहेतुत्व निश्चयात्। भक्ति रसायन ३।६।

अत: शोक भय आदि स्थायीभाव भी सामाजिक के अन्त:करण में उस

---

१. सुखस्यात्म स्वरूपत्वात् तदाधारो न विद्यते।
तद् व्यञ्जिकाया: वृत्तेस्तु सामाजिक मन: प्रति॥ भक्ति रसायन ३/३।

परमानन्द स्वरूप परमात्मा के सान्निध्य से ही सुख की अनुभूति कराते हैं। ये लौकिक विभाव अनुभाव और संचारी भाव ही संयुक्त रूप से सामाजिक के हृदय में नित्य निवास करने वाले अलौकिक रत्यादि स्थायी भावों को उद्‌बुद्ध करने में कारण होते हैं—

अलौकिकस्य रत्यादेः सामाजिक निवासिनः।
उद्‌बोधे कारणं ज्ञेयं त्रयमेतत् समुच्चितम्॥ भक्ति रसायन ३।१०।

ये तीनों विभावानुभाव संचारी भाव स्व सम्बन्ध और पर सम्बन्ध का ज्ञान हो जाने से अन्य की भाँति अत्यन्त विलक्षण होने पर भी अलौकिक भाव को साधारण की भाँति ही अभिव्यक्त करते हैं।

ज्ञात स्वपर सम्बन्धात् अन्य साधारणात्मना।
अलौकिकं बोधयन्ति भावं भावास्त्रयोऽप्यमीः॥ भक्ति रसायन ३।११।

इन तीनों विभावादि भावों से सम्यक् उद्‌बुद्ध स्थायी भाव का अवगाहन करने वाली समूहालम्बनात्मक मनोवृत्ति प्रपाणक न्याय से तत्काल ही जिस उत्तम सुख को व्यक्त करती है, वही रस है। कुछ आचार्य विभावादि से उद्‌बुद्ध उस समूहालम्बनात्मक मनोवृत्ति को ही रस कहते हैं।

भावत्रितय संसृष्ट स्थायिभावावगाहिनी
समूहालम्बनात्मैका जायते सात्विकी मतिः।
साऽनन्तरक्षणेऽवश्यं व्यनक्ति सुखमुत्तमम्
तद् रसः केचिदाचार्या तामेव तु रस विदुः॥
भक्ति रसायन ३।१२–१३।

इस कारिका में केचित् शब्द का प्रयोग सम्भवतः सरस्वती जी ने उन आचार्यों के लिये किया है जिनमें से किसी ने अनुकारक में और किसी ने अनुकार्य में और किसी ने आत्मा में रस माना है इन सब के प्रति सरस्वती जी ने अपनी अनास्था प्रकट की है और उन्होंने "रसोवै सः" इस तैत्तिरीय श्रुति के अनुसार स्वयं आत्मा को ही रस सिद्ध किया है।

सरस्वती जी से पूर्व कोई रसाचार्य आत्म स्वरूप रस की नित्यता सिद्ध नहीं कर सका। अतः सरस्वती जी के रस का लक्षण इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—"विभावानुभावसंचारी भावों के समूहालम्बनात्मक ज्ञान के अनन्तर अव्यवहित प्रतीति का विषय जो आनन्द है, वही रस है।" यह आनन्दानुभूति इतनी त्वरित एवं व्यवधान रहित होती है, जिससे इसमें विभावादि के किसी पूर्वापर क्रम का आभास तक नहीं होता। इसीलिये इसे असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि भी कहते है। यह श्रोता अथवा भावुक दर्शक के चित्त में नित्य निवास करती है।

एवमव्यधानेन क्रमोयस्मान्न लक्ष्यते ।

असंलक्ष्य क्रमव्यंग्यध्वनि तस्मादिमं विदुः ।। भक्ति रसायन ३।१५ ।

इस रस का प्रत्यायक कौन है ? इसके उत्तर में रसायनकार श्री सरस्वती जी कहते हैं कि गुण अलङ्कार रीति और भावों का पूर्ण रूप से बोध कराकर उनको सम्यक् अभिव्यक्त करने वाला शब्द ही व्यञ्जना रूप वृत्ति से रस की प्रतीति कराता है । इस शब्दात्मक काव्य की सुख विपभिणी अपरोक्ष वृत्ति उसी प्रकार प्रत्यक्ष करनी चाहिये जिस प्रकार "तुम ही दसवें हो" इस वाक्य से जन्य बुद्धि की वृत्ति का प्रत्यक्ष आभास होता है । ऐसे ही भगवत् विषयक काव्य से रसात्मक ब्रह्म का भी प्रत्यक्ष आभास होता है जो 'तत् त्वमसि' एवं 'सोऽहम्' का सिद्धि दाता है ।

गुणालङ्कार रीतीनां भावानां च निवेदकः
तस्य प्रत्यायकः शब्दो वृत्या व्यञ्जक रुपया ।
वृत्तिः कार्याऽपरोक्षास्य शब्दस्य सुखगर्भिणी
दशमस्त्वमसीत्यादिवाक्योत्थमति वृत्तिवत् ॥

भक्ति रसायन ३।२०–२१ ।

'दशमस्त्वमसि' को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है जिस प्रकार दस मूर्ख व्यक्ति घर से गंगा स्नान करने के लिये चले । स्नान कर लेने के पश्चात् उनमें से एक ने अपने सब साथियों को गिना । गणना करने वाला स्वयं को न गिन कर अपने अन्य साथियों को ही गिनता था । जिससे बार-बार गिनने पर उसकी गणना में नौ ही व्यक्ति आते थे । अतः वे अपने एक साथी का गंगा में डूब गया समझकर रुदन करने लगे । इन्हें रुदन करते हुए देख कर किसी तटस्थ विज्ञ व्यक्ति ने इस गिनने वाले को बताया कि (तत् त्वमसि दशमः) वे दसवें तुम ही तो हो । यह सुनकर गिनने वाले की भ्रान्ति निवृत्त हो गई और उसमें (सोऽहं दशमः) यह बुद्धि उत्पन्न हुई । और वह भी स्वयं को पाकर प्रसन्न हो गया ।

भक्ति रस से सम्भृत 'गोपाल विलास' जैसा असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि से पूर्ण महाकाव्य ही इस प्रकार की मनोवृत्ति को जन्म देता है, जिससे भगवान की माया में खोया हुआ व्यक्ति स्वयं को पाकर कृतकृत्य हो जाता है ।

इस रस की प्रतीति कैसी होती है ? इसका उत्तर देते हुए आचार्य मधुसूदन सरस्वती जी कहते हैं कि 'रसोवैसः' इस श्रुति के अनुसार सुख रूप से जो नित्य अभिव्यक्त होता है वही उस स्वयं प्रकाश रस की निर्विकल्पक सुखात्मिका प्रतीति होती है । यह सुख यद्यपि नित्य है परन्तु अभिधा से आवृत्त होने के कारण आवरण भंग होने पर ही वह व्यक्त होता है । आवरण भंग से उनका तात्पर्य समुच्चयात्मक

विभावादित्रय की रत्याद्युद्बोधक प्रतीति से है। इसी को 'रसोवैसः' इस श्रुति से व्यक्त किया गया है।

नित्यं सुखमभिव्यक्तं 'रसो वै सः' इति श्रुतेः।
प्रतीति स्व प्रकाशस्य निर्विकल्प सुखात्मिका ॥ भ० र० ३।२२।

इस भक्ति रस का पान करने के लिये सम्पूर्ण रूप से द्रवावस्था को प्राप्त चित्त की आवश्यकता है। चित्त द्रुति के कारण भूत कामक्रोधादि तापक हैं, जो सरस्वती जी ने भक्ति रसायन के प्रथम दो उल्लासों में निश्चित किये हैं, उनमें काम को ही एक मात्र ऐसा प्रचण्ड तापक कारण माना है, जो चित्त को सम्पूर्ण रूप से द्रवित करने की क्षमता रखता है। यद्यपि 'कमु कान्तौ' धातु से निष्पन्न होने वाले काम शब्द का अर्थ कामना अथवा इच्छा है। किन्तु काम शब्द विशेष सुरतेच्छा अर्थ में ही अपनी लक्षणा शक्ति से रूढ हो गया है। अतः सुरतेच्छा जनकता ही काम की कामना है। क्योंकि "कामयन्ते सुरतमिच्छन्ति" अथवा "काम्यन्ते सुरतमेष्यन्ते जनाः येन स कामः" इस अर्थ में काम शब्द के रुढ़ होने का कारण यह है कि सामान्य इच्छा से पूर्ण चित्त द्रुति नहीं होती और प्रचण्ड सुरतेच्छा से चित्त तत्काल द्रवित हो जाता है। अतः काम शब्द से उत्कट सुरतेच्छा ही ली जाती है। यह काम सन्निधान और असन्निधान भेद से दो प्रकार का होता है। इसे सरस्वती जी ने अपनी रसायन में निम्न प्रकार स्पष्ट किया है।

कामः शरीर सम्बन्ध विशेष स्पृहयालुता।
सन्निधानासन्निघान भेदेन सभवेत् द्विविधा ॥ भ० र० २।३।

अर्थात् प्रेमी की सन्निधि होने पर जो शरीर का सम्बन्धावेश होता है वह सन्निधान काम है और प्रेमी की असन्निधि अर्थात् विप्रयोग से जो मानसिक सम्बन्ध होता है वह असन्निधान काम है। इस प्रचण्ड काम से चित्त के द्रवित होने पर चित्त में जो श्रीकृष्ण विषयक निष्ठा रूप रति उत्पन्न होती है वह सम्भोग और विप्रलम्भ रूप से दो प्रकार की होती है।

तज्जन्यायां द्रुतौचित्ते या स्यात् श्रीकृष्ण निष्ठता।
संभोग विप्रयोगाख्या रति सा साक्रमाद्भवेत् ॥ भ० र० २।४।

इसे ही सरस्वती जी ने कामजा भक्ति कहा है। सरस्वती जी ने भगवत विषयक रस के जिन स्थायी भावों का विवरण दिया है उनमें इस कामजा रति को प्रथम स्थान दिया है।

कामजे द्वे रती शोक प्रीतिर्भी विस्मयस्तथा।
उत्साहो युधि दाने च भगवद्विषया अमीः ॥ भ० र० २।३१।

दोनों कामज रतियाँ जो विप्रलम्भ और सम्भोग के नाम से जानी जाती हैं;

शोक, प्रीति जनक भय, विस्मय, युद्धोत्साह और दानोत्साह में ही भगवद्विषयक रस के स्थायी भाव है। ये सातों रतियाँ नीर क्षीर की भाँति परस्पर सम्मिश्रण को प्राप्त हो जाती हैं और जिस प्रकार इन रतियों के द्वारा विभावादि के योग से शृङ्गार आदि रसों की प्रतीति होती है उसी प्रकार भक्ति रस की भी होती है। सरस्वती जी कहते हैं कि—

व्यामिश्र भाव रूपत्वं यान्त्येते नीरक्षीरवत्।
विभावादि समायोगे तथा भक्ति रसा अपि॥ भ० र० २।३२।

इसका अर्थ यह हुआ कि जिस प्रकार कामज रति रूप स्थायी भाव विभावादि के योग से शृङ्गार रस के रूप में परिणात हो जाता है, उसी प्रकार भगवद्विषयक कामज रति रूप स्थायी भाव भी विभावादि के संयोग से भक्ति रस के रूप में निष्पन्न होता हैं।

इसी लिये सरस्वती जी ने 'गोपालविलास' में भक्ति रस की सिद्धि के लिये राधा माधव की वियोग संयोगात्मक प्रेमा रति को ही स्थायी भाव के रूप में स्थापित किया है जो विभावानुभाव संचारी के संयोग से भक्ति रस के रूप में परिणत होता है।

राधा माधव की इस विरह मिलनात्मक प्रेमा रति रूप स्थायी भाव को रस रूप में परिणत करने के लिये उन्होंने शृङ्गार रस का आश्रय लिया है। क्योंकि अन्य रसों के साथ मिश्रित होने पर भी शृङ्गार अन्य सभी रसों से अधिक शक्तिशाली होता है। इसी कारण रस की तीव्रता और तीव्र तरता केवल शृङ्गार रस में ही देखी जाती है। सरस्वती जी रसायन में कहते हैं—

इसीलिये अपने इस भक्ति रस की सिद्धि के लिये सरस्वती जी ने शृङ्गार को ही माध्यम बनाया है।

शृङ्गारो मिश्रितत्वेऽपि सर्वेभ्यो बलवत्तरः।
तीव्र तीव्रतरत्वं तु रतेस्तत्रैव वीक्ष्यते॥ भ० र० २।३६।

गोपाल विलास में विप्रलम्भ और संयोग दोनों प्रकार की रति अपनी चरम सीमा पर हैं। इस रति में विषयावलम्बन विभाव नन्दनन्दन गोपाल है और आश्रय आलम्बन राधा हैं। क्योंकि सर्व प्रथम रति का उदय राधा में ही होता है। उनकी प्रेमा रति ही स्थायी भाव है। आलिंगन, चुम्बन, भुजोत्क्षेपण आदि अनुभाव है। स्वेद रोमाञ्च आदि सात्विक भाव हैं। गर्व, शंका, आवेग, उन्माद चिन्ता, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं।

सर्व प्रथम कात्यायनी व्रतपरायण गोप बालायें अपने प्रियतम नन्दनन्दन द्वारा दिये गये अभीप्सित वरदान को सफल बनाने के लिये व्रजेन्द्र नन्दन के साथ अभिसरण की तीव्र कामना लिये हुए तीव्र गति से केलिकानन में पहुँचती हैं।

इन्हीं अपनी सखियों के मुख से सम्पूर्ण व्रज में चर्चित गोपाल कृष्ण के असाधारण गुणों का श्रवण करने के पश्चात् राधा उन पर अत्यन्त अनुरक्त हो गई हैं। अतः वे भी इस अवसर पर अपने प्रियतम के असाधारण गुणों का मनन चिन्तन करती हुई धीरे-धीरे गज गति से अपनी अनंग सेना आदि सखियों के साथ सब से अन्त में केलिकानन में पदार्पण करती हैं। कवि ने राधा को एक विशिष्ट अवस्था में प्रस्तुत किया है। उनमें गोपियों की भाँति चंचलता, उद्वेग तीव्रता एवं आतुरता नहीं है। वे अत्यन्त शान्त गम्भीर एवं मौन बनी हुई हैं। काम वाणों से उनका हृदय क्षत-विक्षत है। प्रेममद में अलसाये हुए उनके तन्द्रिल नेत्र वक्र बने हुए हैं। प्रस्तुत महाकाव्य में सर्व प्रथम राधा के दर्शन पूर्वराग की इसी विलक्षण स्थिति में होते हैं जो अलौकिक एवं अवर्णनीय हैं।

स्मरोद्धता मन्मथ बाण विक्षता
सवालसा घूर्णदराल लोचना
अनंग सेनादि सखी निषेविता
वनं गता दन्तिगताऽथ राधिका॥ गोपालविलास २।२५॥

प्रेमी भक्त की इसी दशा को नारद ने अनिर्वचनीय कहा है—

"अनिर्वचनीयम् प्रेम स्वरूपम्" । नारद भक्ति सूत्र—५१॥

राधा के केलिकानन में पदार्पण करते ही पूर्णचन्द्रमा का उदय होता है। सम्पूर्ण वृन्दावन चन्द्रज्योत्स्ना से धवल बन जाता है। इसी समय कृष्ण की वंशी के मनोन्मत्तकारी स्वरों से समस्त केलिकानन गुंजित हो जाता है। तभी कृष्ण पर विजय प्राप्त करने की लालस से काम के द्वारा निर्मित व्रज सुन्दरियों की यह सेना कृष्ण के चारों ओर एकत्रित हो जाती हैं।

उसी समय रजनीश का राका से मिलत कराने वाली संध्या की भाँति कोई दूतिका राधा का गोपाल से प्रथम बार मिलन कराती है। राधा और माधव परस्पर एक-दूसरे को प्रत्यक्ष देखते हैं। सौन्दर्य माधुर्य निकेतन रस राज नन्दनन्दन गोपाल के प्रथम दर्शन करते ही राधा अत्यन्त आत्म विभोर हो जाती हैं। वे प्रगाढ़ लज्जा एवं गहन संकोच में डूबी हुई हैं। वे समझ जाती हैं कि नन्दनन्दन गोपाल साक्षात् मन्मथ हैं और उनकी वंशी उनका पुष्प चाप है। इसीलिये भय के कारण चपला की भाँति बनी हुई राधा बड़े साहस के साथ, किसी प्रकार कृष्ण के समीप जाने का प्रयास करती हैं।

मत्वारण्ये कंसारातिं, कामं वेणुं पौष्प चापम्।
तद्पादान्तं भीता याता, विद्युन्माला लोलाबाला॥
गोपालविलास २।३६॥

प्रथम दर्शन के इस अवसर पर राधा काम बाणों की व्यथा से अत्यन्त पीड़ित

हैं। कृष्ण के अधरामृत से सिंचित उनकी विश्व विमोहिनी वंशी के चरमोन्मादक स्वरों की मदिरा का पान कर वे और अधिक उद्धत सी बनी हुई दिखाई देती हैं। तब मदनोदधि को तटान्त आन्दोलित कर देने वाली षोडश कला पूर्ण चन्द्रिका की भाँति राधा कलानिधि कृष्ण के निकट आती हैं।

पंचबाण विशिखेन पीडिता वेणु सीधु निनदैरथोद्धता।
आजगाम दयितं कलानिधिं राधिका मदन सिन्धु चन्द्रिका॥
गोपालविलास २/३७॥

प्रथम मिलन पर कृष्ण भी सतृष्ण नेत्रों से उस सुरतरंगिणी राधा को आश्चर्य चकित होकर अपलक देखते रह जाते हैं। और उस अपूर्व लावण्यामृत सरसी में मीनांक की आशंका से संतरण करने लगते हैं। राधा की इस परम लावण्यमयी शृङ्गार सरसी को देख कर मदन मोहन कृष्ण आनन्दातिरेक में आत्मविस्मृत से होकर कहते हैं कि इन चलते फिरते हुए स्थल कमलों से क्या स्वर्णिम कदली के स्तम्भों का उदय हो रहा है या इस स्वर्ण सिकता युक्त सरसी के तटों पर दो स्वर्ण शैल अचर में स्थित हैं। अथवा इस सुधा महोत्सव में खंजनों द्वारा अंधकार में किया गया यह कौमुदी का बन्धन तो नहीं है या यह कुसुमधन्वी कामदेव का घन बनी हुई राधा ही सुशोभित हो रही हैं। उस सौन्दर्य रस सार सम्भृत राधा की लीलामृत मदिरा का पान कर नन्दनन्दन का अंग-अंग अनंग रस से आप्लावित हो जाता है। वे इस समय राधा के प्रति पूर्ण आश्वस्त हो जाते हैं और प्रत्येक प्रकार की शंका का परित्याग कर देते हैं।

चलस्थल सरोजयोः किमिह हेम रम्भोदयः
स्वर्ण पुलिन स्थिते वियति कांचनाद्रिद्वयम्
सुधा महसि खंजनैस्तमसि कौमुदीबन्धनम्
घनं कुसुम धन्विनः किमुत राधिका राजते॥
'गोपाल विलास' २।४०॥

निपीय नेत्र पात्राभ्यां लीलामृत कदंबकम्।
अथानंग रसार्द्राङ्गः शंका पंकैरलं जहौ॥ गो० वि० २।४१॥

राधा के प्रथम दर्शन करने के पश्चात् कृष्ण उन पर पूर्णतया अनुरक्त हो जाते हैं। प्रति रात्रि रास में भी पूर्वराग में पगी हुई राधा के चित्त की अनिर्वचनीय अवस्था को देखकर वे जान लेते हैं अन्य गोपियों कीं अपेक्षा राधा ही मुझ से अनन्य प्रेम करती हैं। इसी लिये वे राधा के पूर्णतया द्रवित चित्त में उत्पन्न उनके इस असीम प्रेम को चरमावस्था तक पहुँचाने के लिये कौतुहल वश बन में कहीं अन्तर्धान हो जाते हैं।

तत्प्रेम वृद्धि विदधत् बनान्तादन्तर्दधेक्वापि कुतूहलेन ॥

गो० वि० ४।२ ॥

राधा प्रति रात्रि गोपियों के साथ सम्पन्न होने वाली रासकेलि में कृष्ण के दर्शन प्राप्त कर परमानन्द में लीन रहती थीं। किन्तु कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर अब कृष्ण के दर्शन नहीं होंगे, इस कल्पना मात्र से ही वे अत्यन्त व्याकुल हो जाती हैं। मुझे बन में अकेला छोड़कर मुकुन्द मोहन कृष्ण कहीं अन्यत्र चले गये हैं, यह सोचकर ही राधा का रोम-रोम तड़पने लगता है। कृष्ण के वियोग में राधा शरदादित्य के तीव्र ताप से सन्तप्त बनी हुई उस सरसी के समान हो गई हैं जिसका श्यामघन ने भी परित्याग कर दिया है। राधा इस प्रचण्ड विरहाग्नि में झुलस कर अपनी सखियों सहित ऐसी कृष हो गई हैं जिस प्रकार कोई बनी अपनी सखी बल्लरियों के साथ ग्रीष्म के प्रचंड ताप से दग्ध हो जाती है।

जगाम शोषं शरदर्क तप्ता जीमूत मुक्ता सरसीव नित्यम्।
निदाध तप्तामिव बल्लरीभिर्बनीं सखीभिः सहितां कृषाङ्गीम् ॥

गो० वि० ४।३ ॥

तभी कोई मालाकार वधू आती है और राधा की यह दयनीय दशा देखकर दयार्द्र हो जाती है और उनके इस असीम संताप को शान्त करती हुई मधुर बाणी में उनसे कहती है कि हे राधे ! तुम तो नन्दनन्दन दामोदर को प्राणों के समान प्रिय हो। फिर तुम इतनी श्रीविहीन क्षीणकाय क्यों बन रही हो ? तुम्हारे अंग कान्ति हीन क्यों हो गये हैं ? दूतिका के इन सहानुभूति में पगे हुए आत्मीयता पूर्ण वचनों को सुनकर वे भाव विह्वल हो जाती हैं और दूतिका से कहती हैं कि हे दूतिके ! तुम मेरी ओर से गोविन्द से यह निवेदन करना कि तुम्हारे बिना विरह की इन दुर्भाग्य पूर्ण घड़ियों में यह पाटीर पंक और यह मलय पवन भी महाहलाहल की भाँति प्राणघातक बन रहे हैं और यह पूर्ण चन्द्रबिम्ब दहकते हुए अग्निचक्र की भाँति मुझे जला देना चाहता है।

दूति ! त्वया नन्द सुते निवेद्यम्
पाटीर पंकं मलयानिलं वा हालाहलः सम्प्रतिसम्प्रयाति ॥

गो० वि० ४।४ ॥

मेरी प्रिय सखियों ने मेरे शरीर के काम सन्तप्त अङ्गों को शीतलता प्रदान करने के लिये जो कस्तूरिका रक्खी थी वह धूम लता की भाँति मेरे नेत्रों को व्याकुल करती है, और बकुल की माला जो उन्होंने स्वयं मेरे गले में पहनोई थी वह अब दहकती अग्नि शिखा बनकर मुझे भस्म कर देना चाहती है। दूतिके ! तुम उनसे कहना कि गजमुक्ताओं की हारावली जो उन्होंने स्वयं अपने हाथ से मेरे वक्षस्थल पर सजायी थी आजकल वह नागिन की भाँति फुंकारती रहती है और मेरे हृदय को

जलाती रहती है। दूतिके ! गोपाल से कहना कि वृन्दावन में एक अभूत पूर्व यज्ञ चल रहा है। मुझसे अत्यधिक स्नेह करने वाली मेरी प्रेमकला मर्मज्ञ सखियों नें पाटीर पंक से युक्त जो शैवाल वल्ली मुझे शीतल बनाने के लिये दी थी बस इस मदन यज्ञ की ज्वाला में घृताहुति की भांति गिर कर मेरी इस विरह ज्वाल को अत्यधिक प्रचण्ड बना रही है, जिसमें मेरे प्राण समिधाओं की भांति घू-घू करके जल रहे हैं। इस यज्ञ के होता स्वयं विधाता बने हुए हैं, मेरी सम्पूर्ण रोमराजि ही कुशायें हैं, यजमान के श्रेष्ठ पद पर ऋतुराज वसन्त विराजमान हैं। तुम्हारी दुःसहविरहाग्नि में जलते रहना ही इस यज्ञ का धर्म है और मेरी दशमी दशा अर्थात् मेरा मरण ही इस महा यज्ञ का फल होगा।

हारावलिर्मे हृदये कृतासीत् त्वया हरे ! या गजमौक्तिकानाम्
सा नाथ नित्यं भुजगी भवन्ती दुनोति चित्तं बत किं विधेयम् ॥
न्यस्तांसखीभिस्तनतापशान्त्यैकस्तूरिका, धूम-ततेव साऽभूत्
स्वयं कृता या बकुलस्यमाला, ज्वालावलीसा मदनानलस्य
दत्तालिभिः प्रेमकलाकुलाभिः शैवाल वल्ली सपटीर पङ्का
घृताहुतिर्सा मदनानलस्य प्राणाः मदीयाः समिधो भवन्ति
होता विधाता मम रोमराजी कुशा वसन्तो यजमान राजः
धर्मस्त्वया दुःसहविप्रयोगः, फलं मदीया दशमी दशैव
गोपालविलास ४/२५–२८ ॥

विरह विधुरा राधा के इस प्रचण्ड विरह ज्वर-ज्वार को देखकर और उनके अत्यन्त करुणापूर्ण विलाप को सुनकर दूती का हृदय द्रवित हो जाता है। वह राधा से कहती है कि माधव प्रिये ! तुम्हारी विरह ज्वाला में जलते हुए तुम्हारे प्रियतम कृष्ण अपने श्रवण चषकों से तुम्हारी कथा रूप मदिरा का पान कर मदोन्मत्त बने रहते हैं। तुम्हारे प्राणेश्वर अपनी इस मदन-व्याधि की विकट बाधा को शान्त करने के लिये तुम्हारे नाम मन्त्र का जप करते रहते हैं जो एक सिद्ध मन्त्र की भाँति संसार में कामदेव पर विजय प्राप्त कराने वाला अमोघ साधन है। अन्त में राधा को पूर्ण विश्वास दिलाती हुई दूती कहती है कि मैं सर्वत्र वृन्दाबन में नन्दनन्दन को खोजूंगी और उन्हें तुम्हारे हाथों में लाकर सौंप दूंगी। दूतिका यह कह कर मुस्कराती हुई वन में चली जाती है।

किं वाचाले ! तरणि तनया तीर कुञ्जे विसन्तो
भ्रामं भ्रामं निपततितरां धूलि दिग्धांग यष्टिः
यद्वा राधे ! श्रवण चषकैः त्वत्कथा सीधु पानैः
माद्यन्नुच्चैररुणतरुणांभोजनेत्रप्रियस्ते ॥ गोपालविलास ४।५६ ॥

त्वद्गोत्रं वा जपति मदन व्याधि बाधोपशान्त्यै
सिद्धं मन्त्रं जगति विजयी यद्बलात्पुष्पधन्वा ॥
गो० वि० ४।५७ ॥

तीरं तीरं तपन दुहितुपुष्पितानां द्रुमाणाम्
मूलं मूलं नव किसलयाशोक शोणं निकुञ्जम्
भ्रामं भ्रामं तवकरतलं प्रापयेन्नन्दसूनुम्
सम्भाष्यैवं प्रहसित मुरवी दूतिकागाद्वनान्ते ॥ गो० वि० ४।६१ ॥

तदनन्तर वह सम्पूर्ण वृन्दावन में भ्रमण करती हुई नन्दनन्दन के समीप पहुँचकर उनसे निवेदन करती हैं कि हे श्यामघन ! कामदेव ने अपने तीक्ष्ण बाणों की प्रचण्ड ज्वाला से उस कोमलाङ्गी माधवी को पूर्णतया शुष्क बनाकर झुलसा दिया है। अब आप उस काम भूमि राधा पर दया कीजिये और उस पर अपने प्रेम रस की वर्षा करके उसके अंगों को अभिसिक्त करिये और उन्हें फिर से हरा भरा बनाइये। प्रतिरात्रि अभिसिंचित होने वाली लतायें ही प्रातः काल उल्लसित होकर लहलहाती हैं।

जलधर ! मृदुलाङ्गी माधवी शोषमागात्
खरतर मधुमित्र स्फूर्जितेनाति वेलम्
कुरु सदय रसार्द्रां कामभूमीमिदानीम्
निशि परिसिक्ता बल्लिरुल्लासमेति ॥ गो० वि० ६।५२ ॥

दूतिका के मुख से विरह विदग्धा राधा की दयनीय दशा को सुनकर कृष्ण अत्यन्त व्याकुल होकर दूती से कहते हैं कि हे दूतिके ! तुम अभी तत्काल जाओ और अपने वर्तुलाकार स्तवकों से समृद्ध बनी हुई उस चम्पक बल्लरी को अभी मेरे पास ले आओ और मेरे व्यथित मन को प्रसन्न बनाओ।

स्फुरत्यंभोपातां स्तवक रुचिरां चम्पकमयीम्
इदानीमप्येनामुपनय मुदे मन्मयनयोः ॥ गो० वि० ६।५७ ॥

प्रेम रस में भीगी हुई गोपाल की इस मधुर वाणी का श्रवण कर प्रसन्नमना दूती नन्दनन्दन को नमस्कार करके वहाँ से चल देती है और अपनी सखियों म एक ओर बैठी हुई शून्य में निहारती हुई और नन्दनन्दन के ध्यान में मग्न बनी हुई उस कमल वदना राधा के दर्शन करती है।

दूती के चले जाने के पश्चात् माधव राधा को स्मरण करते हुए अत्यधिक व्याकुल हो जाते हैं। उस समय उनका हृदय राधा को पाने के लिये अत्यन्त अधीर होकर तड़पने लगता है। इस समय उन्हें वृन्दावन में सर्वत्र राधा ही दिखाई देनें लगती हैं। सामने आकाश में तैरता हुआ चांद उन्हें राधा का मुख प्रतीत हो रहा है। और उसका लक्ष्म राधा के मस्तक पर लगी हुई मृगमद की श्याम बिन्दु के रूप

में दिखाई दे रहा है और उसकी ज्योत्स्ना को वे राधा के मुक्ताहार की जाज्वल्यमान कान्ति के रूप में देख रहे हैं। स्वयं ही फिर सहसा कहने लगते हैं कि नहीं, नहीं, ऐसा कुछ नहीं है यह तो कामअग्नि की वर्षा करने वाला प्रचंड सूर्य है।

राका राधा किममृतरुचिस्त्वन्मुखं किं पुरस्तात्
अङ्के विन्दुःस्फुरति किमसौकान्तकस्तूरिकायाः
ज्योत्स्नाहाराभरण करणोद्दाम हार प्रभाकिम्
नैवं नैवं दहति सविता मन्मथीयः कृशानुः ॥ गो० वि० ७२ ॥

फिर सहसा शून्य में - आकाश की ओर देखते हुए कहते हैं कि यह वही रजनीश है जो राधा के मुख की कमनीयता प्राप्त करने के लिये अपने ज्योत्स्ना जाल को अग्नि की भाँति अपने चारों ओर फैलाकर एक पैर को ऊपर उठाकर और अपने एक हाथ को नीचे की ओर लम्बा फैलाये हुए गंगा के तट पर खड़ा होकर धूम्रपान करता हुआ प्रायः तपस्या करता रहता है।

प्रायस्तस्या वदन सुखमामीहमानः सुधांशुः
ज्योत्स्ना जालं ज्वलन निवहं सर्वतः सम्प्रसार्य
ऊर्ध्वं कुर्वंश्चरणमधरीकृत्य लम्बं कराग्रम्
ध्वान्तं धूमं पिबति तपसे सुरधुनी तीरसस्थः ॥ गो० वि० ७४ ॥

नीलाकाश में पूर्णेन्दु विम्ब की ओर देखते हुए नन्दनन्दन मुकुन्द विरहातुर बने हुए कहते हैं कि यह वही राकेश है जिसे कामदेव ने विरह विपत्ति से ग्रस्त मुख की पीली कान्ति वाले विरहियों के मनों से शराव बनाया है जिस पर वह अपनी पत्नि रति के नेत्रों को विभूषित करने के लिये काजल तैय्यार करना चाहता है अतः इसके नीचे अपनी ज्योत्स्ना के बहाने निरन्तर अग्नि जलाता रहता है।

पांडुच्छायैः विरह विपदं प्रापितानां मनोभिः
चक्रे चन्द्रं परिणत कलं कामदेवः शरावम्
प्रायो-रत्याः नयन युगलं कज्जलैर्भूषयिष्यन्
ज्वाला जालं तदनु तनुते कौमुदी छद्मनाऽधः ॥ गो० वि० ७८ ॥

इस समय राधा के बिना उन्हें वृन्दावन का समस्त सहज सौन्दर्य भी अग्नि की वर्षा करता हुआ दिखाई दे रहा है। वे इस समय अत्यन्त अधीर बने हुए हैं। राधा के साथ व्यतीत किये गये मिलन के उन क्षणों का स्मरण करते हुए कह रहे हैं कि हे मृगलोचने राधे ! अपनी मन मोहक भोली चितवन से हृदय में आनन्द का संचार करने वाले ये मृग और कालिन्दी के कूलों पर शीतल सुगन्धित और मन्द-मन्द वायु के झोकों से झूमती हुई यह बालमन्दार माला और तरुओं से लिपटी हुई और अपनी सुमन सम्पदा से पूर्ण प्रफुल्लित बनी हुई ये लतायें दुर्भाग्य वश मेरे लिये अग्नि पुंज बनी हुई हैं और मुझे जलाकर भस्म कर देना चाहती हैं।

सारंगी दृग सदयनयना: ये मृगाकोदवाहा:
ये कालिन्दी तट परिसरे मंदमंदारबाला:
फुल्लाभूमीरुह करगता बल्लरीणा निकाया:
राधे ! दैवं फलितमधुना तेऽपि जाता हुताशा: ।। गो० वि० ७।१५ ।।

राधा के वियोग में अत्यन्त भाव विह्वल बने नन्दनन्दन मुकुन्द कहते हैं कि हे प्रिय सहचरी राधे ! यमुना कछारों के ये कुञ्ज जो तुम्हारे साथ रहते हुए मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय लगते थे, अब वे ही अग्नि से भी अधिक ज्वलन शील बन कर मुझे अत्यधिक व्याकुल कर रहे हैं। हे कान्ते ! मेरे ऊपर क्रोध करके तुम मेरे साथ ऐसा कठोर व्यवहार मत करो। प्रेम मदिरा में भीगे हुए और अमृत रस के समान अपने मधुर वचनों से कामाग्नि दग्ध मेरे अंगों को शीतलता प्रदान करो।

ये: ये: कुञ्जा: प्रिय सहचरि ! प्राणकल्पा ममासन
तै: तै: तन्वि ! ज्वलन निवह: सर्वथिन: पीडयन्ति
कान्ते ! कोपं न कुरु कठिने सीधु पीयूष यूषै:
आसिचन्ती शिशिर वचनै: शीतलांगं विधेहि ।। गो० वि० ७।२६ ।।

विरह विधुर माधव अत्यधिक विदग्ध बने हुए राधा की रूप माधुरी का चिन्तन करते हुए कहते हैं कि उस तन्वंगी राधा का कटिप्रान्त अत्यन्त क्षीण होने के कारण मीमांसकों के लिये गहन चिन्तन का केन्द्र बना हुआ है और उनका नीवि बन्धन अनुबन्ध चतुष्टय के साथ वेदान्तियों के लिये मननार्थ विषय वस्तु प्रस्तुत करता है। राधा स्वयं सब प्रकार के योगों की एक मात्र शरण स्थली बनी हुई हैं। सब विद्याओं में श्रेष्ठतम तथा परम पवित्र कामदेव की उस निष्कलंक ब्रह्म विद्या राधा के दर्शन अब में कब प्राप्त करूंगा।

मीमांसानां समजनि पदं मध्यदेशे कृशांगो
वेदान्तानां विषय सदनं नीविबन्धोऽनुबन्धै:
या योगानां भवनमनिशं न्यायभूमो मदंगे
क्वालोके तां मनसिज सुधीं सर्वविद्यानवद्याम् ।। गो० वि०-७।३८ ।।

राधा के बिना विक्षिप्त से बने हुए कृष्ण मन्मथ से कहते हैं कि अरे मूर्ख मनोज ! तुम में इतना साहस किस प्रकार उत्पन्न हो गयो है, जिसके बल पर तुम इस प्रकार मेरी अवज्ञा करके मेरे ऊपर निरन्तर प्रहार कर रहे हो। तुम्हारे इस गर्व को नष्ट करने वाली यह त्रिपुर दहन की लालिमा मेरे चरणों में अब तक विद्यमान है, हे माधव प्राणबन्धो ! मैं तो राधा के विरह में स्वयं ही संज्ञा शून्य हो रहा हूँ। तुम मुझे और अधिक व्यथित क्यों कर रहे हो। हा ! हा ! राधे ! इस प्रचण्ड काम के तीक्ष्ण बाणों से तुम्हारे प्राणों की क्या दशा हो रही होगी ?

रे रे ! मार ! प्रहरसि कथं मामवज्ञाय मूढ !
त्वद्दर्पन्धस्त्रिपुर दलने मत्पद द्वन्द्व राग:
मूर्च्छापन्नं व्यथयसि कथं माधवप्राण बन्धो !
हा ! हा ! राधे ! मदनविशिखैः स्फूर्जितैः कीदृशो स्यात् ।।
गो० वि० ७।४० ।।

उधर दूतिका अपनी अभिन्न सहचरी और मधुसूदन की प्रियतमा राधा को उस विरहातुरा नलिनी की भांति देखती है जो अपने हृदय में अपने जीवन-धन को छिपाये हुए पूर्ण चन्द्र की शीतल किरणों के स्पर्श मात्र से ही तीव्र संताप के कारण झुलस रही है। विरह ज्वर से दग्ध राधा के शरीर को शीतल बनाने के लिये उसकी प्रिय सखियां पाटीर जल से राधा के अंगों का सिंचन करती हैं। वे राधा के अंगों पर सरस उशीरिका रखती हैं और बड़े साहस के साथ अपनी कोमल-कोमल अंगुलियों से धीरे-धीरे चन्दन रस का लेप करती हैं। राधा की विरह वेदना क्षण-क्षण और अधिक प्रचण्ड रूप लेती जा रही है। अब वे कोकिल कलरव को सुनते ही अत्यन्त भावाभिभूत हो जाती हैं। इसलिये सखियां ऐसे समय पर उनके कानों को किसी बहाने से ढक देती है। मधुपियों का मधुर गुञ्जन एवं सारसों का मधुर मनोहर घोप राधा के कर्ण कुहरों को आहत कर देते हैं। सखियों के मुख से माधव शब्द का उच्चारण सुनते ही वे रोमांचित हो जाती हैं। विरह की इस भयङ्कर व्याधि ने राधा के श्वासों की गति को इतना दुर्बल एवं क्षीण बना दिया है, जिससे उनकी सखियों को यह सन्देह होने लगता है कि ये श्वास ले भी रही हैं अथवा नहीं।

अथ समीक्ष्य सखीं मधुसूदितुः प्रियतमां नलिनीमिव दूतिका।
हृदि निधाय तमेव सजीवनां शशिकरैः शिशिरे परितापिनीम् ।।
घृत पटीर पय सदुसीरिकां कमलिनी व्यजनानिल बीजिताम्।
अति सुसहृच सखी गण पाणिभिः मृदित पादतलां मृदुचदनैः ।।
अयि पिकावलि मंजुलजल्पिते पिहित कर्णपुटी मुहुरालिभिः।
मधुकल क्वणित भ्रमरागना, सरस सारस घोष इत श्रुतिम् ।।
गो० वि ८।१-३

सहचरी वचन श्रुत माधव।
श्रवणममिलत्पुलकाङ्कुरै ।।
श्वसिति किं किमु नेति विशंकिनी ।।
विदधतीं सुषितां सखी ।। गो० वि० ८।४

राधा की इस अत्यन्त दीन हीन दशा को देखकर दूतिका कहती है कि हे मधुसूदन प्रिये ! कोमलांगि राधिके ! तुम अपने हृदय को इतना पीड़ित क्यों कर

रही हो ? शीघ्र चलकर काम बाणों से ममहित बने हुने अपने प्रियतम नन्दनन्दन के हृदय को आश्वस्त करो और उनके काम सतप्त अंगों को शीतलता प्रदान करो। मृत को भी जीवन दान करने वाली अपनी पीयूष वर्षिणी मधुर मनोहर बाणी से मर्मभेदी कुसुम कामुंक से जर्जर बने हुए मदन मोहन के हृदय की इसस्विरह ज्वाला को शान्त करो।

अमृत शीकर सीधु सहोदरैः वचन बीचि भरैः मृतजीवनैः।
कुसुम कार्मक जर्जर मर्मणो मधुमिदो हृदि दाहमपाकुरु॥
गो० वि० ८।१५

हे तन्वङ्गि! अब सब प्रकार की चिन्ताओं का परित्याग करो और अपने प्राणेश्वर कृष्ण के समीप चलने के लिये केशर युक्त चन्दन और रक्त कमलों की माला तैय्यार करो। नन्द नन्दन के गुणों का कीर्तन आरम्भ करो और काम बाणों से दग्ध अपने हृदय की इस विरह ज्वाला को शान्त करो। हे मृग लोचने! अब निर्भय होकर अपने प्रियतम मधुसूदन गोविन्द के श्री चरणों का सेवन करो। हे घनसार करम्बिते! तन्वङ्गि राधिके! अब नन्दनन्दन के समीप चलने के लिये कुँकुम से रञ्जित और सुवासित तंदुल तैय्यार करो, तुम्हारी प्रिय सखियाँ मंगल मय गीतों का गायन करें व्रज रमणियों के एक मात्र स्वामी प्राणघन नन्द नन्दन मुकुन्द का गुणकिर्तन करें। इस प्रकार वहाँ चल कर तुम अपने इस काम हुताशन को शान्त करो।

कलय कुङ्कुम मजुल तंडुलान्, वलय मंगल गीत सखीगणम्।
कथय कामिनी भूत पते कथा, शमय मन्मथ बाण हुताशनम्॥
गो० वि० ८।३७।

दौत्य कर्म में प्रवीण दूतिका ने अपनी वाक् चातुरी से कुसुमायुध सायकों की शक्ति को ध्वस्त करके राधा को वृन्दावन के लिये प्रस्थान करने को उद्यत कर लिया। चन्द्रबिम्बानना राधा ने भी शृंगार सिन्धु गोविन्द का अभिनन्दन करने के लिये स्वयं को शोणाम्बर से सुसज्जित एवं विविधाभरणों से अलङ्कृत कर लिया।

सैवं सुधाकर मुखीमभिधाय राधाम्।
बाधां विधूय कुसुमायुध सायकानाम्॥
वृन्दावनाय गमनाय चकार बालां।
बालातप प्रतिम कुंकुम पिञ्जराङ्गीम्॥
राधाऽपि शारद शशांक मुखीं सखीभिः।
शृंगार सिन्धुमभिनन्दयितुं मुकुन्दम्॥
राकेव साकमुडुभिः समुदचदिन्दुम्।
शोणाम्बरं धरतनु समलञ्चकार॥
गो० वि० ८।५८-५९।

अपने प्रियतम के समीप कृष्ण कुञ्ज में चलने के लिये तत्पर राधा को सखियों के साथ हास परिहास पूर्ण वार्तालाप में व्यस्त देखकर चतुर दूती कृष्ण के समीप पहुँच जाती है। वह उनसे विरह विधुरा राधा की करुणा पूर्ण शोचनीय दशा का वर्णन करते हुए कहती है कि हे मदन मोहन ! इस समय राधा की दशा अति विचित्र बनी हुई है। वे अहर्निश खोई-खोई सी रहती है। अब वे अपने घर में भी कोई रुचि नहीं लेती, न उनमें यमुना तट पर जाने के लिये ही कोई आकर्षण है। पाटरी पंक एवं यमुनाजल सीकरों से शराबोर सुमनों से सुरभित शीतल मन्द समीर भी राधा को आनन्दित नहीं कर पाता है। अब वे न कुछ खाती है और न कुछ पीती ही है। पूर्व की भाँति सखियों के साथ एकान्त वार्तालाप में भी कोई रस नहीं लेती। न पर्यङ्क पर ही वे सुख का अनुभव करती हैं और न पृथ्वी पर ही विश्राम पाती हैं। सखियों की गोद में भी उन्हें किसी प्रकार का सन्तोष नहीं मिलता। पूर्ण चन्द्रमा की किरणें भी उन्हें निष्करुण लगती हैं और उनके शरीर में दाह उत्पन्न करती हैं।

नो गेहे न च यमुना तटेपटीर।
क्षोदम्भः कण पवनैरुपैति मोदम्॥
नो भुङ्क्ते न च कुरुते जलेऽभिलाषम्।
नालीभिः सह कुरुते रहः समाजम्॥
नो तल्पे न च वसुधा तले सखीनाम्।
नैवाङ्के न च कमल प्रवाल जाले॥
सातोषं भजति मनागपीह वाला।
प्रालेय द्युति किरणैरुपैति दाहम्॥ गो० वि० ६।१०-११

अनेक कुशल वैद्यों द्वारा विविध प्रकार की ओषधियों से विभिन्न प्रयास किये गये परन्तु कोई भी उस मृगलोचना राधा के कमल नेत्रों में उल्लास का संचार नहीं कर सका। काम बाधा का हरण करने वाले हे हरि ! तुम्हारी सखी राधा भले ही इस भयङ्कर विरह राहु से ग्रस्त हो किन्तु मैं ऐसा मानती हूँ कि तुम्हारे नाम के श्रवण मात्र से ही उनके श्री विहीन मुरझाये हुए मुख मंडल पर प्रसन्नता की आभा झलकने लगती हैं और उनका हृदय आनन्द से भर जाता है।

विरह विधुरा राधा की इस करुणा पूर्ण कथा को सुन कर कृष्ण अत्यन्त दयार्द्र हो जाते है और दूती से कहते है कि हे दूतिके ! राधा को कोई रोग नहीं है, उस पर तो किसी वन देवता का प्रकोप है। इसलिये उसे पूजाओं बलि विभवो तथा संगीत वाद्यो से प्रसन्न करना चाहिये। इसमें तुम्हारी सभी सखियों को रुचि लेनी चाहिये। यदि वह बन देवता राधा की मनो कामना पूर्ण करने लिये तत्पर हो तब तुम उस बन देवता के लिये मेरा सर्वस्व भी प्रदान कर सकती हो।

देवोऽसौविपिन भुवः प्रसादनीयः, पूजाभिर्बलिविभवैः सगीत वाद्यैः।
सर्वस्वं ममभवती ददातितस्मै राधायां यदिभविता स काम दाता ॥
गो० वि० ६।१३

गोपाल की इस उत्साह जनक वाणी को सुनकर दूती हर्ष विह्वल हो जाती हैं और माधव में पूर्णतया अनुरक्त उस आनन्दमृत सरमी राधा के समीप आकर मधुर मुस्कान बिखराती हुई राधा से कहती है कि यदि बन में पहुँचकर उस वन देनता केशी हन्ता का यजन करना ही अभीष्ट है, तब फिर यह बिलम्ब किस लिये ? ।

नन्दनन्दन का यजन करने के लिये जिन सामग्रियों की आवश्यकता होगी वे सब उपकरण दूती के निर्देश से सखियों ने तैय्यार कर लिये । तदनन्तर श्री खण्ड द्रव, कलश, कदव माला, ताम्बूल कपूर धूप आदि पूजा की समस्त सामग्री लेकर मृदंग शंख और घंटों के प्रचण्ड निनादो से अन्तरिक्ष को गुजायमान कर देने वाला सिंहनाद करती हुई अपनी सखियों के साथ राधा काम सम्राट पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से वन के लिये प्रस्थान करती है।

तां तन्वीं मधुमथने नितान्त रक्तां, दूतीदं विधुवदनांपुनर्जगाद ।
इष्टव्यो यदि विपिने सकेशि हन्ता, कोऽयं ते हरिदयिते! तदा बिलम्बः ॥
गो० वि० ६।१५

इत्युक्त्वानयनिपुणा प्रियाली राधायाः, बन गमनोचित विधातुम् ।
श्रीखण्ड द्रव कलशं कदंबमालां, ताम्बूलान्यपि जगगृहुः पुनः प्रयुक्ता ॥
गो० वि० ६।१७

अन्यद्वा रसिक मणेः प्रियं यदासीत्, कर्पूराद्युपरकरणं तदाददाना ।
प्रेमाम्भःस्थगित दृशः क्षणं कृशांग्यः सम्प्राप्ता परममुदं मुकुन्द चित्ता ।
दध्वानाम्बुद निनदध्वनि मृदंगः शंखानामपिमधुरं बभूव नादः ।
घंटानां ध्वनिरुदभूद्दिवं प्रकुर्वन् आनन्वोभुवनजये ससिंहनादाम् ॥
गो० वि० ६।१८-१९

राधा को बन गमन के लिये तत्पर देखकर उनकी सखिया भी अपने हृदय की प्रसन्नता प्रकट करने के लिये कामदेव के धनुप की भांति अपनी बीणाओं से मधुर स्वरावलि उत्पन्न करने लगती है। उन गोपरमणियों के अधरों से प्रस्फुटित होने वाले मनोहररव को वमन करती हुई वेणुओं ने भी अतिप्रचंड गंभीर घोष आरम्भ कर दिया हैं। इस अवसर पर सखियां इतनी आह्लादित हो रही थीं कि कंसरिपु मुकुद की मुरली की भांति उन ब्रज बालाओं की वंशियों ने भी ऐसा तीव्र निनाद आरम्भ किया जिसने कामदेव के पुष्प चाप की प्रत्यचा से उद्भूत घोर टंकार को भी तुच्छ बना दिया ।

पुष्पेषोरिव धनुषो मधुव्रतानां वीणानां मधुर रवस्तदाविरासीत् ।
कान्तानामधर रसंवमन्निवोच्चैः, वेणूनामपि निनदः समुज्जजृंभे ।
कंसारेरिव मुरली खोङ्गनानां वंशीनां निनद परम्पराप्रवृत्ताः ।
न्यक्कारं जनित वती प्रसून चापज्या घोषेकुसुमशरासनस्य राज्ञः ॥
गो० वि० ६।२०–२१

किन्तु कृष्ण कुंज के लिये प्रस्थान करने को उत्सुक बनी हुई हरिप्रिया राधा ने बन मार्ग पर चलने के लिये जैसे ही अपना पग आगे बढ़ाया तभी सहसा मंजीरों के मधुर गुंजनों के ब्याज से उनके कुलीन धर्मों ने उन्हें दृढ़ता के साथ रोका और बन जाने के लिये मना किया । सम्भवतः इसी कारण अपना रोष प्रकट करने के लिये मुकुन्दरमणी राधा के चरणारविन्द क्रोध मे और अधिक आरक्त हो गये हैं ।

मंजीरध्वनि कपटात् कुलीन धर्मैः प्रस्थानेधृतचरणं दृढं निषिद्धा ।
इत्येवं हरिरमणी पदारविन्दे कि रोषात्प्रकटतरोवभूव रागः ॥
गो० वि० ६।२८

इस पर राधा को निरुत्साहित होते हुए देखकर काम कला प्रवीण दूतिका राधा के रूप लावण्य एवं उनके अलौकिक सौन्दर्य की प्रशंसा करती है और उन्हें प्रसन्न करती हुई कहती है कि हे मुकुन्द कान्ते राधे ! तुम तो लोकोत्तर रूप माधुरी की स्वायिनी हो । इसी लिये मैं ऐसा मानती हूँ कि सम्राट् कामदेव के साम्राज्य की स्थापना पर दो स्वर्णिम छत्रों का निर्माण करने के लिये विधाता ने राधा के ऊरु युगल के ब्याज से दो स्वर्ण दंड उत्पन्न किये हें । हे गोविन्दवल्लभे ! तुम देखती नहीं हो कि ऋतु राज वसन्त ने भी सम्राट काम देव के राज्यारोहण का उत्सव मनाने के लिये मांगलिक विधि विधानों से निर्मित और पीयूष रस से आपूरित राधा के स्तनों से दो स्वर्ण कलशों की रचना की है और उनके प्रान्तीय आवरण के लिये राधा की भुज लतिकाओं से शिरीश कुसुमों के दो हार बनाये गये हैं जो कामदेव के गले की शोभा बढ़ायेंगे । अन्त में दूती कहती है कि हे हरि रमणी राधे ! सौन्दर्य सम्राज्ञी कमल नयना राधा के समान इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में न कोई हुआ है, न कोई भविष्य में होगा और न कोई वर्तमान में है, मानों यह शपथ लेकर ही विधाता ने वरांगना राधा के गले में तीन रेखायें खींच दी है ।

'साम्राज्यं मदन महीपतेः विधातुं, निर्मातुं कनकमयातपत्र' युग्मम् ।
द्वौ दंडौ पुरटमयौचकार, मन्ये राधायाः जघनं युगल छलेन बेधा ।
'मांगल्ये विधि घटितौभृतौ सुधाभिः, तन्वंग्या स्तन कलशौ स्मराभिषेके ।
तत् प्रान्तावरण विधौशिरीषमाले, बालाया भुजलतिके मधुश्चकार ।

१. गोपालविलास ६/२६
२. वही ६।४०–४१

नोभूताभुवनतलेन वा भवित्री, राधायाः कमलदृशः समानवास्ते ।
इत्येवं शपथ पुरस्सरं त्रिरेखं ग्रीवायां किमुविदधे विधिर्वरांग्याः ॥

बन मार्ग पर चलतीं हुई राधा दूती से भवनगान शंकर के दर्शन करने की इच्छा प्रकट करती है। दूती भी सहर्ष उनसे कहती है कि काम क्रीड़ा में अनुरक्त अपने वैभवशाली अंगों से समृद्ध बनो हुई राधे ! जब तक तुम अपनी सखियों के साथ भगवान भूतभावन का अर्चन करो तब तक मैं तुम्हारे उदात्त चरितामृत से मुकुन्द के हृदय को सिंचित कर अभी तुम्हारे पास आती हूँ।

तदनन्तर राधा अपने अभीष्ट वरदान की सिद्धि के लिये सखियों के साथ मंदिर में जाती हैं और गौरी सहित भगवान शंकर की अनन्य भाव से पूजा करती हैं। पश्चात् उनसे एक मात्र यही वरदान मांगती है कि हे पुरारि ! मेरा हृदय निरन्तर नन्दनन्दन व्रजचन्द्र के श्री चरणों में ही रमण करता रहे।

नन्दस्य सूनौरमतां निरन्तरं, स्वान्त मदीयं मयि वास्तु तत्कृपा ।
एवं वरं सा सुतनु पुरद्विपः सम्प्रार्थयामास सरोज लोचना ॥
गो० वि० १३।११

उधर दूतिका राधा को शिव मन्दिर में प्रविष्ट हुआ देख कर कृष्ण के समीप चली जाती है और उनसे कहती कि हे तमाल ! वर्षा जल से उज्ज्वल बनी हुई श्रीश बनी में विराजमान राजीवनी की कान्ति का हरण करने वाली हरि प्रिया राधा तुम्हारे समीप आ रही हैं।

वर्षोज्ज्वला श्रीशबनी विराजिनी, राजीवनी कान्तिहरा हरिप्रिया ।
विद्यु त् द्युति . पीन पयोधर त्विषा विद्योतमानैतितमालतेऽन्तिकम् ॥
गो० वि० १०।१६

दूतिका की इस अमृत सहोदरा वाणी का श्रवण करके नन्दनन्दन गोपाल का हृदय पूर्ण प्रफुल्लित हो जाता है। वे कहते है कि हे दूतिके ! मैंने भी तुम्हारी सखी के स्वागतार्थ अपने पावन कदंब कानन को पूर्णतया सुसज्जित बना दिया है। प्रसन्न मना दूती कृष्ण के इन सुधासव सिक्त बचनों को सुनकर गदगद हो जाता है। फिर राधा के पास आकर उनके हृदय को कृष्ण के प्रति आश्वस्त करती है और उन्हें मुकुन्द के क्रीड़ा बन में चलने के लिये प्रेरित करती है। काम ज्वर से पीड़ित राधा स्वयं अपने प्रियतम के समीप पहुँचने के लिये आतुर सी हो रही है।

राधा जैसे ही दूतिका के साथ कृष्ण कानन में प्रवेश करती हैं तभी दूती राधा से कहती है कि हे राधे ! तुम्हारे प्राण प्रिय चन्द्रवदन कृष्ण इसी बन में निवास करते हैं। दूतिका के इस वचन सुधासव का अपने कर्ण - चषकों से पान कर नन्दनन्दन गोपाल मदोन्मत्त हो जाते हैं और अत्यन्त अधीर बने हुए दूती से पूछते है कि हे दूती ! राधा कहां हैं ? तदनन्तर दूती के साथ आयी हुई राधा को कृष्ण

विस्फारित नेत्रों से देखते रह जाते हैं। राधा भी अपने प्राणवल्लभ गोविन्द की मुख चन्द्रिका का पान कर चकोरी की भाँति चंचल बन जाती है। जिस प्रकार पन्नगाशन गरुड़ पीयूष पात्री को देखकर उसे पीजाने के लिये अत्यधिक आतुर बन जाते हैं उसी प्रकार राधा भी अपने जीवन धन मुकुन्द को देखकर काम वाणों से आहत हो जाती है और उन्हें अपने हृदय में समाहित कर लेना चाहती हैं। अपने प्राणधन को अपने सामने उपस्थित देखकर राधा उस सौन्दर्य सारसागर में पूर्णतया लीन हो जाने के लिये व्याकुल हो जाती हैं। दोनों (राधा माधव) के एकान्त मिलन के लिये दूतिका व्रजेन्द्र नन्दन को प्रसन्न बनाती हुई यह कहकर वहाँ से चली जाती है कि राधिके ! मैं तुम्हारी सखियों से तुम दोनों के लिये सरोजावलि लेकर अभी क्षण भर में आती हूँ।

सारंगकान्ता सुदृशेक्षणामिदं दूती पुनः प्राह कदम्ब कानने।
अस्मिन् बने सुन्दरि ! नन्दनन्दनः प्राणप्रियस्ते विधुमडलाननः ॥
गो० वि० १०।३४

तत्कर्ण पात्रेण वचः सुधासवम्, पीत्वा प्रमत्तः सबलानुजोऽभवत्।
कुत्रेति राधा वचनेन चापलं नीतोनितान्तं कमलापतिः पुनः ॥
गो० वि० १०।३५

प्राह प्रगल्भाऽथ मुकुन्द बल्लभां आनन्दयन्ती व्रजनाथनन्दनम्।
राधे ! क्षणं यामि तवालिसन्निधौ, तुभ्यं सरोजावलिमाहराम्यहम् ॥
गो० वि १०।४१

कृष्ण कुञ्ज में अपने आपको एकाकी देखकर राधा भय से विह्वल हो जाती है उनके अंग काँपने लगते हैं। तभी कृष्ण उनके समीप आकर उन्हें अपने गाढालिंगन में आवद्ध कर लेते हैं और प्रेम पूर्ण वाणी में कहते हैं कि हे राधे ! मेरे बन में जीवित रहते तुम्हें यहां किस से भय हो सकता है।

पाणिद्वयी बिम्बफला धरस्तन द्वन्द्वोऽनुदेशेषुनिवान्त कंपिताम्।
राधा मुरारातिरथावदत्कथंकान्ते ! भयं ते मम जीवने बने ॥
गो० वि० १०।११

नन्द नन्दन के इन प्रेम रसासिक्त मधुर वचनों को सुनकर राधा रोमांचित हो जाती है। नीविजन्य ब्रह्म सुख में लीन नन्दनन्दन अपनी मादक मुस्कान के साथ राधा की माधुरी को निहारते है और राधा भी सौन्दर्य रस सार सागर कृष्ण को अपने निर्निमेष नेत्रों से पीजाना चाहती है। इस समय मृग लोचना राधा के उत्तुंग उरोजों से भय के कारण स्खलित होकर कंचुक पूर्णतया मुक्त हो जाता है। करभोरू चन्द्रमुखी राधा मुस्कराती हुई नन्दनन्दन की जंघाओं का आश्रय ले लेती है। कृष्ण की भुज लताओं में आवद्ध राधा ने नीवी बन्धन के मुक्त हो जाने पर ही स्वयं को सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त अनुभव किया।

नीवीकृत ब्रह्म सुखस्मितानन:, साध्वीक्षिताक्ष्या हरिरीक्षितस्तथा ।
उत्तुंग वक्षोरुह कंप भंगुरं मोक्षं मृगाक्ष्या: समवाप कंचुकम् ।
ऊरु मुरारेः करभोरुरापिता स्मेराननेन्दुर्मृगशाव लोचना ।
बद्धापि दौर्दंड गुणेन निर्भरं नीव्याविमुक्ताऽथ बभूव बन्धनैः ॥
. गो० वि०१०।४८–४९

तभी नन्द नन्दन गोपाल उस पुरुकीर्ति हारिणी वैजयन्ती माला राधा को अपने वक्षपर धारण कर लेते हैं। उस समय केशर की कान्ति वाली राधा कस्तूरिका के ढेर पर लेटी हुई उससे एकाकार हो जाती है और रंगविरंगी बनी हुई सुशोभित हो रही है।

मदन मदोन्मत्ता राधा के साथ काम केलि मद से उद्धत एवं उन्मत्त बने हुए नन्दनन्दन के चंचल प्रवाल की कान्ति वाले अधर ने अत्यन्त भीरु बनी हुए राधा के मुख में छिपी हुई मुक्तावली रूप उस तस्करी के धन को ग्रहण कर लिया। तदनन्तर किंकिणियों की किंकारों से पदांगदों के क्वणन से नाना और सी सी की मधुर ध्वनियों से भरा हुआ और हुंकार परम्परा से व्याप्त कुंज भी वारांगना बनी हुई रमा की चीत्कारों नात्कारों और सीत्कारों के मधुर मनोहर गुञ्जनो से सुशोभित हो रहा था।

तां वैजयन्तीं पुरु कीर्ति हारिणीं, संधारयामास पयोद सुन्दरः ।
कस्तूरिका राशि करंबितास्तदा काश्मीर राजीवरराज राधिका ॥
जग्राह रागोद्धत मत्तमाथिनो बन्धूकबन्धुर्मुर वैरिणोऽधरः ।
चंचत्प्रवाल द्युतिः तस्करीधनं, भीरोर्मुखे मौक्तिक पंङ्क्ति गोपनम् ॥
गोपालविलाल १०।५०–५२

किंकार हुंकारक्वणत्कृतैस्ततो नात्कार सीत्कार रवेण संगत: ।
कुंजोऽपि हुङ्कारपरम्पराकुल: कुम्भा रमाराव रणैरलं बभौ ॥
—गो० वि० १०।५७।

अनंग के रंग में रंगी हुई चम्पक वर्णा राधा अब तमाल से लिपटी हुई कंदबा की माला बनी हुई ऐसी लग रही हैं मानो अपराजित्ता से युक्त किंजल्क माला ही शरीर धारण कर माधव के साथ साथ रमण कर रही हो।

चांपये राजी मदनेन रञ्जिता जातातमालेन च नीप मालिनी ।
किंजल्क मालाप्यराजितान्विता सम्प्राप्यवेहारमतेस्म माधवे ॥
—गो० वि० १०।६०।

नन्दनन्दन गोविन्द ने रमण करने की इच्छा से केलिकानन में पदार्पण किय है। यह देखकर माधव बन्धु वसन्त अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ उनका हार्दिक स्वागत करने के लिये पूर्ण तत्पर बना हुआ है। मुकुन्द भी अपनी प्राण वल्लभा राधा के साथ

काम केलि में लीन बने हुए हैं। इस समय विपरीत रति की मुद्रा में माधव की बलिष्ठ भुजाओं के दृढालिगन में आवद्ध राधा कृष्ण के विशाल वक्ष पर ऐसी लग रही है मानो श्याम घन के ऊपर विद्युत की चंचल रेखा क्रीडा कर रही हो और (स्वेदबिंदुओं के) तारकवृन्द अधिक चपल बने हुए सुशोभित हो रहे हो।

नन्दात्मजे स्वीकृत केलि कानेन, सम्मानिते माधव बन्धुना बने।
मेघोपरिष्टादचिरद्युतेस्ततिः, ताराश्च रेजुस्तरला विलम्बिता ॥

राधा माधव के इस मिलनोत्सव पर शोक संताप सन्तति को समूल नष्ट कर देने वाली स्वर्ण सरित अपने कमनीय कनक-कुंभयुगल सहित प्राणघन प्रियतम रस राज महोदधि में विलीन हो जाने के लिये नीलाञ्चल से लिपटी हुई भी यमुना जल की श्याम लहरियों से सुशोभित हो रही थी। इस समय अन्धतमस ने अपने बन्धन को व्यर्थ समझकर उसे पूर्णतया शिथिल कर दिया है। अतः तारे कपोतों की भांति कुछ चपल बन गये हैं, नील कमलों में किसी प्रकार का कोई स्पन्दन नहीं है और भ्रमरावलि पूर्णतया निश्चल सी बन कर एकदम शान्त हो गई है। जो मार से सतत रत होकर भी जीवनदायिनी और प्राण सञ्चारिणी बनी हुई हैं, अपने प्रियतम माधव के अनुराग में पूरी तरह पगी हुई होकर भी उनसे करिणी के समान रति रस का आनन्द पाने वाली हैं! अपने प्रियतम के पीताम्बर में लिपटी हुई भी दिगम्बरा सी दिखाई देने वाली वह चञ्चल राधा इस समय नितान्त निश्चेष्ट होकर सर्वथा विश्रान्त हो गई हैं। इस समय कृष्ण कुञ्ज में सारस के उद्घोषों के साथ जो कोकिल कलरव हो रहा था और राजहंस जो मधुर गुञ्जन कर रहे थे वह सब शान्त हो गया है। नव घन श्याम में जो स्फुरण हो रहा था वह भी मन्द हो गया है। अब धीरे-धीरे उन्मुक्त अलकावलि से चन्द्रमा का उदय हो रहा है। कवि कहते हैं कि अपने पूर्व जन्मों के उदात्त कर्मों के फलस्वरूप मुर रिपु माधव के ऊपर स्थान पाकर भी राधा चञ्चल बनी हुई थीं, अतः माधव की लावण्य निधिको लूटने वाली कनक कलेवरा राधा अब अपने प्रियतम से आक्रान्त होकर अवश हो जाती हैं और अशक्त होकर नीचे गिर जाती हैं।

'जःम्बूधुनी या शुचिताप नाशिनी, साक्षातकुंभोज्ज्वल कुंभ युग्मिनी।
नीलाञ्चलाभापि रराज रागिणी, सूरात्मजा नीर समूह संगिनी ॥
अन्धं तमो बन्धन गञ्जनं जहौ, ताराश्च पारावत चञ्चल श्रियः।
इन्दीवर स्पन्दनमेव नाभवत्, भृङ्गावली निश्चलतामुपागता ॥
संजीवना मार रतापि निर्भरम्, रक्तापि नीतेभगता रता हरौ।
पीताम्बराभापि निराकृताम्बरा, सा चञ्चला कापि बभूव निश्चला ॥

---

१. गोपालविलास १०।६२-६६।

'या सारसोद्धोप युलापिकोक्तय:, शान्ता समन्तात् कल हंस कूजितैः ।
स्पन्दोरु मन्वोप्युदभून्नवाम्बुदे, मुक्तालकानाममवद्विपुपवम् ।।
ऊर्ध्वं मुराराति पदं यदापिता पुण्येन केनापि तथापि चञ्चला ।
पाटच्चरी सा पुरटोत्विषान्विता क्रान्ता नितान्तं पतिताथ राधिका ।।

इस काम समर में चन्द्रमा को आक्रान्त हुआ देखकर कमल नेत्र नन्दनन्दन ने मुस्कराते हुए अपने कर कमलो से उसे प्रेम के साथ सहलाया और अपने पीताम्बर से उसका मार्जन किया । इस प्रकार दया के सागर गोविन्द ने उसे अपने अङ्क में छिपाकर पूर्ण संरक्षण प्रदान किया । तभी स्वर्ण शृंगों को गंगा विहीन निरावृत देख कर तीव्र अनुराग के साथ उन्हें नापने के लिये अधिक अधीर बने हुए नन्दनन्दन का हृदय उस कामपुष्करिणी के पीयूष रस में लीन हो जाता है और वे उसे अपने निर्निमेष नेत्रों से पी जाना चाहते हैं । रति-रस से तृप्त बनी हुई और लज्जा के आवरण में लिपटी हुई तथा काम मद से आरक्त अपने नेत्रों को उन्मीलित करती हुई राधा ने माधव के हाथ का सहारा लेकर नीचे से उठने के लिये तत्काल प्रियतम का पीताम्बर पकड़ लिया ।

'क्रान्तं विधुं वीक्ष्य पुनः स्मिताननः, तं शारदांभोरुह पत्रलोचनः ।
हस्तेन सम्मृज्य कृतोरु लीलनः कारुण्य वारांनिधितामपालयत् ।।
गंगा विहीनावथहेमशेखरौ, मातु सरागः सनिरीक्ष्य चञ्चलः ।
कंदर्प वापी रसमग्न मानसो रामानुजोनिश्चललोचनोऽभवत् ।।
राधी ततः ताम्र विलोचनद्वयीम्, उन्मीलयन्ती त्रपयावलम्बिनी ।
नीचैः समुच्छ्राय हरे करग्रहा, जग्राह पीतांशुकमाशु सन्धरा ।।

चन्द्रवदन नन्दबन्दन ने भी चपल कुंडलों के ताण्डवों से विभूषित अपने कपोलों से राधा के कपोलों को मंड़ित करते हुए अपने ताम्बूल कल्क को राधा के अधरों में उसी प्रकार भर दिया जिस प्रकार किसी शुक का मुख दाड़िम के बीजों से भर दिया गया हो । इस समय पूर्णतया आनन्दोदधि में लीन राधा अपनी कुच-पालिकाओं से चिपकाये हुए प्राणेश्वर मुकुन्द के चरणों का सम्बाहन करती हुई भावातिरेक से आत्म प्रफुल्लित हो रही हैं । इस समय अनंग क्रीडा रस में आप्लावित बने हुए उनके अंग-अंग में उमंग भरी हुई है । अब वे अपने प्रियतम के मुस्कान भरे मुख को निहार रही हैं ।

रति लीलोपरान्त राधा माधव अपनी वियोगावस्था की अमृत रस में भीगी

---

१. गोपालविलास १०।६५ । २. गोपालविलास १०।६८ से ७० ।

हुई उन कथाओं को परस्पर कह-कह कर आनन्दित हो रहे हैं जिनकी कल्पनायें वृन्दावन की पुष्प सम्पदा में की गई थीं और जो संयोग काल की चित्त वृत्तियों के रूप में दोनों के हृदयों में छायी हुई थी।

गंडेन गंड विधुमंडलाननः, स मंडयाभास कपोल कुंडलः।
ताम्बूल कल्कं निदधे प्रियाधरे कीराननें दाडिम बीजपूरवत् ॥
सम्वाहयन्ती कुचपालिपालितं, राधामुरारेश्चरणाम्बुजद्वयम्।
अंगेषु नांगानि विधतुंमीश्वरी स्मेराननेसक्तमनामनागभूत् ॥
या विप्रयोगे कुसुमेषुकल्पिता, याश्चाभवत् प्राक्तनचित्तवृत्तयः।
तास्ता कथा संकथयांवसूवरुः पीयूषपूरामुरवैरि राधिके ॥

—गोपालविलास १०।७२ से ७४।

प्रस्तुत महाकाव्य गोपालविपास के द्वारा सरस्वती जी ने भक्ति रस की सिद्धि का वृहदायोजन किया है जिसमें उन्हें शतप्रतिशत सफलता प्राप्त हुई है।

इस काव्य में अपने प्रियतम नन्दनन्दन के निरन्तर गुण श्रवण से राधा के द्रवित चित्त में तैल धारावत कृष्णाकारतानिष्ठ जो कामजा रति उत्पन्न होती है, वही स्थायीभाव है। यह रति ही विभावानुभाव, सात्विक भाव और संचारी भावों के सहयोग से उद्दीप्त होकर भक्ति रस के रूप में परिणत हो रही है। इसे ही श्रुतियों ने नित्य सुख रूप में अभिव्यक्त होने वाले "रसोवैसः" से अभिहित किया है। इस रस की उपलब्धि ही सरस्वती जी के साथ-साथ मानव मात्र का लक्ष्य है।

भक्ति को रस सिद्ध करने वाले लक्षण ग्रन्थ तो अनेक प्राप्त होते हैं किन्तु लक्ष्य ग्रन्थों में केवल इस गोपालविलास के अतिरिक्त अन्य किसी काव्य के दर्शन नहीं होते।

(ग) गोपालविलास में अलङ्कार योजना—

साहित्य की कोई भी विधा हो उससे सहृदय श्रोता पाठक अथवा दर्शक को आकृष्ट करने के लिये सशक्त और समर्थ शब्दार्थ सौन्दर्य की सर्वत्र प्रशंसा की जाती है। काव्य जगत में तो शब्दार्थ सौन्दर्य को अत्यन्त भावुकता पूर्ण बनाने के लिये इसे और अधिक प्रसाधित चमत्कृत एवं समृद्ध रूप में प्रस्तुत करने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है।

निःसन्देह संस्कृत साहित्य में कविता कामिनी को और अधिक कमनीय बना देने वाले तथा उसे अधिक सुरुचि पूर्ण मनोरम एवं कभी-कभी चमत्कृत कर देने वाले साधनों के रूप में अलङ्कारों का विशेष स्थान एवं महत्व अनादि काल से ही मान्य रहा है। अनादि काल से तात्पर्य श्रुतियों से है जिनमें ऋग्वेद का स्थान सर्वप्रथम

है। जिसके अनेक मन्त्रों में उपमा उत्प्रेक्षा रूपक आदि अर्थालङ्कार और यमक अनुप्रास आदि शब्दालङ्कारों के स्पष्ट दर्शन होते हैं । निम्न मन्त्र का आलङ्कारिक एवं रसपूर्ण रूप अत्यन्त कमनीय है—

ओ३म् गाव इव ग्रामं युयुधिरिवाश्वान ।
वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना ।
पतिरिव जाया अभिनोन्येतु भर्ता ।
दिवः सविता विश्ववारा ॥ ऋग्वेद १०।१४६।४ ॥

जिस प्रकार स्नेह पूरित सास्नावाली, बहुत दूध देने वाली और हम्मारव करती हुई गाय अपने प्रियवत्स के प्रति शीघ्रता से जाती है और जैसे योद्धा उत्साह के साथ युद्धार्थ सज्जित अपने अश्व की ओर जाता है और जिस प्रकार पति अपनी प्रियतमा सुन्दरी पत्नी से मिलने के लिये शीघ्र जाता है, वैसे ही समस्त विश्व द्वारा वरण किये जाने वाले निरतिशय शाश्वत आनन्द निधि भगवान सविता हम शरणागतों के समीप में आते हैं। इस मन्त्र में करुण, वीर, शृङ्गार तीनों रसों की प्रत्यक्ष प्रतीति हो रही है जिसके लिये उपमालङ्कार का सहज सहयोग प्रशंसनीय है।

यस्य तेस्वादु सख्यंस्वाद्वीप्रणीति ऋग्वेद ८।६८।११

इस मन्त्र में 'स' की अनेक बार आवृत्ति अनुप्रास की झलक दिखा रही है।

लौकिक साहित्य में संस्कृत काव्यकारों, काव्यमर्मज्ञों एवं लक्षण ग्रन्थों के प्रणेता आचार्यों ने काव्यमयी भाषा भारती को विभूषित एवं चमत्कृत करने के लिये अलङ्कारों के अस्तित्व को अनिवार्य रूप से अपनी मान्यता दी है।

अलं पूर्वक कृञ् धातु से घञ् प्रत्यय करके अलंकार शब्द की रचना की गई है और इसका अर्थ 'अलं पर्याप्तं शोभनं क्रियते येन स अलङ्कारः' यह किया गया है। अर्थात् जिस साधन से काव्य को पर्याप्त मात्रा में सौन्दर्य सम्पन्न किया जाता है, वह साधन अलङ्कार है। यह अलङ्कार का शाब्दिक अर्थ है।

काव्य शास्त्रीय दृष्टि से इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भरत मुनि के नाटचशास्त्र में प्राप्त होता है। जहां उन्होंने अलंकारों को कविताकामिनी कलेवर को प्रसाधित करने वाले साधनों के रूप में माना है । उन्होंने इन अलङ्कारों की संख्या केवल चार तक ही सीमित रहने दी है—

उपमा दीपकश्चैव रूपकं यमक तथा।
काव्यस्यैते ह्यलंकाराश्चत्वार परिकीर्तिताः॥ नाटचशास्त्र १६।४१ ॥

भरतमुनि के पश्चात् अलंकारों का सर्वप्रथम विवेचन एवं विश्लेषण करने का कार्य आचार्य भामह ने किया उन्होंने लक्षण ग्रन्थ के रूप में अपने "काव्यालंकार" की रचना की जिसे साहित्य जगत में सर्वप्रथम अलंकार शास्त्र पर एक प्रसिद्ध प्रमाणित एवं स्वतन्त्र रचना के रूप में स्वीकृत किया गया है। आचार्य भामह ने अपने इस

ग्रन्थ में भरत मुनि द्वारा मान्य केवल चार अलंकारों के स्थान पर अडतीस अलंकारों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। उन्होंने कविता के लिये अलंकारों को अनिवार्य माना है। वे कटक कुण्डलवत अनुप्रासोपमा आदि अलंकारों को काव्य के शरीर सौष्ठव का ही साधन मानते हैं।

समन्वय वादी आचार्य सम्मट ने अलङ्कार के सामान्य स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि—

उपकुर्वन्ति तं सन्तं ये ह्गद्वारेण जातुचित्।

हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ॥ काव्यप्रकाश ८।६७ ॥

जिस प्रकार हार आदि अलंकार शरीर के सौन्दर्य की ही अभिवृद्धि करने वाले होते हैं उसी प्रकार अपुप्रासादि शब्दालङ्कार और उपमादि अर्थालंकार भी केवल काव्य के कलेवर को ही कमनीय बनाने के साधन हैं। मम्मट की दृष्टि में वस्तुतः अलङ्कारों को रसोपकारक के रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिये।

अलङ्कार के विषय में मम्मट की मान्यता निम्नप्रकार है—

(१) शब्द और अर्थ के आश्रित धर्म को अलङ्कार कहते हैं।

(२) अलङ्कार शब्द और अर्थ में नित्य नहीं रहते तथा अलङ्कार शब्द और अर्थ के द्वारा रस के उपकारद हो सकते हैं।

(३) अलंकार रस के साथ अनिवार्य रूप से नहीं रहते तथा कभी रस के उपकारक होते हैं और कभी नहीं भी होते—

प्रस्तुत महाकाव्य गोपालविलास के प्रणेता श्री सरस्वती जी तो गुण-दोष रीति अलङ्कार सबको शब्द का ही विषय मानते हैं अपनी 'भक्तिरसायन' में वे कहते हैं कि—

गुणालंकार रीतीनां भावानां च निवेदकः।

तस्य प्रत्यायकः शब्दोवृत्या व्यञ्जन रूपया ॥

—भक्ति रसायन ३ २०।

गुण अलङ्कार रीति और भावों का पूर्ण रूप से बोध कराने वाला शब्द ही अपनी व्यञ्जना रूप वृत्ति से रस की प्रतीति कराता है। क्योंकि उनका रस श्रुति-प्रतिपादित 'रसोवैसः' है अर्थात् निश्चित रूप से वह परमात्मा ही रस है। आत्मा का गुण दोषादि से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः सरस्वती जी की दृष्टि में महाकाव्य का यह समस्त सृष्टि प्रपंच शब्द का ही प्रसार है। वह शब्द ही अपनी व्यञ्जना शक्ति के बल पर अपने इस सम्पूर्ण माया जाल में रस रूप से अवस्थित उस माया पति की अभिव्यक्ति कराता है।

अलङ्कारों को उन्होंने रस का परिपोषक माना है।

"अलङ्काराश्च विज्ञाता भवन्ति परियोषका:"।। भक्तिरसायन ३।१९।

विज्ञाता अर्थात् काव्य में विशिष्ट रूप से ज्ञात एवं सुविचारित अलङ्कारों का ही प्रयोग करना चाहिये जो रस प्रवाह में व्यवधान उत्पन्न न कर सके वरन उसका पूर्णतया पोषण करने वाले हो।

सरस्वती जी ने अपने इस महाकाव्य में सभी प्रचलित अलङ्कारों का प्रयोग किया है। उनके काव्य में अलंकार रस के अपकारक न बन कर उपकारक के रूप में ही उपस्थित हुए हैं। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती राज्याश्रित एवं पण्डित मन्य कवियों की भांति केवल अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करने के लिये अथवा अपनी बहुज्ञता का परिचय देने के लिये क्लिष्ट कल्पना प्रसूत अस्वाभाविक अलङ्कार योजना का अपने सम्पूर्ण महाकाव्य में कहीं भी कोई प्रयत्न नहीं किया है। उन्होंने परिस्थिति एवं पर्यावरण के अनुरूप ही अलङ्कारों का उपयोग किया है जो काव्य सौन्दर्य के स्वाभाविक रूप में सम्यक सहायक बने हुए हैं। उनमें कहीं भी कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते।

सरस्वती जी ने शब्द में अर्थ में और शब्दार्थ में रहने वाले तीनों प्रकार के शब्दालङ्कार अर्थालङ्कार तथा उभयालंकारों का प्रयोग किया है।

शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि सभी प्रसिद्ध शब्दालंकार उनके इस महाकाव्य में उपलब्ध हैं। अनुप्रास भी उनके प्रिय अलङ्कारों में से है। उनके इस काव्य में आद्यन्त अनुप्रास की छटा दृष्टिगत होती है।

तारहार शारदोद्योतगर्व खर्वणः
क्षीर नीर-नीरधिस्फीति वीचि सुस्मितः।
कुन्द वृन्द सुन्दरोद्दाम दन्तदीधितिः
ननन्दनन्दनन्दनोऽस्ति मूर्तिवान् किमुज्ज्वलः ? ॥

—गो० वि० २/६१।

यहाँ तार, हार, शार, खर्व, नीर, नीर, कुन्द, वृन्दं, दाम, दन्त आदि समान ध्वनि वाले शब्दों की अनेक बार आवृत्ति हो रही है।

प्रत्यङ्ग रङ्गाभरणत्रिभङ्गी कंदर्परङ्गैः मधुरङ्गनाभिः।
अनन्दि नन्दात्मजमोदहेतोरतायितालोलललितः प्रियश्च ॥

—गो० वि० ३/४१।

यहाँ अंग, रंग, भंग, नन्दि, नन्दा आदि की आवृत्ति से एवं समान ध्वनि वाले पदविन्यास से श्रोता का मन मुग्ध हो उठता है।

अनेक पदों की पुनरावृत्ति होने तथा लाट जनों को प्रिय होने के कारण प्रस्तुत श्लोक में लाटानुप्रास के ठाट-बाट की स्पष्ट प्रतीति हो रही है।

अशोक पुष्पेषु कलाकुलाङ्गिनी
अशोक पुष्पेषु दधुर्व्रतं बलम् ।
करम्बिता सौरः करेणरागिणा
करम्बिता सौर करेण रागिणा ॥

—गो० वि० ११/६ ।

प्रथक अर्थ वाली स्वर-व्यञ्जनों की संहृति का अर्थ होने पर जिस क्रम से स्वर-व्यञ्जन समूह कहा गया है. उसी क्रम से यदि उसकी आवृत्ति हो तब वहाँ यमक अलङ्कार होगा। यमक के कुछ उदाहरण गोपाल विलास से उद्धृत किये जाते हैं—

यशो यशोदा सुतशैशवं जनाः
जगुर्मुदाधिवकृत काल गञ्जना ।
वभुर्वनान्तात् मलय प्रभञ्जना
रतान्त तान्त प्रमदानुरञ्जना ॥

—गो० वि० ११।४ ।

यहाँ प्रथम पाद के यशो-यशो में प्रथम सार्थक है तथा द्वितीय निरर्थक है। अन्तिम पाद में प्रथम तान्त निरर्थक है—द्वितीय तान्त सार्थक है, अतः यहाँ यमक अलङ्कार है। इसी प्रकार निम्न श्लोक भी दर्शनीय है—

हरिप्रियायाः मुखमिन्दुसोदरं, हरिप्रियायाः सदनप्रकाशनम् ।
हरिप्रियाशामभिवीक्ष्य सव्यथो हरिप्रियाशानुसरोऽपि सोऽभवत् ॥

—गो० वि० ११।७ ।

इस श्लोक में हरिप्रिया शब्द की चार बार आवृत्ति हुई है किन्तु अर्थ सर्वत्र भिन्न है। इसी प्रकार निम्न श्लोक में भी—

हरिप्रसादात् सुरत श्रमं जहौ
हरिप्रसादाय कृतोनुविग्रहः ।
हरिप्रसादाभि मुखोऽपि कातरो
हरिप्रसादादभवद्दिशं मृशन् ॥ —गो० वि० ११।६ ।

'हरिप्रसाद' शब्द का प्रयोग चार वार हुआ है किन्तु चारों का अर्थ भिन्न है।

कालिदास ने रघुवंश में यमक का चमत्कार दिखाने के लिये एक श्लोक में पुण्डरीक शब्द का चार वार प्रयोग किया है—

तेन द्विपानामिव पुण्डरीको राज्ञामजय्यो जनि पुण्डरीकः ।
शान्तेऽपि तोयाहत पुण्डरीकाः यं पुण्डरीकाक्षमिवश्रिताश्रीः ॥

—रघुवंश १८।८ ।

सरस्वती जी ने भी पुण्डरीक को यमकालङ्कार का विषय बनाकर अपने इस काव्य में इस प्रकार प्रयुक्त किया है—

पुण्डरीक जननस्थल देशो पुण्डरीक जनिनापि न शक्यम् ।
पुण्डरीक निकरा जलभूम्यो पुण्डरीक नयनस्य बने तु ॥

—गो० वि० ५।५७।

सरस्वती जी के शब्द-श्लेष का सौन्दर्य गोपाल विलास में सर्वत्र प्राप्त होता है। यह सम्पूर्ण महाकाव्य ही श्लिष्ट है। निम्न श्लोकों में श्लेष का सौन्दर्य कितना स्वाभाविक एवं प्रभावशाली है—

प्रेमाङ्कुरं पिक रवं शुकनीलकण्ठं
हंस प्रियम् प्रियकदम्बमधु प्रसूनम् ।
पीयूष हारि कुसुमेषु रतालिवृन्दम्
वृन्दावने कमपि कल्पतरुं भजामः ॥

इस श्लोक में शुक, नीलकण्ठ, हंस, आदि जहाँ पक्षियों के वाचक बने हुए हैं वहाँ वे शुकदेव, भगवान शङ्कर, और परम हंस आदि के भी वाचक हैं।

नोदिवा न च कुहूतिथि दोषासंगतो नभसि भातिमृगाङ्कः
लब्धविष्णुपद कानन सङ्गाः सन्ति सन्तत रुचोऽत्रमृगाङ्काः ।

—गो० वि० ५।५५।

एक ऋक्षपतिरस्ति विधात्रा निर्मितो नभसि सक्षय दोषः
अत्र ऋक्षपतयोः गतदोषाः प्राप्तविष्णुपद सङ्गम तोषाः ॥

—गो० वि० ५।५६।

प्रथम श्लोक में 'मृगाङ्क' और द्वितीय में ऋक्षपति पद श्लिष्ट है।

अर्थालङ्कारों में भी उपमा, उत्प्रेक्षा, सन्देह, भ्रान्तिमान आदि सभी प्रमुख अलङ्कारों का प्रयोग इस महाकाव्य में हुआ है। उपमालङ्कार के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

आसन्न सूतिसमया वपुषैव रेजे ।
सन्ध्येव सन्निहित शीत करोदयश्रीः ॥

—गो० वि० १।१९।

प्रसूति का समय जैसे-जैसे सन्निकट आता-जाता है वैसे ही वैसे अपने शरीर के सौन्दर्य से देवकी उसी प्रकार कान्तिमान हो रही हैं जिस प्रकार उदित होने वाले चन्द्रमा की श्री से सम्पन्न सन्ध्या सुशोभित होती है।

कर्पूर हासाः स्मर दर्प दीपिकाः
रामास्तथाम्याः सुरत प्रियादिकाः ।
घोरान्धकारे पथि रेजिरे यथा
नीलाञ्चले रत्न मरीचि वीचयः ॥ —गो० वि० २।२३।

रात्रि के गहन अन्धकार में गोप-रमणियाँ अपने प्रियतम मोहन गोपाल के समीप केलि कानन की ओर जाती हुई ऐसी रमणीय लग रही हैं जैसे नीलाञ्चल में जटित असंख्य रत्नों की प्रकाश किरणें चमत्कृत हो रही हों।

इसी बीच रास से कृष्ण के सहसा अन्तर्धान हो जाने पर कामबाणों से सर्वथा विह्वल बनी हुई गोप युवतियाँ मधुबन में विलाप करती हुई कृष्ण को उसी प्रकार खोजती फिर रही हैं जिस प्रकार काम के मद से मस्त बना हुआ करिणी यूथ अपने प्रियतम गजराज को खोजता हुआ फिरा करता है—

विलपन्नथ सुन्दरीगणः स्मरबाणव्यथितस्समन्ततः।
विपिने विचिकाय नन्दजं करिणीनां निबहो यथा द्विपम्॥
—गो० वि० ५।३४।

अर्थालङ्कारों में उत्प्रेक्षा भी सरस्वती जी का सिद्ध अलङ्कार है। इस भक्ति रसपूर्ण महाकाव्य में ऐसी भावोत्तेजक उत्प्रेक्षायें प्राप्त होती हैं जो किसी भी अन्य भक्तिपरक काव्य में उपलब्ध नहीं हैं। जिस प्रकार कालिदास की उपमायें पाठक को मन्त्र-मुग्ध कर देती है उसी प्रकार सरस्वती जी की उत्प्रेक्षायें भी हृदय को भाव-विभोर बना देती है।

सूर्य अपनी अन्तिम स्वर्णिम किरणों को समेटे हुए अस्ताचल की ओर गमन कर रहा है उधर पूर्व दिशा में चन्द्रमा का उदय हो रहा है। यह दृश्य देखकर कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि कुमारी रजनी के साथ सिन्धु पुत्र राकेश के विवाह का आयोजन हो रहा है लाल-लाल गाढ़ा सिन्दूर प्रस्तुत है अस्ताचल गामी सूर्य अपनी रक्तिम किरणों से सज्जित स्वर्णकुम्भ बना हुआ है सन्ध्या पुरन्ध्री ने नव कोमल पल्लवों के वन्दनवार बांधे हैं। नीडों को लौटने वाले द्विजगण का कलरव ही वेद-मन्त्रों की ध्वनि है।

द्विजगणपति सूक्तं सान्द्र सिन्दूर रक्तम्
किरण कनक कुम्भ वासरेशं विधाय।
किमुरजनी कुमार्या सिन्धु सूनोर्विवाहे
व्यधित किसलयाभां तत्र सन्ध्या पुरन्ध्री॥

गहन अन्धकार में लीन सभी दिशाओं की सीमायें समाप्त हो गयी है। इस घोर कूटान्धकार को देखकर मार्गों पर चलने वाले मनुष्य कह रहे हैं कि क्या यह काली घटाओं का गहरा जमघट है अथवा यह नभभाण्ड टूटकर गिर रहा है अथवा यह सर्वत्र कृष्ण की अद्वैत कान्ति ही व्याप्त हो रही है—

तदनुघन तमोभिरज्ञापिते दिग्विभागे
पथि पथि मनुजानामेवमासीत् प्रजल्पः।
किमजनि घन संघः किं नभोभाण्डभङ्गः
किमुत मधुनिहन्तु कान्तिरद्वैतमाप :।
—गो० वि० ६।३०।

कमल नयनी राधा के समान कोई सुन्दरी इस पृथ्वी पर न कभी हुई है न होगी और न वर्तमान में ही है। यह शपथ लेकर ही विधाता ने वराङ्गी राधा की ग्रीवा में तीनों कालों की प्रतीक तीन रेखाये खींच दी हों।

नोभूता भुवनतले नवा भवित्री राधायाः कमलदृशः समानवास्ते।
इत्येवं शपथ पुरस्सरं त्रिरेखं ग्रीवायां किमु विदधे वरांग्याः॥

संदेह अलङ्कार के अनेक सरस उदाहरण गोपाल विलास में उपलब्ध हैं जहाँ हृदय संदेह की स्थिति में ही रहता है और किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाता। साहित्यदर्पणकार कहते हैं कि जहाँ उपमेय में उपमान की कल्पना से जो संशय उत्पन्न हो जाता है वही संदेह अलङ्कार होता है—

[1]संदेहः प्रकृतेऽन्यस्य सशयः प्रतिभोत्थितः।
शुद्धो निश्चय गर्भोऽसौ निश्चयान्त इतित्रिधा॥

यह तीन प्रकार का होता है—जहाँ हृदय अन्त तक संशय की स्थिति में ही रहता है वहाँ शुद्ध संदेह तथा जहाँ आदि और अन्त में संदेह बना रहता है और मध्य में निश्चय हो जाता है वहाँ निश्चय मध्य, जहाँ आदि में संशय रहे और अन्त में निश्चय हो जाय वहाँ निश्चयान्त संदेह होता है—

शुद्ध सन्देह—

श्रीकृष्ण राधा के वियोग में अत्यन्त व्यथित बने हुए हैं। आकाश में पूर्ण चन्द्रमा को देखकर उनकी विरह-वेदना अत्यन्त तीव्र हो जाती है। राधा के बिना विक्षिप्त से बने हुए गोपाल का हृदय चन्द्रमा के विषय में संशय ग्रस्त बना हुआ विविध कल्पनायें करने लगता है। कभी यह चन्द्रमा उन्हें चकोरों की रमणस्थली कमल वनी को ध्वस्त कर देने वाला मदोन्मत्त गजराज प्रतीत होता है, कभी वे इसे मालती कुञ्जों को भस्म कर देने वाले प्रचण्ड दावानल के रूप में देखते हैं और कभी यह उन्हें कोक मिथुन की मधुर केलि कलाओं के लिये दुर्दैव का दूत बना हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार अन्त तक संदिग्ध बना हुआ उनका चित्त किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाता और अनिश्चय की स्थिति में ही रहता है। यह शुद्ध संदेह है—

[2]प्रायः पुण्यं परिणतमिदं चन्द्रबिम्बं चकोरी।
भर्तुः किं वा सरसिजवनी दारणो वारणेन्द्रः॥
किं दावोऽयं विरहि वनितामालतीकाननानां।
किं दुर्दैवं निधुवन कला सम्पदां कोक यूनोः॥

---

१. साहित्यदर्पण १०/३५।

२. गो० वि० ७/३।

निश्चयान्त सन्देह—

दूतिका राधा से कृष्ण का प्रथम परिचय कराती है। कृष्ण राधा के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर आत्म-विमुग्ध हो जाते हैं। वे राधा के अद्‌भुत रूप लावण्य को देखकर उसके विषय में अनेक कल्पनायें करते हैं। अन्त में उनका संशयग्रस्त हृदय कहता है कि क्या ये राधा हैं ?

[1]'चलस्थल सरोजयोः किमिह हेम रम्भोदयः
सुवर्ण पुलिनस्थिते वियति कांचनाद्रि द्वयम्।
सुधा महसि खञ्जनैस्तमसि कौमुदी बन्धनम्
घनं कुसुम धन्विनः किमुत राधिकाराजते॥

'भ्रान्तिमान' अलङ्कार के दर्शन भी इस काव्य में होते हैं। इसकी परिभाषा आचार्य विश्वनाथ ने निम्न प्रकार से प्रस्तुत की हैं—

[2]"साम्यात्तस्मिंस्तद्‌बुद्धिर्भ्रान्तिमान्प्रतिभोत्थितः।"

अर्थात् अत्यधिक साम्य के कारण जहाँ बुद्धि में विभ्रम उत्पन्न हो जाय वहाँ भ्रान्तिमान अलङ्कार होगा—

राधा कृष्ण मिलन के लिये जा रही हैं। उनका हृदय प्रिय-मिलन की नवीन कल्पनाओं में खोया हुआ है। मार्ग में चलते हुए उनके अपने ही कंकणों, किंकिणियों एवं नूपुरों के मधुर गुञ्जन से उन्हें सहसा कृष्ण की किशोर लीलाओं का स्मरण हो जाता है और उनका हृदय भ्रान्त हो उठता है। इस प्रकार विभ्रम में पड़ी हुई राधा वहीं वन में अपने को स्वर्ण वल्लरी की भाँति खगकुल कलरव से आकुल रति-तरु के आलिङ्गन में आबद्ध अनुभव करती हुई सुशोभित हो रही हैं—

[3]'कूजत्कङ्कणकिङ्किणीकणरणत्कारीक्वणन्नूपुरा
किंचित्किंचिदुदंचतिस्मसुरजित्कैशोर लीलामृतम्।
चञ्चत्पत्त्रिरवाकुलं रतिपदं वृक्षं समालिङ्गिता
राजत्कांचन वल्लरीव विपिने राधादधे विभ्रमम्॥

अतिशयोक्ति के अनेक सरस उदाहरण गोपाल विलास में मिलते हैं निम्न श्लोकों में रूपकातिशयोक्ति अपने समस्त वैभव के साथ विद्यमान है—

[4]'प्राप्यारण्ये चंचलाञ्चत् पयोदं
पूर्णं तत्राप्योषधीनामधीशम्।
श्वेतैः पुष्पैरङ्कुरैरुल्लसद्भिः
तोयैः रत्नैः पूरिताः स्वर्णवल्ल्यः॥

---

१. गो० वि० २/४०। २. साहित्यदर्पण १०/३६।
३. गो० वि० ६/५१। ४. गो० वि० ३/३१।

यहाँ कृष्ण गोपियों के रूप उपमेयों का कोई उल्लेख नहीं है। केवल उपमानों के द्वारा ही उपमेयों की प्रतीति हो रही है। यहाँ 'चञ्चलाञ्चतपयोद' से कृष्ण की पूर्णचन्द्र से कृष्ण के मुख की 'श्वेतैः पुष्पैः' से हास्य की 'अङ्कुरैः' से रोमाञ्चों की 'स्वर्णवल्लयः' आदि उपमानों से गोपिकाओं की अभिव्यक्ति हो रही है—अतः यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार है।

[1]सौवर्ण शैलः कदली द्वयान्वित जम्बूतटिन्यापुलिनप्रभान्वितः।
कूजद्विहंगैः सततं मनोरमो भिन्नो विहारे हरिणा नखाङ्कुरैः॥

यहाँ राधा के स्तन जंघा आदि का सौवर्ण शैल कदलीद्वय आदि के साथ अभेद सम्बन्ध होने के कारण अतिशयोक्ति है।

सरस्वती जी ने संकर अलङ्कारों का भी प्रयोग किया है निम्न श्लोक में अर्थश्लेष और उत्प्रेक्षा का संकर स्पष्ट रूप से दृष्टिगत हो रहा है—

[2]कुचकुंभयोर्मृग दृशां हरिणा नखरक्षतानि रचितानि बभुः।
लिखितानि मेरु सुषमा विजये प्रमिताक्षराणिविदुषात्मभुवा॥

आचार्य विश्वनाथ ने 'संसृष्टि' अलङ्कार का लक्षण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है—

[3]"मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थिति संसृष्टिरुच्यते।"

जहाँ अनेक शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों की परस्पर अनपेक्ष भाव से स्थिति हो वहाँ संसृष्टि अलङ्कार होगा—

[4]राधा शृङ्गार सरसीमरालः कमलालयः।
पाटलाक्षिपदपायादपायात्कोऽपि गोकुलम्॥

यहाँ अनेक शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों की स्पष्ट प्रतीति हो रही है जो एक-दूसरे की कृपा पर निर्भर न करते हुए स्वतन्त्र रूप से अपने आलङ्कारिक सौन्दर्य का प्रदर्शन कर रहे हैं—यहाँ 'पायादपायात्' में यमक, 'पाटलाक्षिपदपायात्' में अनुप्रास, शृङ्गार सरसी में रूपक, 'पाटलाक्षिपदः' में उपमा अलङ्कार है। अतः यहाँ शब्दालङ्कारों एवं अर्थालङ्कारों की अनपेक्षित स्थिति के कारण संसृष्टि अलङ्कार है।

इस समस्त विवरण से सिद्ध हो रहा है कि सरस्वती जी ने अपने इस काव्य में अलङ्कारों का प्रयोग काव्य की आत्मा को चमत्कृत करने के लिये ही किया है पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये नहीं। अलङ्कारों के कारण कहीं भी रसाभिव्यक्ति में कोई व्यवधान उपस्थित नहीं होता।

---

१. गोपाल विलास १०/५६।

२. वही २/६७।

३. साहित्यदर्पण १०/९८। ४. गोपाल विलास १/१।

(घ) गुण-दोष रीति विवेचन

(१) गुण—

भारतीय साहित्य मनीषियों ने काव्य को एक पूर्ण प्राणवान चैतन्य पुरुष के रूप में कल्पना करके उसमें अनेक उत्तम गुणों की सत्ता को भी स्वीकार किया है। गुण विहीन काव्य समाज मे समादृत नहीं होता। काव्य के उत्कर्ष के लिये गुणों को आवश्यक उपकरणों के रूप में मान्यता दी गई है।

प्राचीन आचार्यों की गुण सम्बन्धी मान्यताओं का सम्यक् विवेचन एवं विश्लेषण करने के पश्चात् 'काव्यप्रकाशकार' आचार्य मम्मट ने गुणों के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए निम्न कारिका में अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है—

ये रसस्याङ्गिनोधर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्ष हेतवस्तेस्युरचलस्थितयो गुणाः॥

—काव्यप्रकाश ८।८७।

जिस प्रकार शौर्य आदि धर्म आत्मा के उत्कर्ष की वृद्धि करने वाले होते हैं और लोक में गुण शब्द से व्यवहृत होते हैं उसी प्रकार काव्य की आत्मा रस के उत्कर्ष की वृद्धि करने वाले जो धर्म होते हैं वे ही काव्य जगत में गुण कहे जाते हैं। ये काव्य में अचल स्थिति के साथ रहते हैं। गुणों को अलङ्कारों से भिन्न बताने के लिये ही उन्होंने गुणों को अचल स्थिति वाला कहा है क्योंकि अलङ्कार काव्य में स्थायी रूप से नहीं रहते।

आचार्य मम्मट ने 'वामन' की दस गुणों वाली मान्यता का खण्डन करने के लिये और अपने मत का मण्डन करते हुए स्पष्ट घोषणा की है कि गुण तीन ही होते हैं दस नहीं।

माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्तेः न पुनर्दश।

—वही ८।८९।

अर्थात् ये माधुर्य, ओज और प्रसाद नामक गुण तीन होते हैं दस नहीं। उन्होंने गुणों का विवेचनात्मक विश्लेषण करने के पश्चात् अपने अकाट्य तर्कों के आधार पर इन तीनों गुणों में ही वामन के दसों गुणों का समाहार किया है। काव्य शास्त्रियों में एकमात्र मम्मट ही ऐसे आलङ्कारिक आचार्य हैं, जिन्होंने गुण के विषय में पूर्ववर्ती आचार्यों की भ्रान्ति को दूर किया है। इनके पश्चात् आचार्य विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ जैसे दिग्गज आचार्यों ने उन्हीं का अनुसरण एवं अनुकरण करते हुए केवल तीन गुणों को ही मान्यता प्रदान की है।

सरस्वती जी ने भी अपनी 'भगवद्भक्तिरसायन' में रसोद्बोधक काव्य के लिये गुणों को उसका परिपोषक बताया है। उन्होंने रसवाहक काव्य के लिये गुण

और रीतियों के सम्यक् ज्ञान को आवश्यक माना है क्योंकि ये काव्य की आत्मा रस के पोषक होते हैं।

"[1]ये रीतयो ये च गुणास्तद्ज्ञानमपि कारणम्।"

किन्तु सरस्वती जी मम्मट की भाँति गुणों को आत्मा का धर्म नहीं मानते। क्योंकि सरस्वती जी एक सिद्ध दार्शनिक कवि हैं उनका रस श्रुत्युद्घोषित 'रसोवैसः' हैं जो गुणदोषातीत है। इसीलिये उन्होंने गुणों को शब्द का ही धर्म माना है जो काव्य का शरीर मात्र है उस रस का धर्म नहीं माना जो काव्य की आत्मा है—

[2]'गुणालङ्कारीतीनां भावानां च निवेदकः।
तस्य प्रत्ययाकः शब्दो वृत्या व्यञ्जनरूपया॥

सरस्वती जी ने अपने इस काव्य में मम्मट द्वारा मान्य तीनों गुणों का प्रयोग किया है। इस काव्य का अङ्गी रस शृङ्गार है। अतः सम्पूर्ण काव्य में सर्वत्र माधुर्य गुण की ही छटा अपने विभव के साथ विद्यमान है। यद्यपि अन्य गुणों का भी पूर्णतया अभाव नहीं है। ओज प्रसाद भी यत्र-तत्र अवश्य प्राप्त होते हैं किन्तु माधुर्य गुण शृङ्गार की विभूति है। माधुर्य गुण का लक्षण मम्मट ने निम्न प्रकार से निश्चित किया है—

[3]"आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुति कारणम्"

अर्थात् जो चित्त में द्रवीभाव का कारण हैं तथा जो शृङ्गार में रहने वाले आह्लादन का कारण है उसे ही माधुर्य गुण कहा गया है।

'साहित्य दर्पण' कार "माधुर्यं द्रुतिकारणं' को मान्यता प्रदान नहीं करते वे कहते हैं कि—

[4]'द्रवीभावस्यास्वादस्वरूपाह्लादभिन्नत्वेन कार्यत्वाभावात्'

अर्थात् द्रवीभाव का आस्वादन आह्लाद से अभिन्न है। आह्लाद स्वयं द्रुतिभावमय होता है। चित्त द्रुति का पर्यवसान ही आह्लाद है। इसीलिये आचार्य विश्वनाथ ने अपने लक्षण को कुछ परिष्कृत करके विस्तार के साथ माधुर्य का विवेचन किया है उनेक अनुसार माधुर्य का लक्षण निम्न प्रकार है—

[5]'चित्त द्रवीभावमयोह्लादोमाधुर्यमुच्यते'

अर्थात् चित्त का द्रवीभावमय आह्लादन ही माधुर्य कहा जाता है। चित्त द्रवित होकर किस प्रकार आह्लादन प्राप्त करता हैं? इस समस्त प्रक्रिया को सरस्वती जी ने अपनी भक्ति रसायन में स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि भगवत गुण गण

---

१. भक्तिरसायन ३/१९। २. वही ३/२०।
३. काव्य प्रकाश ८/९०। ४ साहित्यदर्पण पृ० ४५१।
५. वही ८/२।

श्रवण से द्रवित हुए चित्त में प्रविष्ट हुई गोविन्दाकारता जब अविचल रूप से स्थित हो जाती है तब उसे ही भक्ति कहा जाता है। सरस्वती जी की यह भक्ति काम जन्य है। सुरतादि की उत्कट इच्छा ही काम हैं। इस विकट काम से चित्त के द्रवित होने पर चित्त में जो श्री कृष्ण विषयक निष्ठा रूप संयोग वियोगात्मक रति उत्पन्न होती है उसी का वर्णन शृङ्गार रस के माध्यम से गोपाल विलास में किया गया है। इसीलिये इस काव्य में चित्त के द्रवीभावमय आह्लाद स्वरूप माधुर्य के आद्यन्त दर्शन होते है।

इस काव्य के नायक शृङ्गारसार श्री कृष्ण का स्वरूप देखिये जो स्वयं माधुर्य के अवतार बने हुए है—

[1]गोपालिका कुच घटीय पटीर नीर।
संवर्धितं मदन सुन्दरमिन्दुकान्तम्॥
नन्दाङ्गणे कमपि जङ्गमम ङ्गनानां।
शृङ्गार सारमनिशंतरुमाश्रयामः।
[2]प्रेमाङ्कुरं पिकरवं शुकनील कण्ठं।
हंस प्रियं प्रिय कदम्ब मधु प्रसूनम्॥
पीयूष हारि कुसुमेषु रतालि वृन्दं।
वृन्दावने कमपिकल्प तरुं भजामः॥
[3]गोपैश्च चन्दन बनी सुख वात सङ्गैः।
शय्यागत प्रिय तमाङ्ग करम्बिताङ्गैः॥
मुक्तांशुकेषु जघनेषु नितम्बिनीनां।
सन्न्यस्त हस्त तल तर्पित पञ्चबाणैः॥

कृष्ण जन्म के महोत्सव पर संगीत तन्त्र में निपुण सुवर्ण वर्णा वाराङ्गनायें अपने उन्मादक कटाक्षों के साथ मनमोहक नृत्य करती हुई माधुर्य की सृष्टि कर रही है।

[4]वाराङ्गनाश्च ननृतुः कृत नेत्र मङ्गचः।
संगीत तन्त्र निपुणाः पुरटोज्ज्वलाङ्ग्यः॥
काञ्चीवलत्कनक कङ्कण वेणुबीणा।
मञ्जीर नादनिचितादि वमञ्चयन्त्यः॥

मुर हर के हृदय बन में विवेक रूप हरिण के साथ निरन्तर रहने वाली

---

१. गो० वि० १/४।
२. गो० वि० १/५। ३. वही १/२६।
४. वही १/५४।

धृति रूप हरिणीको किसी कोकिल कण्ठी ने आखेटक काम देव के वाणों से मृत बना दिया—

[1]हरिणीं धृतिं सुरहरस्य हृद्वने।
सहितां विवेक हरिणेन सन्ततम्॥
विदधेऽपरान्यभृत् मञ्जुभाषिणी।
सुमनोधनुर्मृगयुर्मार्गणाहताम्॥

यहाँ ओज गुण करुण रस का सहायक बना हुआ है। ओज गुण का लक्षण आचार्य मम्मट निम्न प्रकार से करते है।

[2]दीप्त्यात्म विस्तृतेर्हेतुरोजोवीररसस्थितिः।

अर्थात् चित्त की विस्तार रूप दीप्ति को उत्पन्न करने वाला ओज गुण कहा जाता है और वह वीर रस में स्थित रहता है। साहित्य दर्पणकार ने भी ओज का लगभग यही लक्षण निश्चित किया है—

[3]ओजश्चित्तस्य विस्तार रूपं दीप्तत्वमुच्यते।
वीर वीभत्स रौद्रेषुक्रमेणाधिक्यमस्यतु॥
तथा समासो बहुलो घटनौद्धत्य शालिनी।

ओज गुण वीर रस प्रधान काव्यों में ही रहता है। वीभत्स एवं रौद्र रसों में भी इसके दर्शन होते है। यह समास बहुल पदावली में रहता है और औद्धत्य पूर्ण घटनाओं में प्राप्त होता है।

गोपालविलास में एक छत्र शृङ्गार रस का ही साम्राज्य हैं। ओज गुण को प्रकट करने वाले अनेक पद गोपालविलास में अवश्य प्राप्त होते हैं जिनमें से कुछ यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

कामदेव द्वारा निर्मित तथा युद्ध के लिये सन्नद्ध व्रज सुन्दरियों की असंख्य सेनाओं के पदचापों से उठने वाली तुलाकोटियों की भयङ्कर ध्वनि सुनकर नन्दनन्दन गोपाल भयभीत होकर थरथर कांपने लगते है और उनका शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। इस श्लोक का एक एक पद ओज गुण से भरा हुआ है। श्री कृष्ण पर विजय प्राप्त करने के लिये तथा उन्हें काम युद्ध में परास्त करने के लिये कामदेव के द्वारा बनायी गयी इस गोपरमणियों की सेना का उत्साह दर्शनीय है—

[4]युद्धोद्धुराणां व्रजसुन्दरीणा।
मनीकिनीनामथ मीनकेतोः॥
श्रुत्वा तुलाकोटि रवं सकम्पः।
प्रोद्भिन्नरोमोऽजनिनन्द सूनुः॥

१: गो० वि० २/२६।
२. काव्य प्रकाश ८/९२। ३. साहित्य दर्पण ८/५।
४. गो० वि० २/३२।

गोपाङ्गनाओं को अपने गोपाल के साथ आलिङ्गन चुम्बन आदि की विविध क्रीड़ायें करते हुए देखकर राधा क्रोधाविष्ट हो जाती हैं। वे नन्दनन्दन के पूर्व विग्रह को अपने पीन स्तनों में छिपा लेती है और उन्हे अपनी भुजाओं में जकड़ लेती है और क्रोध के आवेश में आकर गोपाल को अपने गाढ़ालिङ्ग न में आवद्ध कर स्वयं भी रोमाञ्चित हो जाती है।

[1]पीनस्तनार्बजित पूर्व विग्रहम्।
कन्दर्प दर्पात् भुज वल्लि निर्जितम्॥
निपीडयन्ती कुपितेव माधवम्।
राधा दधाराङ्कुरिताङ्ग बल्लरीम्॥

आचार्य मम्मट ने प्रसाद गुण की परिभाषा निम्न प्रकारं से निश्चित की है

[2]शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छ जलवत् सहसैव यः।
व्याप्नोतियत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थितिः॥

अर्थात् शुष्क काष्ठ में शीघ्र व्याप्त होने वाली अग्नि के समान अथवा धुले हुए स्वच्छ वस्त्र में व्याप्त हो जाने वाले जल के समान जो सहसा हृदय में व्याप्त हो जाता है और सभी रसों में रहता है उस धर्म विशेष को प्रसाद गुण कहते हैं।

आचार्य विश्वनाथ ने भी प्रसाद गुण की लगभग यही परिभाषा निश्चित की है। वे कहते हैं कि—

[3]चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केधनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च॥

उन्होंने 'व्याप्नोति' का अर्थ आविष्करोति किया है।

[4]शब्दास्तद्व्यञ्जका अर्थ बोधकाः श्रुतिमात्रतः'

अर्थात् जिस प्रकार अग्नि, शुष्क इंधन को तत्काल व्याप्त कर लेती हैं उसी प्रकार जो गुण चित्त में तत्काल व्याप्त हो जाता हैं, वही प्रसाद गुण है। यह गुण सब रसों में और सभी रचनाओं में सम्भव है, अग्रिम कारिका में आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि अर्थ को अभिव्यक्त करने वाले शब्द श्रवण मात्र से ही अर्थ के अवबोधक होने चाहिये। तभी प्रसाद गुण की सिद्धि होगी।

काव्यादर्श में इसे और अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। वे कहते है कि—

[5]'यावदर्थक पदत्वरूपमर्थ वैमत्यं प्रसादः या श्रुतमात्रा'
वाक्यार्थं करतल बदरमिव निवेदयन्ती, घटना प्रसादस्य॥

---

१. गोपालविलास ३/२३।
२. काव्य प्रकाश ८/६४। ३. साहित्य दर्पण ८/७।
४. वही ८/८। ५. काव्यादर्श १/४५।

अर्थात् श्रवण मात्र से ही जो वाक्यार्थ को करतलगत बदर की भांति तत्काल प्रत्यक्ष कर देती है वही प्रसाद गुण पूर्ण रचना है।

गोपालविलास के कवि ने दो चार स्थलों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी दुरुहता लाने का प्रयत्न नहीं किया है। कहीं भी वाक्यार्थ ग्रहण में व्यवधान उत्पन्न नही होता। आदि से अन्त तक सर्वत्र प्रसाद गुण की रमणीयता दृष्टिगोचर होती है।

निम्नलिखित पदों में रास का वर्णन है। श्रीकृष्ण गोपरमणियों को अपने हाथों में पकड़े हुए हैं। वे कामातुर बनी हुई इधर-उधर को मचलती है। रस सम्राट के आलिङ्गन में आवद्ध गोपियाँ और अधिक आकुल बन जाती हैं और घनश्याम से लिपटी हुई चपलाओं की भाँति चमत्कृत हो रही है।

दूसरे दृश्य में कृष्ण दो दो गोपियों के बीच सुशोभित हो रहे हैं और गोपी युगल कृष्ण से लिपटा हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो काम देव ने नीलमणियों और कनकावलियों से एक विचित्र प्रकार की हारलता का निर्माण किया है—

[1]करयोरवलाहरिणाविधृता परितस्सरतामधुरन्नटताः
वभुराकुलिता नटनक्रियया चपला इव ता घन सम्बलिताः ॥
[2]अवला युगलाकलितोमधुहामधुवैरियुगा कलिता वनिता
असितैर्मणिभिः कनकावलिभिः मदनेन कृता किमु हारलता ॥

यहाँ प्रत्येक पद स्पष्ट है। भाव ग्रहण में कहीं भी कोई व्यवधान नहीं है।

संध्या समय मणियों में सर्वश्रेष्ठ मणि पद्मराग बने हुए सूर्य बिम्ब को घोर अन्धकार रूप तस्करों के हाथों में गया हुए देखकर चकोर अत्यन्त दीन बन जाता है और गृहपति की भाँति अपनी गृह लक्ष्मी का साथ छोड़ते हुए बहुत प्रकार से विलाप करने लगता है—

[3]निबिडतमतमोभिस्तस्करैस्तिग्मभानुम्
कर कलितमपश्यत पद्म रागं मणीन्द्रम्
विहित बहुविलापः त्यक्त सङ्गः प्रियायाः
गृहपतिरिवदीनश्चक्रवाको वराकः ॥

भावों की कितनी स्वच्छ एवं कितनी स्पष्ट अभिव्यक्ति है। पदावली को सुनते ही पाठक का हृदय चकोर की पीड़ा से करुणा पूर्ण हो जाता है।

राधा सखियों के साथ अपने प्रियतम से मिलन के लिये केलि कानन की ओर जा रही है। उस समय उनके रूप लावण्य को देखकर एक सखी कहती है कि यदि स्वर्ण सरित शरीर धारण करले और नभस्तल सुवासित तारकों से आपूरित हो

---

१. गो० वि० २/५७। २. वही २/५८
३. वही ६/२८।

जाये तब अपनी कान्ति से काम की प्रेयसी रति को तुच्छ बना देने वाली राधा की उपमा दी जा सकती है—

> '[1]जम्बू नदी प्राप्त क्लेवरा यदि प्रामोदितारकुलितं नभस्तलम् ।
> राधोपमीयेत् कदम्ब कानने कान्त्यातदाविष्कृतकाम कामिनी ॥

इस समस्त विवरण से स्वतः सिद्ध हो रहा है कि—गोपाल विलास के कवि ने अपने इम शृङ्गार रस पूर्ण काव्य में माधुर्य के साथ अन्य गुणों का भी प्रयोग कर के इसे सब प्रकार से एक आदर्श महाकव्य का स्वरूप प्रदान किया है।

२. दोष—

संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने जहाँ काव्य के अन्य अनेक अङ्गों का विवेचन किया है वहाँ उनकी दृष्टि काव्य के दोषों पर भी गई हैं। यद्यपि साधारणतया दोष दूर से ही प्रकट हो जाते है किन्तु काव्य में गंभीर दोषों का अन्वेषण, विश्लेपण, समीक्षण, करने के लिके कुशाग्र वुद्धि के साथ भावुकतापूर्ण उदार एव पक्षपात रहित हृदय की भी आवश्यकता होती है।

मम्पट से पूर्व प्राचीन आलङ्कारियों में आचार्य आनन्दवर्धन ही ऐसे समालोचक हैं जिन्हों ने सर्व प्रथम काव्य की आत्मा रस को ही काव्य सर्वस्त्र माना है। इनका ध्वनिवाद इसी आधार पर स्थित है। इनके परवर्ती अभिनव गुप्त एवं मम्मट तक ने भी अपने लक्षण ग्रन्थों की रचना करते समय विशेष रूप से रस समीक्षा में उनसे प्रेरणा ली है। इसीलिये आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में गुण दोषों का आधार काव्य की आत्मा को ही माना है शरीर को नहीं। अतः गुण दोषों का विवेचन करते समय उनकी दृष्टि काव्य के शब्द शरीर पर तनिक भी नहीं गई। उन्होंने सीधे काव्य की आत्मा रस के ही दोषों को अपने अनुसन्धान का विपय बनाया है और शरीर को उन्होंने पूर्णतया विस्मृत कर दिया है।

सरस्वती जी ने भी काव्य की आत्मा रस को दोषादि से पूर्णतया मुक्त माना है, किन्तु उन्होंने मम्मट की भाँति रस में दोषों का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है। शरीर में तो दोपादि होते ही हैं अतः सरस्वती जी दोपों की सत्ता को शब्द में ही मानते हैं। वे कहते है कि—

> '[2]श्रुति दुष्टादयो दोषा ये रस प्रतिबन्धकाः ।
> तदभावोऽपि सामग्र्यांनिविष्टोऽनिष्ट हानिकृत् ॥

वे 'गोपाल विलास' जैसे रसोद्बोधक काव्य में रस के प्रतिबन्धक श्रुतिकटु आदि दोपों का निवेश न करना भी अनिष्ट निवारक है। क्योंकि जिस प्रकार श्रुति

---

१. गो० वि० १०/३१।
२. भक्ति रसायन ३/१८।

कटु आदि दोष लौकिक काव्य में रस प्रतीति में बाधक होते हैं उसी प्रकार भक्ति काव्य में भी ये रसोपलब्धि में व्यवधान उत्पन्न करते हैं। अतः भक्ति रस से शराबोर काव्य में इनका सन्निवेश न करना ही हितकर हैं।

यही कारण है कि सरस्वती जी के इस महाकाव्य गोपालविलास में आदि से अन्त तक कहीं भी श्रुति दुष्टादि दोषों के दर्शन नहीं होते। वे सिद्ध पुरुष थे और अपने युग के अद्वितीय भक्त एवं प्रचण्ड अद्वैतवादी थे। गोपालविलास की रचना उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम काल में की। जिसे उनके जीवन की सम्पूर्ण साधना का परिणत फल कहा जा सकता है। यद्यपि इस प्रकार के अद्वितीय दार्शनिक कवि की ऐसी प्रौढ़ रचना में दोषान्वेषण करने का साहस कौन कर सकता है।

फिर भी इस महाकाव्य में कुछ ऐसे स्थल अवश्य हैं जिन्हें साधारण बुद्धि का व्यक्ति हृदयंगम करने में कठिनाई का अनुभव अवश्य कर सकता है। ये स्थल ऐसे हैं जिन्हें हृदयस्थ करने के लिये पाठक में तीव्र उत्सुकता जगती हैं किन्तु वे इतने अस्पष्ट एवं गुह्य बना दिये गये हैं जिन्हें हृदय और बुद्धि पर्याप्त प्रयास करने के पश्चात् भी आत्मसात करने में असमर्थ है।

राधा सहित अनेक गोप युवतियाँ केलि कानन में उपस्थित होती है। कात्यायनीव्रत की कठोर तपस्या करने के पश्चात उन्हें यह अवसर प्राप्त हुआ है। इसी समय दूतिका राधा के साथ माधव का प्रथम बार मिलन कराती है। इस प्रथम मिलन के अवसर पर दूतिका राधा माधव को कुछ रहस्य पूर्ण निर्देश देती है। पाठक भी इसे जानने के लिये लालायित हो जाता है। किन्तु सर्वतोभद्र' जैसे जटिल चित्रकाव्य की कृपा से उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता। वह उस आनन्द से वञ्चित रह जाता है जिसे वह दूतिका के मुख से सुन कर प्राप्त करना चाहता था। पाठक की रसोपलब्धि में व्यवधान बनकर उपस्थित होने वाला वह श्लोक निम्न प्रकार है—

'राधाकाननकाधारा, धमासाध्व ध्वसामधा।
कासाताजि जिता सा का, नध्वजिध्रध्रजिध्वनसर्वतोभद्रः ॥

इस रहस्यमय पदावली का तात्पर्य सरस्वती जी जैसे सिद्ध पुरुषों के किये ही रस सृष्टि कर सकता है जबकि साधारण बुद्धि का पाठक इस ओर देखने का भी साहस नहीं कर सकता।

दूतिका राधा माधव का प्रथम परिचय कराती है। दोनों एक दूसरे को देखते है। कृष्ण राधा की रूपमाधुरी का पान कर अनङ्ग रस में आप्लावित हो जाते हैं। तभी सरस्वती जी निम्न श्लोक प्रस्तुत कर देते हैं जो चित्र काव्य की गत प्रत्यागत शैली में है—

---

१. गो० वि० २।३५।

'राधयोपनतारामा शांकान्तोघन कान्तता ।
तान्त कानघ कान्तोशा मोरातान पयोधरा ॥

जिस अवसर के लिये यह कहा गया है उसे जानने के लिये पाठक भी कम उत्सुक नहीं है किन्तु इस चित्र काव्य की कृपा से उसे इसके रसास्वादन से वञ्चित ही रहना पड़ता है। इस प्रकार उसके लिये रस चर्वणा में पुनः-पुनः व्यवधान उत्पन्न होता है।

तदनन्तर कृष्ण गोपपियों में वार्तालाप होता है। श्रीकृष्ण से अन्त में गोपियाँ स्पष्ट कह देती हैं कि— अब हम कहाँ जायें तुम्हारे बिना हमारा अन्य कोई प्रियतम नहीं है। तुम्हारे अतिरिक्त हम किसी दूसरे को नहीं जानती, जो हमारे नेत्रों में निवास करता हो। गोपियों के इस कथन के पश्चात् प्रत्येक पाठक यह जानने के लिये अवश्य उत्सुक होगा कि कृष्ण ने उन्हें क्या उत्तर दिया ? और वे किस आधार पर गोपियों के साथ अभिसरण करने के लिये उद्यत हो गये।

सम्भव है पाठकों की उत्सुकता का समाधान कवि ने इन दो श्लोकों के द्वारा किया हो जो गोपियों के कथन के तत्काल पश्चात दिये गये हैं। वे निम्न प्रकार है—

'पुर हर खरकरनरचरसुर वर पर सुरदरकिरगरधर परवर ।
स्मर खर तर शरभर दरमुरशिरमिर मुर हर हर धरवद धरकर ॥
'सद्भावाय न तत्र गोपमह विश्वस्त स्वधुर्यम्बुदेक्षिप्त्वा ।
अभ्येतिसलोकपालमतुली वैयात्यसूश्चातकः ॥
बद्धो धर्म रयेण लग्नमनस त स्वीकृदन्वीक्षते ।
तेनाऽसौ समुपेक्षितो भवति चेदेते न कः सेव्यते ॥

प्रथम श्लोक 'मुरजबन्धा में है जो आलङ्कारिक भार से इतना दबा हुआ है जिसे हृदयस्थ करने के लिये कुशाग्र बुद्धि सहृदय पाठक को भी घटों व्यायाम करना पड़ेगा और फिर भी वह इस पद की आत्मा से परिचय प्राप्त नहीं कर सकेगा।

दूसरा श्लोक 'षडारचक्रबन्ध' में है और ग्रन्थ कवि नामङ्कित भी है। बन्धों की प्रक्रिया और भी जटिल होती है जिसे समझने के लिये विशेष प्रकार की काव्य शिक्षा अत्यन्त आवश्कक है। आज इस प्रकार की काव्य पद्धति में निष्णात विद्वानों का नितान्त अभाव है जो ऐसी साहित्यिक समस्याओं का समाधान करने में सक्षम हों, अन्यथा आज के विद्यार्थी को इस प्रकार के काव्य रस से वञ्चित ही रहना होगा।

इसके अतिरिक्त इस काव्य में दोषान्वेषण करना इसलिये भी कठिन हो गया है कि यह एक पाण्डुलिपि के रूप में है। इसको लिपिबद्ध करने वाला कोई

१. गो० वि० २।४२।
२. गो० वि० ।४९।   ३ वही २।५०।

द्वारा भी विद्वान व्यक्ति प्रतीत नहीं होता। क्योंकि उसने अनेक स्थानों पर अपनी [illegible] से अर्थ का अनर्थ कर दिया है। इस स्थिति में पाठक को यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि यह कवि की त्रुटि है अथवा पाण्डुलिपिकार की।

अत्यन्त साधारण कुछ इस प्रकार के दोष अवश्य हैं जो स्पष्ट दिखाई देते हैं। जैसे निम्न श्लोक में पुनरुक्तवदाभास अलङ्कार के रूप में उपस्थित न होकर पुनरुक्ति दोष का कार्य कर रहा है—

पथिपथि कुलटानां निक्षिपन् कण्टकानाम्।
शतमखदिशसिन्दूरं मण्डयत् पौरुहूतीम्॥
विगलितकुलकान्ता नीविबन्धोऽन्धकारम्।
क्षपितकरमपनिन्ये भास्वदंशूतलस्य॥[1]

यहाँ कवि पूर्व दिशा के लिये "शतमख दिशम्" तथा "पौरुहूतीम्" का एक साथ प्रयोग करता है। दोनों ही शब्द एक ही अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रकार पूर्व दिशा का कथन दो बार हुआ है जो काव्य में अपकर्ष उत्पन्न करता है। इसे ही पुनरुक्ति दोष कहा जाता है। किन्तु ऐसे दोष अत्यन्त साधारण कोटि के हैं जिनका कोई विशेष महत्व नहीं है।

३. रीतिविवेचन—

संस्कृत साहित्य में जहाँ रस, गुण, अलङ्कार वक्रोक्ति आदि के सम्प्रदाय बने वहाँ रीति सम्प्रदाय का भी जन्म हुआ। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन माने जाते हैं। उन्होंने ही सर्वप्रथम "रीतिरात्माकाव्यस्य" की घोषणा करके रीति को ही काव्य का सर्वस्व निश्चित किया। उन्होंने गौड़ी पाञ्चाली और वैदर्भी इन तीन रीतियों की स्थापना की। इनके नाम विशेष प्रान्तों के सूचक भले ही बने हुए हों किन्तु इनका स्वरूप निर्धारण स्वतन्त्र रीति से ही किया गया है, जिसमें प्रान्तीयता को कोई महत्व नहीं दिया गया है। सम्भव है किसी समय में तत्तत् प्रान्तों के कवियों की सामान्य प्रकृति इन रीतियों के अनुसार काव्य रचना करने की रही हो। किन्तु काव्य शास्त्रीय दृष्टि से ये रीतियां केवल अपने-अपने प्रान्तों की सीमाओं में ही आबद्ध नहीं हैं अपितु सर्वत्र काव्य जगत में स्वतन्त्र रूप से जानी मानी जाती हैं।

आगे चलकर आचार्यों की कृपा से गुणों के साथ-साथ रीतियों की संख्या भी बढ़ने लगी क्योंकि उन्होंने गुण और रीतियों को परस्पर मिश्रित कर दिया। इस प्रकार रीतियों की संख्या छः तक पहुँच गई।

दशम शताब्दी तक यही स्थिति रही। इसके पश्चात् आचार्य मम्मट ने गुणों के साथ-साथ रीतियों की संख्या भी निश्चित की। इन्होंने केवल वैदर्भी, गौड़ी, और

१. गो० वि० २/५१।

पाञ्चाली—इन तीन रीतियों को ही मान्यता प्रदान की। परवर्ती आचार्यों ने मम्मट की मान्यता के अनुसार ही इन तीन रीतियों को ही स्वीकर किया है।

आचार्य विश्वनाथ रीति की परिभाषा निर्धारित करते हुए कहते हैं—

[1]"पदसंघटना रीतिरङ्ग संस्था विशेषवत्"

अर्थात् जिस प्रकार किसी प्राणी की देह के साथ उसका प्रत्येक अङ्ग सम्यक सुगठित रहता है उसी प्रकार काव्य में शब्दों और अर्थों का भी संगठन होना चाहिये। यह रीति रसादि की उपकर्तृ होती है और चार प्रकार की होती है। "विशिष्ट पदरचनारीति" वामन की इस परिभाषा की अपेक्षा साहित्य दर्पणकार की मान्यता अधिक व्यापक है। वामन की तीन रीतियों के स्थान पर आचार्य विश्वनाथ ने इनकी संख्या चार निश्चित की है—

[2]"वैदर्भी चाथ गौड़ी च पाञ्चाली लाटिका तथा"

अर्थात् यह रीति वैदर्भी, गौड़ी, पाञ्चाली और लाटिका नामों से चार प्रकार की होती है।

इनमें प्रथम वैदमी रीति है जिसका लक्षण साहित्य दर्पण में निम्न प्रकार से प्राप्त होता है—

[3]माधुर्य व्यञ्जकैः वर्णैः ललितात्मिका।
आवृत्तिरल्प वृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते॥

माधुर्य गुण को अभिव्यक्त करने वाले सुकुमार वर्णों से युक्त लालित्यपूर्ण रचना को जो समास रहित अथवा अल्पसमाज वाली हो, उसे वैदर्भी रीति कहेंगे। इसमें अनुनासिक वर्णों का बाहुल्य रहता है और अधिकतर: एक ही वर्ग के प्रथम और तृतीय वर्णों का प्रयोग होता है।

आचार्य विश्वनाथ ने वैदर्भी रीति के लिये माधुर्य गुण युक्त शब्दावली को आवश्यक माना है। माधुर्य गुण एक मात्र शृङ्गार रस में ही निवास करता है। गोपाल विलास शृङ्गार रस पूर्ण रचना है जिसमें आद्योपान्त माधुर्य का ही साम्राज्य है। अतः इस महाकाव्य में वैदर्भी रीति के सर्वत्र दर्शन होते हैं इस महाकाव्य के पिच्चानवें प्रतिशत पद वैदर्भी रीति के अन्तर्गत आते हैं।

वैदर्भी रीति के कुछ उदाहरण 'गोपाल विलास' से उद्धृत किये जाते हैं जिनमें माधुर्य व्यञ्जक वर्णों का बाहुल्य है तथा जो लालित्यपूर्ण हैं। ये समास रहित है अथवा अल्प समास वाले हैं।

---

१. साहित्य दर्पण ९/१। २. वही ९/२।
३. वही ९/२-३।

[1]'अन्ये च गोपतरुणास्तपनीयवर्णा
स्वर्णाङ्गदाः मदविघूर्णित नेत्रपद्मा
संगीत निन्दित कुहूरव मन्दनादाः
नन्दाङ्गणे ययुरमन्द मुदं दधानाः ।।

[2]'वाराङ्गनाश्चननृतुः कृतनेत्र भङ्गयः संगीत तन्त्रनिपुणाःपुरुटोज्ज्वलाङ्ग्यः ।
काञ्चीवलत्कनक कङ्कण वेणु वीणा मञ्जीरनादनिचितादि वमञ्चयन्त्यः ।।

[3]'अनङ्ग सेनादि वराङ्गनास्तदा क्वणत्तुलाकोटिविनिर्मिताङ्गदाः ।
कटीरहारापद बद्ध कुण्डली कुचान्तकाञ्जी क्वणिताः वनं ययुः ।।

[4]'मृत्युं न निन्दाम्यरविन्दनाभे ! विन्दाम्यमुं किन्तु विषादमुच्चैः
विना भवन्तं यदनन्य योग्यं भवेन्मदङ्गं ज्वलनोपभोग्यम् ।।

ये सभी उदाहरण माधुर्य रस से ओत-प्रोत हैं। अनुनासिक वर्णों का इनमें सर्वत्र बाहुल्य है समस्त पदावली का पूर्णतया अभाव है। अतः यहाँ सर्वथा वैदर्भी रीति है।

गौडी रीति का लक्षण निश्चित करते हुए आचार्य विश्वनाथ कहते हैं—

[5]'ओज प्रकाशकैः वर्णैः वन्ध आडम्बरः पुनः
समास बहुला गौड़ी··· ··· ··· ···

जिस रचना में ओज गुण को प्रकट करने वाले वर्णों का प्रयोग किया गया हो और समास बहुल हो उसे गौड़ी रीति कहेंगे।

निम्न श्लोक में स्पष्ट रूप से गौड़ी रीति के दर्शन किये जा सकते हैं—

[6]'युद्धोद्धुराणां व्रज सुन्दरीणामनीकिनीनामथमीनकेतोः
श्रुत्वा तुला कोटि रवं सकम्पः प्रोद्भिन्नरोमोजनिनन्दसूनूः ।।

यद्यपि इस पद में समास बाहुल्य पदावली नहीं है फिर भी युद्धोद्धुर गोपियों की सेना से गोपाल कृष्ण का कम्पित और रोमाञ्चित होना इसे ओजपूर्ण पदावली ही सिद्ध करता है।

वस्तुतः शृङ्गार रस प्रधान रचना होने के कारण गोपालविलास में एक भी श्लोक समास बहुल नहीं है। अतः गौडी रीति के लिये जिस प्रकार की भाषागत कठोरता आवश्यक है उसका गोपालविलास में नितान्त अभाव है। हाँ, पाञ्चाली रीति के पर्याप्त उदाहरण इस काव्य में मिलते हैं।

---

१. गो० वि० १/४६। २. वही १/५४।
३. वही २/१८। ४. वही ४/५३।
५. साहित्य दर्पण ६/३। ६. गोपालविलास २।३३।

पाञ्चाली रीति का लक्षण—

[1]'वर्णशेषैः पुनर्द्वयोः ... ...

समस्तपञ्चषट्‌पदोबन्धः पाञ्चालिका मता ॥

अर्थात् माधुर्य गुण प्रधान वैदर्भी और ओजगुण प्रधान गौडी रीतियों में प्रयुक्त मधुर और ओजपूर्ण शब्दावली के अतिरिक्त वर्णों का प्रयोग जिस रचना में होगा वहीं पाञ्चाली रीति होगी। पाञ्चाली रीति में पाँच-छः समस्त पदों का होना भी आवश्यक माना गया हैं। उदाहरण निम्न प्रकार से है—

[2]'ऊर्ध्वबद्धकचसंचय गुच्छाच्छादिताशितिपटैः कटिदेशे

गुंफ गुंफन भयानक नासात्रासकारिनयनानन भासः ॥

[3]'स्कन्ध लुम्बितखरधार कुठाराः कच्छ सज्जित यमोपमबाणाः

धातुभिर्वपुरलङ्कृतवन्तः कानने क्वचन भिल्ल युवानः

आचार्य विश्वनाथ लाटी रीति का लक्षण स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यह वैदर्भी और पाञ्चाली रीति के मध्य में स्थित रहती है। इसमें कुछ लक्षण पाञ्चाली के होते हैं और कुछ वैदर्भी के। यह इन दोनों के मध्य मार्ग का अनुसरण करती है। इसमें न तो पाञ्चाली की भाँति पाँच-छः पद समस्त होते हैं और न यह वैदर्भी की भाँति अल्प समास अथवा समास रहित होती है।

निम्न उदाहरण प्रस्तुत है—

[4]'पुरः द्वेषि सूतिस्फुरद्धूसराङ्गो लसच्चन्द्रकः शैलपुत्री सुतस्य

वियत्काननांतर वर्मोनील कण्ठः कृतान्तस्तमस्तोम काकोदराणाम् ॥

प्रस्तुत श्लोक में प्रथम और तृतीय पद में पाञ्चाली रीति है तथा द्वितीय और चतुर्थ पद वैदर्भी के प्रतिनिधि हैं। अतः यहां दोनों के अन्तर में रहने वाली लाटी रीति है।

वस्तुतः गोपाल विलास में वैदर्भी और पाञ्चाली रीति ही बहुलता से प्राप्त होती है। क्योंकि इस काव्य का विषय इन दोनों के अनुकूल है। इस सम्पूर्ण काव्य में पचास श्लोक ही इस प्रकार के होंगे जिनका सीधा सम्बन्ध शृङ्गार रस से नहीं है किन्तु किसी न किसी प्रकार से ये श्लोक भी उसके उपकारक अवश्य हैं। अतः इस काव्य में गौडी का अन्वेषण करना व्यर्थ सिद्ध होगा लाटी रीति के इसमें दर्शन अवश्य होते है।

---

१. साहित्य दर्पण ९/४।　　२. गो० वि० ५/४२।

३. वही ५/४४।

४. गो० वि० २/२७।

(ङ) छन्दोविधान

यास्क ऋषि 'छन्द' शब्द की उत्पत्ति छद् धातु से मानते हैं। जिसका अर्थ आवृत करना है। शब्दों को विशेष आवरण में आबद्ध करने का कार्य छन्द ही करते हैं। अतः छन्द काव्य पुरुष के शरीर को एक विशेष व्यवस्थित एवं सन्तुलित आवरण प्रदान करते हैं।

ऋग्वेद काल से ही छन्दों का प्रयोग प्रचलित है। ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं में अनुष्टुप्, गायत्री, जगती, पंक्ति, वृहती, उष्णिग् आदि अनेक छन्दों के दर्शन होते हैं। छन्द शास्त्र की गणना वेद के षडंगों में की जाती है। अतः अनादि-काल से ही संस्कृत साहित्य में छन्दोबद्ध रचना सम्यक् समादृत रही है। इसका प्रमुख कारण यह है कि पद्यबद्ध विषय सरलता से अल्प समय में ही कण्ठस्थ हो जाता है। कण्ठस्थ विषय ही विज्ञ पुरुष की स्थायी सम्पत्ति बन जाता है। वह जब चाहता है तभी उसका उपयोग कर सकता है। इसीलिये हमारे यहां यह लोकोक्ति प्रसिद्ध हो गई है कि "विद्याकंठ और पैसागंठ" अर्थात् वही विद्या समय पर काम आती है जो कंठ होती है और वही धन अपना होता है जो गांठ में बंधा होता है। इसीलिये हमारे यहाँ प्रत्येक विषय को छन्दोबद्ध किया गया है। लीलावती जैसे गणित के जटिल ग्रन्थ भी पद्यबद्ध ही प्राप्त होते हैं। इतिहास, समाजशास्त्र, न्यायशास्त्र धर्म दर्शन, ज्योतिष सभी को छन्दोबद्ध किया गया है।

यही कारण है कि हमारे यहाँ काव्य के लिये छन्दों की अनिवार्यता को स्वीकार किया गया है। वैदिक काल के पश्चात् छन्दों का ज्ञान एक पृथक् शास्त्र के रूप में विकसित हुआ है। इसके सर्वप्रथम आचार्य पिंगल माने जाते हैं। उन्होंने ही छन्द शास्त्र को एक विज्ञान के रूप में व्यवस्थित किया है। इसीलिये इसे पिंगल शास्त्र भी कहा जाता हैं। आचार्य पिंगल ने अपने छन्द शास्त्र को आठ अध्यायों में विभक्त किया है। इसकी रचना सूत्रों में ही की गई है।

आचार्य पिंगल ने प्रत्येक छन्द में चार चरण अथवा पाद माने हैं। इनके अनुसार छन्द दो प्रकार के होते हैं जो वृत्त और जाति के नाम से जाने जाते हैं। वृत्त एक ऐसा पद्य होता हैं जिसका छन्द प्रत्येक चरण में अक्षरों की गणना के आधार पर निर्धारित किया जाता है। इसमें केवल वर्णों की ही गणना होती है, स्वरों की नहीं। इन छन्दों को वार्णिक छन्द कहा जाता है। जाति एक-दूसरे प्रकार का पद्य होता है जिसका छन्द मात्राओं की गिनती के अनुसार निश्चित होता है।

वृत्त तीन प्रकार के होते हैं—

(१) समवृत, (२) अर्धसमवृत्त, (३) विषम वृत्त।

सरस्वती जी ने अपने इस महाकाव्य में समवृत्त, अर्धसमवृत्त विषमवृत्त वार्णिक तथा मात्रिक सभी प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। इनके इस काव्य में शताधिक प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। केवल द्वितीय और तृतीय सर्ग में ही चालीस पचास प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। सरस्वती जी ने प्रत्येक चरण में आठ वर्णों वाले लघुकाय 'अनुष्टुप्' से लेकर चच्चीस वर्णों वाले क्रौञ्चपदा जैसे दीर्घकाय समवृत्त छन्दों का प्रयोग किया है जिनके उदाहरण गोपाल विलास से प्रस्तुत किये जाते हैं—

आठ वर्णों वाले छन्द—[1]अनुष्टुप्, [2]प्रमाणिका, [3]विद्युन्माला।

नौ वर्णों वाले छन्द—[4]मणिमध्य।

दस वर्णों वाले छन्द—[5]मत्ता, [6]त्वरितगति।

ग्यारह वर्णों वाले छन्द—[7]इन्द्रवज्रा, [8]उपेन्द्रवज्रा, [9]उपजाति, [10]रथोद्धता, [11]स्वागता।

बारह वर्णों वाले छन्द—[12]चन्द्रवर्त्म, [13]जलोद्धतगति, [14]द्रुतविलम्बित, [15]प्रमिताक्षरा, [16]त्रोटक, [17]स्रग्विणी।

तेरह वर्णों वाले छन्द—[18]कलहंस, [19]प्रहर्षिणी, [20]मञ्जुभाषिणी, [21]मत्तमयूरी।

चौदह वर्णों वाले छन्द—[22]प्रहरणकलिका, [23]वसन्त तिलका।

पन्द्रह वर्णों वाले छन्द—[24]मालिनी, [25]लीलारवेल।

---

१. गोपालविलास १/१। २. वही २/३२।
३. वही २/३६। ४. वही ३/७६।
५. -ही ३/६२। ६. वही ३/८३।
७ वही ३/२६। ८. वही २/४६।
६. वही २/१७। १०. वही २/४७।
११. वही २/४३। १२. वही २/३१।
१३. वही ३/१३।
१४. वही ३/६३। १५. वही २/६७।
१६. वही २/५५। १७. वही ३/५६।
१८. वही ५/५८। १९. वही ३/६४।
२०. वही ३/२७। २१. वही ३/५५।
२२. वही ३।३५। २३. वही २।४४।
२४. वही ३।२८। २५. वही ३/७४।

सोलह वर्णों वाले छन्द—[1]पञ्चचामर।

सतरह वर्णों वाले छन्द—[2]मन्दाक्रान्ता।

उन्नीस वर्णों वाले छन्द—[3]मेघविस्फूर्जिता।

बाइस वर्णों वाला छन्द—[4]हंसी।

चौबीस वर्णों वाला छन्द—[5]तन्वी।

पच्चीस वर्णों वाला छन्द—[6]क्रौञ्चपदा।

अर्ध समवृत्त —[7]पुष्पिताग्रा।

इस समस्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि इस काव्य में सरस्वती जी का छन्दोविधान उनके पिंगलशास्त्र के गहन ज्ञान को तो सूचित करता ही है साथ ही काव्य लालित्य में विविधता उत्पन्न कर उसे और अधिक आकर्षक एवं चमत्कार पूर्ण बनाने में सहायक ही सिद्ध हुआ है बाधक नहीं।

(च) भाषा-वैभव

नैषधकार हर्ष और गोपाल विलास के रचयिता सरस्वती जी दोनों ही जाने माने दार्शनिक हैं। श्रीहर्ष का 'खण्डनखण्डखाद्य' और सरस्वती जी की "अद्वैत सिद्धि" दोनों ही उच्चकोटि के दार्शनिक ग्रन्थ हैं।

इन दोनों दार्शनिकों ने अपने-अपने काव्यों में रस भी समान ही निश्चित किया है। गोपाल विलास और 'नैषध चरित' दोनों का अङ्गी रस श्रृङ्गार ही है। किन्तु इन दोनों काव्यों में जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है, उसमें भू नभ का ही नहीं अपितु आकाश पाताल का अन्तर है। श्रीहर्ष की भाषा के विषय में कुछ काव्य रस मर्मज्ञ यह कहते हैंकि "उनकी भाषा अत्यन्त दुरूह है। उनकें काव्य रूपी गहन बन में बिछे हुए शब्द रूपी कंटकों और अलङ्कार रूपी झाड़-झंखाड़ में से होकर जाना किसी भी सामान्य रस लोलुप पथिक के लिये बिना किसी मार्ग दर्शक के असम्भव है। फलतः अच्छे-अच्छे पण्डितों को भी उनके काव्य को समझने के लिये कोश तथा टीका की आवश्यकता पड़ेगी।"

इसके ठीक विपरीत सरस्वती जी का भाषा प्रवाह सम्पूर्ण काव्य में सर्वत्र माधुर्य गुण से ओत-प्रोत है। सम्पूर्ण काव्य में कोमल कान्त पदावली से युक्त वैदर्भी रीति का साम्राज्य है। श्रृङ्गार रस के लिये भाषा में जिन गुणों की आवश्यकता होती है वे सभी गोपाल विलास की भाषा में मिलते हैं।

---

१. वही २।६२।

२. वही ७।५।

३. वही ३।६४।

४. वही ३।५१।

५. वही ३।६८।

६. वही ३।६९।

७. वही २।४५।

नैषध एक लौकिक काव्य है जिसके माध्यम से श्रीहर्ष ने अद्वैत वेदान्त के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। जिससे उनके काव्य की भाषा इतनी जटिल बन गई है, जिसे हृदयङ्गम करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। रस का तो उससे दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके ठीक विपरीत सरस्वती जी का गोपाल विलास एक दार्शनिक काव्य है। अद्वैत दर्शन का साक्षात् दर्शन इसमें होता होता है। इस महाकाव्य का प्रथम श्लोक ही इस महाकाव्य के दार्शनिक स्वरूप की कथा कहता है—

राधा श्रृङ्गार सरसी मरालः कमलालयः
पाटलाक्षिपदः पापादपायात्कोऽपि गोकुलम् ॥ गो० वि० १।१ ॥

यह सम्पूर्ण अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्त को करतल बदरवत स्पष्ट कर देता है। राधा श्रृङ्गार सरसी सब जड़चेतनात्मक माया प्रपञ्च है। इसमें नित्य निवास करने वाला "ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" का प्रतिनिधि त्रिगुण मयी माया से आलिप्तश्वेत हरित और पाटल वर्णवाला मराल इस श्रृङ्गार का तटस्थ दृष्टा बना हुआ है। सरस्वती जी उस मराल से प्रार्थना करते हैं कि वह हमारे गोकुल की प्रत्येक प्रकार के अनिष्ट से रक्षा करें। इस प्रकार के सरल हृदयग्राही आलङ्कारिक छटा से पूर्ण पदावली वाले एक लघुकाय छन्द के द्वारा दार्शनिक सिद्धान्तों को हृदयस्थ करा देना सरस्वती जी की भाषा का ही चमत्कार है। इस छोटे से अनुष्टुप् छन्द में तीन-तीन अलङ्कार स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं, फिर भी भाषा न अलङ्कारों के भार से दबी हुई है और न दार्शनिक सिद्धान्तों से अस्पष्ट है। दार्शनिक काव्य होते हुए भी गोपाल विलास की भाषा शुष्कता, कठोरता तथा जटिलता से सर्वथा मुक्त है। दर्शन के अलौकिक भावों को लौकिक पर्यावरण में पूर्ण रमणीयता के साथ सफलता पूर्वक प्रस्तुत करने के लिये जिस परिपक्व परिमार्जित, स्वच्छ एवं प्रवाह पूर्ण भाषा की आवश्यकता होती है, सरस्वती जी के पास उसका अक्षय भंडार है।

श्रीहर्ष की भाँति सरस्वती जी ने अप्रचलित एवं अपाणिनीय शब्दों का प्रयोग अपने काव्य में कहीं भी नहीं किया है। यही कारण है जिससे उनके काव्य में कहीं कोई दुरूहता दृष्टिगत नहीं होती। श्रृङ्गार रस के अनुकूल सर्वत्र सुकुमार वर्णों की योजना श्रोता को बरबस अपनी ओर आकृष्ट करती है। कृत्रिमता के कारण उत्पन्न होने वाली भाषागत कुरूपता इस काव्य में कहीं दिखाई नहीं देती। निम्न श्लोक दृष्टव्य है—

परिणत शशधररुचिहर वदना
स्मर खरशरभरपरवश मनसः
व्रज युवतय इह कृत पटु नटना
प्रियहृत कटि तट पटमपि न विदुः ॥ गो० वि० ३।७७ ॥

यद्यपि यहाँ समास बहुला पदावली का प्रयोग किया गया है किन्तु भावाभिव्यक्ति में कहीं कोई व्यवधान नहीं है। भावों के साथ-साथ भाषा भी गतिपूर्ण है। यह सरस्वती जी के भाषा वैभव को ही श्रेय है जिसके कारण वाक्यार्थ तत्काल प्रत्यक्ष होकर अपना स्वरूप प्रकट कर देता है और श्रोता को आत्म विभोर बना देता है।

सरस्वती जी की भाषा में मुद्राचित्रण की अपार क्षमता है। वृन्दावन में कहीं क्षितिज से उठने वाले शरद ऋतु के बादल को मृगेन्द्र समझकर और उसे अपने ऊपर उछलता हुआ जानकर चातकों के साथ युवा शिखण्डी भी भयाक्रान्त होकर एक दम मौन साध लेते हैं और स्तब्ध से बने हुए नेत्र बन्द कर लेते हैं।

उत्पतन्तमभिवीक्ष्य मृगेन्द्रं,
शारदाभ्रपटलं प्रतिबुध्य
चातकैः सह शिखण्डी युवानः
मौनिनो नयनमुद्रणमीयुः ॥ गो० वि० ५।२२ ॥

अपनी भाषा के बल पर ही सरस्वती जी ने इस प्रकार के स्वाभाविक मुद्राचित्रण का अङ्कन किया है। उनका शब्द चयन और शब्दों की स्थिति सुगठित है। अतिभय के कारण मौन होकर नेत्र बन्द कर लेना शरीर की एक स्वाभाविक मुद्रा है जिसका चित्रण सरस्वती जी ने शब्दों से किया है।

सरस्वती जी वृन्दावन में अपने प्रिय के साथ पुष्प चयन करती हुई किसी गोप तरुणी का चित्र अंकित कर रहे हैं जो अपने आस-पास के वातावरण से पूर्णतया संश्लिष्ट बना हुआ है।

वह गोप रमणी अपने कान्त की कटि पर बंधे हुए दुकूल पर अपने पैर रखे हुए है और तरु की डाली पर झूलते हुए पुष्प को हस्तगत करने के लिये प्रयास कर रही है। इस विचित्र मुद्रा में उसकी सुरक्षा के लिये सरस्वती जी चिन्तित हो उठते हैं तभी उसका प्रेमी युवा गोप अपने दक्षिण कर से उसकी स्थूल जंघाओं को दृढ़ता से साध लेता है और बाम हस्त से उसके कुचबन्धों को पकड़ लेता है—

कापि कान्त जठराम्बरपादा
पादपाग्र कुसुमार्पित पाणिः
प्रेष्ठ बाहु दृढ़ सज्जित जानु
वाम हस्तधृत तत्कुच बन्धा ॥ गो० वि० ५/४० ॥

इस प्रकार की विशिष्ट मुद्रा चित्रण में सरस्वती जी की भाषा सौष्ठव निश्चित रूप से अद्वितीय है जो अत्यन्त प्रशंसनीय है। चित्र की प्रत्येक रेखा नितान्त स्पष्ट है। वहाँ कोई अलङ्कार नहीं है और न कोई शब्द शक्ति आदि है। केवल भाषा के आधार पर ही सम्पूर्ण चित्र भव्य बना हुआ है। इसमें प्रयुक्त की गई पदा-

वली का एक-एक शब्द परस्पर सटा हुआ है और अभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति के लिये व्यग्र बना हुआ है।

सरस्वती जी अपने भाषा वैभव का स्वयं वर्णन करते हुए कहते हैं—

मद्वाणी सरसी विचित्र सुरसा नालीक लीलावती
स्वच्छान्तः पृथु रोम हर्ष जननी विश्वम्भरामोदिनी ।।गो०वि० ११/९१

अर्थात् यह मेरी वाणी अमृत रस से सम्भृत एक विचित्र सरसी है। यह लौकिक कवियों की मर्त्य के लिये की गई आडम्बर पूर्ण मिथ्या कल्पनाओं की कुत्सित कुल्या नहीं है। इसमें स्वच्छ हृदय वाले श्रोता को हर्षातिरेक से रोमांचित कर देने की क्षमता है और यह विश्वम्भर नन्दनन्दन गोपाल को आनन्दित करने वाली है।

सरस्वती जी के इस कथन के पश्चात् उनकी भाषा के विषय में कुछ भी कहने को शेष नहीं रह जाता।

———

६ | गोपालविलास का भाव पक्ष

गोपालविलास में भक्ति तत्व—

भक्त शिरोमणि श्रीमधुसूदन सरस्वती शांकरमतानुयायी हैं ; अद्वैव वेदान्त के प्रबलतम व्याख्याता है तथा अद्वैत वादी परिव्राजकों के आचार्य हैं। अतः उनको भक्ति का स्वरूप भी अद्वैत परक है। उन्होंने भक्ति के तात्विक विवेचन के लिये ही 'श्रीभगवद्भक्ति रसायन' की रचना की है। इसका एक-एक शब्द भक्ति के गहन रहस्यों का उद्घाटन करता है। इसमें वे सर्व प्रथम भक्ति के सामान्य स्वरूप का निर्धारण करते हुए कहते हैं—

द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गताः।

सर्वेशेमनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते ।। भक्तिरसायन १।३

भगवद्गुण गण श्रवण से द्रवित हुआ भक्त का चित्त जब सर्वाधिष्ठान सर्वेश्वर में तैल धारावत् अविच्छिन्न रूप से तदाकार हो जाता है उसे ही भक्ति कहा जाता है। इस भक्ति के आलम्बन सर्वेश हैं जिनका कोई विशिष्ट रूप नाम अथवा धर्म निश्चित नहीं किया गया है। यह ब्रह्म का निर्विकल्पक रूप है। इसे ही व्यास जी ने भागवत में निर्गुण भक्ति कहा हैं। यह ज्ञान मार्ग का अनुसरण करने वाले परमात्म चिन्तकों की भक्ति है। यह साधना में ब्रह्म विद्या से भिन्न होते हुए भी आराधना में समान है। इसमें चित्त की द्रवता अनिवार्य है। ब्रह्म विद्या के साधकों के लिये चित्त द्रुति आवश्यक नहीं। गोपालविलास की गोपियों की आराधना इसी प्रकार की है। वे परमात्म तत्व की पूर्णज्ञाता हैं। उनके सर्वेश नन्दनन्दन है। जिनके गुणों का अहर्निश श्रवण करके उनके चित्त तैलधारावत सतत पूर्णतया द्रवित रहते हैं। वे अपने सर्वेश्वर गोपाल से तदाकार होने के लिये निरन्तर व्याकुल रहती है।

सरस्वती जी ने इस सामान्य भक्ति के अतिरिक्त विशिष्ट भक्ति का भी प्रतिपादन किया है, जिसे उन्होंने प्रेमा भक्ति कहा है। प्रथम उल्लास के अन्त में वे कहते हैं कि "दिङ्मात्रमिहोदाहृतम्" "अनन्तरोल्लासे पुनरेतत् सप्रपञ्चमुदाहरिष्यते प्रेमेत्युपरम्यते"। अर्थात् अग्रिम द्वितीय उल्लास में प्रपञ्च सहित प्रेमा भक्ति को प्रस्तुत करेंगे। अब इस सामान्य भक्ति को उपराम देते हैं। इस विशेष अथवा प्रेमा के आलम्बन भी साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन गोपाल कृष्ण ही हैं। इस भक्ति का स्वरूप निश्चित करते हुए सरस्वती जी कहते है—

द्रुते चित्ते प्रविष्टा या गोविन्दाकारता स्थिरा ।
सा भक्तिरित्यभिहिता विशेषस्त्वधनोच्यते ॥ भक्ति रसायन २।१

भगवत गुण श्रवण से द्रवित हुए चित्त में स्थिर रूप से स्थित जो गोविन्दाकारता है वही भक्ति का विशिष्ट रूप है । किन्तु यह आचार्य श्री रामानुज का विशिष्ट अद्वैत नहीं हैं । यह सरस्वतीं जी के अद्वैत ब्रह्म का सविकल्पक रूप है । उसे ब्रह्म सूत्र पर आधारित श्रुति सम्मत ब्रह्म का सगुण रूप कहा जा सकता है । गोपालविलास में इस का सम्यक् निरूपण किया गया है । उन्होंने इस भक्ति के लिये चित्त द्रुति को अनिवार्य माना है । यह द्रुति काम क्रोध भय आदि आठ रतियों से ही सम्भव है । केवल मात्र ये आठ रतियाँ ही चित्त द्रुति में समर्थ है । इनके अतिरिक्त अन्य कोई रति नहीं है जो चित्त को द्रवित कर सके । इनमें काम प्रबलतम रति हैं जो गोपाल विलास की गोपियों में सतत विद्यमान है । गोपियो की इस भक्ति के वियोग पक्ष का कम और संयोग का विशद वर्णन करके सरस्वती जी ने उनकी कामजा भक्ति का स्वरूप प्रस्तुत किया है, जो गोपालविलास के द्वितीय और तृतीय सर्ग में सविस्तार प्राप्त होता है ।

सरस्वती जी की प्रेमाभक्ति ही भक्ति रस है जिस की सिद्धि के लिये सरस्वती जी ने भागवत के विपरीत राधा को इस महाकाव्य में माधव गोपाल की अनन्य प्रेयासी के रूप में चित्रित किया है और उन्हें गोपियों की अपेक्षा उच्चस्थान दिया है । चित्तद्रुति के लिये रसायन में जिन आठ रतियों को स्वीकार किया है उन्हें ही सरस्वती जी ने भक्ति रस के आठ स्थायी भाव माने हैं । ये ही विभावादि के संयोग से भक्ति रस का आस्वादन कराते है । इन आठों रतियों अथवा भावों का आधार राधा है । इसी लिये उन्हें महाभाव कहा जाता है और माधव को रसराज । जिक प्रकार भाव की रस के विना और रस की भाव के विना कल्पना ही नहीं की जा सकती उसी प्रकार राधा के विना माधव का और माधव के विना राधा का भी कोई अस्तित्व ही नहीं है । इसी लिये सरस्वती जी ने महाभाव राधा और रस राज कृष्ण के माध्यम से भक्ति रस की सिद्धि की है । इस काव्य में गोपियों की कामजा भक्ति है जबकि राधा की प्रेमाभक्ति है। इस प्रेमा भक्ति से ही रस की सृष्टि सम्भव है । यही सरस्वती जी का भक्ति तत्व है । इसे ही बिस्तार के साथ निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जायेगा ।

(१) निर्गुण भक्ति—

निर्गुण के साथ भक्ति शब्द अपने अर्थ को चरितार्थ करने में असमर्थ सा लगता है, क्योंकि निर्गुण की भक्ति हो ही नहीं सकती । भक्ति के लिये किसी आधार की अपेक्षा अनिवार्य रूप से स्वीकार करनी होगी । भज् सेवायाँ धातु से

निष्पन्न होने वाले भक्ति शब्द का अर्थ यदि सेवा करते है तब सेवक तथा सेव्य का भाव स्वतः ही मन में प्रस्फुटित होता है, जो निर्गुण के लिये असम्भव है। क्योंकि निर्गुण के साथ सेवक सेव्य सम्बन्ध स्थापित हो ही नहीं सकता।

अतः यहाँ निर्गुण का अर्थ प्राकृत गुणों का अभाव है। परमात्मा में प्राकृत गुण नहीं होते क्योंकि उनका शरीर प्राकृत नहीं होता। इसलिये उन्हें निर्गुण कहा गया है। अप्राकृत गुण तो उनमें रहते ही है। इन गुणों के आधार पर ही उन्हें श्रुतियों में अनेक नामों से पुकारा गया है जैसे इन्द्र, आदित्य, वरुण, विष्णु पुरुष सूक्त के विराट पुरुष आदि। अन्य सूक्तों में भी विविध नामों से जो स्तुतियाँ की गई हैं वे वस्तुतः उस पुराण पुरुष परमेश्वर की ही हैं जिसे हिरण्य गर्भ, रसोवैसः, व्यक्त, अव्यक्त, निराकार, साकार, सच्चिदानन्द, शिव सर्वेश्वर, कोटि ब्रह्माण्ड नायक आदि नामों से पुकार जाता है जो उसके दिव्य गुणों को अभिव्यक्त करते हैं। अतः निर्गुण भक्ति का अर्थ उस परमात्मा की भक्ति से है जिसका अप्राकृत मंगल विग्रह है जिसके[1] जन्म कर्म सब दिव्य हैं। जो सच्चिदानन्दमय और शाश्वत हैं तथा हानोपादान रहित और अनिर्वचनीय हैं। उस दिव्य भगवद्देह की भक्ति ही निर्गुण भक्ति के अन्तर्गत आती है।

अपने सृष्टा से तादाम्य स्थापित करने के लिये इस दृश्यादृश्य चराचर जगत के कण-कण और तृण-तृण में एक आकुलता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। जीवन की प्रत्येक तरङ्ग उसी महार्णव में लीन हो जाने के लिये छटपटाती रहती है। क्योंकि वह[2] निश्चित ही अत्यन्त स्वादिष्ट है, मधुर है और तीव्र है अर्थात् यह इतना उन्मादक है जब चढ़ जाता है तब गहरारंग लाता है और परम रसवान है। उस परमात्मा का सख्य[3] अत्यन्त स्वादिष्ट है आह्लादक और आनन्दकर है तथा उस परमात्मा की प्रणीति अत्यन्त स्वाद्वी है। प्रणीति, प्रणय, प्रेम प्रीति, भक्ति ये सब पर्यायवाची है और एक ही अर्थ के वाचक हैं। अतः वह [4]परमात्मा ही जन-जन का उपमारहित एक मात्र असाधारण पति है स्वामी है तथा समस्त भुवनों का एक छत्र सम्राट है।

फिर सुन्दर शरीर, भावुक हृदय और नित्यानित्य विवेकिनी बुद्धि पाकर

---

१. जन्म कर्मंच में दिव्यं एवं योवेत्ति तत्वतः—गीता ४/९
२. स्वादुष्किलायं मधुरो उतायं तीव्रः किलायं, रसवाँ उतायय्।
ऋक्—६/४७/१।
३. यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीति ऋक्—८/८/११।
४. पतिर्बभूथा समोजनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा। वही ६/३६/४।

मनुष्य उस सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान सर्वान्तर्यामी, सर्वलोक नियन्ता, परम प्रभु परमेश्वर के इन गुणों का श्रवण करने में रसानुभूति क्यों नही प्राप्त करेगा ? उस अकारण करुण सर्वजन हृदय वल्लभ परमात्मा की सेवा करके क्या उसे अलौकिक रस की उपलब्धि नहीं होगी ? अवश्य होगी। अत: इस परमात्मा की सेवा ही निर्गुण भक्ति है।

यह निर्गुण भक्ति ही ऋग्वेद और उपनिषदों का वर्ण्य विषय रही है। इस भक्ति के स्वरूप का गहन चिन्तन करने के उपरान्त यह ज्ञात होगा। कि इसमें साधक की आत्मा भी परमात्मा का भाग बनने के लिये अत्यन्त उत्सुक एवं आकुल बनी हुई प्रतीत होती है। अत: ऋग्वेदीय और औपनिषदिक भक्ति की आत्मा को पूर्णतया अभिव्यक्त करने के लिये तथा व्युत्पत्यात्मक दृष्टि से भी भाग शब्द सर्वप्रकारेण समर्थ है। भाग और भक्ति दोनों ही व्याकरण की दृष्टि से भी एक ही अर्थ के वाहक है। दोनों में केवल प्रत्यय भिन्न है किन्तु अर्थ में कोई भिन्नता नहीं है।

वैदिक शब्दावली को प्रत्यक्ष कराने वाला निरुक्त भी वैदिक वाङ्मय के ही अन्तर्गत आता है। वह भी भक्ति का अर्थ भाग ही निर्धारित करता है यथा—"तिसृ एव देवता इत्युक्तं पुरस्तात् तासां भक्ति साहचर्य्यं व्याख्यास्याम:" अर्थात् तीनों लोकों के तीन ही मुख्य देवता हैं। जैसा कि हमने पहले कहा है। अब उनकी भक्ति साहचर्य की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे। इनकी व्याख्या करते हुए निरुक्तकार कहते हैं कि—"अथैतानि भक्तीनि अयं लोक: प्रात: सवनं वसन्त:, गायत्री आदि। इसका तात्पर्य है कि 'प्रात: सवनं' अर्थात् प्रात:कालीन याज्ञिक विधान वसन्त ऋतु तथा गायत्री छंद—ये सब अग्नि देवता के भाग में आये है। अर्थात् अग्नि देवता ही इनके स्वामी हैं।

ऋग्वेद संहिता के आठवें मण्डल के सत्ताइसवें सूक्त के ग्यारहवें मन्त्र में 'भक्तये' यह भक्ति का सम्प्रदान कारकीय रूप प्राप्त होता है। निरुक्त आदि द्वारा जिसका अर्थ सम्भजनाय अर्थात् लाभाय अर्थात् अपने भाग को प्राप्त करने के लिये अथवा भाग जनित लाभ के लिये ही किया गया है।

इससे सिद्ध हो जाता है कि ऋग्वेद, प्राचीन उपनिषद् एव आरण्यकों में भक्ति शब्द अपने इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था जिस अर्थ में वर्तमान में प्रचलित है। उस समय ईश्वर की भक्ति करना चाहिये इस वाक्य का अर्थ होता था कि हमें ईश्वर का भाग बनना चाहिये। किन्तु ईश्वर का भाग बनने के लिये क्यों कहा गया है ? जबकि प्राणीमात्र उसी का भाग है और उसी के अधिकार में है। जैसे वह चाहता है सबको वैसे ही चलाता है। यदि भाग का अर्थ अवयव अथवा अंश लेते हैं तब भी हम सब एक मात्र उस ईश्वर के ही भाग है, अवयव हैं अथवा अंश हैं। भगवान भी अर्जुन से यही कहते है कि "मदीयांशोजीवलोके जीवभूत: सनातन:" अर्थात् तुम सनातन जीव के रूप में मेरे ही अंश हो। जब स्वभावत:

हम उसके भाग हैं ही तब "उसका भाग बनना चाहिये" यह इसलिये कहा गया है जिससे अंश या भाग को यह ज्ञान हो जाय कि मेरा अंशी अथवा भागी कौन है ? मैं किसके अधिकार में हूँ ? ? जैसे ही अंश को अपने अशी की महानता एव प्रभुता का आभास हो जाता है वैसे ही वह उससे मिलने के लिये छटपटाने लगता है; उससे मिलन के लिये तड़पने लगता है। लोक मे भी अपने अंशी के प्रति हम अन्धानुराग देखते ही है। अतः भाग को अपने भागी का भान होने पर उसके प्रति जो दृढ़ स्नेह उत्पन्न होता है वही भक्ति है। इसीलिये महाप्रभुवल्लभाचार्य ने भक्ति के लिये भागीभूत परमात्मा के माहात्म्य का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक बताया है। वे कहते है कि—

'माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़: सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरितिप्रोक्तस्तयामुक्तिर्नचान्यथा ॥

भाग के लिये भागी के पूर्वज्ञान की आवश्यकता का प्रतिपादन इसलिये किया गया है, क्योंकि बिना ज्ञान के प्रेम अथवा भक्ति या स्नेह हो ही नहीं सकता भागी का यह ज्ञान जितना ही गहन होगा भागी से उतना ही अनुराग भी तीव्र होगा। बिना किसी का परिचय प्राप्त किये क्या कोई किसी से प्रेम अथवा स्नेह कर सकेगा ?

भक्तों की शिरोमणि भूता गोपाङ्गनाओं को अपने भागीभूत गोपाल के माहात्म्य का पूर्व से ही पूर्ण ज्ञान था। तभी गोपाल विलास में वे एक दिन, गोपाल से पूछती है—

'सम्प्रार्थितः सुरगणैरनिशंमुरारिः।
कंसादि नाश करणाय दिनैः कियद्भिः ॥
उत्कण्ठया परमया व्रजसुन्दरीणां।
सम्बर्धितस्तरुणिमानमलञ्चकार ॥

हे मुररिपु कृष्ण ! देवताओं ने कंस का नाश करने के लिये आप से जो प्रार्थना की थी, वह कब पूरी होगी, अभी इस में और कितने दिन लगेंगे। कृष्ण से यह पूछने समय उनका ज्ञान गरिमा से आभासित सहज सुन्दर सुख मण्डल और अधिक देदीप्यमान हो जाता है। ज्ञानार्चियों से स्वच्छ बने हुए उनके नेत्र स्फटिक मणि की भाँति अपनी निर्मल ज्योति से चमत्कृत हो जाते है। गोपियाँ इस तथ्य से पूर्णतया परिचित हैं कि उनके आराध्य कृष्ण कोई साधारण देवता नहीं हैं, अपितु

---

१. तत्वार्थदीप—पाद।२कारिका ४२।
२. गो० वि० १/७६।

पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर हैं। सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा, विश्व के विध्वंसक शंकर तथा स्वर्ग सम्राट महेन्द्र भी उनकी वन्दना करते हैं—

[1]"पद्मयोनि शशिमौलिमहेन्द्रैर्वन्दित मुकुटशोभिशिरोभिः"

गोपियाँ जानती हैं कि उनके माहात्म्य का वर्णन करने में वाकपति देवगुरु बृहस्पति अपने आपको नितान्त जड़ अनुभव करते हैं। फणिपति शेष नाग, चतुरानन ब्रह्मा और पञ्चानन महादेव भी इस विषय में स्वयं मौन साधे हुए रहते हैं।

[2]भवतिजड़िमयुक्तोगीर्पतियत्र गाढम्।
फणिपतिचतुरास्यपञ्चवक्त्रश्चमूकाः ॥

गोप वधुओं को पूर्ण ज्ञान है कि हमारे गोविन्द वही हैं जिन्होंने प्राचीन काल में वामन का रूप बनाकर बलि को बांध दिया था और उसे पाताल में जाने को बाध्य कर दिया था, जिसने राम बनकर शंकर के प्रचंड कोदण्ड को खण्ड खण्डकर दिया था, और अपने युग के रावण और बाणासुर जैसे उद्दण्डतम योद्धा राक्षसों की भुजाओं के मदको चूर-चूर कर दिया था।

[3]"बद्धःपुरा येन बलिः पुरद्विषः कोदण्ड दोर्दण्ड मदश्च खण्डितः"

इससे सिद्ध है कि उन्हें अपने प्रियतम कृष्ण के माहात्म्य का सम्यक् ज्ञान ही नहीं है अपितु वे कृष्ण तत्व की विशेषज्ञा है। अपने गोविन्द में ये असन्दिग्ध रूप से पूर्ण भगवत् तत्व के दर्शन करती हैं। वे उन्हें इस चराचर जगत् का परम प्रभु परमेश्वर मानती हैं। उन्हें वे कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तु शक्य समझती हैं।

गोप बालायें गोविन्द को केवल व्रज का ही स्वामी नहीं अपितु इस चराचर जगत् की आत्मा मानती हैं। और यह केवल आत्मा ही है जो सब को सर्वाधिक प्रिय होती है। इसीलिये अपने इस आत्मभूत गोविन्द से वियुक्त हुई राधा अत्यन्त व्याकुल हो जाती हैं। जगत् के प्राणों को शीतलता प्रदान करने वाली यह शीतल चांदनी भी भानु की भयङ्कर किरणों के प्रचण्ड ताप के समान उन्हें जला डालना चाहती हैं। यह पाटीर पङ्क और मलयानिल भी उनके लिये हलाहल का कार्य कर रहे हैं!

[4]..........।शीतांशु बिम्बं सुबहु प्रतप्तम्।
पाटीर पङ्कं मलयानिलं वा हालाहलस्सम्प्रतिसम्प्रयाति ॥

वस्तुतः जब हृदय अपने उस अंशी से तादात्म्य स्थापित करने के लिये अत्यन्त व्यग्र हो जाता है तब समस्त सांसारिक पदार्थ निरस प्रतीत होने लगते हैं, भौतिक

---

१. गोपालविलास ५।३६।
२. वही ६/२२।
३. गोपाल विलास १०।५८।
४. वही ५/६६।

वस्तुओं में आकर्षण समाप्त होकर विकर्षण उत्पन्न होने लगता है। इसी लिये गोप रमणियाँ अपने पतियों पुत्रों तथा गोधन आदि सब को छोड़कर अर्ध रात्रि में अपने प्राणाधार गोविन्द से मिलने की लालसा लिये दौड़ती हुई बन को चल देती हैं। कृष्ण के अतिरिक्त वे इस चराचर जगत में किसी को भी अपना नहीं मानती। वे पति पुत्र आदि को नहीं जानती केवल गोपाल ही उनके नेत्रों में समाये हुए है। वे कृष्ण से स्वयं कहती हैं।

प्रियेति जगति तले प्रियतमं भवन्तं विना।
न कञ्चन दृगंचलोच्छलित काम विद्मोवयम् ॥

उन ब्रह्म सन्यासिनी गोपाङ्गनाओं के प्रेमधाम हृदय वृन्दावन में एक मात्र गोविन्द ही समासीन रहते है और निरन्तर अनाहत ध्वनि के रूप में वेणुवादन करते रहते हैं। उस वेणुवादन को सुनकर गोप रमयिणाँ आनन्द विभोर बनी रहती हैं, पशुपक्षी रोमाञ्चित हो जाते हैं। वृन्दावन के तरुलतायें प्रफुल्लित होकर झूमने लगते हैं। यमुना उच्छ्वसित हो जाती है। गोपियों के हृदय व्रज में श्रवण मनन निदिध्यासन से प्रकट होकर गोपाल उनके प्राणों के प्राण आत्मा की आत्मा और प्रियाओं के अनन्यतम प्रेमास्पद बने हुए है। जैसे ही गोपियाँ अपने हृदय वृन्दावन में आत्मभूत कृष्ण के अनाहतात्मक वेणुनाद को सुनती है वैसे ही वे तत्काल सांसारिक सम्बन्धों से सम्बद्ध अपने पतिपुत्र, गृहकर्म, देहधर्म कुलमर्यादा लोक लाज आदि समस्त भौतिक जञ्जालों को तिलांजलि देकर परमात्मा कृष्ण से मिलकर आत्मरूप होने के लिये उसी प्रकार दौड़ पड़ती है जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अपने अंशीभूत समुद्र की ओर तीव्र गति से अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के साथ भागने लगता है। गोपियों की इसी भक्ति को भागवतकार ने भी निर्गुण भक्ति ही माना हैं—

मदगुण श्रुतिमात्रेणमयि सर्व गुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधो ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्यहच्युदाहृतं।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे ॥

अर्थात् सागर की ओर स्वतः प्रवाहित गंगा के जल की धारा के समान जो साधक के मन की गति मेरे गुणों के श्रवण मात्र से फलानुसन्धान रहित तथा भेद दर्शन विहीन होकर सर्वान्तिर्यामी मुझ पुरुषोत्तम मैं अविच्छिन्न भाव से तैलधारावत निहित होती हैं वह मनोगति रूपा भक्ति ही निर्गुण भक्ति योग का स्वरूप है।

सरस्वती जी ने भी भक्ति रसायन में भक्ति की यही परिभाषा निश्चित की हैं—

---

१. गो० वि० २/८८। भागवत ३/२९/११-१२।

द्रुतस्य भगवद्धर्मात् धारावाहिकतां गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते ॥

भगवद्धर्म से सरस्वती जी का तात्पर्य भगवद्गुण श्रवण से है। भगवत् गुण गण श्रवण से द्रवित हुए चित्त की सर्वेश्वर में जो धारावाहिकी वृत्ति है वही भक्ति कही जाती है।

व्यास जी और सरस्वती जी दोनों ने जो भक्ति की परिभाषायें निर्धारित की है उनमें पूर्ण एक रूपता है—

श्री व्यास जी	श्री सरस्वती जी
(i) मद्गुणश्रुति	(i) भगवद्धर्मात्
(ii) सर्वगृहाशये	(ii) सर्वेशे
(iii) मनोगति	(iii) मनसोवृत्ति
(iv) अविच्छिन्ना	(iv) धारावाहिकतां
(v) गंगाम्भसो	(v) द्रुतस्य (ब्रह्मद्रवस्य)

भक्ति के इन दोनों लक्षणों का विवेचन करने से स्पष्ट हो जाता है कि निर्गुण भक्ति का जो स्वरूप व्यास जी ने निर्धारित किया है वही सरस्वती जी को भी पूर्णतया मान्य है।

(२) सगुणभक्ति—

भारतीय आध्यात्मिक जगत में निर्गुण और सगुण ब्रह्म में कोई विशेष प्रकार का गम्भीर अन्तर नहीं माना गया हैं। श्रुतियों से लेकर आज तक के समस्त दार्शनिक चिन्तन में ब्रह्म का निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में वर्णन मिलता है। वैदिक संहिताओं में वह एक ही अद्वितीय परात्पर तत्व अनेक रूपों में अनेक नामों से अभिहित किया गया है।

"[1]यो देवानां नामधा एक एव" अर्थात् वह एक ही परात्पर चैतन्य तत्व देवों के अनेक नामों को धारण करता है।

तैत्तिरीय उपनिषद् ब्रह्मानन्द वल्ली के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अनुवाकों में अन्न, प्राण, मन और विज्ञान की ब्रह्म रूप में उपासना करने को कहा गया है।

'छान्दोग्योपनिषद्' में मन की ब्रह्म रूप में उपासना करने का निर्देश दिया गया है। '[2]मनोब्रह्मेत्युपासीत्'। मन इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता, इसी सादृश्य के आधार पर ब्रह्म की मन रूप में उपासना करने का आग्रह किया गया

---

१. ऋग्वेद १०/८२/२।
२. छान्दोग्य ३/१८/१।

है। जिस प्रकार सूर्यज्योतिर्मय है, उसी प्रकार ब्रह्म भी ज्योतिर्मय है। इस सादृश्य से सूर्य की ब्रह्म रूप में उपासना करने के लिये कहा गया है—

"आदित्यो ब्रह्मेत्युपासीत्'[1]

कठोपनिषद् के इस मन्त्र में ॐकार प्रणव की ब्रह्म रूप में उपासना करने का उपदेश किया है—

[2]'एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्यतत्॥

आचार्य शंकर और श्री रामानुजाचार्य—दोनों ने ही (एतत्+हि+एव+अक्षरं ज्ञात्वा) का अर्थ प्रणव ही किया है और ब्रह्म रूप में प्रणव की उपासना करने को कहा है।

यही परात्पर ब्रह्म अद्वैत तत्व, भक्ति की परिधि में पदार्पण करते ही भगवान के रूप में उपास्य बनजाता है। श्रीमद्भागवत महापुराण ब्रह्म की भगवत रूप में उपासना का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। 'भागवत' भक्ति का एकमेवग्रन्थ है।

वहां इस एक ही ब्रह्मतत्व को तीन रूपों में उपास्य माना गया है। भागवत[3] कार कहते है कि यह एक ही अव्यय तत्व की विविध अनुभूति है। वह परम तत्व जब निर्विशेष, निष्क्रिय एवं निर्गुण रूप में रहता है तब उसे ब्रह्म कहा जाता है। उसका सगुण निराकार रूप परमात्मा है जो समस्त क्रिया कलापों का साक्षी और तटस्थ द्रष्टा है उसकी तृतीय अनुभूति सगुण साकार है जिसे भगवान के नाम से जाना जाता है। नन्दनन्दन कृष्ण ही भागवत में भगवान के पद पर विराजमान है।

गोपालविलास में भी परमेश्वर के सगुण साकार विग्रह नन्दनन्दन गोपाल ही नायक के पद पर समासीन है। सरस्वती जी एक सिद्ध अद्वैतवादी हैं। वे 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' और 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' आदि सिद्धान्तों के प्रबलतम पोषक हैं। उनके लिये समस्त चराचर जगत ही ब्रह्ममय है। निर्विशेष निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिये सगुण भक्ति का निर्धारण किस प्रकार होता है। इसे स्पष्ट करते हुए सरस्वती जी कहते हैं—

"सगुणोपासनया' स्व हृदयगुहाविष्टं पुरुषं पूर्णं प्रत्यगभिन्नमद्वितीयं परमा-

---

१. छान्दोग्य ३।१९।१।
२. कठोपनिषद् १।२।१६।
३. वदन्ति तत् तत्व विदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति" च शब्दय्ते।

त्मानमीक्षते स्वयमाविर्भूतेन वेदान्त प्रमाणेन साक्षात् करोति तावता च मुक्तो भवति"

इसका तात्पर्य यह है कि सगुणोपासना के द्वारा भक्त साधक अपने हृदय में अपने से अभिन्न पूर्णपुरुषोत्तम अद्वितीय परमात्मा का स्वयमेव स्फुरित हुए वेदान्त प्रमाण के अनुसार साक्षात्कार करता है और तत्काल मुक्त हो जाता है।

यह सरस्वती जी की ही व्यक्तिगत धारणा नहीं है। 'भागवतकार'[२] भी यही कहते हैं। उनके अनुसार ब्रह्मज्ञानी भी भगवद्भक्ति के मनोमुग्धकारी माधुर्य का रसास्वादन करने के लिये विवश हो जाते हैं और ज्ञान के निर्विशेष धरातल से उठकर भगवान के दिव्य लीला लोक में रमण करते हैं। इससे सिद्ध है कि ब्रह्मज्ञानी भी सगुण भगवान की दिव्य लीलाओं में आनन्द लेते हैं।

इस सविकल्पक भक्ति का उदय भगवद्गुण गण श्रवण से द्रवित हुए चित्त में ही सम्भव है। सरस्वती जी कहते हैं कि [३]"द्रुतिभाव पूर्णिका हि मनसो भगवदाकारता सविकल्पक वृत्ति रूपा भक्तिः"। सरस्वती जी के अनुसार [४]प्रणय ही द्रवावस्था है, वही रज्जू की भाँति भगवान को बाँधकर रखने का एक मात्र साधन है। पूर्ण द्रवित चित्त में प्रविष्ट भगवदाकारता फिर कभी समाप्त नहीं होती। इसीलिये सरस्वती जी पूर्ण द्रवित चित्त में स्थिर रूप से प्रविष्ट हुई जो कृष्णाकारता[५] है उसे ही भक्ति कहते हैं। इस कृष्णाकारता रूप सविकल्पक वृत्ति में ज्ञाता और ज्ञेय का भेद विद्यमान रहता है। क्योंकि भक्ति के लिये कल्पित द्वैत अनिवार्य है। इसी लिये 'गोपालविलास' में पारमार्थिक दृष्टि से एक होते हुए भी नन्दनन्दन कृष्ण और गोप रमणियों में द्वैत का आभास होता है। सरस्वती जी ने भी अपने भक्ति रस की सिद्धि के लिये ही यह उपक्रम किया है। इसी लिये उस भेद रहित में भेद की प्रतीति ही रही है। प्रेमाभिव्यक्ति के लिये ज्ञाता राधा और ज्ञेय कृष्ण तथा

---

१. गीता कीगूढार्थ दीपिका टीका १२।६।
२. आत्मारामाश्चमुनयो निर्ग्रंथा अप्युरुक्रमेकुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूत गुणोहरिः भागवत १।७।१०।
३. भक्ति रसायन पृष्ठ २४।
४. प्रणयो द्रवावस्था स एव रशना रज्जुबन्धन साधनम्, तस्यां द्रवावस्थायां प्रविष्टस्य पुनर्निर्गमनाभावादित्यर्थः।
वही पृष्ठ ३९।
५. द्रुते चित्ते प्रविष्टा या गोविन्दाकारता स्थिरा, सा भक्तिरित्यभिहिता विशेषस्त्वधुनोच्यते वही २।१।

ज्ञाताकृष्ण और ज्ञेया राधा में द्वैत की केवल कल्पना की गई हैं। "भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्"।

अद्वैत सम्राट शंकराचार्य जी की दृष्टि से भक्ति के लिये इस प्रकार की कल्पना अद्वैत सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है। वे ब्रह्मभूत्र के [1]'स्थानादि व्यपदेशाच्च' इस सूत्र के अपने भाष्य में कहते हैं कि "त्रिगुणमपि सद्ब्रह्म नाम रूपगतैर्गुणैः सगुणमुपासनार्थं तत्रतत्रोपदिश्यते" अर्थात् श्रुतियों में उस निर्गुण ब्रह्म के जो नाम रूप स्थानादि कहे गये हैं, वे वहाँ उसके सगुण रूप की उपासना के लिये ही कहे गये हैं। अतः 'गोपाल विलास' में भी उस नाम रूपात्मक ब्रह्म की सगुण भक्ति का अद्वितीय आयोजन किया गया है। गोपालविलास राधा और कृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम की रसात्मक अनुभूति है।

———

१. ब्रह्मसूत्र १।२।१४।

७ गोपाल विलास में दार्शनिक एवं आध्यात्मिक तत्व

(क) दार्शनिक तत्व—

दृश् धातु से णिजन्त में ल्युट प्रत्यय करने के पश्चात् दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। व्याकरण की दृष्टि से इसका अर्थ होगा दर्शयतीति दर्शनम्। अर्थात् जो माध्यम विषय को प्रत्यक्ष करता है वही दर्शन है।

दृश्य जगत् का प्रत्यक्ष दर्शन कराने का कार्य इन्द्रियाँ करती ही हैं, किन्तु इस दृश्यमान पञ्चभौतिक प्रपञ्च में अन्तर्निहित एक ऐसी सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार किया गया है जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने अनुशासन में रखती है। अतः इस गुह्यातिगुह्य सत्ता का सूक्ष्म विवेचन करने के पश्चात् इसके रहस्यों का सम्यक् दर्शन कराने वाले शास्त्र को दर्शनशास्त्र कहेंगे।

भारतीय दर्शन शास्त्र का लक्ष्य दिव्य दृष्टि से तत्व दर्शन कराना है। उस निर्भ्रान्त सत्य की उपलब्धि कराना जिसे त्रिकाल में भी असत् सिद्ध नहीं किया जा सकता। यद्यपि यह उपलब्धि इन्द्रियातीत है अप्राकृतिक है और अति-मानसिक है।

भारत में इस सृष्टि तन्त्र की जीवन दायिनी चैतन्य शक्ति के अवगुण्ठन का उद्घाटन करने का सत्प्रयास अनादि काल से चला आ रहा है। इस सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय का मूल उद्गम श्रुतियों में प्रतिपादित विभिन्न विचारधाराओं को विविध रूपों में प्रस्तुत करने के लिये ही भारतीय मनीषियों ने षड्दर्शनों का निर्माण किया। ये षट् दर्शन—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा उत्तर मीमांसा के नामों से जाने जाते हैं।

वस्तुतः इन दर्शनों में उस नित्य चैतन्य परमात्म तत्व के विषय में जिन वैचारिक परम्पराओं को एक साम्प्रदायिक एवं व्यवस्थित रूप प्रदान किया गया है उनके प्रत्यक्ष दर्शन हमें उपनिषदों में होते हैं। कहीं-कहीं सूक्ष्म रूप में हैं और किसी-किसी उपनिषद् में विस्तार के साथ मिलते हैं। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' को तो जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने सांख्य उपनिषद् ही कहा है।

(१) सांख्य दर्शन--

इन सभी दर्शनों में सांख्य दर्शन को सबसे प्राचीन माना जाता है। इसमें पुरुष और प्रकृति दो मुख्य तत्व हैं। यह मूल प्रकृति ही इस सृष्टि का कारण है। यह प्रकृति अजा है अर्थात् अजन्मा है और लोहित कृष्णशुक्ल त्रिगुणमयी है। इससे महत्तत्व आदि सात तत्व उत्पन्न होते हैं जो कारण भी हैं और कार्य भी हैं। सोलह तत्वों का समुदाय केवल कार्य है। पुरुष तटस्थ है, न वह कार्य है न कारण है। इस प्रकार सांख्य दर्शन में केवल ये पच्चीस तत्व माने गये हैं।

(२) योग दर्शन---

महर्षि पतंजलि द्वारा प्रणीत योग दर्शन को अष्टाङ्ग योग के नाम से अभिहित किया जाता है। ये आठ अङ्ग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। इनमें प्रथम चार वाह्य साधन हैं जो शारीरिक शुद्धि के लिये हैं। अन्तिम चार आन्तरिक साधन के सोपान है। इनकी निरन्तर साधना से समाधिस्थ अवस्था प्राप्त कर उस परम सत्ता का साक्षात्कार किया जा सकता है।

(३) न्याय दर्शन---

इस दर्शन के प्रथम व्याख्याता के रूप में गौतम ऋषि को माना जाता है। उन्होंने न्याय के प्रतिनिधि ग्रन्थ के रूप में न्याय सूत्र की रचना की है। इसमें प्रतिज्ञा हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन के द्वारा उन पदार्थों की सिद्धि की गई है, जिनकी गणना इस दर्शन में करायी गई है।

(४) वैशेषिक—

इस दर्शन की रचना महर्षि कणाद ने की है। "विशेष पदार्थमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः वैशेषिकः" विशेष से ठक् प्रत्यय करके इस शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है। यह केवल इसलिये न्यायशास्त्र से भिन्न है क्योंकि इसमें केवल सात तत्व ही माने गये हैं जबकि न्याय में इनकी संख्या सोलह है तथा विशेष नामक तत्व पर विशेष बल दिया गया है।

(५) पूर्वमीमांसा---

महर्षि जैमिनी द्वारा प्रवर्तित इस दर्शन में वेद के कर्मकाण्ड पर मन्त्रों की व्याख्या है। वेद के मूल पाठ में आये हुए संदिग्ध अंशों का निर्णय करना भी इसका लक्ष्य है।

(६) उत्तरमीमांसा—

इस दर्शन के प्रणेता महर्षि बादरायण व्यास हैं। उन्होंने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों को अभिव्यक्त करने के लिये "ब्रह्मसूत्र" की रचना की है। 'ब्रह्मसूत्र' ही अद्वैत वेदान्त

का एकमात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ है। आचार्य शङ्कर ने भी इसे ही आधार मानकर अपने अद्वैत सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार किया है। "अथातोब्रह्म जिज्ञासा" इस प्रथम सूत्र से लेकर—"अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्" इस अन्तिम सूत्र तक अर्थात् ब्रह्म की जिज्ञासा उत्पन्न करने से लेकर ब्रह्मलोक प्राप्ति तक का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस उत्तर मीमांसा को ही वेदान्त कहा जाता है।

इन षट् दर्शनों में सांख्य के अतिरिक्त अन्य सभी दर्शन श्रुतियों को अन्तिम प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं। श्रुतियों के माध्यम से ही इन दर्शनों ने अपने सिद्धान्तों की पुष्टि की है।

इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय दर्शनों में सृष्टि प्रपञ्च के मूल तत्वों का विवेचन किया गया है, जो निश्चित रूप से एक असाधारण अध्यवसाय है। उनके माध्यम से प्रकृति, पुरुष, परमात्मा, जीवात्मा, ब्रह्म माया आदि के विषय में तत्व चिन्तकों के हृदयों में सहज रूप से उत्पन्न होने वाली जिज्ञासा को शान्त करने का सत् प्रयास किया गया है।

महर्षि वादरायण द्वारा प्रवर्तित अद्वैत दर्शन को पूर्ण समृद्ध बनाने का कार्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने किया। उन्होंने अपने युग की समस्त दार्शनिक मान्यताओं का खण्डन करने के पश्चात् अद्वैत दर्शन की प्रतिष्ठापना की। उनकी अकाट्य युक्तियों एवं तर्कों से प्रतिपादित अद्वैत सिद्धान्तों के सामने सभी नास्तिक दर्शनों का लोप हो गया, अन्य आस्तिक दर्शन भी अध्यात्म के साधकों को अपनी ओर आकृष्ट न कर सके। अद्वैत की विजय दुन्दुभि से भारतीय आकाश निनादित हो गया।

गोपाल विलास में प्रतिपादित अद्वैतभक्ति का स्वरूप—

गोपाल विलास अद्वैत दर्शन का एक काव्यमय संस्करण है। अतः इसका एक-एक अक्षर श्याम श्यामा के अद्वैत रङ्ग में रंगा हुआ है। इसीलिये वृन्दावन की वीथिकाओं में सर्वत्र फैला हुआ अन्धकार अभिसार के लिये अत्यन्त उत्सुक बनी हुई गोप-रमणियों को 'नन्द तनूज बन्धु' के रूप में दिखाई देता है।

[1]"अन्धं तमो नन्द तनूज बन्धुः।"

गोपाङ्गनायें मुररिपु के शरीर की कान्ति के समान स्निग्ध कस्तूरी की आभा वाले ध्वान्त वृन्द को सर्वत्र व्याप्त देखकर अपने प्रियतम कृष्ण के द्वारा दिये हुए समय का स्मरण करती हैं और उनसे मिलने के लिये अधीर हो जाती हैं।

[2]"अथ मुररिपुकाय स्निग्ध कस्तूरिकाभं।
व्रजजन कुलबालाध्वान्त वृन्दं विलोक्य॥"

---

१. गोपाल विलास =/१२।
२. वही २/१४।

वे कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानतीं। सरस्वती जी की भाषा में वे कृष्ण से उस समय स्पष्ट कह देती हैं जब कृष्ण उनसे अपने घरों को वापिस जाने के लिये कहते हैं। कृष्ण की उस कठोर वाणी को सुनकर वे मूर्च्छित सी हो जाती हैं और फिर तनिक सावधान होकर कहती हैं कि हे कृष्ण। इस संसार में आपके अतिरिक्त हमारा कोई प्रियतम नहीं है। एकमात्र आप ही हमारे नेत्रों में निवास करते हों।

[1]'प्रियतमं भवन्तं बिना न कञ्चन।
दृगञ्चलोच्छलित काम विद्मो वयम्॥'

गोपाल विलास के कृष्ण भी अद्वैत के रंग में रंगे हुए हैं। उन्हें भी अपनी प्रियाओं के केशकलापों की कृष्ण कान्ति ही वृन्दावन में फैले हुए अन्धकार में दिखाई दे रही है।

[2]'विलासिनी केश कलापकान्तं।
कदम्ब बाटीषु तमः कदम्बम्॥
निरीक्ष्य नन्दस्य कुलावतंसः।
कलं जगौ रन्तुमना बनान्ते॥'

राधा के वियोग में अत्यन्त व्यथित बने हुए कृष्ण सर्वत्र वृन्दावन के तरुलता तृणवीरुध, सर सरिता सब में राधा के दर्शन कर रहे हैं। उनके लिये सारा संसार राधामय बना हुआ है। भारत की सभी पवित्र नदियाँ उन्हें राधा में स्पष्ट दिखाई दे रही हैं। राधा के श्वेत मुक्ताहार में गङ्गा उनके केशपाश में यमुना उनकी नीवी में विपाशा उनके तुङ्ग उरोजों मे नर्मदा और तुङ्ग भद्रा त्रिवली में सुवर्ण रेखा और उनकी कटि में सिन्धु दिखाई दे रही है।

[3]'गङ्गा हारे तरणि तनया केशपाशे विपाशा
नीवी, वक्षोरुह शिखरिणोर्नर्मदा तुङ्गभद्रे।
कम्बू ग्रीवा त्रिवलि विभवे घूर्णिता स्वर्णरेखा
सिन्धुः श्रोण्यां समदन रसा बाहुदा बाहुमुले॥

राधा की वेणी में कृष्णा उनकी मसृण रोम राजी में तमसा अधरों में शोण, उनके मधुर वाग्विलास में वागवती उनके क्रीड़ा कोप की प्रशमन विधि में कौशिकी दृष्टिगत हो रही है उनके मादक हास में चन्द्रभागा और रास की मञ्जुल मधुर ध्वनि में उन्हें घाघरा का घोष सुनाई पड़ रहा है।

---

१. गोपाल विलास २/४८।
२. वही २/१३।
३. गोपाल विलास ७/२१।

'कृष्णा वेण्यां मसृण तमसा रोमराजी विलासे
पुण्यः शोणोऽधर किसलये वागवती वाग्विलासे।
क्रीडा कोप प्रशमन विधौ कौशिकी चन्द्रभागा
हासे, रासप्रसर समये घार्घरो मञ्जु घोषः॥

वृन्दावन की द्राक्षाओं के माधुर्य में राधा की वाणी, वहाँ उद्यानों में वृक्षों पर लटके हुए वर्तुलाकार अनारों में उन्हें राधा के उरोजों की शोभा दिखाई दे रही है। उन्हें मल्लिका में उनका सहज हास मालती में उनकी कोमल भुजाओं के दर्शन हो रहे हैं। स्थल कमलिनी में वे उनके चरणों को देख रहे हैं। इस प्रकार उन्हें सर्वत्र वृन्दावन में राधा के दर्शन हो रहे हैं।

'या मृद्वीका वचन रचने दाडिमी या कुचाभ्यां
या सन्मल्ली सहज हसिते मालती या भुजाभ्याम्।
उर्वो रम्भा स्थल कमलिनी या पदाभ्यां पुनस्ताम्
पवालोकेऽहं कुसुमधनुषो राधिकां पुष्पवाटीम॥

राधा सम्पूर्ण सृष्टि की स्वामिनी हैं। इसलिये कृष्ण उनमें पाँचों तत्वों के प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं। राधा के पीन एवं विस्तृत पयोधरों तथा उनकी स्थूल जंघाओं में पृथ्वी तत्व के, उनकी वाणी में जल के, उनके तेज पूर्ण उर्जस्वित मुख में अग्नि और उनके समालिङ्गन में वायु तथा उनकी गहन गम्भीर नाभी में आकाश के दर्शन हो रहे हैं। अन्त में कृष्ण कहते हैं कि क्या वह पञ्चभूतों की स्वामिनी मन्मथ की सुषमा और विधाता की विभूति राधा यहाँ से चली गई हैं।

'उर्वी पीन पयोधरोरु जघने या जीवनं जल्पिते।
तेजः सम्भृतिरुन्नता मुखचितौ प्राणा समालिङ्गने॥
नाभौ व्योमतमः शिरोरुहचये सत्तर्क सिद्धं मन.।
मन्ये सावचनु मन्मथस्य सुषमाधातुर्विभूतिर्गता॥

कृष्ण राधा में षट् दर्शनों की झाँकी प्राप्त कर रहे हैं। राधा का कटि प्रान्त इतना सूक्ष्म है जो मीमांसकों के लिये चिन्तन की वस्तु बना हुआ है, उनके नीवी-वन्ध को वेदान्तियों ने अनुबन्ध चतुष्टय के साथ निरन्तर मनन का विषय बनाया हुआ है। कृष्ण कहते हैं कि न्याय भूमि बने हुए मेरे अङ्ग में सारे योगों की एकमात्र निवास स्थली और पण्डितराज कामदेव की सम्पूर्ण विद्याओं की अनिन्द्य विद्या उस राधा के दर्शन मुझे कब प्राप्त होंगे।

---

१. गोपाल विलास ७/३२।
२. गोपाल विलास ७/३३।
३. वही ७/४४।

[1]मीमांसानां समजनि पदं मध्यदेशो कृशाङ्गी
वेदान्तानां विषय सदनं नीविबन्धोऽनुबन्धः।
या योगानां भवनमनिशं न्यायभूमौ मदङ्गे
क्वालोके तां मनसिजसुधीसर्वविद्यानवद्याम् ॥

सरस्वती जी ने राधा को अनवद्या विद्या कहा है क्योंकि पञ्चदशीकार विद्यारण्य ने माया के दो रूप माने हैं। वे इसके शुद्ध सात्विक अंश को माया कहते हैं और इसे ही ईश्वर की उपाधि मानते हैं। यही माया जब रज तम का आश्रय ले लेती है तब अशुद्ध सत्व प्रधान अविद्या कहलाती है। माया बिम्ब भगवान इस माया को अपने वश में करके ही सर्वज्ञ और सर्वैश्वर्य के स्वामी कहलाते हैं। क्योंकि राधा शुद्ध सत्व प्रधाना माया है इसीलिये सरस्वती जी ने माया को अनिन्द्य विद्या बताया है। विद्यारण्य स्वामी कहते हैं कि—

[2]सत्व शुद्ध्यविशुद्धिभ्यां माया विद्ये च ते मते।
मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात् सर्वज्ञ ईश्वरः॥

गोपाल विलास में कृष्ण मराल बनकर राधा की श्रृङ्गार सरसी में निवास करते हैं। राधा उनकी सखी अथवा सहचरी हैं। दार्शनिक जगत में इन्हें ही माया कहा जाता है। तत्व ज्ञानी इसके कार्यों से ही इसका अनुमान कर लेते हैं। यह त्रिगुणमयी है शङ्कराचार्य ने भी अपनी विवेक चूड़ामणि में इस माया की परिभाषा निम्न प्रकार से निश्चित की है—

[3]अव्यक्त नाम्नी परमेश शक्तिरनाद्य विद्या त्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते॥

गीता में भगवान कृष्ण ने अपनी इस माया का अनेक स्थानों पर अपने श्री मुख से वर्णन किया है। वे कहते हैं कि यह माया दैवी है त्रिगुणमयी है तथा अत्यन्त दुर्गम है। जो मुझ माया पति को पा लेता है वही इस माया से पार हो सकता है।

[4]दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

अद्वैत वेदान्त में माया और ब्रह्म इन दो तत्वों को ही माना गया है। ब्रह्म

---

१. गोपाल विलास ७/३८।
२. पञ्चदशी १/१६।
३. विवेक चूड़ामणि ११०।
४. गीता ७/१४।

पूर्णतया सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है। गोपाल विलास में राधा भगवान कृष्ण की योग माया बनी हुई है। ये अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड उस परब्रह्म की अनादि शक्ति त्रिगुणात्मिका माया राधा का ही प्रसार है। कोटि-कोटि गोपाङ्गनाओं की काम सेना को सुसज्जित करने का भार राधा पर ही है। राधा रास में अथवा गोपाङ्गनाओं के किसी भी क्रिया-कलाप में भाग नहीं लेती हैं। किन्तु रास के सम्पूर्ण सञ्चालन का कार्य राधा स्वयं करती हैं। रास से पूर्व सारे वृन्दावन में सर्वत्र अन्ध तमस का साम्राज्य था। जब सभी गोपियाँ कृष्ण के आश्रय में आ जाती है। सबसे अन्त में राधा अपनी कुछ अन्तरङ्ग सखियों के साथ केलि कानन में पदार्पण करती हैं। तभी चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं के साथ नभ-मण्डल को आलोकित कर देता है और सारा वृन्दावन क्षीरसागर बन जाता है। चन्द्रमा को इस सृष्टि की सञ्चालिका तथा अपनी स्वामिनी राधा के स्वागत में उपस्थित होना आवश्यक था। यह सारी सृष्टि कृष्ण ब्रह्म की माया राधा चलाती है कृष्ण नहीं। यह है गोपाल विलास का अद्वैत-वादी स्वरूप।

इस भक्ति रस कलश गोपाल विलास में अद्वैत भक्ति का स्वरूप निश्चित किया गया है। इसमें प्रतिपादित भक्ति के आलम्बन कृष्ण हैं। शृंगार के माध्यम से भक्ति रस की सिद्धि की गई है। इस भक्ति रस के स्थायीभाव के दार्शनिक स्वरूप का विवेचन किया जाता है।

गोपाल विलास में प्रतिपादित भक्ति का स्वरूप निश्चित करते हुए सरस्वती जी भक्ति रसायन में कहते हैं कि भगवत गुणगण श्रवण से द्रवित हुए चित्त की जो कृष्ण विषयिणी धारावाहिकी वृत्ति है वही भक्ति है। अतः द्रवित चित्त में स्थिर रूप से प्रविष्ट जो कृष्णाकारता है वह चित्त का संस्कार अथवा भावना है, किन्तु यह संस्कार न्याय दर्शन में निर्दिष्ट संस्कार से सर्वथा भिन्न है। क्योंकि नैय्यायिक इसे नाशवान ज्ञान से उत्पन्न हुआ मानते हैं। न्याय दर्शन के अनुसार संस्कार आत्मा का गुण है जो ज्ञान से उत्पन्न होता है। ज्ञान को वे नाशवान मानते हैं। उनके अनुसार ज्ञान प्रथम क्षण में उत्पन्न होता है द्वितीय क्षण में रहता है और तृतीय क्षण में नष्ट हो जाता है। इस प्रकार के नाशवन ज्ञान से जो संस्कार उत्पन्न होगा वह भी नाशवान ही होगा। इस प्रकार का संस्कार भक्ति रस की सिद्धि करने में असमर्थ है।

सरस्वती जी ज्ञान को नित्य मानते हैं और उसे ब्रह्म का स्वरूप स्वीकार करते हैं—"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" अतः सरस्वती जी को नैय्यायिकों द्वारा प्रति-पादित संस्कार का लक्षण मान्य नहीं है।

"न तु विनश्यता ज्ञानेन जनितस्ता-
र्किकादिपरिकल्पित आत्मगुण इत्यर्थः ।।

इसी प्रकार बौद्ध दर्शन में भी पूर्व-पूर्व विज्ञान उत्तरोत्तर विज्ञान में अपनी चित्त वृत्ति रूप वासनायें देता जाता है। बौद्धों का यह विज्ञान क्षणक्षण में परिवर्तित होता है। अतः इससे उत्पन्न वासना क्षण-क्षण में परिवर्तित होने वाली होगी। वह कभी तैलधारावत स्थायी नहीं रह सकती।

सरस्वती जी ने बौद्धों और मीमांसकों की भावना के लक्षण को निरस्त करने के लिये ही अपनी कारिका में भावनात्मक शब्द प्रयोग किया है।

मीमांसक भी यज्ञ कर्म में प्रवृत्त करने वाले विधि वाक्यों को ही भावना कहते हैं और उसका लक्षण निम्न रूप में निश्चित करते हैं—

"भावना नाम भवितुर्भवनानुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः।"

उनकी दृष्टि में भावयिता का व्यापार विशेष ही भावना है। अतः वे भावना को क्रिया रूप मानते हैं। उनकी दृष्टि में भावना एक क्रिया मात्र है।

अद्वैनवादी क्रिया को अनित्य मानते हैं। अतः सरस्वती जी भगवद्विषयक भावना को नित्य मानते हैं. क्योंकि वह केवल क्रिया मात्र नहीं है।

इसीलिये भगवत् गुण श्रवण से गोपाल विलास की गोपाङ्गनाओं के द्रवित चित्त में प्रविष्ट जो भगवदाकारता रूप संस्कार, भावना, अथवा वासना है वह तैलधारावत निरन्तर विद्यमान रहती है। नैय्यायिकों की भांति न वह नाशवान ज्ञान से उत्पन्न होती है और न बौद्धों की भांति वह क्षण-क्षण में परिवर्तित होती है और न वह मीमांसकों के अनुसार अनित्य क्रियामात्र है।

जिस प्रकार पूर्णतया विगलित लाक्षा में जो वस्तु डाली जाती है, वह अपना एक स्थिर आकार बना लेती है। उसी प्रकार भगवान के गुण श्रवण से सर्वथा द्रवित गोप-रमणियों के चित्तों में निक्षिप्त भगवदाकारता स्थायी रूप से स्थिर रहती है। वह अन्य रत्यादि भावों में परिणत होकर भी नष्ट नहीं होती इसीलिये भगवत् संस्कार, भाव अथवा भावना को नित्य तथा परिणामी माना गया है। इसी संस्कार, भावना अथवा भाव को सरस्वती जी ने 'स्थायी भाव' शब्द से अभिहित किया है।

स्थायीभाव गिरातोऽसौ वस्त्वाकारोऽभिधीयते।
व्यक्तश्च रसतामेति परानन्दतया पुनः ।।

—भक्ति रसायन २।६।

अर्थात् द्रवित चित्त में विनिक्षिप्त वस्तु ही स्थायी भाव नाम से जानी जाती

---

१. भक्ति रसायन पृष्ठ ३४।
२. वही पृष्ठ ३४।

है। अतः यह निश्चित हो जाता है कि परमानन्द स्वरूप भगवान स्वयं ही द्रवित चित्त में तैलधारावत स्थित होकर स्थायी भाव रूप से पूर्ण रसता को प्राप्त होते हैं।

द्रवित चित्त में स्थिर रूप से प्रविष्ट कृष्णाकारता के अविनाशी होने के कारण ही यहाँ स्थायी शब्द का प्रयोग किया गया है। यह कोई पारिभाषिक शब्द नहीं है अपितु अपने मुख्यार्थ का ही वाचक है।

सरस्वती जी वेदान्त के माध्यम से भक्तिरस के स्थायीभाव की रसता को सिद्ध करने के लिये सर्वप्रथम उसे परमानन्द रूप घोषित करते हैं। क्योंकि भगवत् गुण श्रवण से द्रवित चित्त में भगवान स्वयं प्रतिबिम्बित होकर स्थायी भावता को प्राप्त होते हैं। ये स्थायीभाव रूप भगवान ही रसता को प्राप्त करते हैं। भगवान् स्वयं परमानन्द स्वरूप हैं ही। अतः भक्तिरस की परमानन्द रूपता निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाती है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि भगवान स्थायीभाव और आलम्बन विभाव दोनों हो जायेंगे यह इसलिये सम्भव नहीं है, क्योंकि इन दोनों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है। स्थायीभाव बिम्ब है और आलम्बन विभाव उसका प्रति-बिम्ब है। इन दोनों में व्यावहारिक रूप से ही द्वैत का आभास होता है जिस प्रकार जीवात्मा और परमात्मा में होता है। परमार्थतः ये दोनों एक ही हैं। इसी प्रकार स्थायीभाव और आलम्बन विभाव भी परमार्थतः एक ही हैं।

वेदान्त के अनुसार स्थायीभाव की रसता को सिद्ध करने के पश्चात् अब सांख्य के आधार पर स्थायीभाव की रसता का प्रतिपादन करते हैं।

इति [1]वेदान्त सिद्धान्ते स्थायिनो रसतोदिता।
सांख्य सिद्धान्तमाश्रित्याप्यधुना प्रतिपाद्यते ॥

सांख्य प्रकृति को त्रिगुणमयी मानता है। अतः सत्व रज तम इन तीन गुणों के आधार पर यह जगत भी सुख-दुःख मोहात्मक ही है। इस त्रिगुणात्मिका प्रकृति की प्रत्येक वस्तु सुख-दःख मोहात्मक भले ही हो किन्तु जब वह द्रवित चित्त में सुख रूप से प्रविष्ट होती है तब उससे तदाकार बना हुआ चित्त स्थायी भावता को प्राप्त कर रस रूप में परिणत हो जाता है। इसी प्रकार क्रोध ईर्ष्या आदि भाव भी रज तम मिश्रित होकर सत्व के उद्रेक से चित्त को द्रवित करने वाले होते हैं। क्योंकि चित्त तीव्र सत्वोद्रेक के कारण ही द्रवित होता है। अतः क्रोध ईर्ष्या आदि भी सुखमय ही प्रतीत होते हैं। सांख्य में सत्व गुण [2]प्रीति-विषयक है अर्थात् प्रीतिजनक है अर्थात् सुखजनक है। फिर भी रज तम का मिश्रण होने से उनमें कुछ तारतम्य अवश्य

---

१. भक्ति रसायन १/१४।

२. सांख्यकारिका १/१२।

रहता है, यही कारण है, जिससे सब रसों में सुख की अभिव्यक्ति समान मात्रा में नहीं होती।

इसीलिये गोपाल विलास की गोपियों के भगवत् गुण श्रवण से द्रवित चित्तों में सुख रूप चिदानन्दघन परमात्मा गोपाल ही स्थायीभाव रूप से नित्य निवास करते हैं। उन पर गोपियां क्रोध भी करती हैं। रुपत्नीजन्य ईर्ष्या और प्रीतिजनक भय भी उनमें है। किन्तु सत्वाधिक्य के कारण नन्दनन्दन सदा उनके लिये सुखमय हैं और परमानन्द के कारण हैं।

सरस्वती जी ने इस प्रस्तुत महाकाव्य गोपालविलास के माध्यम से जिस भक्ति रस की सिद्धि की है उसके प्रमुखतम उपकरण स्थायी भाव को दार्शनिक सिद्धान्तों के माध्यम से निरूपित किया है।

(ख) गोपालविलास का आध्यात्मिक तत्व

आध्यात्मिक का अर्थ है अध्यात्म सम्बन्धी अर्थात् आत्मा से सम्बन्धित। जो विषय आत्मा और परमात्मा से सम्बद्ध होता है वही अध्यात्म का विषय कहलाता है। इस आत्मा और परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कराने वाले शास्त्र को अध्यात्म शास्त्र कहते हैं। इसी ज्ञान से तत्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को सर्वत्र देखा जा सकता है। इसी ज्ञान को भगवान कृष्ण ने ज्ञान कहा है और इसे ही नित्य माना है। इससे इतर जो भी कुछ है वह सब अज्ञान है—

[1]अध्यात्म ज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थ दर्शनम्।
एतत् ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥

अपनी दिव्य विभूतियों का वर्णन करते समय भगवान कृष्ण अध्यात्म विद्या को अपना स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन! विद्याओं में अध्यात्म विद्या मैं ही हूँ। [2]"अध्यात्म विद्या विद्यानाम्"।

सरस्वती जी इस ब्रह्म विद्या के प्रकाण्ड पण्डित हैं। वे इस अध्यात्म तत्व को अद्वैत रूप में मानते हैं। उन्होंने इस अध्यात्म विद्या के माध्यम से ही गोपाल विलास में अपने अद्वैत तत्व कृष्ण ब्रह्म की उपलब्धि की है।

गोपाल विलास में कृष्ण राधा की शृङ्गार सरसी के मराल बने हुए हैं। राधा कृष्ण की परा शक्ति हैं।

इस त्रिगुणमयी माया की शृङ्गार सरसी में निवास करने वाले मायापति महेश्वर अपनी माया के प्रताप से स्वयं मायामय बने हुए हैं। उनका सहज वर्ण श्वेत है जो सत्वगुण का प्रतीक है, उनके अक्षि-पाद पाटल वर्ण के हैं जो रजो गुण के प्रतीक हैं और कमलालय होने के कारण उनका हरित अथवा कृष्णवर्ण तम का प्रतीक बना हुआ है।

---

१. गीता १३/११। २. गीता १०/३२।

श्वेताश्वतरोपनिषद में भी उस परमात्म तत्व को हंस के रूप में चित्रित किया गया है। श्वेताश्वतर के ऋषि कहते हैं कि हे सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ! तुम्हीं इस सम्पूर्ण चराचर जगत पर शासन करने वाले हो। तुम्हीं हंस हो अर्थात् तुम्हीं चैतन्य घन हो। तुम इस नव द्वारों वाली शरीर की नगरी में अन्तर्यामी रूप से स्थित रहते हो और इसके बाहर भी लीला करते हो।

[1]नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥

अन्तिम चतुर्थ अध्याय में श्वेताश्वतर के ऋषि इसी हंस के लिये कहते हैं कि हे सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म ! तुम्हीं नील वर्ण के पतंग हो हरित रंग के हो लाल नेत्रों वाले हो और तडिद्गर्भ हो। वसन्त आदि ऋतुएँ समुद्र तथा समस्त भुवन तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं। तुम्हीं इस अनादि प्रकृति के स्वामी बने हुए विभु रूप से सर्वत्र विद्यमान हो।

नीलः[2] पतङ्गो हरितोलोहिताक्षस्तडिद्गर्भः।
ऋतवः समुद्राः अनादिमत्वं विभुत्वेनवर्तसे ॥

श्वेताश्वतर का यह पतंग गोपाल विलास के मराल का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। वहाँ राधा श्रृङ्गार सरसी का मराल कमलालय बना हुआ है जो इस नील पतंग के ही वर्ण वाला है। उसी के समान इस पतंग के नेत्र रक्त वर्ण के हैं। यह सब उस त्रिगुणमयी माया का ही प्रताप है। श्वेताश्वतर का हंस तडित गर्भ है। गोपाल विलास के मराल नन्दनन्दन गोपाल भी वृन्दावन के चञ्चला[3]ञ्चत-पयोद हैं। यह पयोद चपलाओं की कान्तियों से कान्ति मान बना रहता है। "[4]चपला द्युतिभिर्मधुभिद् मुमुदे।"

वस्तुतः त्रिगुणमयी माया के तीव्र प्रभाव के कारण ही इस हंस में इन तीनों वर्णों की आभा दृष्टिगत होती है।

यह अनन्त ज्ञानमय एवं प्रकाशमय परमात्मा हंस ही अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। वही जल में सन्निविष्ट है। वही अग्नि में रहता है। उसे जानकर ही मनुष्य मृत्यु से परिपूर्ण इस संसार समुद्र से पार हो सकता है। उसके दिव्य परम धाम की प्राप्ति के लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है—

[5]एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले संन्निविष्टः।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

राधा की इस श्रृङ्गार सरसी को अपनी लीलाओं से सतत आन्दोलित

---

१. श्वेताश्वतरोपनिषद्—३/१८। २. वही ४/४।
३. गोपाल विलास ३/३०।
४. गो० वि० २/५६। ५. श्वेताश्वतरोपनिषद् ६/१५।

रखने वाली गोपाङ्गनायें इस माया राधा का ही प्रसार है। 'ये गोप तरुणियाँ इस राधा की ही काय व्यूहा है। ये इस मराल को प्रसन्न करने के लिये नित्य नवीन लीलाओं का आयोजन करती हैं। राधा तथा गोपियों के विषय में भगवान कृष्ण शंकर से कहते हैं कि हे भूत भावन! ये राधा मेरी प्रिया है। इनके चारों ओर इनकी आज्ञा में रहने वाली इनकी सहस्रों सखियाँ हैं। इन सबको तुम उसी प्रकार नित्य समझो जिस प्रकार मेरा विग्रह है।

[1]इमां मत्प्रियां बिद्धि राधिकां पर देवताम्
अस्याश्च परितः पश्चात् सख्यः शत सहस्रशः।
नित्या सर्वा इमा रुद्र! यथाहं नित्य विग्रहः
सर्वमेतन्नित्यमेव चिदानन्द रसात्मकम्॥

इसीलिये ये अपने स्वरूप भूत गोपाल का अनुसन्धान करती हैं। इसे ही शङ्कराचार्य ने भक्ति कहा है—

[2]"स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते।"

गोपरमणियाँ उस औपनिषद पुरुष का अन्वेषण करने के लिये समस्त वृन्दावन में उनके विषय में पूछती है।

वृहदारण्यकोपनिषद् के ऋषि शुष्क ब्रह्म के उपासक हैं। ज्ञान के प्रचण्ड सूर्य ने उनके अन्तर रस को शुष्क बना दिया है। तभी तो वे शाकल्य से उस भाषा में पूछते हैं जिसे सरस नहीं कहा जा सकता। वे कहते हैं कि—[3]"तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि तं चेन्मे न विवक्ष्यसि मूर्धाते विपतिष्यति।" अर्थात् मैं तुम से उस औपनिषद पुरुष के विषय में पूछता हूँ। हे शाकल्य! यदि तुम नहीं बता सकोगे तो तुम्हारा मस्तक गिर जायेगा।

किन्तु गोप रमणियाँ रस ब्रह्म की उपासक हैं। वे औपनिषद पुरुष की खोज में माधवी के समीप जाती हैं। यह माधवी[4] माधव को अत्यन्त प्रिय है। माधव इसके वर्तुलाकार विशाल स्तवकों को देखकर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। गोपियाँ जानती हैं कि उस औपनिषद् पुरुष कृष्ण को कौन जानता है? क्योंकि उन्हें वही बता सकता है जो उनसे घनिष्ठ परिचय रखता है। अतः वे तुलसी के पास जाती है, वे जानती हैं कि तुलसी भगवत प्रिया है इसलिये इनसे अधिक कृष्ण के विषय में कौन बतायेगा? वे उस भाषा का प्रयोग नहीं करती जिसका

---

१. पदम पुराण पातालखण्ड ५१/७३–७५।
२. विवेक चूडामणि ३२ श्लोक।
३. वृहदारण्यकोपनिषद् ३/९/२६।
४. अयि माधवि.........मधुसूदनप्रिये। गो० वि० ३/२।

बृहदारण्यकोपनिषद् के ऋषि करते हैं। वे स्वयं को माधवी की दासी समझती है। ¹तुलसी को अपनी सपत्नी मानती हैं। फिर भी उनसे पूर्ण नम्रता और आत्मीयता के साथ प्रेम पूर्वक वार्तालाप करती है।

श्रीकृष्ण वृन्दावन के केलि कानन में रात्रि के समय गोपियों को अकेला देखकर कहते हैं कि हे देवियो! कुलाङ्गनायें घोर अन्धकार से भरी हुई अर्धरात्रि में इस कंटकाकीर्ण भयङ्कर बन में अकेले विचरण नहीं करती। तुम अपने पतियों को अकेला छोडकर छुरिका की धार के समान तीक्ष्ण कंकरीले पथरीले बन पथ पर चलकर यहाँ किस लिये आई हो? अतः तुम मेरी आज्ञा मानकर अपने घरों को लौट जाओ। गोपियाँ इसका उत्तर देते हुए ब्रजचन्द्र से कहती हैं कि हे मदन मोहन! जब इस वन में तुम विराजमान हो तब हमें यहाँ किसका भय हो सकता है? आप तो हमारे अपने हैं, फिर आपसे भय कैसा! भय तो दूसरे से होता है। "²द्वितीयाद्वै भयं भवति" अपने से भय कैसा और क्यों?

जहाँ तनिक भी द्वैत का आभास होता है, वहाँ अवश्य भय रहता है। द्वैत चिन्तन ही भय का कारण है। किन्तु गोप युवतियों को तो द्वैत से ही नहीं द्वैताभास से भी भय है। जैसे ही उन्हें केलि कानन में वंशी के पौष्प चाप को धारण करने वाले काम कंसारि का आभास होता है तभी वे भय के कारण विद्युल्लताओं की भाँति चञ्चल हो जाती है और अत्यन्त भयभीत सी बनी हुई उसके समीप पहुँचती है।

³मत्वारण्ये कसारार्ति कामं वेणुं पौष्पं चापम्।
तत्पादान्तं भीता याता विद्युन्माला लोला बालाः।

मुण्डकोपनिषद् के ऋषि कहते हैं कि जो अपने ही तेज से देदीप्यमान हैं और जो अणुओं से भी अत्यन्त सूक्ष्म है, जिसमें, समस्त लोक और उन लोको के निवासी स्थित हैं। वही यह अक्षर ब्रह्म है। वही प्राण है, वही मन और बाणी है, वही सत्य है, वही अमृत है। हे प्रिय शौनक! तुम उस भेदने योग्य लक्ष्य को भेदो।

⁴तदर्चिमद्यदणुभ्योऽणुच यस्मिल्लोका निहिता लोकिनश्च।
तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राण तदु वाङ्मनः तदेतत्सत्यंतदमृतं
तद्बेद्धव्यं सौम्य बिद्धि॥

इस अक्षर ब्रह्म को लक्ष्य बनाने के लिये महास्त्र के रूप में उपनिषद् में

---

१ तुलसि! त्वमसि प्रिया हरेः........मुकुन्द बल्लभा। गो०वि० ३/६।
२. बृहदाण्य० १/४/२। ३. गो० वि० २/३६।
४. मुण्डकोपनिषद् २/२/२।

वर्णित उपासना का धनुष लेकर अपनी आत्मा रूप बाण को खींच कर हे सौम्य ! उस परम अक्षर पुरुषोत्तम को ही लक्ष्य बनाओ और उसका भेदन करो।

'धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्धीयत।
आयम्य तद्भाव गतेन चेतसा लक्ष्य तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि॥[1]

इस मन्त्र में जिस आध्यात्मिक रूपक को चित्रित किया है, उसे अग्रिम मन्त्र में अधिक स्पष्ट करते हुए ऋषि कहते हैं कि प्रणव ही वह धनुष है। आत्मा ही बाण है अक्षर ब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य कहा गया है, प्रमाद रहित साधक के द्वारा ही वह बींधे[2] जाने के योग्य है। अत: उसे बींध कर बाण की तरह तन्मय अर्थात् लक्ष्यमय हो जाना चाहिये।

गोपाल विलास में राधा[3] भी मुरहर गोविन्द पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के लिये अपनी विकट भ्रकुटियों के ब्याज से काम कार्मुक को अपनी भुजाओं में उठाये हुए हैं। स्वर्गङ्गा के हार से सुशोभित सुर गिरि सुमेरु के शिखरों को धारण किये हुए सम्राट कामदेव की सेना बनी हुई पद्म लोचना राधा मदनमोहन मुकुन्द को लक्ष्य बनाकर उन पर अपने तीक्ष्ण कटाक्षों के बाणों की तीव्र वर्षा कर रही हैं। यहाँ प्रणव साक्षात् पर ब्रह्म परमेश्वर नन्दनन्दन गोविन्द हैं। वे ही गोपाङ्ग-नाओं के काम हैं और राधा के जीवन सर्वस्व हैं। अन्य गोपाङ्गनायें गोपाल के साथ रासलीला में व्यस्त है। किन्तु राधा मौन और शान्त है। उन सहस्रों[4] गोप-बालाओं में अकेली राधा ही पर ब्रह्म परमेश्वर अक्षर पुरुष को प्राप्त करने के लिये उसको अपना लक्ष्य बनाना चाहती है।

वहाँ उपनिषद् प्रतिपादित धनुष ओंकार है। यहाँ भी उपनिषद् घोषित 'एकोऽहं[5] बहुस्याम' की कामना करने वाले उसी कामब्रह्म का धनुष राधा उठाये हुए हैं।

---

१. मुण्डकोपनिषद् २/२/३।
२. प्रणवोधनु: शरोह्यात्माब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥ मुण्डकोपनिषद् २/२/४।
३. कान्दर्पं कार्मुकं मुरहर विजये बिभ्रतीभ्रूमिषेण
प्रोद्यच्चाम्पेय पाशौ किसलय रुचिरौ बाहुबल्ली वहन्ती।
स्वर्गङ्गा पूरहारा सुरगिरि कुचभृन्मन्मथोर्वीन्द्रसेना
राधा राजीव नेत्राकिरदितिनिशितान् सायकान् दृडिनपातान्॥
गो० वि० ३/१६।
४. मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये। गीता ७/३।
५. सोऽकामयत् बहुस्यां प्रजायेयेति। तैत्तिरीयोपनिषद् २/६/४।

प्रश्नोप'निपद् में यह ब्रह्म देखने वाला, स्पर्श करने वाला, सुनने वाला स्वाद चखने वाला, मत्त हो जाने वाला, जानने वाला और कार्य करने वाला विज्ञान मय आत्म पुरुष हैं। वह उस अविनाशी परमात्मा में प्रतिष्ठित है।

प्रश्नोपनिपद् के इस मन्त्र में निर्दिष्ट विज्ञानात्मा पुरुष "गोपाल विलास" में 'रसो वै सः' बने हुए हैं। उनका देखना, सूंघना आदि सब कुछ रसमय ही है। रस ब्रह्म नन्दनन्दन गोपाल अपनी माया राधा के प्रथम बार दर्शन कर आत्म विभोर हो जाते हैं। वे उस लीलामृत कदम्बक का नेत्रों से पान करते हैं। वे राधा की इस अदृष्ट पूर्व शृङ्गार सरसी में तैरने लगते हैं। राधा के इस अलौकिक सौन्दर्य, माधुर्य को देखकर माधव आश्चर्य चकित हो जाते हैं।

[2]"निपीय नेत्र पात्राभ्यां लीलामृत कदम्बकम्"

गोपाल विलास के रसिकेश्वर नन्दनन्दन गोपाङ्गनाओं का स्पर्श ही नहीं करते वे उनको आलिङ्गन में आबद्ध कर उनका चुम्बन करते हैं, उनके स्तनों और जंघाओं का मर्दन करते हैं। गोपाङ्गनाओं की वीणाओं और वेणुओं की मधुर स्वरावलि को सुनकर मुग्ध बन जाते हैं। यूथिका, मालती, माधवी की मदमाती गन्ध से मदमस्त रहते हैं।

"[3]चुचुम्ब' चन्दनाङ्कितस्तनद्वयोरुमर्दनः"
[4]ततस्तरल कङ्कणं कनक किङ्किणी कूजित
पदांगदक्षणत्कृतं मधुरवेणुवीणारवम्।
रसालरमणी करोत्तरलतालमालाकुलं
बभूवरमणी गणैः मुरहरस्य रासोत्सवः॥

गोपाल विलास में वे रसयिता ही नहीं है अपितु स्वयं रस भी बने हुए हैं। वे राधा की शृङ्गार सरसी के रस में निवास करते हैं। वे रसिक शिरोमणि गोपाल अभिसार के लिये अत्यन्त आतुर बनी हुई गोपियों को रसाप्लावित करने के लिये उनके साथ विविध रस पूर्ण लीलायें करते हैं। रास रस का पान करने के लिये वे सदैव आतुर रहते हैं। वे रस ब्रह्म गोप वधुओ के अधर रस का पान करते हैं—

[5]अधरी कुरुते रसं सुधायाः मधुरिमणावहिरन्तरेऽस्ति किं वा।
अधरे रदनक्षतं वधूनां मधुहन्ता कृतवानितीव बुद्ध्वा॥

---

१. ऐषः हि द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मत्ता, बोद्धा, कर्ता।
विज्ञानात्मा पुरुषः, स परे अक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते॥
प्रश्नोपनिषद् ४/९।

२. गो० वि० २/४१। ३. वही २/५२।
४. वही ३/४१। ५. वही ३/३८।

वे रस ब्रह्म रास रस का पान कर मदनोन्मत्त बनी हुई अपनी प्रेयसियों के साथ स्वयं भी मदोन्मत्त हो जाते हैं।

"[1]पीत्वा मत्ता मधुमधूपाली शीला बाला बलसहजेन"

राधा की अंग-संगिनी ये असंख्य गोप रमणियां इस विविध रूपिणी त्रिगुण-मयी माया राधा की ही अनन्त छाया मूर्तियाँ ही हैं। ये राधा के समान ही ख्याति वाली होने के कारण ही राधा की सखियाँ कही जाती हैं। ये राधा की सखियाँ हैं इसलिये कृष्ण की भी सखियाँ हैं। ये नित्य मायापति महेश्वर नन्दनन्दन को आनन्दित करने के लिये निरन्तर विविध लीलाओं के आयोजन में व्यस्त रहती हैं। ये गायन वादन नर्तन आदि के द्वारा गोपाल के साथ रास रचाती हैं, किन्तु गोपाल कृष्ण के सम्पूर्ण विलास का एक मात्र आधार राधा ही हैं। इसीलिये ये राधा उनकी प्रियतमा प्राणेश्वरी हैं। अपनी इस अनादि शक्ति योगमाया के बिना वे कुछ भी कर सकने में असमर्थ हैं। उनका सारा ऐश्वर्य सौन्दर्य माधुर्य उनकी शक्ति इस माया के कारण ही है। गीता में कृष्ण कहते हैं कि मैं अपनी इस त्रिगुण-मयी माया को अंगीकार करके पुनः-पुनः इस सम्पूर्ण भूत समुदाय को उत्पन्न करता हूँ।

"[2]प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः"

एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं कि मैं अपनी प्रकृति को आधीन करके योगमाया के द्वारा स्वय को प्रकट करता हूँ।

"[3]प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया"

यह माया उनकी अनन्य प्रिय सहचरी है। इसके बिना उनकी स्थिति एक क्षण के लिये भी सम्भव नहीं है। इसीलिये गोपाल विलास में कृष्ण अपनी इस शक्ति से पृथक् होकर अपने को निष्क्रिय, निरर्थक एवं निर्जीव अनुभव करते हैं। उसके अभाव में वे स्वयं को अत्यन्त दीन हीन एवं अनाथ समझते हैं। एक स्थान पर वे राधा के वियोग में कहते हैं कि हे राधे! क्या यह तुम्हारे लिये उचित है तुम मुझे यहाँ भयङ्कर वन में अकेला छोड़कर और मुझे अनाथ बनाकर कहीं बन में जा छिपो। यह तुम्हारा कैसा कौतुक है?

[4]कान्ते! किं ते समुचितमिद प्रान्तरे मामनाथं।
हित्वा लीना भवसि विपिने कौतुकं कीदृशं ते॥

राधा के बिना गोपाल स्वयं को अकेला देखकर अत्यन्त व्यथित हो जाते हैं और कहते हैं कि राधा के बिना जगत को आह्लादित करने वाली यह हिमकर करा राका प्रचण्ड सूर्य की भाँति दाहक बनी हुई मेरा जीवन लेने के लिये उद्यत है—

---

१. गो० वि० ३/६२।
२. गीता ६/८।
३. वही ४/६।
४. गो० वि० ७/११।

[1]'राधे ! राका हिमकर करा मण्डलं चण्डभानोः ।
न्यक्कुर्वन्ती जलज नयने ! जीवनं में हरन्ती ॥

इसी प्रकार माया भी अपने स्वामी मायी के बिना शून्यवत हो जाती है। वह जो कुछ करती है, उस परम पुरुष परमात्मा की अध्यक्षता में उन्हीं के लिये करती है। भगवान कृष्ण स्वयं कहते हैं कि मेरी ही अध्यक्षता में यह माया चराचर जगत को उत्पन्न करती है। मेरे बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं।

[2]"मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्'

माया भी स्वयं कहती है—कि अपने प्रियतम के बिना मैं किसी के भी उपयोग की वस्तु नहीं हूं। अब तो मैं उनके बिना केवल मात्र अग्नि का ही भोग्य बनकर रह गई हूं।

[3]'विना भवन्तं यदनन्य योग्यं।
भवेन्मदङ्गं ज्वलनोपभोग्यम्।

ब्रह्म के बिना माया विधुरा की स्थिति में आ जाती है। उसका सारा सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य, अलङ्कार शृङ्गार आदि सब समाप्त हो जाते हैं। समस्त शृङ्गार प्रसाधन उसके लिये विकर्षण के कारण बन जाते हैं। तभी तो वियोग के क्षणों में कृष्ण के द्वारा दी गई गज मुक्ताओं की माला राधा को भुजंगी की भांति भयङ्कर प्रतीत होती है।

[4]'हारावलि से हृदयेकृतासीत् त्वया हरे ! या गजमौक्तिकानाम्।
सा नाथ नित्य भुजगी भवन्ती दुनोति चित्तंवत् किं विधेयम् ॥

सुगन्धित पदार्थ कस्तूरिका आदि धूमलता की भांति पीड़ित करने लगते है।

[5]'न्यस्ता सखीभिस्तनताप शान्त्यै कस्तूरिका धूमलतैव साभूत्।

अपने प्रियतम परमात्मा के बिना राधा को सम्पूर्ण प्रकृति का वैभव श्रीहीन सौन्दर्य रहित एवं माधुर्य से शून्य प्रतीत होने लगता है।

ब्रह्म जिज्ञासुओं ने ध्यानावस्थित होकर अपने गुणों से आच्छादित [6]देवात्म-शक्ति का अर्थात् परमात्मदेव की स्वरूप भूता अचिन्त्य शक्ति का साक्षात्कार किया। लीलामय परमात्म स्वरूप ब्रह्म इसी अपनी त्रिगुणमयी माया से अपने को छिपाये रखते हैं। अद्वैताचार्यों ने इस माया की दो शक्तियाँ मानी हैं, जिनके द्वारा माया अपने जनन, भरण, मरण आदि समस्त कार्यों का सम्पादन करती हैं। वेदान्ती उन शक्तियों को आवरण और विक्षेप के नाम से अभिहित करते हैं। इनमें आवरण

---

१. गो० वि० ७/१६।
२. गीता ९/८।
३. गो० वि० ४/५३।
४. गो० वि० ४/२५।
५. वही ४/२६।
६. ते ध्यान योगानुगता अपश्यन्।
देव त्मशक्ति स्वगुणैः निगूढाम् ॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् १/३।

शक्ति ब्रह्म को आवृत किये रहती है। जिस प्रकार प्रचण्ड सूर्य के तेज से ही मेघ मालाओं की सृष्टि होती है, किन्तु वही काली मेघावली उस प्रखर सूर्य मण्डल को ढक लेती है। इसी प्रकार त्रिगुणमयी माया की यह आवरण शक्ति सच्चिदानन्द घन परमात्मा को अपने में आवृत कर लेती है। सरस्वती जी माया की इस आवरण शक्ति का छन्दोमयी वाणी में आलङ्कारिक शैली के साथ चित्रण करते हुए कहते हैं कि माया [1]राधा ने अपने विपुल विस्तार से उस चैतन्य घन परमात्मा गोपाल के विग्रह को अपने उत्तुंग उरोजों से ढक लिया और भुजाओं में जकड़ लिया।

इस विस्तृत विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सरस्वती जी का यह महाकाव्य गोपाल विलास एक आध्यात्मिक संगीत है, जिसे उन्होंने अद्वैत वेदान्त के पर्यावरण में ही प्रस्तुत किया है। गोपाल विलास वस्तुतः उपनिषदों का काव्यमय कलापूर्ण सुधारस सम्भृत संस्करण है जो आलङ्कारिक भाषा में असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य ध्वनि के माध्यम से साहित्य जगत में अवतीर्ण हुआ है। इसका एक-एक शब्द अध्यात्म रस से अभिसिक्त हैं। यहाँ गोपाल विलास के कुछ प्रसंगों के ही आध्यात्मिक रहस्य को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

---

१. पीनस्तनावर्जितपूर्वविग्रहं, कन्दर्पदर्पात् भुजवल्लिनिर्जितम्।
निपीडयन्ती कुपितेव माधवं राधा दधाराङ्कुरिताङ्ग बल्लरीम्॥
गो० वि० २/२३।

८ गोपाल विलास का सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्याङ्कन

संस्कृतिः

किसी भी व्यक्ति अथवा समाज की उन मान्यताओं तथा विचारों को संस्कृति कहा जाता है जो जन्म-जन्मान्तर से संचित होकर उसमें एक विशेष प्रकार का आन्तरिक व्यापार सन्निविष्ट कर उसे एक विशिष्ट प्रकार का व्यक्तित्व प्रदान करते हैं, जो उसके समस्त जीवन में उसके द्वारा सम्पादित प्रत्येक क्रिया कलाप में प्रतिबिम्बित होता है। अधिक व्यापक रूप में कह सकते हैं कि संस्कृति जीवन की एक विशेष पद्धति है जिसकी उपलब्धि मनुष्य व्यष्टि तथा समष्टि के रूप में निर्माण करता है। यह मानव की एक जटिल एवं उत्कृष्टतम बौद्धिक एवं हार्दिक व्यापार परम्परा है। जो उसके जीवन मूल्यों को अपनी संस्कृति के माध्यम से ही निश्चित एवं स्थिर करता है। किसी भी मनुष्य के उसके अपने जीवन का मापदण्ड उसकी संस्कृति से ही निर्धारित होता है। उसके जीवन दर्शन की परिभाषा एवं व्याख्या ही उसकी संस्कृति है।

भारतीय संस्कृति के सूत्रधारों, उन्नायकों एवं संरक्षकों ने मानव जीवन को सर्वोत्कृष्ट बनाने के लिये जिन सिद्धान्तों की स्थापना की उनमें सर्व प्रथम वर्णव्यवस्था का निर्माण करना है। उन्होंने समस्त मानव समाज को चार वर्णों के अन्तर्गत सन्निहित कर उनके पृथक्-पृथक् कार्य क्षेत्रों का विभाजन किया। समाज में ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए मनुमहाराज ने ब्राह्मण के कर्तव्यों का निर्धारण किया है—

[1]उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्येष्ठयात् ब्रह्मणश्चैव धारणात्।
सर्वस्यास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः॥
[2]अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहञ्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥

ब्राह्मण सृष्टि के प्रारम्भ से ही भारतीय समाज की सम्पूर्ण श्रद्धा एवं सन्मान का केन्द्र रहा है। समाज के प्रत्येक धार्मिक कृत्य का सम्पादन सूत्र ऋग् काल से आज तक उसी के पवित्र हाथों में पूर्णतया सुरक्षित रहा है। इसीलिये गोपालविलास

---

१ मनुस्मृति १/९२। २. वही १।८८।

काव्य में गोपालकृष्ण के पिता ब्रजराज नन्द सनातन परम्पराओं को मानने वाले परम धार्मिक गृहस्थ के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। वे पुत्र जन्म के इस असाधारण अवसर पर पितृ यज्ञ एवं देव यज्ञ आदि का सम्पादन कराने के लिये अत्यन्त श्रद्धा के साथ अपने महल में ब्राह्मणों को आमन्त्रित करते हैं। सम्पूर्ण याज्ञिक क्रिया कलाप के समाप्त हो जाने के पश्चात् अपने पुरोहित वर्ग को साथ लेकर अपने पुत्र का प्रथम बार मुखावलोकन करते हैं। नन्द अपनी कुल परम्परानुसार वस्त्र आदि दान करते हुए द्विज गणों के साथ पर्याप्त प्रसन्न हो रहे हैं।

'नन्दोऽपि विप्रनिबहैः पितृदेवकृत्यम्
कृत्वा, विधाय तनयस्य मुखावलोकम्
दत्वा स हेमतिल पर्वत वस्त्र पूगान्
पूर्णो बभौ द्विजगणैः शरदीव चन्द्रः ॥

भगवान वेद प्रभु की आज्ञा से भारतीय संस्कृति में वर्ण व्यवस्था के साथ ही साथ द्विज होने के कारण ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्यों के लिये कुछ संस्कारों को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया गया है, जिनका विस्तृत विवरण वैदिक साहित्य के गृह्य सूत्रों में प्राप्त होता है। द्विज की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है—"द्वाभ्यां जन्म संस्काराभ्यां जायते इति द्विजः" बिना संस्कारों के द्विज को शूद्र की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है। इसीलिये ब्रज के स्वामी नन्द भी तात्कालिक प्रसिद्ध धर्माचार्य महर्षि गर्ग को अपने महल में अपने पुत्रों के जातकर्म तथा नामकरण संस्कारों का सम्पादन कराने के लिये आमन्त्रित करते हैं।

'एवं विधाय तनयस्य सजात कर्म।
गर्गेण राम सहितस्य च नाम कर्म ॥

चारों वर्णों का समन्वित स्वरूप ही भारतीय संस्कृति का चरम सौष्ठव है। शरीर के अङ्गों की भांति पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हुए भी ये एक दूसरे के पूरक एवं अन्योन्याश्रित बने हुए हैं और इसी रूप में भारतीत समाज की एकात्मकता को प्रकट करते हैं। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक वर्ण को समान सम्मान प्राप्त है। इसीलिये नन्द अपने पुत्र के जन्मोत्सव पर अत्यन्त प्रसन्न बने हुए, जहाँ वे महल में आये हुए ब्राह्मणों को दान देकर सम्मानित करते हैं वहाँ क्षत्रिय राजकुमारों से लेकर चर्मकारों तक को भी स्वर्णाभूषणों से लाद देते हैं—

'नन्दः प्रमोद वलितः पुनराकुमारम्।
आचर्मकारमकरोत्कनकाचिताङ्गान् ॥

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' यह भारतीय संस्कृति का चिर-

२ गोपालविलास १.५६।
३. वही १/५७।
१. वही १/६०।
४. मनुस्मृति ३/५६।

कालीन उद्घोष रहा है। इस मान्यता के अनुसार अर्धरात्रि मे वृन्दावन के केलि कुञ्जों में व्रज बालाओं को अपने समीप आया हुआ देखकर नन्दनन्दन उन सबका स्वागत करते हैं और उन्हें पूर्ण सन्मान प्रदान करते हैं। किन्तु साथ ही अपनी सहज मधुर वाणी में यह भी पूछते हैं कि हे उच्च कुलों में उत्पन्न व्रज बालाओ ! तुम इतनी रात्रि में इस विकट कंटकाकीर्ण वन में किस उद्देश्य से आई हो। भारतीय संस्कारों के अनुसार महिलाओं का इस प्रकार का आचरण नितान्त निषिद्ध एव निन्दनीय है। ऐसी स्थिति में भारतीय मर्यादा के एकमेव रक्षक नन्दनन्दन ने उन्हें एक विज्ञ पुरुष की भाँति सत्परामर्श देते हुए कहा कि अर्ध रात्रि में सती साध्वी कुलबालायें अपने पतियों का परित्याग नहीं करती। अतः तुम मेरी वाणी पर ध्यान देकर तत्काल अपने पुत्रों तथा पतियों के समीप अपने घरों को लौट जाओ—

'स्वागताः प्रियतमा मुरवैरि पृच्छतिस्म।
तदनु प्रियवाचा कंटकौघ कठिनेमृदुपादाः।
कानने निशि कथं कुल बालाः।
दृष्ट्वा वसन्त तिलकं विपिन समन्तात्।
इन्दोः करैश्च रुचिरं पुलिनं तटिन्याः।
आकर्ण्य मद्गिरमितः प्रतियात गेहम्।
नक्तं प्रियं न प्रियाः परित्यजन्ति॥

यही घटना यज्ञ पत्नियों के साथ भी घटती है। वे गोपाल के आदेश से उनके सखा ग्वाल बालों के लिये विविध प्रकार के मधुर पक्वान्न मणिजटित पात्रों में लेकर गोपाल के समीप आती हैं। अपने जीवन में प्रथम बार उस सौन्दर्य माधुर्य निधि माधव के मनोमुग्धकारी दर्शन करने के पश्चात् वे उस प्रेमाब्धि में पूर्णतया मग्न हो जाती हैं। जब उन्हें आये हुए पर्याप्त समय हो गया तब कृष्ण ने उन्हें अपने घरों को चले जाने को कहा। क्योंकि वे जानते हैं भारतीय मर्यादा के अनुसार एकान्त वन में पुरुषों के मध्य कुल बधुओं का क्या काम ? नन्द नन्दन बहुत समय तक महिलाओं को अपने घरों से बाहर एकान्त जंगल में रहना ठीक नहीं समझते। अतः कृष्ण उन्हें घर चले जाने की आज्ञा देते है और ऋषि पत्नियाँ भी उनके कहने से अपने घरों को चली जाती हैं—

'दत्वान्न मणिभाजनैः वहुरसं सौन्दर्य पाथो निधौ।
संतर्प्याक्षियुगं मनश्च मधुपं पादाम्बुजे श्रीपतेः॥
निष्कामाः पितृभर्तृ पुत्र सुहृदानन्देऽपि भक्त्याशया।
विप्राणां कुलपालिका मधुरिपोर्वाचागृहं प्रापिताः॥

---

१. गोपालविलास २।४३।४४। २. वही १।८०।

[1]मनु महाराज ने जीवन में धर्म के साथ-साथ अर्थ और काम की साधना करते हुए सच्चिदानन्दमय परम प्रभु परमात्मा से सान्निध्य प्राप्त करना मानव जीवन का चरम लक्ष्य निर्धारित किया है। इस प्रस्तुत महाकाव्य का लक्ष्य भी भगवान विष्णु के उस परम पद को प्राप्त करना ही है।

[2]तथाप्येतत्काव्यं परिचरति विष्णोः पदम्।

विष्णु के परम पद को प्राप्त कर संसार की वासना से पूर्णतयया मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करना ही भारतीय ऋषियों ने मानवमात्र का चरम पुरुषार्थ निश्चित किया है। विष्णु के वे पद दिव्य कभी न क्षीण होने वाले अमृत से परिपूर्ण स्वधा से आश्रितों को पूर्ण चन्द्रमा की भाँति आह्लादित करने वाले हैं।

[3]यस्यत्री पूर्णा मधुना पदानि।
अक्षीयमाणा: स्वधया मदन्ति॥

भारतीय संस्कृति के जन्म दाताओं ने जिन मूल-भूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है उनमें सर्व प्रथम इस नाशवान जड़ जगत के पीछे एक सर्वप्रभुता सम्पन्न नित्य चैतन्य सत्ता की मान्यता को स्वीकार किया है। जो [4]"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्" के अनुसार इस समस्त सृष्टि के कण-कण में निवास करती है। उसी सत्ता के प्रतिनिधि सच्चिदानन्दमय परमात्मा गोप वेशधारी लक्ष्मीपति विष्णु की आराधना का उपक्रम इस महाकाव्य गोपाल विलास के माध्यम से किया गया है। व्रज में निवास करने वाली गोपरमणियाँ अपने प्राणाधार परम प्रिय गोप वेशधारी सृष्टि सम्राट मुकुन्द की उपासना में अहर्निश संलग्न रहती हैं। उनके जीवन के समस्त कार्य उन्हें प्रसन्न करने के लिये ही होते हैं। वे अपने प्राणेश्वर लीलाधाम-घनश्याम की सतत सेवा करके ही परमानन्द का अनुभव करती है।

[5]बसन्त मल्लिकामोदशालिन्योगोप बल्लभाः।
लीलाकरण लक्ष्मीश शीलनेन मुदं बधुः॥

सरस्वती जी जैसे अद्वैताचार्य भी उनकी इस तैलधारावत अनन्यभक्ति पर इतने मुग्ध हैं जिससे वे अपने को उनके हृदय के समान बनाने की कामना करते हैं। जो आलम्बन उनके चित्त का है वैसा ही अपने चित्त का बनाना चाहते हैं।

[6]व्रज देवीषु च स्पष्टं दृष्ट रति चतुष्टयम्।
तच्चित्तालम्बनत्वेन स्वचित्तं तादृश भवेत्॥

---

१. मनुस्मृति ४/११३।
२. गोपालविलास ११/८९।
३. ऋग्वेद १/१५४।
४. ईशावास्योपनिषद् १।
५. गो० वि० ३/ ५।
६. भक्ति रसायन २/७।

हिमालय से लेकर इन्दु सरोवर तक के इस पवित्र धराधाम में अनादि काल से निवास करने वाला यह हिन्दु समाज अपने इस पवित्र भू-भाग को भगवान का लीला क्षेत्र मानता आया है क्योंकि इसका निर्माण उन्हीं के द्वारा उन्हीं की कृपा से हुआ है अतः इससे उन्हें असीम प्रेम है—

[1]हिमालयात्समारभ्य यावदिन्दु सरोवरम् ।
तं देव निर्मितं देशं हिन्दुस्थानं प्रचक्षते ॥

इसी लिये यहाँ के जन-जन की अनन्त काल से यह मान्यता रही है कि जब-जब भी इस वसुन्धरा पर प्रबल आसुरी शक्तियों का प्रचण्ड ताण्डव आरम्भ होता है और धर्म का ध्वंस होने लगता है, तब-तब भगवान स्वयं इस अपने देश में धर्म का अभ्युत्थान करने के लिये अवतीर्ण होते हैं और इस देश को राक्षसों से मुक्त करते हैं। यहाँ आकर वे धर्म की आज्ञानुसार जीवन की पवित्र साधना में रत व्यक्तियों की रक्षा करते हैं और उनकी सहायता करते हैं और पाप परायण, दुष्कृत्यों में संलग्न अधर्मी दुष्ट दानवों का संहार करते हैं।

[2]यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनांविनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

भारतीय जनमानस में अनादि काल से व्याप्त इस विश्वास के आधार पर ही 'गोपाल विलास' में, क्षीर सागर में शेष शय्या पर शयन करने वाले पुराण पुरुष भगवान विष्णु प्रथम कंस के कारागार में चतुर्भज रूप में तदनन्तर नन्द के यहाँ गोकुल में प्रादुर्भूत होते हैं। आसुरी शक्तियों से व्याकुल गोकुल में दैत्य कुल को समाप्त कर गोकुल वासियों को आश्वस्त करते हैं। तदनन्तर वृन्दावन में निवास करते समय भी भगवान मुकुन्द असुर निकन्दन और धर्म स्थापना के कार्य में ही व्यस्त रहते हैं—

[3]सर्वर्तु सर्वकुसुमैः सुविराजमानं वृन्दावनं बलयुतः सखिभिः प्रविश्य ।
सञ्चारयन् तरणिजापुलिनेषुवत्सान् वत्साद्य धेनुकबकान्निजघानकृष्णः ॥

[4]नागान्निगृह्य भृतकालकराल रूपान् ।
कृत्वा कलिन्दतनयाममृत प्रवाहाम् ॥

---

१. कल्याण, हिन्दु संस्कृति विशेषाङ्क पृ० ७३ ।
२. गीता ४/७—८ ।
३. गोपाल विलास १/७१ । ४. वही १/७३ ।

भारतीय संस्कृति के आधार भूत श्रद्धा केन्द्रों में गौ को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतीय जन मानस गौ में अपनी पूर्ण श्रद्धा रखता है और उसे मातृ तुल्य मानता है प्रत्येक यज्ञानुष्ठान में जो हविष्य देवताओं को समर्पित किया जाता है वह गायों से ही प्राप्त होता है। इसीलिये भारतीयों ने उसे 'हविर्दुघा' कहा है। भारतीयों का कोई भी संस्कार कोई भी धर्मानुष्ठान बिना पञ्चगव्य के सम्पन्न नहीं होता।

इस महाकाव्य के नायक परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्ण स्वयं गोपाल बने हुए हैं। सद्यजात श्रीकृष्ण को लेकर जब वसुदेव नन्द महल में पहुँचते हैं तब प्रवेश करते ही उन्हें वहाँ सर्व प्रथम हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ वृषभों के साथ सोते हुए गायों के दर्शन करते हैं।

[1]नन्दव्रज जठर गूढ़ विषाण कर्ण वक्त्रैः।
प्रसुप्त वृषभैः सह धेनु वृन्दैः॥

वस्तुतः नन्द व्रजराज का नाम नहीं है यह उनकी उपाधि है जो नव लक्ष गायों का स्वामी होने के कारण उन्हें प्राप्त हुई है। समस्त व्रज में गायों का ही वैभव दिखाई देता है। नन्दनन्दन कृष्ण तो गोवत्सों के साथ क्रीड़ा में इतने लीन हो जाते हैं जिससे अपना खाना-पीना भी भूल जाते हैं। इनके साथ खेलने की कामना से वे माता के बुलाने पर भी महल में नहीं जाते और उनकी आज्ञा की भी अवहेलना कर देते हैं। महल के बाहर नन्दनन्दन गोपाल गोवत्सों के साथ मनोरञ्जन कर रहे हैं तभी एक वृद्धा गोपी कृष्ण को पुकार कर कहती है कि माता यशोदा तुम्हें बुला रही हैं। महल में चल कर दधिमोदक तथा दुग्ध पदार्थों का भोजन करो। किन्तु राम श्याम दोनों को ही वत्सों के साथ खेलने में अधिक रस आ रहा है। अतः वे उसकी बात नहीं सुनते और अपने दोनों हाथों से वत्सों की पूंछ पकड़ कर दोनों भाई उनके पीछे-पीछे भागते हुए चले जाते हैं—

[2]आगच्छ वत्स दधिमोदक दुग्ध सारान्।
भुंक्ष्वेति गोपजरठी जननी वचोभिः॥
सम्वारितः कर युगेन गृहीत पुच्छान्।
वत्सान्, बलेन सहितो निससार कृष्णः॥

गोपाल कृष्ण को गोपालकों और गोवंश से कितना असीम स्नेह है, इनका परिचय तब मिलता है जब ब्रह्मा वन में विचरण करते हुए गोवत्सों तथा गोवत्सपों का हरण कर लेते हैं। कृष्ण उन्हें अपना परिचय देते हैं। तब ब्रह्मा अपने इस अप

---

१. गोपालविलास १/२४।
२. गो० वि० १/६४।

राध पर लज्जित हो जाते हैं और भावावेश में उनका कन्ठ अवरुद्ध हो जाता है। तदनन्तर रोमाञ्चित बने हुए ब्रह्मा लक्ष्मी पति गोपाल की गद्‌गद वाणी से प्रार्थना करते हैं और उन्हें पूर्ण सन्तुष्ट करने के पश्चात् अपने धाम को चले जाते हैं—

[1]वत्सान् जहार विपिने चरतः कदाचित् ।
ब्रह्मा हरेः सहचरानपि गोप बालान् ॥
तं वत्स वत्सप वपुर्धरमिन्दिरेशम् ।
तुष्टाव गद्‌गद गिरा पुलकाञ्चिताङ्गः ॥

माता यशोदा जानती हैं कि गोपाल गोचारण रस रसिक हैं। अतः वे प्रातः काल जगाते हुए अपने पुत्र मोहन से कह रही हैं कि हे पुत्र ! उठो भोर हो गया है शीघ्र शय्या छोड़ो और स्नानादि करके प्रातः कालीन कलेवा करने के पश्चात् अपने मित्र ग्वालों के साथ गोचारण के लिये वृन्दावन जाना—

[2]त्यजाशु शय्यामभिषेकमाचर
प्रभात भोज्यानि गृहाण पुत्रक !
सहस्र गोगोभिरलङ्कृतं वनम्
प्रयाहि गोभिः सखिभिः समन्ततः ॥

भारतीय संगीत कला का उद्‌भव सामवेद से माना जाता है। इसीलिये संगीत शास्त्र चिरकाल से भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख अंग बना हुआ है। यज्ञानुष्ठानों के अवसर पर उद्‌गाता ऋत्विजों द्वारा गाये जाने वाले सामगीतों से लेकर साधारण से साधारण पर्वों एवं उत्सवों तक में संगीत का प्रयोग देख कर यह सिद्ध हो जाता है कि संगीत अनादि काल से भारतीय संस्कृति का एक अपरिहार्य अंग बना हुआ है।

भारतीय संगीत शास्त्र में चार प्रकार के वाद्यों का वर्णन हुआ है, किन्तु सर्वाधिक प्रशंसा वीणा की ही की जाती है। वीणा के माध्यम से श्रुतियों का चमत्कार उत्पन्न किया जा सकता है। स्वरों से उत्पन्न होने वाली श्रुतियों के आधार पर ही कोमल द्रुत विलम्बित आदि रागों की सृष्टि की गई है, जिनके पूर्णतया ज्ञान एवं निरन्तर अभ्यास से ही भारतीय संगीत की आत्मा का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

गोपाल विलास की गोपियाँ केवल गायन में ही नहीं वादन एवं नर्तन में भी सिद्ध हस्त हैं। जिनके गायन वादन से विश्व विमोहिनी वंशी के स्वामी मदन-मोहन गोपाल भी मुग्ध बने रहते हैं। वह संगीत नृत्य और वे वाद्य यन्त्र कितने दिव्य रहे

---

१. गोपाल विलास १/७२।
२. वही ११/४६।

होगे जिनकी लय और तान पर थिरकती हुई गोप रमणियां, गोपीरमण माधव को भावविह्वल बना देती थीं।

चार प्रकार के वाद्यों में तन्त्रीगत, चरमाबद्ध, रन्ध्र युक्त, धातुनिर्मित वाद्य आते हैं। तन्त्रीगत वाद्य यन्त्रों में सर्व प्रमुख बीणा का स्थान है। गोपाल विलास की गोपियां संगीत में चारों प्रकार के वाद्यों को प्रयुक्त करती हैं और सब में प्रवीण हैं। बीणा, गोपाङ्गनाओं और गोपाल दोनों को अत्यन्त प्रिय है। दोनों ही बीणा के तत्व को जानते हैं। वीणा का रहस्य प्रत्येक व्यक्ति नहीं जानता। महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि जो वीणावादन का रहस्य जानते हैं और श्रुतियों की जाति पहचानने में निपुण है और ताल जानने वाले हैं वे बिना परिश्रम के ही मोक्ष पा लेते हैं—

[1]वीणावादन तत्वज्ञः श्रुतिजाति विशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं सगच्छति॥

गोपाल विलास में अनेक स्थानों पर बीणा वादन का आनन्द प्राप्त होता है। गोपाल कृष्ण के जन्मोत्सव पर सभी नर नारी आबाल वृद्ध नन्द महाराज को बधाई देने महल में जा रहे हैं। वारांगनायें भी ब्रजराज नन्द का, पुत्र रत्न की प्राप्ति पर, महल में अभिनन्दन करने पहुँचती हैं। वे संगीत तन्त्र में अत्यन्त निपुण हैं। नृत्य के साथ-साथ वे वेणु और वीणा पर मधुर गीतों का आलाप करती हुई महल के श्रोताओं को मुग्ध बना रही हैं—

[2]वाराङ्गनाश्च ननृतुः कृत नेत्र भङ्ग्यः।
सङ्गीत तन्त्र निपुणाः पुरटोज्ज्वलाङ्ग्यः॥
काञ्ची वलत्कनक कङ्कण बेणु बीणाः।
मञ्जीर नादनिचितादि वमञ्चयन्त्यः॥

संगीत की स्वर लहरियों पर थिरकती हुई गोपरमणियां नन्द नन्दन के केलि कानन में रास रस की वर्षा कर रही हैं—

[3]ततस्तरलकङ्कणं कनक किङ्किणी कूजितम्
पदाङ्गद झणत्कृतं मधुर वेणु वीणा रवम्
रसाल रमणी करोत्तरल तालाकुलं
वभूव रमणी गणैर्मुरहरस्य रासोत्सवः॥

गोपाल विलास की राधा बीणावादन में स्वयं अत्यन्त निपुण हैं। दशम सर्ग में भगवान् शङ्कर की आराधना के पश्चात् स्वर मण्डल से सम्भूत अपनी वीणा का सम्मूर्च्छन करती हुई काम बाणों से आहत नन्दनन्दन के हृदय को सगीत सागर की लहरियों से व्याप्त कर देती हैं—

---

१. याज्ञवल्क्य स्मृति ३/११/८॥
२ गो० वि० १/५४।
३. वही ३/४१।

'सम्मूर्छयन्ती स्वरमण्डलाभृतां
बीणां समादाय चकार राधिका
आनङ्गवाणाकुल नन्दनन्दनं
संगीत पाथोनिधि पूरसङ्गतम् ॥

समस्त जगत् भारतीय बीणा के चमत्कार से परिचित है। गोपाल विलास के कवि भी बीणा पर अत्यन्त मुग्ध हैं। अतः वे अपने इस महाकाव्य की नायिका राधा को ही कृष्ण की बीणा बना देते हैं, जिससे जब वे चाहें तब इच्छानुकूल संगीत स्वरावलि निकाल सकें।

कृष्ण मिलन के लिये राधा दूतिका के साथ जा रही है। इसी समय दूती बन-पथ पर जाते हुए राधा के रूप लावण्य की प्रशंसा करते हुए कह रही हैं कि सर्व प्रथम राधा के शरीर में कामदेव ने स्तन कलशों की दो तूंबियां बनाकर फिर उनसे हरि रमणी राधा को स्वर्णमयी बीणा बनाया, तदनन्तर राधा के शरीर पर उत्पन्न रोमाञ्चों को संगीत की श्रुतियों के रूप में रचा—

'बीणां किं कनक मयीं विधाय राधां
एतस्यास्स्तनकलशौ विधाय तुम्ब्यौ
सङ्गीते मधुरणितां तनु रुहालीं
तन्त्रीं तां हरि रमणीं चकार कामः ॥

गोपाङ्गनायें महर्षि भरत की नाटच कला में पूर्ण निपुण हैं। वे इसके प्रत्येक रहस्य की ज्ञाता हैं। नील नीरद गोपाल के चारों ओर केकी शिखण्ड मण्डित गोपाङ्गनायें नृत्य कर रही हैं। यह उनका नृत्य नाटचाचार्य भरत मुनि के निर्देशों के अनुसार है—

'स्वजनि जगती जयिनं हृदये समवाप्य मुदं परमां गमिता।
भरतस्य नये सुधियो मधुरं हरिणा सहिता ननृतुर्वनिताः ॥

संगीत में तन्त्रीगत वाद्यों के अतिरिक्त अनेक चर्मावद्ध वाद्यों का प्रयोग भी गोपालविलास में प्रचुरता से हुआ है। चर्मावद्ध वाद्यों में सर्व प्रसिद्ध मृदङ्ग माना जाता है। कृष्ण कीर्तन के लिये इसका भारत में सर्वत्र प्रयोग आज भी होता है। इसका शरीर मृत्तिका से निर्मित होता है जिसे चर्म से मंढा जाता है। कृष्ण जन्मोत्सव पर गोपियाँ नन्द महल में भेरियों मृदङ्गों दुन्दुभियों, वेणु वीणाओं पणवों और ढक्काओं की धुन पर नृत्य कर रही हैं और अपने मधुर गायन से श्रोताओं को मुग्ध बना रही हैं।

---

१. गो० वि० १०/१३।
२. वही ६/३४।
३. गोपालविलास २/६०।

[1]भेरी मृदङ्ग दर दुन्दुभि वेणु बीणा
कांस्यांश्च ताल पणव ध्वनिभिः समन्तात् ।
ढक्का रवैश्च निचितं व्रज सुन्दरीणां
सङ्गीत नृत्य सुभगं भवनं बभूव ।।

शिव मन्दिर में जाती हुई राधा को दूती निर्देश देती है कि जब तक तुम भगवान शिव की आराधना करती हो मैं तुम्हारे प्रियतम नन्द नन्दन को केलिकानन में तुम्हारे आने की सूचना देकर आती हूँ तब तक तुम्हारी सखियाँ यहीं मधुसूदन मदन मोहन माधव के मन्मथ को उत्पन्न करने और उद्दीप्त करने के लिये मृदङ्गों, विशाल ढोलों तथा शंखों आदि वाद्यों के साथ अपना उत्तेजक गायन आरम्भ करें ।

[2]भावन्मृदङ्गानक शंखनिस्वनैः
उद्दीपयन्त्योमधुमाथि मन्मथम् ।
गायन्तु सख्यस्तव काननस्थिता
नन्दस्य सूनोश्चरितामृतं मुदा ।।

तीसरे प्रकार के रन्ध्र युक्त वाद्यों में वंशी और वेणु आती हैं वेणु का वर्णन ऊपर किया जा चुका है तथा वंशी के विषय में तृतीय अध्याय में पर्याप्त लिखा जा चुका है ।

चौथे प्रकार के धातु निर्मित बाद्य हैं जिन्हें संगीत शास्त्र में 'घन' कहा गया है । उनके अन्तर्गत कांस्य ताल, मञ्जीर आदि आते हैं जो धातु से बनते हैं । इनका प्रयोग भी गोपाल विलास में किया गया है ।

भारतीय संगीत में स्वरों के आधार पर रागों का निर्माण हुआ है, जिनमें से अनेक प्रसिद्ध एवं अति प्राचीन रागों का वर्णन गोपाल विलास में प्राप्त होता है ।

रास को अधिक रस पूर्ण बनाने के लिये कोई गोपतरुणी अपनी मृदु वाणी में ग्राम राग गा रही है, कोई मस्त बनी हुई उपराग का आनन्द पूर्वक आलाप कर रही है और कोई अन्य कोकिल कण्ठी अंग राग में अपने प्रियतम नन्दनन्दन का गुण गान कर रही है ।

[3]कापि गोप तरुणी मृदुबाणी
ग्राम रागमपराप्युपरागम्
अंगरागमपराषिक कण्ठी
गायतिस्म मुरजित् प्रियकामा ।।

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक 10371

---

१. वही १/३९ । २. वही १५/२२ ।
३. गोपालविलास ३/४६ ।

अपने वेणु वादन से पञ्चम राग को तुच्छ बना देने वाले कान्ति कदम्ब नन्दनन्दन गोपाल ने काम की विविध कलाओं से व्याकुल बनी हुई गोप रमणियों को अन्तर राग से पूर्णतया तृप्त बना दिया ।

[1]वेणुरवोजित पञ्चमरागः पञ्चशरस्फुट कान्ति कदम्बः ।
कामकलाकुल गोपवधूनामन्तारागमपूरयदीशः ।।

विविध प्रकार के नृत्यों का वर्णन भी गोपालविलास में हुआ है। रासलीला में काम से उन्मत्त बनी हुई गोपरमणियाँ नृत्य में वेसुध बनी हुई माधव को आनन्दित कर रही हैं । उनका यह नृत्य अत्यन्त भव्य है। यह नृत्य मण्डल बनाकर किया जाता है ।

[2]झणज्झणदितिक्वणद्वलय किङ्किणी नूपुरे
रुकन्तक तथै तथै धिग् धिगित्यधीर ध्वनौ ।
चटच्चटदिति प्रकट नाददेशे नटन्
मुरारिरपि रतिमपूरि पृथिवीं मुहुः ॥

सर्वोत्तम शील की अवतार गोपबालायें अपने प्रियतम गोपाल के साथ रास रस का पान करने के पश्चात् मदनोन्मत्त हो रही हैं । मदन मोहन गोपाल के साथ नर्तन करते हुए उनके हृदय मधुरस से आप्लावित हो जाते हैं । इसीलिये गायन करते समय उनकी वाणी आनन्दातिरेक के कारण स्खलित हो रही है—

[3]पीत्वा मत्ता मधु मधुपाली शीला बालाबल सहजेन ।
साकं नृत्ये सरस मनस्का गीतं चक्रुः स्खलितवचस्काः ।

गायन, वादन, नर्तन, में लय भी अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। लय के बिना संगीत में रस की सृष्टि हो ही नहीं सकती । लय तीन प्रकार की होती है । रास में द्रुत, विलम्बित और मध्य इन तीनों प्रकार की लय का प्रयोग करके गोपाल कृष्ण अपनी प्रेयसियों को मुरली वादन से प्रमुदित कर रहे हैं—

[4]स्मर मनोरम लास्य परम्परा
द्रुत विलम्बित मध्य लयानथ ।
विदधती युवतीरनुरञ्जयन्
मुरहरोऽप्यकरोन्मुरली रवम् ।।

ऊपर दिये हुए विवरण से स्पष्ट हो रहा है कि सरस्वती जी ने अनादि काल से भारतीय संस्कृति के प्रमुख अङ्ग के रूप में सङ्गीत नृत्य गायन वादन आदि को अपने इस महाकाव्य में ससम्मान स्थान प्रदान किया है और विस्तार सहित इसका वर्णन प्रस्तुत किया है ।

---

१. गोपालविलास ३/७२ । २. वही ३/५२ ।
३. गोपालविलास ३/६२ । ४. वही ३/६३ ।

गोपाल विलास का सामाजिक मूल्याङ्कन—

भारतीय समाज में पुत्रोत्पत्ति को सर्वोत्कृष्ट आनन्द का कारण माना जाता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार पुम् नामक अधम लोक से पिता का परित्राण करने वाला एक मात्र पुत्र ही होता है और इसी में उसका पुत्रत्व माना गया है—

'यच्च पुत्रः पुन्नाम नरकमनेकशततारं तस्मात्।
त्राति पुत्रस्तत् पुत्रस्य पुत्रत्वम् ॥

पुत्र पिता के वंश को अक्षुण्ण रखता है और उसे अग्रसर करने के लिये कारण होता है। वह अपने स्वर्गस्थ पितरों को श्राद्ध के अन्न जल से तृप्त करता है। हिन्दू शास्त्रों में पुत्र से पिता का आध्यात्मिक सम्बन्ध बताने के लिये ही कहा है कि "आत्मा वै जायते पुत्रः" अर्थात् निश्चित रूप से मनुष्य की आत्मा ही पुत्र रूप में उत्पन्न होकर अपने पिता का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। इसीलिये वेद भगवान भारतीय नारी को दस पुत्र और एक पति की स्वामिनी बनने को कहते हैं— "पतिमेकादशंकृधि।"

ऐसे पुत्र के जन्म पर मानव मात्र का प्रसन्न होना स्वाभाविक है। यदि वह पुत्र साक्षात् कोटि ब्रह्माण्ड नायक परम प्रभु जगदीश्वर स्वयं हो तब तो सम्पूर्ण चराचर जगत का उनके स्वागत में तत्पर रहना स्वाभाविक है।

ब्रज रानी यशोदा प्रसूतिका गृह में अपने इस सौन्दर्य माधुर्य निधि मन मोहन का मुख देखकर अपने को धन्य समझ रही हैं। अपने पुत्र के कमल के समान प्रफुल्लित नेत्र पूर्णचन्द्रमा की कान्ति के समान मुख, अरुण कमल की लालिमा से युक्त चरण और नव जलधर की आभा वाले शरीर को देख-देख माता यशोदा अत्यन्त आनन्दित हो रही है।

'नन्दाङ्गनापि मुदिता शतपत्र नेत्रं
पुत्रं विलोक्य शयने शशिभासिवक्त्रम्।
शोणारविन्दचरणं नवनीरदाभं
धात्री जगाद जरती पुलकोज्जित श्रीः ॥

प्रसूतिका गृह में स्थित वृद्धा धात्री के द्वारा पुत्र जन्म का सुखद समाचार सुनकर सम्पूर्ण राजमहल हर्षोन्माद से झूमने लगता है। वृद्ध गोपियां गोप युवतियों के साथ पूर्ण चन्द्र से सुशोभित पूर्व दिशा की भांति यशोदा को पूर्ण प्रफुल्लित देखकर ब्रजपति नन्द का अभिनन्दन करती हैं और इस शुभ अवसर पर परमात्मा को धन्यवाद देती हुई उनका हृदय से गुणगान करती है। अन्य गोप रमणियां भी अपने मुख चन्द्र की कान्ति से समुद्र की भांति नन्द को आनन्दित करती हुई सब प्रकार

---

१. गोपथब्राह्मण १/२। २. गो० वि० १/३५।

से सुख देने वाले पुत्र जन्म की शुभ सूचना उन्हें देती हैं और उच्च स्वर से उनका जयजयकार करती हैं। इस समाचार से पूर्ण प्रफुल्लित बने हुए नन्द इन व्रजदेवियों का स्वर्णमणि निर्मित कुण्डल कङ्कण आदि से तथा बहुमूल्य पीताम्बरों से सम्यक् सत्कार करते हैं—

'नन्दस्त्वमन्द विलसद्वदनेन्दु कान्तिः
गण्डस्थलाङ्कुरित मञ्जु तनूरुह श्रीः।
तासां सुवर्ण मणि कुण्डल कङ्कणाद्यैः
पट्ट म्बरादिविभवैः विदधे सपर्याम् ॥

तदनन्तर पुत्रोत्पत्ति का समाचार पाकर समस्तव्रज मण्डल बधाई देने के लिये महल की ओर जाने लगता है और कुछ समय में ही भेरी, मृदङ्ग, शंख दुन्दुभि, वेणु, वीणा, पणव एवं ढक्का आदि की ध्वनियों से तथा व्रज सुन्दरियों के मधुर गायन वादन एवं नर्तन से नन्द महल गूंजने लगता है।

नन्द महल में मनाये जाने वाले पुत्र जन्मोत्सव में सम्मिलित होने के लिये गोप गोपियों के वृन्द के वृन्द दूर-दूर से आ रहे हैं। गोपियाँ इस अवसर पर अपनी सम्पूर्ण शृंगार सज्जा से सम्पन्न बनी हुई हैं। वे कानों में मणि निर्मित कनक कुण्डल धारण किये हुए हैं। केशर की कान्ति वाली उनकी जंघाओं पर करधनियाँ मधुर गुञ्जन कर रही हैं। सिन्दूर से मण्डित उनकी मांग मुक्ताओं से सुशोभित हो रही हैं। महल में शीघ्र पहुँचने की लालसा से उनकी गति में तीव्रता आ गई है। अतः उनकी वेणियों से स्खलित होकर पुष्प नीचे गिर रहे हैं। उनके कर माङ्गलिक पदार्थों से मण्डित हैं। उनकी तीव्र गति के कारण उनके स्तनों पर हिलते हुए हार और अधिक चञ्चल हो गये है। अपनी इस रूप राशी से सुन्दर बनी हुई गोपियाँ पुत्र जन्मोत्सव में सम्मिलित होने के लिये बड़ी उत्सुकता के साथ महल की ओर जा रही है।

'गोप्यश्च हेममणि कुण्डल कुन्तलत्विट्
गण्डस्थलाः, स्थल सरोज विनिन्दकाङ्घ्रयः।
काश्मीर कान्तिकरणा जघनोरु कूजत्
काञ्चीगुणा, गुरुपयोधरभार नम्राः ॥
सिन्दूर सुन्दरित मौक्तिक पंक्ति पूर्णाः
सीमन्त मञ्जु कवरस्खलित प्रसूनाः।
माङ्गल्य मण्डितकराः स्तनलोल हारा
यान्त्यस्तदा व्रजपतेर्भवनं विरेजुः ॥

---

१. गोपालविलास १/३८।
२. गोपाल बिलास १/४३–४८।

वैदिक युग में यज्ञों की प्रधानता थी। यज्ञ की वेदियों को सर्व प्रकारेण सुरक्षित रखने के लिये मण्डपों का निर्माण आवश्यक हो गया था। इन मण्डपों के सौन्दर्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिये उनका निर्माण प्रस्तरों से होना आरम्भ हो गया तथा कालान्तर में इन मण्डपों ने ही कुछ परिवर्तित रूप में मन्दिरों का स्थान ले लिया। आगे चल कर ये मन्दिर भारतीय समाज के सम्मिलन स्थल के रूप में विकसित होकर जनमानस के लिये प्रगाढ़ श्रद्धा के केन्द्र बन गये। अतः मन्दिरों के महत्व को हिन्दू समाज में अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये सरस्वती जी ने अपने इस महाकाव्य में मन्दिर को पूर्ण सन्मान दिया है।

दशम सर्ग के आरम्भ में ही राधिका अपनी सखी से स्वयं को शिव मन्दिर ले चलने के लिये कह रही है, उसी समय दूतिका आकर राधा से कहती है कि हे राधे ! तुम सखियों के साथ शिव मन्दिर में पूजा करने के लिये जाओ, तब तक मैं कृष्ण को तुम्हारे आने की सूचना देकर आती हूँ। तभी राधा मन्दिर के प्रांगण में पहुँचकर अपने कर कमलों को धोती है। तदनन्तर मन्दिर में पहुँचकर अपने प्रियतम नन्दनन्दन के चरणों का हृदय में ध्यान करती हुई कर्पूर धूम दीप नैवेद्य आदि से भक्ति भाव सहित उमापति शङ्कर की अर्चना करती है।

[1]राधाततः क्षालित पाणिपल्लवा
कर्पूर धूपैः वलिभिः प्रदीपकैः।
ध्यायन्त्यमन्दं मधुभिद्पदद्वयं
सम्पूजयामास गिरीशमादृता ॥

तदनन्तर नील कमलों, रक्त कमलों, सहकार मञ्जरियों, कल्हार तथा कदम्ब के पुष्पों और केशर कपूर, दूर्वा अगर, अक्षत महालवंगी, चन्दन मृगमद कुङ्कुम धातृदल एवं विल्व पत्रों से तथा मधुर सरस गीतों और कर्णप्रिय वाद्यों से गौरी सहित शङ्कर को पूजा द्वारा प्रसन्न कर राधा शङ्कर से एक मात्र यही वर मांगती है कि हे त्रिपुरारि ! मेरे ऊपर कृपा करो और मुझे केवल यही वरदान दीजिये कि मेरा चित्त सदा सदा के लिये नन्दनन्दन कृष्ण चन्द्र के श्री चरणों में ही रमण करता रहे।

भारत के प्रसिद्ध मन्दिरों में आज भी वही सामग्री पूजा में प्रयुक्त होती है जिसमे गोपाल विलास में राधा ने शङ्कर की पूजा की है।

[2]राजीवराजी सहकार मञ्जरी कल्हार रक्तोत्पल नीप केसरैः।
धत्तूर दूर्वागरु चन्दनाक्षतैः महालवंगी कुसुमै सपल्लवैः ॥
कस्तूरिका कुङ्कुमपङ्क पिञ्जरैरञ्चिश्चधात्रीदल बिल्वपत्रकैः।
वादित्र नैवेद्य विचित्र गीतिभिर्गौरी समेतं परिपूज्य शङ्करम्।

---

१. गोपाल विलास १०/६। २. वही १०/८ से ११।

नन्दस्य सूनौ रमतां निरन्तरं स्वान्तं मदीयं मयिवास्तुतत्कृपा ।
एवं वरं सा सुतनु पुरद्विषः सम्प्रार्थयामास सरोज लोचना ।।

आज भी भारत के आस्तिक हिन्दू समाज के लिये मन्दिरों का उतना ही महत्व एवं सन्मान है जितना शताब्दियों पूर्व था ।

समाज के समादृत सभ्य एवं शिष्ट व्यक्ति जिस आचरण एवं व्यवहार को उत्तम मानते हैं वही आचार व्यवहार उस समाज का शिष्टाचार कहलाने लगता है। इसीलिये शिष्टाचार उत्तम संस्कृति सम्पन्न समाज का एक अङ्ग माना जाता है। वस्तुतः उत्तम आचरण की सामाजिक अभिव्यक्ति ही सदाचार एवं शिष्टाचार है।

भारतीय समाज अनादि काल से सदाचार परायण रहा है। संसार के सभी मानवों ने सदाचार का प्रथम पाठ उत्तम संस्कारों की जननी भारत भूमि से ही सीखा है—

[1]एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन् प्रथिव्यां सर्वमानवाः ।।

इस देश में उत्पन्न ज्ञान वृद्ध व्यक्तियों से ही पृथ्वी के सम्पूर्ण मानव समाज ने अपने चरित्र को उत्तम बनाने के लिये शिक्षा प्राप्त की है। क्योंकि भारतीय समाज धर्म भीरु समाज है, इसके जीवन का प्रत्येक कार्य धर्म और दर्शन से ही नियन्त्रित रहता है। इसीलिये यहाँ के निवासियों का प्रत्येक आचार विचार धर्म-भगवान की आज्ञा से सम्पादित होता है और दार्शनिक सत्यता रखता है।

प्रस्तुत काव्य गोपाल विलास का समस्त क्रिया कलाप व्रज मण्डल तक ही सीमित है। यहाँ जितने भी प्राणी निवास करते हैं वे सभी अत्यन्त सदाचार परायण सभ्य शिष्ट एवं सह जीवन के अभ्यस्त हैं। मानव समाज ही नहीं यहाँ के पशु-पक्षियों तक में एक उत्तम कोटि का आचरण दृष्टि गत होता है।

अभिवादन के अनेक अंगों का वर्णन भारतीय शास्त्रों में उपलब्ध है। जिनमें प्रणाम, अभ्युत्थान, माल्यार्पण, अर्घ्यदान आदि आते हैं। हिन्दु मान्यता के अनुसार प्रणाम अभ्युत्थान आदि जो सज्जन पुरुष परस्पर एक दूसरे को करते हैं वे वस्तुतः शरीर के लिये नमन नहीं करते अपितु शरीर में स्थित उस परम प्रभु परमात्मा के लिये ही करते हैं—

[2]प्रत्युद्गम प्रश्रयणाभिवादनं विधीयते साधुमिथः सुमध्यमे ।
प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयायैव न देह मानिने ।।

श्री कृष्ण जैसे ही गोपियों के सम्मुख आते हैं वे अत्यन्त उत्सुक नेत्रों से उन्हें देखती है और तत्काल सब की सब एक साथ उठकर खड़ी हो जाती है और अभ्युत्थान द्वारा अपने प्रियतम का स्वागत करती है। इस प्रकार स्वागत करने के

---

१. मनुस्मृति २/ ० । २ भागवत ४/३/२२ ।

पश्चात् हर्षोन्मत्त बनी हुई वे नील कमलों के समान प्रफुल्लित अपने मधुर नेत्र कटाक्षों की मालाओं से ही कृष्ण के लिये [1]माल्यार्पण करती है। जिससे कृष्ण का शरीर भी महिमा मण्डित हो जाता है। माल्यार्पण के पश्चात् गोपियाँ अपने प्रियतम नन्दनन्दन गोपाल को [2]आसन प्रदान करती हैं। उनका आसन भी अत्यन्त अद्भुत है। सम्भवतः इस प्रकार का आसन अपने सम्मानित अतिथि के लिये किसी भी स्वागत कर्ता ने आज तक न दिया होगा। गोप रमणियाँ केलि कानन को छोड़ कर कालिन्दी के कूलों पर बैठी हुई नेत्रों में आँसू भरे हुए अपने प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही थी। वहाँ घरों में प्राप्त होने वाला परम्परागत आसन कहा से आया। अतः अपने अत्यन्त सम्मानित अतिथि के लिये वे अपने कुच कुंकुमों से रंग-बिरंगे बने हुए उत्तरियों से ही एक सुन्दर आसन निर्माण करती है। जिस पर वे अपने परम प्रिय अभ्यागत गोपाल को समासीन करती हैं।

अपने परम प्रिय परमाद्दत अतिथि नन्दनन्दन गोपाल को आसन पर सुख पूर्वक समासीन करने के पश्चात् गोप रमणियाँ सब प्रकार से उनकी [3]सेवा में संलग्न हो जाती है।

यह है भारतीय शिष्टाचार जिसका मूर्त रूप बनी हुई गोप वधुओं से उसकी शिक्षा प्राप्त की जा सकती है।

———

१. अथोत्थितानां युगपद्वधूनामानन्दितानां प्रियदृङ्गिनपातैः।
नेत्रालिनीलोत्पलमालिकाभिर्वपुर्मुरारेः महितं बभूव ॥—गो० वि० ३/१४

२. कुच कुङ्कुमपिञ्जरिताम्बरैर्मधुभिदोविदधुर्वरमासनम् ॥ —वही ३/१७

३. सुखं समासीनमवेत्य माधवं तदीय सेवामिषतः समन्ततः। —वही ३/:०

६ कृष्ण काव्य परम्परा में गोपालविलास का स्थान

वैदिक काल के अन्तिम चरण में जिस साहित्य का सृजन प्रारम्भ हुआ उसे सामान्यतः पुराण एवं महाकाव्य के अन्तर्गत सन्निहित किया जा सकता है। यह पुराण साहित्य वस्तुतः भारत का लोक साहित्य ही है, क्योंकि जो लोकके पूर्व इतिहास का वृत्त उपस्थित करता है वही पुराण है। "पुरा[1] परम्परां वक्ति पुराणं तेन वैस्मृतम्"। पुराण साहित्य भारत के प्राचीनतम शस्त्रों से भी अधिक प्राचीन है। श्रुतियों से भी पूर्व पुराण साहित्य विद्यमान था। "[2]पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम्, अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः" इसीलिये वैदिक संहिता भी पुराणों की अनादिता को प्रकट करती हुई कहती हैं कि यज्ञ के उच्छिष्ट से यजुर्वेद सहित ऋग्वेद, सामवेद छन्द और पुराण प्रकट हुए।

> [3]ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
> उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वेः दिवि देवा दिवि श्रिताः।

वृहदारण्यक के ऋषि भी यही कहते हैं कि परमात्मा के मुख से चारों वेद इतिहास पुराण विद्या एवं उपनिषदों का प्रादुर्भाव हुआ।

> [4]"एवं वा रेऽस्यमहतोभूतस्य निश्वसितमेतद् ऋग्वेदोयजुर्वेदः।
> साम वेदाऽथर्वांगिरस इतिहास पुराणविद्या उपनिषदः"।

वैदिक काल के पश्चात् इस प्रकार के आध्यात्मिक साहित्य की अनिवार्यता का अनुभव किया गया, जो श्रुतियों द्वारा प्रतिपादित उस परमात्म तत्व के प्रत्यक्ष दर्शन करा सके और जिसके लिये ब्रह्मनिष्ठ गुरु के सान्निध्य में अरण्यवास करते हुए कठोर साधना की आवश्यकता न हो और जो जनसाधारण के लिये सुलभ हो। क्योंकि जटिल विधि विधानों वाले श्रम साध्य, व्ययसाध्य एवं समय साध्य यज्ञों में

---

१. वायुपुराण १।२।५३।
२. मत्स्यपुराण ५३.३।
३. अथर्ववेद १०।७.२४।
४ वृहदारण्यक २।४।११।

जन साधारण की रुचि नहीं रह गई थी। परमार्थ साधना भी जनसाधारण के लिये सुलभ न होकर एक विशिष्ट वर्ग के एकाधिपत्य की वस्तु बनी हुई थी। इसके अतिरिक्त उस युग में स्त्रियों, शूद्रों और वर्णाश्रम लोगों के लिये श्रुतियों का श्रवणनिषिद्ध घोषित कर दिया गया था।

इसीकारण भगवान वेदव्यास ने पुराणों का संकलन किया। कुछ विद्वानों की ऐसी मान्यता भी है कि व्यास जी ने केवल एक ही पुराण की रचना की थी, जिसमें अठारह अध्याय थे। पश्चात् विद्वानों द्वारा ये अठारह अध्याय ही विकसित होकर आज अठारह विशालकाय पुराणों के रूप में प्राप्त होते हैं। इन पुराणों में व्यास जी ने जहाँ भारत के पूर्व इतिहास का वृत्त प्रस्तुत किया, वहाँ श्रुतियों में वर्णित अध्यात्म तत्व का भी सम्यक विवेचन किया।

व्यास जी ने मानव मात्र के चरम पुरुषार्थ साधन के लिये श्रुतियों में सुरक्षित उस अत्यन्त गुह्य आध्यात्मिक तत्व को पुराणों के माध्यम से जन-जन के लिये प्राप्य बना दिया। जिस परम तत्व को श्रुतियों ने नेति नेति कहकर मन बुद्धि और बाणी के लिये अगम्य अगोचर बताया और जिसे विशेष प्रकार से दीक्षित ब्रह्मनिष्ठ तत्वज्ञों के लिये ही उपलब्ध कराया, उसे ही पुराणों ने प्रेमी भक्तजनों की इन्द्रियों के लिये भगवान वासुदेव के रूप में गोचरीभूत कर दिया। श्रुतियों में ब्रह्म नाम से विश्रुत वही परमतत्व पुराणों में भगवान श्रीकृष्ण के रूप में प्रतिपादित किया गया। पुराणों के ये भगवान केवल ज्ञेय ब्रह्म ही नहीं है। वे केवल निर्गुण निरञ्जन निर्विकार चित्स्वरूप ही नहीं। वे केवल जीव जगत् के मूल कारण ही नहीं हैं अपितु वे भगवान के रूप में प्रत्यक्ष उपास्य एवं आराध्य हैं। वे समस्त इन्द्रियों को आप्लावित कर देने वाले सौन्दर्य तथा माधुर्य के एकमात्र निकेतन हैं। वे समस्त सद्गुणों के एकमात्र स्थान हैं वे परमेश्वर होते हुए भी करुणावरुणालय शरणागत वत्सल तथा पतित पावन हैं। ये भगवान समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य के एक मात्र अधिष्ठान हैं।

विष्णु पुराण, पद्म पुराण, हरिवंश पुराण, गर्ग संहिता आदि में इन्हीं भगवान कृष्ण के चरित्र का मानवीय, अतिमानीय, एवं अलौकिक रूपोंमें चित्रण किया गया है। व्यास जी के सम्पूर्ण साहित्य में देवकी पुत्र वासुदेव कृष्ण और नन्दनन्दन गोपाल कृष्ण केवल नायक पद पर ही समासीन नहीं किये गये हैं किन्तु उन्हें अपनी सम्पूर्ण भगवत्ता के सर्वोच्च आदर्श से युक्त सर्वाङ्ग सुन्दर विग्रह के रूप में विराजमान किया गया है। वहाँ उन्होंने मनुष्य और ईश्वर, नर और नारायण के भावों से समन्वित किया गया है। वे इसी लोक के नहीं अपितु समस्त सृष्टि के एक मात्र, कोटिब्रह्माण्ड नायक विराट पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित हैं। व्यास जी ने कृष्ण चरित्र के माध्यम से कर्म भक्ति और ज्ञान की त्रिवेणी प्रवाहित की है। ज्ञान और कर्म के

प्रतिनिधि कृष्ण के सखा उद्धव और अर्जुन हैं और भक्ति की गोप बाला राधा है जो कृष्ण की अनन्य सखी हैं। जिस प्रकार ब्रह्मसूत्र और महाभारत व्यास जी की रचनायें है उसी प्रकार भागवत पुराण भी व्यास जी की अपनी ही कृति है। क्योंकि व्यास जी के ब्रह्मसूत्र का "जन्माद्यस्ययत:" यह सूत्र और भागव के प्रथस श्लोक का प्रथम पद "जन्माद्यस्ययत:" दोनों एक ही हैं और एक ही अर्थ के वाहक हैं। इसमें नन्दनन्दन गोपाल कृष्ण पर ब्रह्म परमेश्वर के साकार विग्रह के रूप में चित्रित किये गये हैं। भागवत के अनुसार ये निराकार निर्गुण ब्रह्म हैं, निराकार सगुण परमात्मा हैं तथा साकार सगुण भगवान भी ये ही हैं।

कृष्ण काव्य परम्परा में सर्वप्रथम व्यास जी का 'महाभारत' महाकाव्य है। यहां भी देवकी पुत्र वासुदेव कृष्ण ही अनन्त लोक महेश्वर के सर्वोच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित हैं। इस महाकाव्य में कृष्ण स्वयं अपने स्वरूप का रहस्य बताते हुए मार्कण्डेय ऋषि से कहते हैं—

'अहं नारायणो नाम प्रभवत: शाश्वतोऽव्यय:।
विधाता सर्वभूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम !
अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रश्चाहं सुराधिप:।
अहं वैश्रवणो राजा यमः प्रेताधिपस्तथा ॥[1]

मैं नारायण ही सब की उत्पत्ति का कारण सनातन और अव्यय हूँ। सृष्टि और संहार करने वाला भी मैं ही हूँ। मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ मैं ही देवराज इन्द्र कुबेर और प्रेतराज यम हूँ।

इस महाकाव्य के सूत्रधार परात्पर परमात्मा नराकृति भगवान वासुदेव ही हैं। 'गीतापर्व' में मानव मात्र को आश्वस्त करते हुए वे अर्जुन से कहते हैं कि हे पार्थ ! मैं अपनी योग माया से समावृत रहने के कारण सबके लिये प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। इसलिये अर्जुन ! तुम अनन्य मन से मेरे हो जाओ मुझसे ही सम्प्रक्त रहो, मुझे ही प्रणाम करो और मेरे लिये ही यजन करो। अर्जुन ! तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो, मैं तुम से यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम मुझे ही प्राप्त करोगे। अत: तुम सब धर्मों का परित्याग करके केवल मेरी ही शरण में आजाओ। तनिक भी चिन्ता मत करो, मैं तुम्हारे साथ हूँ। अर्जुन ! जो मुझ से नित्य अभियुक्त रहते हैं, उनका योग और क्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ अर्थात् अपने कंधों पर रख कर ढोता हूँ।

ऐसे भगवान को पाकर मनुष्य मात्र धन्य हो गया। महामानव कृष्ण भगवत्ता के सर्वोच्च आसन पर समासीन हुए। सम्पूर्ण भारतीय समाज उन्हीं की भक्ति में अनुरक्त हो गया। कवियों ने उन्हीं के दिव्य चरित्र को अपने काव्यों का विषय

---

१. महाभारत वनपर्व १८९.४-५।

बनाया संगीत की स्वर लहरियों में राधा माधव का गुणगान होने लगा। प्रस्तरों में उन्हें ही उकेटा जाने लगा। चित्रकारों ने उन्हीं के चित्र बनाने आरम्भ कर दिये।

अतः पिछली अनेक सहस्राब्दियों से संस्कृत साहित्य में काव्य के नाम पर जो भी रचा गया है वह सब पुराणों एवं महाभारत से ही लिया गया है। कालिदास का कुमार सम्भव पूर्णतया शिव पुराण पर आधारित हैं। केवल भाव ही नहीं भाषा भी बहुत स्थलों पर समान हैं। श्लोकों के अर्धांश अथवा चतुर्थांश वैसे के वैसे शिव पुराण से लेकर कुमार सम्भव में रख दिये गये हैं। उनकी शकुन्तला महाभारत से ली गई है। मेघदूत' एक पौराणिक कल्पना है। "किरातार्जुनीयम्" और "शिशुपाल वध" दोनों के कथानक महाभारत पर ही आधारित हैं। हर्ष का 'नैषध' नारायण भट्ट का 'वेणीसंहार' महाभारत से ही उत्प्रेरित हैं। पाणिनि से लेकर आज तक संस्कृत साहित्य में कृष्ण के विषय में रचे गये गद्य पद्य चम्पू, महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य नाटक आदि के रूप में जो भी रचनायें उपलब्ध हैं वे सब महाभारत और भागवत पर ही आधारित हैं।

लोकमान्यता के अनुसार महाभारत के पश्चात् संस्कृत साहित्य का सर्वप्रथम उपलब्ध महाकाव्य कृष्ण चरित्र से ही सम्बन्धित है। जो "जाम्बवती जयम्[1]" के नाम से प्रसिद्ध है इसके रचयिता जगत विख्यात वैय्याकरण श्रीपाणिनि हैं। संस्कृत साहित्य के इतिहास लेखक उनके काल को ईसा से सहस्रों वर्ष पूर्व से लेकर ३५० ई० पूर्व मानते हैं। अतः उनके इस महाकाव्य का समय निश्चित करना एक जटिल कार्य है। यह तो मानना ही होगा कि ईसा से अनेक शताब्दी पूर्व इसकी रचना की गई होगी।

इस महाकाव्य का कथानक [2]महाभारत सभापर्व [3]भागवत तथा [4]विष्णु पुराण में विस्तार के साथ प्राप्त होता है। इस महाकाव्य की नायिका 'जाम्बवती' पाताल के सम्राट राक्षसराज जाम्बवत की कन्या थी। असुरों का वध करने के अपने कार्य में संलग्न श्रीकृष्ण ने राक्षसराज पर भयंकर आक्रमण किया और उस पर विजय प्राप्त की। जाम्बवत ने श्रीकृष्ण को प्रसिद्ध स्यामन्तक मणि भेट में दी और अपनी कन्या जाम्बवती का विवाह भी उन्हीं से कर दिया।

संस्कृत साहित्य की बृहत् त्रयी में से एक शिशुपाल वध के रचयिता श्रीमाघ हैं। उन्होंने ६५ ई० पूर्व के लगभग किसी समय इस महाकाव्य की रचना की है।

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर पृ० ८४-८५।
२. महाभारत अध्याय ५०।
३. भागवत पुराण १०।५६।
४. विष्णु पुराण ४।१३।

इस महाकाव्य के नायक भगवान श्रीकृष्ण हैं। इसका कथानक भी महाभारत से लिया गया है। यह बीस सर्गों वाला एक विशालकाय महाकाव्य है। इसकी कथा का आरम्भ द्वारिका से होता है। द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण के प्रासाद में नारद जी इन्द्र का सन्देश लेकर आकाश मार्ग से आते हैं। कुशल क्षेम के पश्चात् नारद दुर्दमनीय शिशुपाल के अत्याचारों का वर्णन करते हैं और कृष्ण से उस नराधम का वध करने की प्रार्थना करते हैं। श्री कृष्ण इस प्रकार के अवसरों के लिये सतत तत्पर रहते हैं। अतः वे तत्काल नारद की प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं। और अन्त में शिशुपाल का वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करते हैं।

[1]नवम शताब्दी में ट्रावन कोर निवासी वासुदेव ने "शौरिकथोदयः" नामक महाकाव्य की रचना की है। इसका कथानक हरिवंश पुराण से लिया गया है जो कृष्ण के जन्म से प्रारम्भ होकर बाणासुर वध पर समाप्त हो जाता है।

ग्यारहवीं शती के 'श्रीकृष्ण[2] लीलाशुक' ने "कृष्णकर्णामृत" नामक महाकाव्य की रचना की है। यह बारह सर्गों का एक विशालकाय काव्य है। इसमें संगीत एवं नृत्य के माध्यम से भावाभिव्यक्ति का आयोजन किया गया है। इन्होंने 'भट्टिकाव्य रावण वध' के अनुकरण पर गोविन्दाभिषेक नामक एक काव्य की भी रचना की है। इसमें भी बारह सर्ग हैं। किन्तु प्रथम आठ सर्गों की रचना ही इनके द्वारा हुई है। इसमें कृष्ण चरित्र के माध्यम से प्रसिद्ध वैयाकरण वररुचि के प्राकृत व्याकरण की परिभाषायें और उदाहरण दिये गये हैं। इस महाकाव्य के अन्तिम चार सर्गों की रचना लीलाशुक के शिष्य दुर्गाप्रसाद यति ने की है। इन्होंने भी अपने गुरु की भांति त्रिविक्रम के प्राकृत व्याकरण से उद्धरण दिये हैं।

[3]कविराज ने ग्यारहवी शताब्दी में दस सर्गों वाला "पारिजातहरण" नामक महाकाव्य रचा है। यह भागवत के कथानक पर आधारित है। इनका अन्य काव्य 'राघव पाण्डवीय' जो दण्डी द्वारा आरम्भ की गई द्विसन्धान परम्परा पर आधारित है। इसमें रामायण और महाभारत दोनों का एक साथ आनन्द लिया जा सकता है।

'विद्यामाधव' ने बारहवीं शती में इसी प्रकार का एक अन्य काव्य "पार्वती रुक्मिणीयम्" नाम से रचा है। इसमें पार्वती और रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है जो द्विसन्धानात्मक है।

ख्याति प्राप्त कृष्ण भक्त 'जयदेव' ने बारहवी शताब्दी में अपने विश्व

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर पृ० १६८।

२. वही ३३४-३३७ तक।

३. वही ३३४ से ३३७।

४. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर पृ० १६१।

विख्यात 'गीतगोविन्द' की रचना की है। इनका जन्म बंगाल के वीरभूम जनपद के किन्दुबिल्व नामक स्थान में हुआ था। ये राजा लक्ष्मण सैन के दरबारी कवि थे। राजा लक्ष्मण सैन का काल १११६ ई० है! अपनी युवावस्था में ही मथुरा वृन्दावन की यात्रा करने के पश्चात् जयदेव ने अपना हृदय राधा माधव की सरस भक्ति में समर्पित पर दिया था। इनकी पत्नी भी इन्हीं की भाँति कृष्ण प्रेम में रंगी हुई थीं। जब जयदेव आत्म विभोर होकर 'गीत गोविन्द' के पदों का गायन करते थे तब इनकी पत्नी भी गीतों की मधुर लय पर नृत्य करती थी।

तेरहवीं शताब्दी में धौलकर राज्य के प्रसिद्ध कवि वस्तु पाल[१] ने "नर-नारायणानन्द" नामक एक सोलह सर्ग वाले महाकाव्य की रचना की थी। इसमें कृष्ण-अर्जुन की प्रगाढ़ मित्रता का वर्णन किया गया है।

इसी शती में 'श्रीवैंकटनाथ' ने [२]"यादवाभ्युदयः" नाम के इक्कीस सर्ग वाले एक भारीभरकम महाकाव्य का निर्माण किया है। इनका जन्म १२६८ ई० में हुआ माना जाता है। इन्हें दक्षिण वासी तिरुपति के वेंकटेश भगवान के मन्दिर की घंटी का अवतार मानते हैं। इस महाकाव्य में इन्होंने सम्पूर्ण यादव जाति के साथ भगवान कृष्ण का समस्त ऐतिहासिक वृत्त उपस्थित किया है। ये १३६६ ई० मेंब्रह्मलीन हुए।

होयसाल राज्य के शासक वल्लाल तृतीय के दरबारी कवि विद्या चक्रवर्ती तृतीय ने एक सोलह सर्ग वाला "रुक्मिणी[४] कल्याण" नामक महाकाव्य रचा है। इसमें श्रीकृष्ण रुक्मिणी के विवाह की भव्य झांकिया प्रस्तुत की गई हैं। यह एक शृङ्गार रस से परिपूर्ण रचना है। राजा वल्लाल तृतीय का समय १२९१–१३४२ ई० माना गया है। अतः इस काव्य की रचना इसी बीच किसी समय हुई होगी।

विजय नगर के राजा विरूपाक्ष के दरबारी कवि माधव ने "नरकासुर[५] विजय" नामक ९ सर्ग के एक महाकाव्य की सृष्टि की। इसमें नरकासुर पर भगवान श्री कृष्ण की विजय का इतिहास दिया गया है। विरूपाक्ष का समय १३७९ ई० माना गया है।

प्रसिद्ध कृष्ण भक्त आचार्य बल्लभ[६] ने "श्री कृष्ण प्रेमामृत" और 'रास

---

१. वही पृ० ३३७-४२।
२. वही पृ० २०१-२०२
३. वही पृ० २०८-२०९ तक।
४. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर पृ० १९७।
५. वही पृष्ठ २१७।
६. वही पृ० २०१–२०२।

सर्वस्व' नामक काव्यों का निर्माण किया। इनका समय १४०८ ई० है। इनके भाई रामचन्द्र ने कृष्ण कौतुहल, गोपाल लीला, रसिक गुञ्जन नामक काव्य रचे हैं। इनका समय १४८४ ई० है।

कृष्ण भक्ति आन्दोलन को तीव्रता प्रदान करने वाले श्री गौराङ्ग[1] महाप्रभु एक उन्मुक्त भक्त थे। उन्होंने गोपाल चरित, प्रेमामृत, संक्षेप भागवतामृत, हरिनाम कवच, 'दानकेलिचिन्तामणि' नामक काव्यों की रचना की है। इनका समय १४८६–१५२७ ई० निश्चित है।

[2]गौराङ्गमहाप्रभु चैतन्य के प्रमुख शिष्य एवं सहयोगी श्री रूप गोस्वामी' ने कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित "हरिभक्ति विलास" 'भागवतामृत' नामक काव्य रचे हैं। हैं। इनका समय १४८४–१५५८ ई० माना जाता है। विजय नगर के दरबारी कवि गुरु [3]स्वयंभूनाथ ने 'कृष्ण विलास' नामक चौदह सर्गों वाले महाकाव्य की रचना की है। इस महाकाव्य में श्री कृष्ण के प्रादुर्भाव से लेकर तिरोभाव तक का सम्पूर्ण जीवन चरित्र दिया हुआ है। इनका समय १५३०–१५५० ई० के मध्य स्वीकार किया गया है।

मालाबार निवासी 'नारायण भट्टात्रि' ने [4]'नारायणीयम्' नामक एक वृहत् काव्य सृजन किया है। इसमें एक सहस्र से अधिक श्लोक हैं जो दस खण्डों में विभक्त हैं। यह भागवत का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित संस्करण है। यह भावुक हृदय को तत्काल द्रवित करने वाला काव्य है। कृष्ण भक्ति से ओत-प्रोत इस रचना के अतिरिक्त कृष्ण चरित्र से सम्बन्धित अन्य अनेक लघु काव्यों का निर्माण भी इन्होंने किया है। जिनमें 'राजसूय' 'दूतवाक्य' 'भारत युद्ध' और "स्यामन्तक" मुख्य हैं इनका समय १५६०–१६३६ ई० है।

तंजोर के राजा [5]रघुनाथ ने "पारिजातहरण" "अच्युतेन्द्राभ्युदयः" 'गजेन्द्र-मोक्ष' नामक काव्यों का निर्माण किया। इन्होंने अन्य अनेक ग्रन्थों की रचना भी की है। किन्तु कृष्ण चरित्र से सम्बन्धित ये रचनायें इनके उत्कृष्ट कवित्व की परिचायक हैं। सन् १६६४ ई० से इनका शासनकाल आरम्भ होता है।

---

१. वही पृ० २०९ तथा २९१।
२. वही पृ० २८७।
३. वही पृ० २८९।
४. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर पृ० २५४–२५६।
५. वही पृष्ठ २३०।

इन्हीं तंजौर के राजा रघुनाथ के दरबारी कवि—"राजचूड़ामणि दीक्षित' ने कृष्ण चरित्र से सम्बन्धित "रुक्मिणी कल्याण" नामक एक दस सर्गीय महाकाव्य की रचना की है। इसमें कृष्ण रुक्मिणी के विवाह का सविस्तार वर्णन किया गया है। इन्होंने 'कंस बध' नामक एक लघु काव्य भी लिखा है। ये १६३६ ई० में वर्तमान थे।

तंजौर के मराठा राजा ईकोजी के प्रधान मन्त्री गंगाधर के पुत्र भागवन्त ने एक दस सर्ग का "मुकुन्द विलास"[२] नामक महा काव्य लिखा है। इसमें श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन वृत्त दिया हुआ है। ईकोजी का समय १६७४ ई० से १६८७ ई० है।

रामनाद निवासी महामहोपाध्याय लक्ष्मण सूरि ने कृष्ण कथा पर आधारित "कृष्ण' लीलामृत" नामक बृहत् काव्य का प्रणयन किया है। ये पचैया कालिज मद्रास में संस्कृत के प्राचार्य थे। इनका समय १८५९ से १९१९ ई० है।

ईसा पूर्व की अनेक शताब्दियों से लेकर बीसवीं शती तक कृष्ण चरित्र पर रचे गये अनेक महाकाव्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इनमें अधिकांश महाकाव्य ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर आधारित है। इनका कथानक महाभारत से लिया गया है। इन सभी महाकाव्यों के नायक देवकी पुत्र वासुदेव कृष्ण हैं। ये सभी वीर रस प्रधान महाकाव्य हैं। इनकी कथावस्तु, वर्ण्यविषय,, रस आदि का गोपाल विलास से कोई सम्पर्क सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार के काव्यों की श्रेणी में आने वाले काव्य हैं पाणिनि का "जाम्बवतीजय" माघका 'शिशुपाल वध,' वासुदेव का 'शौरिकथोदय:' कविराज का 'पारिजात हरण' वस्तुपाल का "नरनारायणानन्द" वेंकट नाथ का यादवाभ्युदय:, विद्या चक्रवर्ती का रुक्मिणी कल्याण' माधव का 'नरकासुरविजय:", रघुनाथ का 'परिजातहरण' अच्युतेन्द्राभ्युदय:, राजचूडामणि का रुक्मिणी कल्याण आदि।

कुछ राज्याश्रित कवियों ने कृष्ण काव्य के माध्यम से अपनी विद्वत्ता, बहुज्ञता, एवं काव्य चातुरी का भी प्रदर्शन किया है। इन काव्यों के अन्तर्गत विद्या माधव का "पार्वतीरुक्मिणीयम्", कविराज का "राघव पाण्डवीय" चिदम्बर का "राघव यादव पाण्डवीय:" आदि महाकाव्य आते हैं जो द्विसन्धान एवं त्रिसन्धान की परम्परा से प्रेरित होकर रचे गये हैं। इनका लक्ष्य केवल पाण्डित्य प्रदर्शन मात्र है। इनका गोपाल विलास से कुछ लेना देना नहीं है।

---

१. वही पृष्ठ २३५।

२. वही पृष्ठ २४७।

३. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर पृ० ३०१।

इनमें कुछ उच्च कोटि के कृष्ण भक्तों की रचनायें भी मिलती हैं। इन कवियों ने केवल स्वान्तः सुखाय अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य एवं माधुर्यका वर्णन किया है और अपने हृदय की सम्पूर्ण भावुकता से अपने आराध्य का अभिनन्दन किया है। इस प्रकार के काव्यों में सर्वप्रथम ग्यारहवीं शती का 'कृष्णकर्णामृत' महाकाव्य है। जिसके रचयिता कृष्ण-लीला शुक हैं। गोपी वल्लभ कृष्ण इनके आराध्य हैं। ये भी नन्दनन्दन कृष्ण को पूर्ण पर ब्रह्म परमेश्वर स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि यदि उपनिषद् प्रतिपाद्य ब्रह्म के साक्षात् दर्शन करने हैं तो गोपियों के घर जाओ। जहाँ उसे ऊखल से बंधा पाओगे।

[1]निगमबनेषुनितान्तखिन्नः।
भवनेषु बल्लवीनामुपनिषदर्थमुलूखले निबद्धम्॥

गोपालविलास में सरस्वती जी को कृष्ण के लिये कहीं उपनिषदर्थ नहीं कहना पड़ा है अपितु अपनी काव्य कला से व्यञ्जना के द्वारा उसे प्रत्यक्ष किया है। सरस्वती जी ने अपने काव्य कौशल से उस रस ब्रह्म का आस्वादन कराया है जो उपनिषदों में "रसोवैसः' कहा गया है।

सरस्वती जी की ही भांति कृष्ण लीला शुक ने भी कृष्ण की बाल छवि के अनेक सजीव एवं सरस चित्र अंकित किये हैं। एक स्थान पर माता का स्तन पान करते हुए शिशु कृष्ण की अद्भुत् भाव भङ्गिमा वैभव से अभिभूत लीलाशुक कहते हैं—

[2]अर्धोन्मीलित लोचनस्य पिबतः पर्याप्तमेकंस्तनम्।
प्रस्नुत दुग्ध दिग्धमपरं हस्तेन संमार्जतः।
मात्रा चांगुलि लालितस्य चिबुके स्मेरायमाने मुखे।
विष्णोः क्षीरकणाम्बुधामधवलादन्तद्युतिर्पातुनः॥

लीला शुक भी कृष्ण के अनन्य भक्त हैं। वे एक क्षण के लिये भी अपने अभीष्ट देव को आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहते। उनमें एक नैष्ठिक भक्त के हृदय की तड़पन है। वे कृष्ण के विना व्याकुल बने हुए कहते हैं—

[3]हे देव! हे दयित! हे भुवनैकबन्धो।
हे कृष्ण! हे चपल! हे करुणैक सिन्धो।
हे नाथ! हे रमण! हे नयनाभिराम॥

---

१. कृष्ण कर्णामृत—२।२८।
२. वही ४।६३।
३. कृष्ण कर्णामृत २।५८।

सरस्वती जी की भाँति लीलाशुक भी कृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पित हैं। कृष्ण के अतिरिक्त उनका भी कोई अन्य आराध्य नहीं है। कृष्ण ही उनके जीवन सर्वस्व बने हुए हैं। वे कहते हैं—

'प्रेमदं च मे कामदं च मे वेदनं च में वैभवं च मे।
जीवनं च में जीवितं च में दैवतं च मे देवनापरम्।।

बाल कृष्ण के सौन्दर्य सम्भृत अनेक मनमोहक चित्र कृष्ण गोपियों की माधुर्य पूर्ण क्रीड़ाओं के विविध मनोरंजक दृश्य कृष्ण कर्णामृत महाकाव्य में उपलब्ध होते हैं। किन्तु प्रत्येक पद में विकसित होती हुई तथा हृदय को रसाप्लावित कर देने वाली उस अकथनीय की कथा का चित्त को द्रवित कर देने वाला एक प्रबन्धात्मक वर्णन इस महाकाव्य में नहीं मिलता जिसकी अनुभूति पाठक को गोपालविलास में पग-पग पर होती है। लीलाशुक के 'कृष्णकर्णामृत' को सरस्वती जी की "आनन्द-मन्दाकिनी" के समकक्ष कहा जा सकता है। यद्यपि '-न्दाकिनी' एक अत्यन्त लघु-काव्य है, किन्तु दोनों की वर्णन शैली एक ही है और वर्ण्य विषय भी समान हैं।

बारहवी सताब्दी का जयदेवकृत 'गीतगोविन्द' गीति काव्य परम्परा का एक प्रतिनिधि काव्य है। इसमें काव्य और संगीत का अद्भुत समन्वय किया गया है। यह एक शृङ्गार रस पूर्ण रचना है। इसमें राधा कृष्ण की ललित लीलाओं का वर्णन किया गया है। शृङ्गार रस को प्रभावशाली बनाने के लिये प्रणय के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का मार्मिक वर्णन होना अत्यावश्यक है। किन्तु जयदेव ने संयोग पक्ष के ही सरस एवं शृङ्गारिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। उसमें वियोग पक्ष का अभाव सा ही है।

इसीलिये इसमें प्रणय का स्वाभाविक विकास दृष्टिगत नहीं होता। जयदेव नायक नायिका के दहृय की सहज एवं सूक्ष्म भावनाओं का चित्रण करने में सफल नहीं रहें हैं शृङ्गार रस में वियोग का चित्रण जितना गंभीर होगा संयोग पक्ष उतना ही प्रभावोत्पादक होगा। यही कारण है जिससे गीत गोविन्द की मांनिनी राधा का वियोग जटिल परिस्थिति जन्य न होने के कारण कृत्रिम सा प्रतीत होता है। जयदेव की राधा में उस तन्मयता एवं भावुकता के दर्शन नहीं होते जिसकी अनुभूति पाठक को गोपालविलास की राधा में होती है। जयदेव की राधा में मासलता अधिक है सरस्वती जी की राधा में हृदय पक्ष की प्रधानता है। इसीलिये गीत गोबिन्द में भाव पक्ष की प्रौढ़ता दृष्टिगत नहीं होती। इसके अतिरिक्त गीतगोविन्द को महाकाव्य भी नहीं कहा जा सकता। केवल दो चार श्लोकों के आधार पर ही इसमें प्रबन्धत्व की प्रतीति होती है अन्यथा यह एक मुक्तक गीति काव्य की श्रेणी में ही आता है।

---

४. वही १।९९।

सोलहवी शती के नारायण भट्टात्रि का "नारायणीयम्" एक विशाल महा-काव्य है। इसमें एक सहस्र से अधिक श्लोक हैं जो दस भागों में विभक्त हैं। प्रत्येक भाग में भागवत के एक एक स्कन्ध का सार है। दशम स्कन्ध के पश्चात् की कथा इसमें नहीं है। भागवत में राधा का कोई अस्तित्व नहीं है। अतः इस काव्य में भी राधा का पूर्णतया अभाव है। राधा ही वस्तुतः कृष्ण भक्ति की अधिष्ठातृ देवी हैं। उनके अभाव में भक्ति रस की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इस विशाल महा काव्य में उन उपकरणों का सर्वथा अभाव है जो भक्ति रस की सिद्धि में सहायक होते हैं। विभिन्न सम्प्रदायों के प्रवर्तक आचार्यों ने भक्ति को रस तो माना है किन्तु उसको लक्षित करने वाली उनके द्वारा रचित कोई उत्कृष्ट रचना उपलब्ध नहीं होती जो भक्ति को रस सिद्ध करने में सक्षम हो। जो काव्य उन्होंने लिखे हैं वे केवल उनके सम्प्रदायों तक ही सीमित हैं।

इन तथ्यों से सिद्ध हो जाता है कि ईसा से अनेक शताब्दी पूर्व से आज तक गोपालविलास के अतिरिक्त अन्य कोई महाकाव्य प्राप्त नहीं होता जो भक्ति को रस सिद्ध करने में समर्थ हो। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में केवल एक हो महाकाव्य गोपाल विलास है जिसे भक्ति को रस सिद्ध करने वाला एक मात्र प्रतिनिधि काव्य कहा जा सकता है।

———

१० | उपसंहार

यह प्रस्तुत महाकाव्य 'गोपालविलास' संस्कृत साहित्य की एक अद्वितीय विभूति है। काव्य जगत् में यह अपने विषय की एकमेव प्रौढ़ रचना है। अब तक यह विद्वानों से दूर प्रसिद्धि से परे अंधेरी कोठरी में बन्द अन्य अनेक पाण्डलिपियों के साथ कालयापन कर रही थी।

इन पाण्डुलिपियों के स्वामी से मैंने इन रचना की पाण्डुलिपि प्राप्त कर इसकी एक सर्वथा शुद्ध प्रतिलिपि तैयार करने का प्रयास किया और इसका अध्ययन किया। परमादरणीय श्री गुरुदेव की कृपा से इस काव्य की अनेक आवृत्ति करने के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि इस असाधारण रचना में ऋग्वेद की ऋचायें, यजु का यज्ञ विधान, साम का संगीत अथर्व का तन्त्र उपनिषदों का तत्व चिन्तन, ब्राह्मणों का कर्म काण्ड, पुराणों के भगवान, योगियों के परमात्मा सांख्य के प्रकृति पुरुष, वेदान्त के ब्रह्म और माया सबके दर्शन हो जाते हैं। यामुनाचार्य का वैष्णववाद, रामानुज का विशिष्टा द्वैतवाद, निम्बार्क का द्वैता द्वैतवाद, मध्वाचार्य का द्वैतवाद, वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद और महाप्रभु चैतन्य देव का गौड़ीय वैष्णव वाद तथा शङ्कराचार्य का अद्वैतवाद इन सबकी झांकी भी इस महाकाव्य में स्पष्ट दिखाई देती है। इस प्रकार इस महाकाव्य का विस्तृत एवं व्यापक क्षेत्र रसिक भक्तों यतियों योगियों, सन्यासियों, परम हंसों, वीतरागियों, काव्यकला मर्मज्ञों, दार्शनिक, विद्वानों को केवल अध्ययन के लिये ही नहीं अपितु गहन चिन्तन मनन के लिये अपनी ओर आकृष्ट करता है।

इस महाकाव्य के अन्त में इसके रचयिता का नाम मधुसूदन सरस्वती देख कर ही मैं इस पाण्डुलिपि की ओर सर्वाधिक आकर्षित हुआ। इसलिये इस निबन्ध के द्वितीय अध्याय में इस महाकाव्य में उपलब्ध कुछ अन्तः साक्ष्यों एवं कुछ अत्यन्त पुष्ट वाह्य प्रमाणों के आधार पर इस काव्य के कर्ता की खोज की गई है। जिसके अनुसार मधुसूदन सरस्वती ही इसके रचयिता सिद्ध होते हैं। सरस्वती जी द्वारा रचित अनेक दार्शनिक एवं भक्ति विषयक ग्रन्थों से उद्धरण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि 'गोपालविलास' की रचना उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम काल में स्वान्तः सुखायही की है और सम्भवतः यह उनकी अन्तिम कृति है। पाण्डु-लिपि में दी हुई तिथि से भी यही सिद्ध होता है।

विद्वत् समाज जिन रचनाओं को सरस्वती जी द्वारा ही रचित मानता आया है, गोपालविलास की विषय वस्तु से उनकी तुलना की गई है। इसे सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि जिस प्रकार विद्वानों ने जिन रचनाओं को सरस्वती जी की ही प्रमाणित रचनायें स्वीकार किया है उसी प्रकार गोपालविलास भी उनकी अपनी ही कृति है।

तृतीय अध्याय में इस सम्पूर्ण महाकाव्य का कथानक संक्षेप से दिया गया है तदनन्तर प्रत्येक सर्ग का कथानक कुछ विस्तार के साथ दिया है, यह भागवत की कथा पर आधारि होते हुए भी उससे पर्याप्त मात्रा में भिन्न भी है। इसके ग्यारह सर्गों में से अन्तिम आठ की कथा पूर्णतया मौलिक है। कवि ने आरम्भ से अन्त तक कथानक में अनेक स्थानों पर अपनी इच्छानुसार पर्याप्त मात्रा में परिवर्तन एवं परिवर्धन किये हैं। ये सब परिवर्तन कवि को जिन कारणों से करने पड़े हैं उनको सुस्पष्ट किया गया है।

सरस्वती जी ने अपने कथानक को विकसित करने के लिये जिन ग्रन्थों से सहायता ली है उन्हें सन्दर्भ सहित उद्धृत किया गया है। इस महाकाव्य की कथा अन्य विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध कृष्ण कथा से किन किन स्थलों पर किस प्रकार प्रभावित हुई है। इस पर यथा सम्भव प्रकाश डाला गया है।

इस महाकाव्य का वर्ण्य विषय कालिदास आदि प्राचीन कवियों एवं बृहत् त्रयी के रचयिताओं तथा अन्य लौकिक काव्यों की अपेक्षा असाधारण है। यह एक दार्शनिक संगीत है जो सिद्ध आध्यात्मिक विद्वानों एवं रसिक भक्तों तथा वीतरागी संन्यासियों की हृत्तन्त्री को झङ्कृत करने वाला है। यह भाव और रस, ब्रह्म और माया, प्रकृति और पुरुष, गोपी और गोपाल राधा और माधव की अनादि प्रणय गाथा है। इसी दृष्टि से इस काव्य के वर्ण्य विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

इस काव्य के नायक कृष्ण को ऋग्वेदीय विष्णु सूक्त के विष्णु रूप में, उपनिषदों के परम रस "रसोवैसः" और पुराणों के भगवान के रूप में किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है? गोपालविलास से उद्धरण देकर इस पर विस्तृत रूप से विचार हुआ है।

इस कहाकाव्य की नायिका 'राधी' किस प्रकार श्रुतिप्रतिपादित परब्रह्म परमेश्वर की अनादि शक्ति, वेदान्तियों की माया और सांख्यों की प्रकृति बनी हुई है? और किस प्रकार राधा की शृङ्गार सरसी में यह पुराण पुरुष परमात्मा मराल बनकर नित्य क्रीडा रत रहता है।

गोपालविलास में वर्णित रास भागवत सम्मत होते हुए भी भागवत से भिन्न

क्यों हो गया है ? कवि ने क्यों गोपियों की भक्ति को कामजा और राधा की भक्ति को प्रेमजा कहा है ? ऐसा परिवर्तन कवि को जिन कारणों से करना पड़ा है उनका सम्यक् विवेचन किया गया है।

सरस्वती जी को इस सम्पूर्ण प्रकृति का प्रत्येक कण उसी रस से रसाप्लावित प्रतीत होता है जिसकी सिद्धि उन्होंने इस काव्य में की है। इसीलिये सरसवती जी का प्रकृति चित्रण सहजस्वाभाविक एवं अत्यन्त मनोग्राही हुआ है। आलम्बन और उद्दीपन दोनों ही पक्षों का प्रचुर मात्रा में वर्णन मिलता है। अपने आराध्य देव की रमणस्थली वृन्दावन को कवि ने विशेष तन्मयता के साथ अपनी नव प्रसूत कल्पनाओं से भव्यता प्रदान की है। गोपालविलास से उद्धरण देकर सरस्वती जी के प्रकृति प्रेम का दिग्दर्शन कराया गया है।

यह रचना काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भी पूर्णतया समृद्ध है। आलङ्कारिक आचार्यों ने एक सर्वोतम महाकाव्य के लिये जिन उपकरणों की आवश्यकता को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया है वे सभी इस रचना में उपलब्ध होते हैं।

इस काव्य के द्वारा भक्ति को एक मात्र रस सिद्ध करना ही सरस्वती जी का लक्ष्य रहा है। उन्हें इस रस से ही यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रसमय प्रतीत होता है। उनका यह रस श्रुति प्रति पादित 'रसोवैसः' है। जिसकी निष्पत्ति लौकिक अलङ्कार शास्त्रियों की लौकिक मान्यता के अनुसार सम्भव नहीं हैं। अतः उन्होंने दिव्य विभावानुभाव संचारी भावों के संयोग से सर्वदा और सर्वथा सुख रूप में अभिव्यक्त होने वाले उस अलौकिक रस की उपलब्धि की है। भक्ति रसायन द्वारा प्रतिपादित इस समस्त रस प्रक्रिया को गोपालविलास से उद्धरण देकर विस्तार सहित स्पष्ट करने की चेष्टा की है।

कवि की अलङ्कार योजना भी प्रशंसनीय है। आदि से अन्त तक इस काव्य के प्रत्येक पद में एक और एक से अधिक अलङ्कार खोजे जा सकते हैं जो वस्तुतः काव्य के आभूषण बने हुए हैं और अर्थ को चमत्कृत करने में सहायक हैं। श्लेष तो काव्य में आद्यन्त सर्वत्र विद्यमान है।

सरस्वती जी काव्य की आत्मा रस में गुण-दोष नहीं मानते क्योंकि उनका रस 'रसोवैसः' है। इसी लिये उन्होंने गुण-दोष आदि रस में न मानकर शब्द में ही माने हैं क्योंकि वे गुण-दोष काव्य के शरीर शब्द में ही मानते है उसकी आत्मा रस में नहीं। गुणों में प्रसाद और माधुर्य काव्य में सर्वत्र व्याप्त हैं। कहीं कहीं आवश्यकता नुसार ओज का प्रयोग भी हुआ है जो अपने स्वाभाविक रूप में मिलता है।

सरस्वती जी काव्य में शब्द के कटु श्रुति आदि दोष मानते हैं, अतः उन्होंने अपने इस काव्य को इस प्रकार के दोषों से पूर्णतया मुक्त रक्खा है।

वैदर्भी रीति आरम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण काव्य में दृष्टिगत होती है। साथ ही अन्य रीतियों का प्रयोग भी किया गया है।

इस काव्य में छन्दों का विधान भी दर्शनीय है। द्वितीय और तृतीय सर्ग में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है किन्तु भावाभिव्यक्ति में कहीं भी कोई

व्यवधान नहीं है। विविध छन्दों के प्रयोग के कारण अर्थ ग्रहण में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती और न कोई प्रयास करना पड़ता है।

गोपालविलास की भाषा कोमल कान्त पदावलि से युक्त है। भाषा में सर्वत्र सरलता है। दर्शन जैसे गूढ विषय को अपनी सुकुमार पदों वाली सरल एवं सबल भाषा के माध्यम से स्पष्ट करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है।

गोपालविलास एक भक्ति परक रचना है। अतः इसके भक्तितत्व पर विस्तृत रूप से विचार किया गया है। अपने भक्ति तत्व की सिद्धि के लिये सरस्वती जी भागवत को प्रमाण मानते हैं। अतः भागवत में निर्गुण भक्ति के जो लक्षण दिये गये हैं उनके अनुसार गोपालविलास की भक्ति का मूल्याङ्कन किया गया है। अद्वैत दर्शन निर्गुण और सगुण भक्ति में किस सीमा तक कितना अन्तर मानता है? इस पर भी गम्भीरता पूर्वक विचार किया गया है।

इस काव्य के कर्ता सरस्वती जी अद्वैत दर्शन के अद्वितीय विद्वान हैं। अतः उनके इस काव्य पर उनके दार्शनिक चिन्तन का प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है। काव्य और दर्शन के इस समन्वय में सरस्वती जी को किस सीमा तक सफलता प्राप्त हुई है, इसे गोपालविलास से उद्धरण देकर स्पष्ट करने का यत्न किया गया है।

गोपालविलास आध्यात्मिक जगत में विचरण करने वाले एक सन्त कवि की आध्यात्मिक रचना है। अतः उपनिषदों से अनेक उद्धरण देकर गोपालविलास की विषय सामग्री से ही इसके आध्यात्मिक पक्ष का सम्यक विवेचन किया गया है।

सरस्वती जी भारतीय संस्कृति के सजग एवं समर्थ प्रहरी हैं। भारतीय संस्कृति के संरक्षक साधु सन्यासियों, वेद पाठी ब्राह्मणों का अपमान करने वाले और भारत के सांस्कृतिक मूल्यों को नष्ट करने वाले विदेशी और विधर्मियों के प्रति अपने इस काव्य में सरस्वती जी ने तीव्र आक्रोश व्यक्त किया है जो उनका अपनी संस्कृति के प्रति प्रबल प्रेम का साक्षी है। इस काव्य के नायक गोपाल कृष्ण और उनके पिताश्री वृजराज नन्द सांस्कृतिक मान्यताओं के सबल संरक्षक हैं।

कृष्ण काव्य परम्परा में गोपालविलास का स्थान सुनिश्चित करने के लिये संस्कृत साहित्य के इतिहास से कृष्ण चरित्र से सम्बन्धित अनेक महाकाव्यों का चयन किया गया है, जिनका समय पाणिनि से आरम्भ होकर आधुनिक काल तक है। इन महाकाव्यों की विषय वस्तु से गोपालविलास का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में उपलब्ध कृष्ण काव्यों में गोपालविलास अपने प्रकार का एकाकी महाकाव्य है।

संस्कृत साहित्य में किसी उच्चकोटि के कृष्ण भक्त कवि द्वारा रचित ऐसे किसी भी महाकाव्य के दर्शन प्राप्त नहीं होते जिसके माध्यम से भक्ति को रस सिद्ध करने का सफल प्रयास किया हो। समस्त काव्य जगत में इस विषय का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाला एक मात्र महाकाव्य गोपालविलास ही है।

———

श्रीहरिः

अथ

गोपालविलासम्

(महाकाव्यम्)

प्रथमः सर्गः

राधा भृङ्गार सरसी मरालः कमलालयः।
पाटलाक्षिपदः पायादपायात्कोऽपि गोकुलम् ॥१॥

पद्मासौभाग्यरूपिण्यो जीयासुर्गोप सुभ्रुवः।
लीलान्दोलायितो याभिः पद्मालय सरोवरः ॥२॥

वंशी कंसरिपोर्जीयात् गीतमाध्वीकभृद्ध्वनी।
प्रत्यूहद्दकरिणां कण्ठीरवीयति यदा-रवः ॥३॥

कंस विध्वंसिनो जीयात् दृगञ्चल चमत्कृतिः।
दासीकृता वरारोहा यया पद्मालयादयः ॥४॥

प्रेमाङ्कुरं पिकरवं शुकनीलकण्ठं
हंसप्रियं प्रियकदम्बमधुप्रसूनम्।
पीयूषहारिकुसुमेषु रतालि वृन्दं।
वृन्दावने कमपि कल्पतरुं भजामः ॥५॥

वन्दामहे प्रथममन्मथचित्रपत्रि
भ्रू वल्लिचापल मघार्दन राधयोस्तत्।
यस्योद्भवे सुरत शाखिलता फलाशा
प्रादुर्बभूव मकरध्वजमालिकस्य ॥६॥

गोपालिका कुच घटीय पटीर नीर
सम्बर्धितं मदन सुन्दरमिन्दु कान्तम्।
नन्दाङ्गणे कमपि जङ्गममङ्गनानां
भृङ्गार सारमनिशं तरुमाश्रयामः ॥७॥

---

१. 'क' पुस्तके विद्यवार्ति।

पूर्वं पुरारि विधिवासव वह्नि पूर्वाः
गीर्वाण वन्दि निकरा मिलिता मुनीन्द्रैः ।
क्षीराम्बुधिं विधु मरीचि सरोचिरूर्मिः
घूर्णायमानमवनीसहिताः समीयुः ॥८॥

यादांसि यत्र कमला हिमदीधितिभ्या
मव्याहतं दधति सोदर मोदधाराम् ।
यस्मिन् सुधा किरण मण्डल शुभ्रवर्णा
शैय्यामहीन्द्रमकरोत्पतगेन्द्र केतुः ॥९॥

शुभ्रारविन्द मुकुलान्तर सन्निविष्टं
भृङ्गायमाण वपुषं पुरुषं पुराणम् ।
जामातरं जलधिजासहितं तटिन्यो
यत्रामृतैरनुदिनं बहुमानयन्ति ॥१०॥

यद्रोम कूप विवरैर्जगदण्ड कोटिर्
वातायनान्तरगताणु समान कान्तिः ।
सोऽयं हरिः स्फटिक सम्पुटकैणनाभि-
साम्यं श्रितः स्वपिति यस्य सदाङ्क मध्ये ॥११॥

तस्मिन्ननन्त शयनं सुरनिम्नगान्तर्
नीलारविन्दचय रोचिषमायताक्षम् ।
गोविन्दमिन्दु वदनं प्रतिलभ्य देवाः
भू भार हार करणाय दधुः प्रणामम् ॥१२॥

वृन्दारकाः शतमखप्रमुखा यदाहुः
कंसादि देवरिपु चेष्टितमस्य साक्षात् ।
पद्मापतिर्मकर कुण्डल ताण्डवत्विट्
गण्डस्थलः कमलयोनिमथाह जाने ॥१३॥

यास्यामि देवकसुता जठरेऽर्भकत्वं
देवा व्रजन्तु पुरतो मम सेवनाय ।
देव्योऽपि गोपरमणी कमनीय रूपा
गोपालभूपतनयस्य भवन्तु सख्यः ॥१४॥

पद्मालयापि तपनीय विडम्बि रूपा
राधी भविष्यति बने वसतः प्रिया मे ।
अन्याश्च गोपवनिता वसुदेव गेहे
मत्प्रीतये मुनिगणाश्च भवन्तु वत्सा: ॥१५॥

इत्थं ब्रुवन्तमभिवन्द्य मुकुन्दमीयु
र्वृन्दारकाः स्फुट कदम्ब तनूरुहाभाः ।
प्रेमाम्भसा मुहुरमी दिवमाह्वयन्त
श्चक्रुर्मुदा मुररिपोर्गदितं पुनस्ते ॥१६॥

अन्तं गते रसमिते वसुदेव सूनौ
कंसेन कोप विवशेन नभौ वचोभिः ।
शेषे च देवकसुतोदरतो भवान्या
नीते हठेन जठरं किल रोहिणीयम् ॥१७॥

सा देवकस्य दुहितापि दधार गर्भं
या देवकस्य जगतां च विभूति भूतिः ।
मित्रं यथा बलभिदो दयितेयमाशा
सिन्दूर हारकर पद्म मुख प्रकाशा ॥१८॥

—युग्मकम्—

आसन्न सूति समया वपुषैव रेजे
सन्ध्येव सन्निहित शीतकरोदय श्रीः ॥
सा कालतः सुतमसूत सरोज नेत्रम्
रत्नाङ्कुरखनिरिवातुलितं प्रभाभिः ॥१९॥

इन्दीवरेण सरसीव बने निगूढा
कारागृहे वरतनुः शुशुभे सुतेन ।
तां वीक्ष्य शूर तनयस्तनयोरुशोभां
रामां प्रफुल्ल वदनोऽथ बभौ प्रमोदैः ॥२०॥

---

१. 'क' पुस्तके राधा । २. 'क' पस्तके आर्द्रयन्तः ।

शौरिः क्रमेण दरचक्र गदाब्ज पाणिं
ज्ञात्वा चराचरगतिं पतिमिन्दिरायाः ।
सन्धाय पाणि युगलं शिरसा नतेन
तुष्टाव भाव गलदस्र कला कुलाक्षः ॥२१॥

प्रीतः समादिशदमुं पतिरिन्दिराया
मां गोकुलं नय समानय नन्द कन्याम् ।
निर्भिन्न लोह निगडोऽथ वभूव शौरिः
प्रौढप्रमोदगुरुता द्विगुणी कृताङ्गः ॥२२॥

शौरिः क्रमेण परिभिद्य बृहत्कपाटा-
नङ्के निधाय सरसीरुहलोचनं तम् ।
कृत्वा कलिन्द तनयां मिलितां पदान्ते
नन्दस्य सद्म स जगाम जवेन गूढः ॥२३॥

नन्दव्रजं जठर गूढ विषाण कर्ण
वक्त्रैः प्रसुप्त वृषभैः सह धेनु वृन्दैः ।
जीमूत मुक्त जलविन्दु बलत्प्रमोदैः
निद्रैश्च मत्त महिषैः सुविराजमानम् ॥२४॥

गोपी गणैः कुच तटार्ध पटीर पङ्कैः
निशङ्कमङ्क परिरम्भण गूढकान्तैः ।
निःश्वास लोल रुचिराधरपल्लवौघैः
तलपस्थ हेमलतिका रुचिभिः परीतम् ॥२५॥

गोपैश्च चन्दन वनी सुखवात सङ्गैः
शय्यागत प्रियतमाङ्ग करम्बिताङ्गैः ।
मुक्तांशुकेषु जघनेषु नितम्बिनीनां
सन्यस्त हस्त तल र्तपित पञ्चबाणैः ॥२६॥

सम्मुद्रिताब्ज नयनाभिरपि द्विजानां
यूनां रतान्त परिखिन्न कलेवराभिः ।

कस्तूरिका तिलक पत्रम घर्मवारि–
विन्दूदयाभिखलाभिरलङ्कृतं तम् ॥२७॥
वृद्धैश्च गोप निवहैः कृत शब्द घोणैः
कूर्चच्छलेन मुखचन्द्र करान् दधद्भिः ।
दुग्धाब्धि वीचि रुचिरान्कच चामरौघान्
विन्यस्य मूर्धसु परस्वभियेव सुप्तैः ॥२८॥
आलोक्य लोलनयनः शनकैर्मुरारिं
धास्यन्व्रजेश दयिता शयने तदानीम् ।
दीपावली रुचि करम्बित रत्नराजी
संराजितं प्रसव सद्म जगाम शौरिः ॥२९॥
–षड्भिः कुलकम्–
तां रत्न राजि रुचि चुम्बित चारु रूपां
चान्द्रीं कलामिव चकोर कुलाक्षि पीताम् ।
गोपाल भूप रमणीमवलोक्य तस्याः
पुत्रीं जहार शयने स निधाय पुत्रम् ॥३०॥
कन्यां द्रवत्कमल कोमल कान्ति पूरा-
माताम्रपाणिचरणां हृदये दधानः ।
पुत्रं समीक्ष्य शतपत्र दृशं स शौरिः
तीर्त्वा जगाम यमुनामपि जानुमात्राम् ॥३१॥
सौदामिनी द्युतिमये शयने प्रियायाः
तां न्यस्य लोह निगडं पदयोश्च शौरिः ।
तत्क्रन्दितादति कराल रवैरतन्द्रैः
कंसस्य यामिक शतैरथ संवृतोऽभूत् ॥३२॥
कंसश्च यामिक गिरा हृदये सकम्पः
कारागृहं करुणया रहितः प्रविश्य ।
निर्भर्त्स्य देवक सुतामपि शूर सूनुं
कन्यां निनाय हननाय शिलासु शीघ्रम् ॥३३॥

---

१. 'क' पुस्तके पत्रकघर्मवारि । १. क पुस्तके–मात्रीम् ।

विष्णोः पदं गतवतीमथ विष्णु मायां
पूर्णेन्दु बिम्ब वदनामवलोक्य कंसः ।
स्वीयस्तदीप वचनेन विबुध्य मृत्युं
विष्णोर्भयात्प्रकृतिभिर्भवनं विवेश ।।३४।।

नन्दाङ्गनापि मुदिता शतपत्र नेत्रं
पुत्रं विलोक्य शयने शशिभासि नवत्रम् ।
शोणारविन्द चरणं नवनीरदाभं
धात्रीं जगाद जरती पुलकोज्जित श्रीः ।।३५।।

वृद्धास्त्रियस्तदनु पुत्रवतीं यशोदा
माशां सुधांशु सहितामिव वासवस्य ।
दृष्ट्वा जगुर्युवतिभिर्जगदीश गीतम्
स्फीतं यशो व्रजपतेरभिनन्दयन्त्यः ।।३६।।

अन्याश्च गोप वनिता मुखचन्द्र कान्त्या
नन्दं समुद्रममृतैरिव वर्द्धयन्त्यः ।
सम्बोधितं जय जयेति वचोभिरुच्चै
स्तत्पुत्र जन्म सुखदं कथयाम्बभूवुः ।।३७।।

नन्दस्त्वमन्द विलसद्वदनेन्दु कान्ति
गंण्डस्थलाङ्कुरित मञ्जुतनूरुहश्रीः ।
तासां सुवर्णमणिकुण्डलकङ्कणाद्यैः
पट्टाम्बरादि विभवैर्विदधे सपर्याम् ।।३८।।

भेरी मृदङ्गदरदुन्दुभिवेणु वीणा
कांस्यांक्य ताल पणव ध्वनिभिस्समन्तात् ।
ढक्कारवैश्च निचितं व्रज सुन्दरीणाम्
संगीत नृत्य सुभगं भवनं वभूव ।।३९।।

पीयूषरोचिरपि पान्थ कृतान्त रोचिः
पद्मान्त शोचिरिति पद्मभुवेव कोपात् ।
खण्डी कृतश्चपल चण्डमरीचिगोभिः
संचर्वितः सह तृणैर्विरुचिर्वभूव ।।४०।।

पौरन्दराद्रिशिखरोज्ज्वल गैरिकाङ्ग
प्रक्षालनाय कमलेषु रतिं दधानः ।
चण्डांशुरन्ध तमसेभ विदारि पादः
प्रादुर्बभूव गगने विपिने नु सिंहः ॥४१॥
पद्मापतिस्त्रिजगतीगतपद्ममित्रः
पुत्रोद्भवव्रजपतेरिति किं समीक्ष्य ।
पद्माननं सरस सौरकराङ्गरागम्
रेजे विकासि सकलेन्दु कला प्रकाशम् ॥४२॥
गोप्यश्च हेम मणि कुण्डल कुन्तलत्विट्
गण्डस्थलाः स्थल सरोज विनिन्दकांघ्र्य ।
काश्मीर कान्तिवरणा जघनोरु कूजत्
काञ्ची गुणा गुरुपयोधरभार नम्राः ॥४३॥
सिन्दूर सुन्दरित मौक्तिक पंक्ति पूर्ण
सीमन्त मञ्जु कवर स्खलित प्रसूनाः ।
माङ्ग[1]ल्य मण्डित कराः स्तन लोल हाराः
यान्त्यस्तदा व्रजपतेवनं विरेजुः ॥४४॥
गोपा महार्घ मणि निर्मित कर्णपूराः
कर्पूर धूलि धवली कृत वक्त्रभासः ।
श्रीखण्ड पङ्कचय चर्चित कुङ्कुमाङ्गा
रङ्गाकुला व्रजपतेर्भवनं तदेयुः ॥४५॥
अन्ये च गोपतरुणास्तपनीय वर्णाः
स्वर्णाङ्गदा मदविघूर्णित नेत्र पद्माः ।
संगीत निन्दित कुहूरव मन्द नादाः
नन्दाङ्गणं ययुरमन्द मुदं दधानाः ॥४६॥
मञ्जीर झञ्झणित सञ्चरणा विरेजु
क्षिप्रस्त्रियश्चल कुचाञ्चल हार धाराः ।

---

१. क पुस्तके, मङ्गल्य ।

बालाश्च चेलुरबला धृत बाहुमूला
माला कृतेव वनिता कुसुमावलीभिः ॥४७॥
विप्राश्च चन्द्रकिरणाम्बर संवृताङ्गाः
श्वेतोर्ध्व पुंड्ररुचिभिर्विलसल्ललाटाः ।
वेदोद्धत ध्वनिभिरावृत मञ्जु गीताः
स्फीताननाः व्रज पतेस्सदनं समीयुः ॥४८॥
वाराङ्गना ययुरनङ्ग वराङ्गना याः
लावण्य गर्व गुरुतामपि खर्वयन्त्यः ।
अन्ये च नीच जनता तरुणी निकाया
नन्दस्य पुण्य निचयं बहुमानयन्त्यः ॥४९॥
दध्यम्बु दुग्ध नवनीत पटीर पङ्क-
हारिद्र पङ्किल जलैर्मु हुरुक्षितानाम् ।
सारङ्ग शावक दृशां हसिताननानां
जातस्ततस्तरलिमा तरुणी जनानाम् ॥५०॥
सूक्ष्मांशुकावृत वपु परभागराजद्
दुग्धादि सेक विवृतोरुकुच प्रदेशाः ।
नृत्याकुलास्सकलमङ्गल नाम घेयं
कृष्णं जगुर्यु वतयो जरठाश्च नार्यः ॥५१॥
सम्पूरयन्त इव नन्द गृहान्पयोभि
र्गोपाः प्रफुल्ल वदनाः पयसां पयोधीन् ।
हारिद्र पङ्क निचयान्परितः क्षिपन्तः
पीताम्बर स्फुरदमन्द रुचीन् विजह्रुः ॥५२॥
विप्राश्च केसर पटीर विचित्रिताङ्गाः
सिन्दूर मुद्रित शिरो वदना विरेजुः ।
कर्मीरिताः हिममयूखकरैरमन्दं
हेमाद्रि शृङ्ग निकरा इव गैरिकौघैः ॥५३॥
वाराङ्गनाश्च ननृतुः कृत तेनभङ्ग्यः
सङ्गीत तन्त्रनिपुणाः पुरटोज्ज्वलाङ्ग्यः ।

काञ्ची वलत्कनक कङ्कण बेणुबीणा
मञ्जीरनाद निचितादिवमञ्जयन्त्यः ॥५४॥

वेधा गिरीश सहितोऽप्सरसः ससिद्धाः
र्वार्हिर्मु खाः शतमख प्रमुखाः सदाराः ।
मोदात्पयोद पटलीपिहिताः प्रसूना
न्याकीर्य नन्द सदने जय शब्दमूचुः ॥५५॥

नन्दोऽपि विप्र निबर्है: पितृदेव कृत्यं
कृत्वा विधाय तनयस्य मुखावलोकम् ।
दत्वा सहेमतिलपर्वत वस्त्र पूगान्
पूर्णो बभौ द्विज गणैः शरदीव चन्द्रः ॥५६॥

आपामरं परम पावन नाम धेयं
कृष्णं जगुर्जय जयेति जना वचोभिः ।
नन्द प्रमोद वलितः पुनराकुमारम्
आचर्मकारमकरोत्कनकाचिताङ्गान् ॥५७॥

पीताम्बरे व्रजपतेर्भवनं प्रविष्टे
पीताम्बरत्वमगमद् व्रजवासिमात्रम् ।
छायां तदा प्रियतमामनिरीक्ष्यभानु
र्विष्णो पदान्तर गतोऽपि बभूव तप्तः ॥५८॥

सम्प्राप्य हेम मणि मण्डन पीत वासां
स्याशास्य शायित शिशुं शुभदैर्वचोभिः ।
नन्दं सदारमभि नंद्यसमागता ये
स्वं स्वं ततः सदनमाविविशुर्जनास्ते ॥५९॥

एवं विधाय तनयस्य सजात कर्म
गर्गेण राम सहितस्य च नाम कर्म ।
सम्वर्धयन् प्रमदया पयसा रसालं
बालं निनाय समयं व्रजभूमिपालः ॥६०॥

हत्वा बकं शकट रूप धरं सुरारिं
देवान्तकञ्च खरवात कराल कान्तिम् ।
बालो बलेन मिलितो ब्रज बल्लभाना
मुल्लासयन्मनसिजं ववृधेऽथ सोऽपि ॥६१॥

हैयङ्गवीन कवलाञ्चित वाम पाणि
र्दुग्धान्न दक्षिणकरः कुटिलालकास्यः ।
कृष्णः कदाचिदबलाकरतालिकाभि
र्नृत्याकुलः सुख समुद्रमपूरि पित्रोः ॥६२॥

कूजत्कटीर तट काञ्चन किङ्किणीक
श्चञ्चद्घनालक विशङ्कि विलोल नेत्रः ।
धावन्मुहुश्चपल बालक वल्गु वाचा
गोधूलिधूसरशरीरमनोज्ञकान्तिः ॥६३॥

आगच्छ वत्स दधि मोदक दुग्ध सारान्
भुंक्ष्वेति गोप जरती जननी वचोभिः ।
सम्वारितः कर युगेन गृहीत पुच्छान्
वत्सान् बलेन सहितोऽनुससार कृष्णः ॥६४॥

आकृष्ट[1] दाम चल कङ्कण बाहुबल्ली
लोलालकस्तन विनर्तित तार हारा ।
गण्डस्थलस्थगित मौक्तिक पंक्तिशोभा
धर्माम्बु सम्वलित कुण्डल मण्डितास्या ॥६५॥

श्रोणीश्रित क्वणित काञ्चन किङ्किणीका
धम्मिल्ल बन्ध विगलन्नव मल्लिमाला ।
दासीषु कर्म विवशासु मुदा कदाचित्
दध्नाम्विलोडन विधिं विदधे यशोदा ॥६६॥

---

१. 'क' पुस्तके आकृष्य ।

मन्थान दन्डमवलम्ब्य तदा मुरारि
स्तां वारयन्कर विमर्दित नेत्र पद्मः ।
मां पाययेति निजगाद रुदन् तदीयाम्
सम्वर्धयन्नयननीर करम्बितास्यः ॥६७॥

दत्वा स्तनं मधुभिदे तमधो निधाय
सा संययौ श्रृतपयः परिरक्षणाय ।
कोपाद्विभिद्य शिलया दधि पूर्ण पात्रं
मित्रान्वितः पुनरयं सदनं विवेश ॥६८॥

भित्वा स्थितं घृत पयः परिपूरितानि
पात्राण्युदूखलतले सखिभिस्समेतम् ।
दृष्ट्वा गृहान्त मिलितं भयलोल दृष्टिं
दाम्ना बबन्ध चपलं तनयं यशोदा ॥६९॥

बद्धोऽपि दाम निकरैर्जठरे जनन्या
मुक्तिञ्चकार यमलार्जुनयोर्मुकुन्दः ।
भीताश्च गोप जरठाः शकटस्थ दाराः
वृन्दावनं पुनरमुं सहसैव निर्युः ॥७०॥

सर्वत्र सर्वकुसुमैः सुविराजमानं
वृन्दावनं बलयुतस्सखिभिः प्रविश्य ।
सञ्चारयंस्तरणिजा पुलिनेषु वत्सान्
वत्साद्य धेनुक बकान्निजघान कृष्णः ॥७१॥

वत्साञ्जहार विपिने चरतः कदाचित्
ब्रह्मा, हरेस्सहचरानपि गोपबालान् ।
तं वत्स वत्सप वपुर्धरमिन्दिरेशं
तुष्टाव गद्गद गिरापुलकाचिताङ्गः ॥७२॥

नागान्निगृह्य मृत काल कराल रूपान्
कृत्वा कलिन्द तनयाममृत प्रवाहाम् ।

धृत्वा गिरिं बलभिदं विमदं विधाय
सम्पूजितस्सुरभिवासव देव गोपैः ॥७३॥

ऊर्ध्वं धृतो भुजग भोगरुचा भुजेन
गोवर्धनोऽपि परमं परभागमाप ।
वैदूर्य दण्डमिव संघटितं विधात्रा
छत्रं बलारि विजये बल सोदरस्य ॥७४॥

कात्यायनी व्रत पर व्रज सुन्दरीणा
माशांशुकत्वमवलम्ब्य पयस्थितानाम् ।
कृष्णः कदापि वसनानि जहार' ताभि
स्सम्प्रीणितः पुनरदाद्वरमीप्सितञ्च ॥७५॥

सम्प्रार्थितस्सुरगणैरनिशं मुरारिः
कंसादि नाश करणाय दिनैः कियद्भिः ।
उत्कण्ठया परमया व्रज सुन्दरीणां
सम्वर्धितस्तरुणिमानमलञ्चकार ॥७६॥

कदाचित्कालिन्दी तट विटपि मत्तालि पटली
पिक श्रेणी गीत श्रवणमुदितं नन्दतनयम् ।
बन क्रीडा श्रान्तारशितुमवदन् प्रातरशनम्
क्षुधा पीडालीढाः प्रिय सहचरास्ते मधुभिदः ॥७७॥

प्रयाता बालास्ते मुरमथन वाचा द्विज कुलान्य
लब्ध्वा तत्रान्नं पुनरपि मुरारातिमगमन् ।
ततस्तत्पत्नीनां सविधमसरन्माधव गिरा
समायातास्ताभिः करकृत वरान्नाभिरथ तम् ॥७८॥

श्यामं कुङ्कुम पङ्क पिञ्जर तनुं मन्दानिलानर्तित
स्फूर्जद्बद्रक माल्य पीत वसनं गण्डोल्लसत्कुण्डलम् ।

विभ्राणं मुरलीं मनोभवभुवं बिम्बाधरे माधवं
वीक्ष्यासीत् द्विज सुन्दरीजनमनः प्रेमाब्धिमग्नं मनाक् ॥७९॥

दत्वान्नं मणिभाजनैर्बहुरसं सौन्दर्य पाथोनिधौ
सन्तर्प्याक्षि युगं मनश्च मधुपं पादाम्बुजे श्रीपतेः ।
निष्कामाः पितृभर्तृ पुत्रसुहृदानन्दोऽपिभक्त्याशया
विप्राणां कुल पालिकामधुरिपोर्वाचा गृहं प्रापिताः ॥८०॥

श्रीमत्कृष्ण सरस्वती गुरु पद द्वन्द्वाम्बुजानन्दिना
धीर श्रीमधुसूदनेन यतिना नन्दात्मज प्रीतये ।
यद्गोपाल विलास संज्ञितमिदं काव्यं कृतं कौतुकात्
तस्मिन्माधव बालकेलिकथकः सर्गोऽयमादिर्गतः ॥८१॥

———

द्वितीयः सर्गः

बालानामथ बल्लीनां कालतः पुष्प सम्पदम् ।
सफलां माधवः कर्तुं वृन्दावनमुपाविशत् ॥१॥

तदाबनं समायाते माधवे स्मर बान्धवे ।
कुसुमेषु महामोदः प्रादुरासीत्पुनः पुनः ॥२॥

मल्ली लवङ्ग वल्लीभिः पताकाभिरिवावृताः ।
पलाशाः पञ्चबाणस्य शोणच्छत्रायिता वभुः ॥३॥

नन्दनानन्दिनीमन्दं मधुपा मधु लोलुपाः ।
वृन्दशः पाटला वृन्दानीयुर्वृन्दा बनान्तरे ॥४॥

कदम्ब केतकी जाती यूथीभिः काननान्तरम् ।
अलञ्चकार वर्षा श्रीर्मालाकार वधूरिव ॥५॥

रक्तोत्पलालि राजीव राजिनी कुमुदालिभिः ।
शरद्बनं गता रेजे राजदारानुकारिणी ॥६॥

विचित्रीकृत्यदिक्कान्ता मुखं सरस कुङ्कुमैः ।
कुसुमैः कुन्द मन्दार फलिनी लोध्रशाखिनाम् ॥७॥

सङ्गतौ नव पुष्प श्रीर्वल्लरी प्रेयसी गणैः ।
हेमन्त शिशिरौ यातौ माधवं सेवितुं बने ॥८॥

ऋतुराजं पुरस्कृत्य वसन्तमृतु सञ्चयः[1] ।
नन्द नन्दन पादाब्जद्वन्द्वरागो[2] मुदं दधौ ॥९॥

प्रोद्भासिते हरेः कान्त्या बने हरिमरीचयः ।
धात्रान्त प्रापितास्सायं पौनरुक्त्यविशङ्कया ॥१०॥

---

१. 'क' पुस्तके सञ्चयाः । २. 'क' पुस्तके रागाः ।

खगेन्द्रः क्रीडायामुपगतबनं नन्द तनयं
समालोच्य श्रीमत्पदयुगल रागाञ्चित तनुः ।
प्रचेतः शैलाग्रं सपदि परिहृत्याम्बरतलात्
द्विजौघैर्दत्तार्घ्यस्तदनु बन पूगं समगमत् ॥११॥

अथोत्सुकानामभिसारिकाणा
मानन्दयन्मानसमाविरासीत् ।
अन्धं तमो नन्द तनूज बन्धु
र्नीलाम्बुज ब्रात मनोज्ञ रूपम् ॥ २॥

विलासिनी केश कलापकान्तं कदम्बवाटीषुतमः कुदम्बम् ।
निरीक्ष्य नन्दस्य कुलावतंसः कलं जगौ रन्तुमना बनान्ते ॥१३॥

अथ मुररिपुकायः स्निग्ध कस्तूरिकाभम्
ब्रजजन कुल बाला ध्वान्त वृन्दं विलोक्य ।
कृत समय वचंस्तन्नन्दसूनोः स्मरन्त्य
कुसुम शर परीता वेणु नादेन जाताः ॥१४॥

परिसरति समन्तात्काल कूटान्धकारे
प्रचलति कुल पालीशील दुग्धाब्धिपूरे ।
अतिचपल मनोभू मन्दर प्रेमबन्धा
अमृत हरिरत श्री केलिकामा मदान्धाः ॥१५॥

घन चिकुर कदम्ब स्रस्तमन्दारमाला
स्खलित हृदय नाभी वाससः, स्विन्नभालाः ।
ब्रज जन नव रामाः काननं गन्तुकामाः
सुमनस इव सिन्धोर्मन्थने ता विरेजुः ॥१६॥

युग्मम्

निपीय पीयूष सहोदरं खं मधु द्विशोबेणु विनिर्गतं ततः ।
अपूर्वसूया विभवैर्मनोभुवा, विभूषितास्ता विपिनं द्रुतं ययुः ॥१७॥

अनङ्ग सेनादि वराङ्गनास्तदाक्वणत्तुलाकोटिविनिर्मिताङ्गदाः ।
कटीर हाराः पदबद्धकुण्डलाः कुचान्तकाञ्ची क्वणिता बनं ययुः ॥१८॥

स्मरोत्सुकाः कङ्कण कर्णभूषणा रतिप्रियाद्या दयिता कलानिधेः ।
अलक्तकालिप्त कुचास्सचन्दनाःपदद्वये नेत्र युगे सकुङ्कुमाः ॥१९॥

कन्दर्प कीर्तिः कनकोज्ज्वलाङ्गी श्रीखण्ड लिप्तकैकुचंवहन्ती ।
गोवर्धनोद्धारि जिगीषयेव प्रालेय हेमाद्रि धराररराज ॥२०॥

चित्रोत्पला चित्रकला कलावती चित्राङ्गदा चित्ररता कुमुद्वती ।
पद्माननापद्म विकास हासिनी पद्मेक्षणापद्मपदा प्रभावती ॥२१॥

शृङ्गार वापी स्मरतापनाशिनी संभोगवल्ली कुसुमेषुवर्धिनी ।
कामाङ्कुराकामयशोविसारिणी कामोत्सवा काममतङ्ग गामिनी ॥२२॥

कर्पूरहासाः स्मरदर्पदीपिका रामास्तथान्याः सुरतप्रियादिकाः ।
घोरान्धकारेपथि रेजिरे यथा नीलाञ्चलेरत्नमरीचिवीचयः ॥२३॥

त्रिभिः कुलकम्

तडिद् द्युतीनां मुखचन्द्रदीधितिस्तिरश्चकाराथतमस्कदम्बकम् ।
पुनश्च तासां कचभाररोचिषस्तदादधुर्मित्रवदस्य वर्धनम् ॥२४॥

स्मरोद्धता मन्मथ बाणविक्षता मदालसा घूर्णदराल लोचना ।
अनङ्ग सेनादि सखी निषेविता बनं गता दन्तिगताथ राधिका ॥२५॥

कोकानां मिथुनेषु शोक सरसी संरक्तपङ्केरुहम्
पान्थानां तरुणीषु वाढविरह ज्वाला जटालोऽनलः ।
ध्वान्तानां परमाविपन्मृगदृशां मानाब्धि कुम्भोद्भवः
पद्मानांपदमापदां कुमुदिनी बन्धुर्विरेजेपुरः ॥२६॥

पुरद्वेषिभूतिस्फुरद्भूसराङ्गोलसच्चन्द्रकः शैलपुत्री सुतस्य ।
वियत्कानानान्तर्वभौनीलकण्ठः कृतान्तस्तमस्तोमकाकोदराणाम् ॥२७॥

---

१. 'क' पुस्तके वीक्षिता ।

निरुद्धमूलं तमसा कदम्बकं निनाय नाशं विधुदीधितिः क्षणात् ।
सहस्र जन्म।जित पाप सञ्चयं यथा यशोदासुतपादसन्नतिः ॥२८॥

पीते कैरव बान्धवेन तमसां सिन्धौ कलिन्दात्मजा
जाता पान्थवधू कपोल सुभगाश्वेतास्तमालादयः ।
नीलाद्रिर्धवली बभूवबलभिद्दन्तिप्रभादन्तिनः
कान्तिः किन्तु हरेः पयोधररुचश्चन्द्रे कलङ्कं दधौ ॥२६॥

टङ्कार. स्मरधनुषः पतञ्चिकायाः शीत्कारोमलयजवातयोगजातः ।
शृङ्गारो ब्रजबनिता रत.मृतानां कंसारेरथ मुरलीरवो बभूव ॥३०॥

चन्द्रवर्त्मं धवलीकृतगगनं वीक्ष्य मन्मथवशाः कृश तनवः ।
केलि कानन विलोकन कुतुकाः सङ्गता बनभुवं विधुवदनाः ॥३१॥

इतस्ततो विधो करैः प्रकाशिते बनान्तरे
पदाङ्गदध्वनिस्तदा बभूव गोप सुभ्रुवाम् ।
ततः पदाङ्गदध्वनिं प्रमाणिकां प्रियागतम्
विबुध्य मन्द वायुना ननन्द नन्द नन्दनः ॥३२॥

युद्धोद्धुराणां ब्रज सुन्दरीणामनीकिनीनामथ मीन केतोः ।
श्रुत्वा तुला कोटिरवं स कम्पः प्रोद्भिन्न रोमोऽजनिनन्दसूनुः ॥३३॥

राकयेव कला नाथं राधया सहसाधवम् ।
संयोजयन्ती सन्ध्येव दूतिकाहृपिकस्वरा ॥३४॥

राधा कानन का धारा धाम साध्वध्वसामधा ।
का सा ताजि जिता सा का नध्व जिघ्र ध्रजि ध्वन ॥३५॥
(सर्वतोभद्र.)

मत्वारण्ये कंसारातिं कामं बेणुं पौष्पं चापम् ।
तत्पादान्तं भीता याता विद्युन्माला लोला बाला ॥३६॥

पञ्च बाण विशिखेन पीडिता बेणु सीधु निनदैरथोद्धता ।
आजगाम दयितं कला निधि राधिका मदनसिन्धुचन्द्रिका ॥३७॥

स्मरणाच्चरणारक्ता चरणाभरणारवा ।
वारणा रमणा नम्रा धारणाच्चरणारतम् ॥३८॥

पश्यन्नपि स तृष्णस्तां कृष्णः सुरतरङ्गिणीम् ।
लावण्यामृत मीनाङ्क शङ्कापङ्कै रिति प्लुतः ॥३९॥

चलस्थल सरोजयोः किमिह हेम रम्भोदयः
सुवर्ण पुलिनस्थिते वियति काञ्चनाद्रि द्वयम् ।
सुधा महसि खञ्जनैस्तमसि कौमुदीबन्धनम्
धनं कुसुम धन्विनः किमुत राधिका राजते ॥४०॥

निपीय नेत्र पात्राभ्यां लीलामृतकदम्बकम् ।
अथानङ्ग रसार्द्राङ्गः शङ्कापङ्कमलं जहौ ॥४१॥

राधयोपनता रामा शान्ता का घन कान्तता ।
तान्त कानघ कान्ताशा मारातानि पयोधरा ॥४२॥

स्वागता प्रियतमा मुरवैरी पृच्छतिस्म तदनु प्रियवाचा ।
कन्टकौघ कठिने मृदुपादाः कानने निशिकथं कुलबालाः ॥४३॥

दृष्ट्वा वसन्ततिलकं विपिनं समन्तात्
इन्दोः करैश्च रुचिरं पुलिनं तटिन्याः ।
आकर्ण्य मद्गिरमितः प्रतियात गेहं
नक्तं प्रियं प्रियतमा न परित्यजन्ति ॥४४॥

प्रियतम वचनाद्विलोल नेत्रा मुखमभिवीक्ष्य परस्परं तरुण्यः ।
मुमुहुरवनतां कदम्बशाखां भ्रमरभ्रमेण विलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥४५॥

उपेन्द्र वज्राहत कौलशैला विसृज्य शीलंवर वर्णिनीनाम् ।
सरोजिनी सङ्ग समीरणेन प्रकम्पिताङ्ग्यो मुमुहुर्वराङ्ग्यः ॥४६॥

ततो युवति मण्डली विषमबाणबाणाहता
रता मधुनिघातिनि प्रतिवचो वदन्नन्दजम् ।

अये मदनमोहन ! त्वयि वनं गते मादृशां न
मारभयस्तलः कथं कौलधर्मच्युतिः ॥४७॥

यदप्यमृत सोदरं वचनमिन्दुबिम्बानन
त्वयैव विनिवेदितं प्रियतमं न नक्तं त्यजेत् ।
प्रियेति जगती तले प्रियतमं भवन्तं विना
न कञ्चन दृगञ्चलोच्छलितकाम विभ्रमोक्ष्यम् ॥४८॥

पुरहर खरकर नरचर सुरवर परसुरदर किरगरधर परवर ।
स्मर खरतर शरभर दरमुर शिरमिर मुरहरहर धरवरधरकर ॥४९॥

चक्रादि नानाबन्धाः ग्रन्थकविनामाङ्कित षडारचक्रबन्धः

सद्भावाय न तत्र गोपमहक्षिवस्तः स्वधुर्यम्बुदे
क्षिप्त्वास्येति सलोकपालमतुली वैयात्य सूश्चातकः ।
बद्धो धर्मरयेण लग्नमनसं तंस्वीकुर्वन्वीक्षते
तेनाऽसौ समुपेक्षितो भवति चेदेतेन कः सेव्यते ॥५०॥

ततः कदम्ब कानने प्रसून धूलिधूसरे
कुमुद्वती पतिद्युति प्रकाशिते दिगन्तरे ।
वचो निशम्य सुभ्रुवां मनोजवाण विह्वलः
प्रिया मनोऽमनोभवं विवर्धयन्हरिर्जगौ ॥५१॥

ततः स नन्दनन्दनश्चलः शिखण्डमण्डनः
सहास रास मण्डले कपोल लोल कुण्डले ।
क्षपाकरः क्षपाकरः स्फुरन्मुखो नितम्बिनी
चुचुम्ब चन्दनाङ्कनः स्तनद्वयोरुमर्दनः ॥५२॥

कटीररिङ्ग किङ्किणी कराब्ज कङ्कण क्वणैः ।
झणत्झणत्पदाङ्गदस्वनैश्च सञ्चिवत्तर दिशः ॥५३॥

पीयूषम्पिचु मन्दयन्कुलवधू धैर्याटवीं त्रोटयन्
कन्दर्पं द्रुममिन्दुशेखररुषा भस्मान्तमुज्जीवयन् ।
ग्रावाणां द्रवयन् श्रुतिं सफलयन् साध्वीपदं प्रोञ्छयन्
शृङ्गारार्णव शीतरोचिरुदभूत् कंसारि वंशीरवः ॥५४॥

अवलोक्य बनेऽगणिता वनिता रतिनाथ कलाकुल सम्वलिताः ।
पुलकावलिता वपुराविदधे विविधं रमयन् ब्रजपालयिता ॥५५॥

परिगृह्य करे रमणी निकरं मुखदीधिति निन्दितशीतकरम् ।
भ्रमतिस्म चरद्भ्रमरी निकरे विपिने घन नीरज धूलि भरे ॥५६॥

करयोखला हरिणा विधृताः परितस्सरता मधुरन्नटताः ॥
बभुराकुलिता नटन क्रियया चपला इव ताः घन सम्वलिताः ॥५७॥

अवला युगला कलितो मधुहामधुवैरियुगा कलिताः वनिताः ।
असितैर्मणिभिः कनकावलिभिः मदनेन कृताः किमुहार लताः ॥५८॥

घनवारि विभूषित नीलवपुः परिनर्तित केकि शिखण्डगणः ।
सघनस्समयो नव नीप रुचिश्चपलाद्युतिभिर्मधुभिन्मुमुदे ॥५९॥

स्वर्जनि जगती जयिनं हृदये समवाप्य मुदं परमां गमिताः ॥
भरतस्य नये सुधियो मधुरं हरिणा सहिता ननृतुर्वनिताः ॥६०॥

तारहार शारदोद्योतगर्व खर्वणः
क्षीरनीर नीरधि स्फीति वीचि सुस्मितः ॥
कुन्द वृन्द सुन्दरोद्दामदन्त दीधितिः
ननन्दनन्दनन्दनोऽति मूर्तिमान्किमुज्ज्वलः ॥६१॥

तदोर्वशी ,शशिप्रभातिलोत्तमा समेनकाः ।
पुलोमजा पुरस्सराः समागता बनान्तरम् ॥६२॥

दिशां सपञ्चसायकाः सपञ्चपञ्चचामराः
परेसुरा कुरद्रुमप्रसूनसेककारिणः ।

दिदृक्षवः समागता मुकुन्द केलिकाननम्
जगुर्यशो मधुद्विषो दधुश्च दुन्दुभिध्वनिम् ।।६३।।

वीणानामजनिरवस्तदाङ्गनानां सङ्गीते मुरमथन प्रहर्षिणीनाम् ।
शृङ्गारामृत सरसो रथाङ्ग यूनोरुद्धोलः किमु कुचयोरभूत्तदासाम् ।।६४।।

किं कुसुमेषोः कण्ठविभूषा नीलसरोजाचम्पकमालाः ।
नन्द तनूजालिङ्गनकाले रेजुरमन्दं गोपतरुण्यः ।।६५।।

कान्त नखान्तैर्भिन्ननिचोलाः शम्बर हन्तुर्बाण विभिन्नाः ।
रासबिहारे गोप सुदत्यः स्रस्त दुकूलं नोद्धृतवत्यः ।।६६।।

कुचकुम्भयोर्मृगदृशा हरिणा नखरक्षतानि रचितानि बभुः ।
लिखितानि मेरु सुषमाविजये प्रमिताक्षराणि विदुषात्मभुवा ।।६७।।

अत्रान्तराले रमणी बनीगतं सम्बर्धयन्कामरसालमच्युतः ।
अन्तर्दधे तालतमाल कानने कादम्बिनीमध्यगतो यथा विधुः ।।६८।।

जलद पटल द्योते याते बनं तडिदम्बरे
शशधररुचश्चौरे नृत्यत्कलापि कलापके ।
कुवलय रुचि द्रोहाकारे भृश हरिणी दृशां
नयनकमले वारां धारामुहुः पदमादधुः ।।६९।।

श्रीमत्कृष्ण सरस्वती गुरुपद द्वन्द्वाम्बुजानन्दिना
धीर श्रीमधुसूदनेन यतिना नन्दात्मज प्रीतये ।
यद्गोपालविलास संज्ञितमिदं काव्यं कृतं कौतुकात्
तत्रान्तर्हि कथाश्रयोभगवतस्सर्गो द्वितीयोऽस्यगात् ।।

—:o:—

तृतीयः सर्गः

विलपन्नथ सुन्दरीगणः स्मरबाण व्यथितस्समन्ततः ।
विपिने विचिकाय नन्दजं करिणीनां निबहो यथा द्विपम् ॥१॥

अयि माधवि ! माधवस्तव स्तवकानन्दिमना पथामुना ।
गतवान्यदि शंस मादृशीं कुरु दासी मधुसूदन प्रिये ॥२॥

ननु कुन्दमुकुन्द सुन्दर द्विजराजो रुचि कोरक श्रिया ।
तनुषे नयनालि सौभगं हृदि तापापहरं हरिं वद ॥३॥

सखि मालति ! मन्मथाशुग प्रतिमाकर्ण विलोचनेङ्गितैः ।
अपहृत्य मनो मृगीदृशां क्व नु यातो वदनन्दनन्दनः ॥४॥

दिश केसर ! केन वर्त्मना गतवान्नन्द पयोधि चन्द्रमा ।
मधुमित्रहतां कुमुद्वती न कथं प्रीणयति प्रिया निशि ॥५॥
तुलसी ! त्वमसि प्रिया हरेः त्यज सापत्न्यरुषं वद प्रियम् ।
प्रणतानपि किं विरोधिनः क्व नु कुर्वन्ति मुकुन्द वल्लभाः ॥६॥

सहकार कदम्ब चम्पका ! क्व नु यातो व्रजनाथनन्दनः ।
श्रवणे मणिकुण्डलान्विते भवतां यो विदधाति मञ्जरीम् ॥७॥

अयि मल्लिलवंगयूथिके ! क्व गतो नन्द सुतो वदन्तु नः ।
हृदये कमला कृतालये भवतीनां कुसुम स्रजं दधत् ॥८॥

एणाङ्कमीनाङ्क विमर्दितानामस्मादृशीनां वनवर्तिनीनाम् ।
मा पद्मिनीनां कुरु ताप पापं पद्मालया सोदरशीतरश्मे ! ॥९॥

श्रोणी वक्षोरुह शिखरिणो गौरव क्लान्त मध्या
मन्दाक्रान्ता पदकमलयोरङ्कुरोद्भूद खेदाः ।

एवं वृन्दावन परिसरे सञ्चरन्त्योधकारं
मत्वागम्यं व्रज युवतयस्ता निनीतीरमीयुः ॥१०॥

तीरे नद्या माधव श्रीपदाङ्के भृङ्गी गीते मन्दमन्दार वाते।
जातास्तासां काम बाणार्दितानां कृष्णे तृष्णा शालिनीनां विलासाः ॥११॥

ततः कुमुद बान्धवद्युति कदम्ब निन्दावहः
स्मराशुगवशाजनीः सुरतरङ्गनीर्नन्दयन्।
दिशो मलयज त्विषो विदधदिन्द्र नीलप्रभा
पयोद पटली वपुर्व्रजवधूरगान्नन्दजः ॥ २॥

बलानुज विलोकनान्मृगदृशां तरलिता द्युतिः समुदिता।
हलायुध हलाहतेरिव चलत्कलिन्दतनया जलोद्धतर्गतिः ॥१३॥

अथोत्थितानां युगपद्वधूनामानन्दितानां प्रिय दृङ्निपातैः।
नेत्रालि नीलोत्पल मालिकाभिः वपुर्मुरारेः महित बभूव ॥१४॥

यदा बधूनां नयनाभिलाषस्तस्मिन्सहस्रं युगपद्विरेजुः।
उपेन्द्र रूपं परिहृत्य कामात्किमिन्द्रभावं धृतवान्मुकुन्दः ॥१५॥

कान्दर्पङ्कार्मुकं किं मुरहरविजये बिभ्रतीभ्रूमिषेण
प्रोद्यच्चाम्पेयपाशौ किसलय रुचिरौ बाहुवल्लीवहन्तो।
स्वर्गङ्गापूरहारासुरगिरिकुचभृन्मन्मथोर्वीन्द्रसेना
राधा राजीव नेत्राकिरदिति निशितान् सायकान्दृङ्निपातान् ॥१६॥

अवलोक्य हरिं हसिताननना हरिणशावविलोल विलोचनाः।
कुचकुङ्कुमपिञ्जरिताम्बरैर्मधुभिदो विदधुर्वरमासनम् ॥१७॥

हरिरपि वनिता चकोरिका दृग् चुलुकित कान्तिकदम्ब कौमुदीशः।
मदनमुदधिमुत्तटं वितन्वन्यदमृतसृति सन्दधेऽधरान्ते ॥१८॥

अथोत्तरीयैः कुच कुङ्कुमाङ्कितैः परार्ध्यवर्णैः परिकल्पितासने।
बभौ मुरारिर्बहुरत्ननिर्मिते यथेन्द्रनीलः पदगे निवेशितः ॥१९॥

सुखं समासीनमवेत्यमाधवं तदीय सेवानिषतः समन्ततः।
अथावलाभिर्मदनस्य भूपतेरकारिलावण्यगृहस्य लुण्ठनम् ॥२०॥

काचिन्मुकुन्दस्य मुखेन्दुनिर्गतं ताम्बूल कल्कं करपल्लवे दध।
पाथोऽधि पुत्री कुच पालिपालितं पादाम्बुजं कापि ममर्दगोपिका ॥२१॥

सम्पादयन्तीव रसाल पल्लवं कामाप्तयेऽम्भुशिरोविभूषणम्।
हस्तं मुरारेः कुचकुम्भसङ्गतं काचित्कृशाङ्गी विदधे रसाकुला ॥२२॥

पीनस्तनावर्जितपूर्वविग्रहं कन्दर्पदर्पाद्भुजवल्लिर्निर्जितम्।
निपीडयन्ती कुपितेव माधवं राधादधाराङ्कुरिताङ्गबल्लरीम् ॥२३॥

लोलालकान्कान्त कपोल सङ्गतान्सम्वृण्वती कापि चुचुम्ब तन्मुखम्।
अन्यातदङ्गानि विमृज्य गाणिना सम्वीजयामास सरोजिनी दलैः ॥२४॥

क्रीडारुषाकापि विधाय मौनं तत्पादपद्मं हृदि चिन्तयन्ती।
रोमाञ्चिता स्वर्णरुचिश्चकासे रत्नाङ्कुरा हेममयी महीव ॥२५॥

मृगमदपृषतविलोचनभाला मलयज नव विधु मण्डित मौलिः।
मुररिपुमुखमपरेक्षत रण्डी गिरिश वदनमिव गर्वित चण्डी ॥२६॥

हरणीं धृतिं मुरहरस्य हृद्वने सहितां विवेकहरिणेन सन्ततम्।
विदधेऽपरान्यभृतमञ्जुभाषिणीसुमनोधनुर्मृगयुर्मार्गणाहताम् ॥२७॥

कुसुमित बनभूमौ मानिनी कान्तिभाजां
हरिरपि घन रोचिर्मोचयामास तापम्।
कमल मुख विकासः प्रादुरासीत्तदासाम्
दिनकर कर सङ्गाद्यादृशः पद्मिनीनाम ॥२८॥

देवेन्द्र वज्रादभवन्नपक्षाः क्षोणीधरास्तस्य सहोदरोऽयम्।
कर्ता किमद्येति तदा बधूनां वक्षोज शैलेषु बभूव कम्पः ॥२९॥

एष भ्राता गोत्रभेत्तुः पुरस्ताद्बालक्रीडोत्पाटितक्ष्माधरेन्द्रः।
एवं क्षोभस्वेदधाराविरासीद्बाला वक्षः स्वर्णभूमीधराणाम् ॥३०॥

प्राप्यारण्ये चञ्चलाञ्चत्पयोदं पूर्णं तत्राप्यौषधीनामधीशम् ।
श्वेतैः पुष्पैरङ्कुरैरुल्लसद्भिस्तोषैः रत्नैः पूरिताः स्वर्णवल्ल्यः ॥३१॥

कक्षयोः क्षतार्पणे मृगेक्षणा भुजान्तरं
रागिणा कराङ्गुलीकदम्बकेन चक्रिणः ।
स्वर्णकेतकैः कृतं मनोभवस्य धन्विनः
तूर्णकं शिलीमुखैः समञ्चितं यथा बभौ ॥३२॥

करकचग्रहसंग्रह चुम्बनादनुकुचद्वयनिर्दयमर्दनम् ।
मधुरिपोः प्रतिलभ्य वराङ्गना निरूपमां सुषमामथ ता दधुः ॥३३॥

गुणालयत्वादबलाभुजाभ्यां मुरारिरप्यायतकण्ठ बन्धम् ।
इतीव तासां कुचसङ्गिहारा जहुर्गुणालि परिरम्भकाले ॥३४॥

व्रजजनतरुणी कुचगिरि शिखरे दधुर्रति सुषमां मुरहरनखराः ।
मदवनकरिणः करतट मिलिताः किमकृतमदनः प्रहरण कलिकाः ॥३५॥

युवति कुचयुगं कुङ्कुमैः पङ्किलं
हरिनखरचितं तार हाराञ्चितम् ।
अरुणकचभर स्वधुनी चन्द्रक
द्युति गिरिश शिरः सन्दधे बान्धवम् ॥३६॥

मुहुर्नखाघात विदारितानि बभुर्वधूनां कुचमण्डलानि ।
आम्राणि ताम्राणि यथा वनीनां शुकस्य चञ्चुक्षत सङ्कुलानि ॥३७॥

अधरी कुरुते रसं सुधाया मधुरिमणा बहिरन्तरेऽस्ति किं वा ।
अधरे रदनक्षतं वधूनां मधुहन्ताकृतवानितीव बुध्वा ॥३८॥

गोपवामनयनाजन शाली वल्लभाञ्चित समीर सुसेव्यः ।
कान्तिमाप महितां शिखिकान्तानन्दन द्युति शिखण्डवतंसः ॥३९॥

वैदूर्य शङ्कुं कनकैर्निबद्धं मध्ये समारोप्य समन्ततोऽस्य ।
द्वयोर्द्वयोरन्तरितस्तरुण्योः रासे विहर्तुं स चकार चेतः ॥४०॥

ततस्तरल कङ्कणं कनक किङ्किणी कूजितं
पदाङ्गदरणत्कृतं मधुरवेणु वीणारवम् ।
रसाल रमणी करोत्तरलतालतालाकुलं
बभूव रमणी गणैर्मुरहरस्य रासोत्सवः ॥४१॥

निःशङ्क लीलं मुरवैरिरामा श्रीरङ्गमेकारतिलीलमन्या ।
रङ्गप्रदीपं मदनेन रक्ता तालं दधे कापि रतिं भजन्ती ॥४२॥

प्रत्यङ्गरङ्गाभरण त्रिभङ्गी कन्दर्प रङ्गैः मुहुरङ्गनाभिः ।
अनन्दिनन्दात्मज मोदहेतुरतायि तालो ललित प्रियश्च ॥४३॥

कापि गोप वनिता ललित श्रीकोकिला प्रिय कलं कलयन्ती ।
हंसलीलमपरागजलीलं स्वीचकार मुरजित्प्रियकामा ॥४४॥

वसन्त मल्लिकामोदशालिन्यो गोप बल्लभाः ।
लीलाकरण लक्ष्मीश शीलनेन मुदं दधुः ॥४५॥

कापि गोप तरुणी मधुवाणी ग्रामरागमपराप्युपरागम् ।
अङ्गरागमितरापिककण्ठी गायतिस्म मुरजित्प्रियकामा ॥४६॥

कान्ता रसाक्तापि मुकुन्दकान्ता हास्यां तथान्या हसिताननेन्दुः ।
स्निग्धां विधुस्निग्धमुखी मृगाक्षी हृष्टां दधे हष्टिममन्दभावा ॥४७॥

नटन्नयन खञ्जनं विकसदिन्दुबिम्बाननं
विलोल भुज बल्लरि स्खलित नीवि तिर्यक् त्रिकम् ।
पयोधरधरोद्गम त्रुटित कञ्चुक ग्रन्थिभिः
मुरारि रमणो गणैर्भरत तन्त्रमुद्दीपितम् ॥४८॥

क्वचित्कुटिल वीक्षणं स्मित निरीक्षितं कुत्रचित्
क्वचिद्वदन कुञ्चनं मधुरभाषिवक्त्रं क्वचित् ।
अतिद्रुत गतागतं क्वचन मन्दमन्दभ्रमं
क्वचिन्मदन वर्धनं दधुरमन्द लास्यं स्त्रियः ॥४९॥

धम्मिल्ल स्रस्तमल्ली तरलितवलय स्रग्धरा स्वेदवारां
धारा धौताम्बरान्तद्रुत कनक तनुव्यक्त वक्षोज भासः ।
भ्रू वल्लीहार कर्णाभरण भुज पदान्दोलनैः किङ्किणीनां
वाद्यैरुद्दीपयन्त्यो मधुरिपु मदनं राधिकाद्या ननन्दुः ॥५०॥

वृन्दाटव्यां पीयूषांशोः किरणनिकरकृत शिशिर सरस्यां
भ्राम्यद्भृङ्गी वृन्दान्दोल द्विजकुल तरलित वहलनलिन्यां ।
पायं पायं हंसी लीलामधुरिपु मुखमधु मधुकर शीलाः
कामोन्मत्ता नृत्यासक्ताः ददुरनिमिषगण नयन फलन्ता ॥५१॥

रुणज्झणदिति क्वणद्वलय किङ्किणी नूपुरे
रुकन्तक तथै तथै धिगिधिगित्यधीरध्वनौ ।
चटच्चटदिति द्रुतप्रकटनाद देशे नटन्
मुरारिरपि सुन्दरी रतिमपूरि पृथ्वीं मुहुः ॥५२॥

परितः सुमनः सुमनो महितः सुमनो विशिखाशुग विह्वलितः ।
नटनेऽगणितं वपुराविदधे मधुभित्प्रमदागण कोटि युतः ॥५३॥

बभुरति चपला मृगीलोचना चिकुरनिचय मल्लिका मालिका ।
जलदमिलित कौमुदीवाथवा[1] वियति विलसितेव मन्दाकिनी ॥५४॥

गर्जाशङ्क्यं किङ्किणीकातालविरावैः
वृष्टिभ्रान्तिस्वेद पयोभिर्विदधत्यः ।

---

१. 'क' पुस्तके वान्धवा ।

विद्युद्भासः कृष्ण समेताश्चपलाङ्ग्यो-
वृन्दारण्यं चक्रुरिमा मत्त मयूरम् ॥५५॥

कुन्तलभाराः कुटिलिमसारा मोक्षमवापुर्गुणगणबन्धात् ।
मन्मथ लीला मधुमथनस्य स्यादनुकूला जगति न कस्य ॥५६॥

नृत्यन्तीनां कचचय गलिता मल्लीमाला भ्रमर विलसिताः ।
कालिन्द्यम्भः कणकुल शवल स्वर्धुन्युद्यद्भ्रमिरुचिमभजन् ॥५७॥

नटने पदाङ्गद चलत्कलहंसश्चलपाद कोकनदसारस कान्तिः ।
कुच कोक युग्म कमलानन कान्तिस्तरुणीगणः स्मर सरः शुशुभे किम् ॥५८॥

नन्दयन्नन्दजः सुन्दरी मण्डली-
मन्तरं सङ्गतस्तर्पयन्दर्पकम् ।
कामिनी कान्तिभिश्चम्पक स्रग्विणीं
स्वान्ततनुं कल्पयन्पञ्चमं सञ्जगौ ॥५९॥

शामनैर्बन्धनैर्यः स्मृतो मोचयत्यजान् किं पुनस्तत्पदध्यायिनः ।
स प्रभुर्मालती मालिका बन्धुभिर्बन्धनं प्रापितो गोपिका बाहुभिः ॥६०॥

यत्पदध्यानतोऽभ्यासिनः कोटिशो विभ्रमैर्मोचितास्तत्पदं प्रापिताः ।
स स्वयं बन्धनं प्रापितो विभ्रमन्निर्भरं विभ्रमैः सुभ्रुवां नन्दजः ॥६१॥

पीत्वा मत्ता मधुमधुपाली शीला बाला बलसहजेन ।
साकं नृत्ये सरस मनस्का गीतं चक्रुस्स्खलित वचस्काः ॥६२॥

स्मर मनोरमलास्य परम्परा द्रुतविलम्बित मध्यलयानथ ।
विदधतीर्युवतीरनुरञ्जयन्मुरहरोऽप्यकरोन्मुरलीरवम् ॥६३॥

किमेणी दृग् वक्षोरुह गिरिदरीकाम पारीन्द्र निद्रा
दरिद्रत्वाद्धात्रा व्यरचिविधिनामेघविस्फूर्जितालिः ।

किमुद्यन्माध्वीक द्रव परिणतिः किन्तु पीयूष सिन्धुः
मधु द्रोग्धुर्वंशी ध्वनिरिति सुरस्त्री कदम्बैः व्यतर्कि ॥६४॥

नितम्बवती चय चुम्बन दानमुरः परिवल्गित मौक्तिक दाम।
ननर्त विनर्तित नेत्र सरोजमुदञ्चित पञ्चम रागमुपेन्द्रः ॥६५॥

मधुगीतिका पिक कण्ठिका रति जित्वरी व्रज सुन्दरी
मुख चुम्बनैः कुचमर्दनैः रमयन्मुहुर्नटयन्बहुः।
सुमनो गणैः जय निस्वनैस्तरलालिभिः कुसुमालिभिः
कृतवन्दनो मधुसूदनः श्रितनन्दनो मघवानिव ॥६६॥

क्रौञ्च पदाङ्कैश्चित्रित तीरां मधुकर तरलित कुवलय रुचिराम्
मन्दसमीरान्दोलितनीरां समदन खगकुल मृदुरव मधुराम्।
चञ्चल चेला लोचन खेला नखहत जघन तरल तर रसना
रास बिहारे माधवरामाः कनक सरितमिव तनुरुचिमदधुः ॥६७॥

यामुन तीरे स्थल जलनलिनी सङ्गम लालस मलय समीरे
यामिनि जानि प्रतिहत तमसि क्षीरपयोनिधि महसि बिहारे।
कामपि तन्वीं मधुरिपु सहितां गीतमनोभव समुदयगीतां
वीक्ष्य सकामो दशशतनयनः कर्णमलिप्सत् नयनसमानम् ॥६८॥

नृत्यति रासे मधुभिदिमधुरं चुम्बति चञ्चल युवति कदम्बम्
देववधूनामहमहमिकया गोप वधूजन तपसि मनोऽभूत्।
माधव बन्धुर्धृतरतिनटतः कोपयुतः किमु मधु विनिहन्तुः
कामवशानां तरलित नयनैः कर्णनिकायमकृत हृदयान्ते ॥६९॥

अत्रान्तराले दिविषद्वधूनां गोविन्द नृत्यार्पित लोचनानाम्।
व्यग्राणि चित्तानि समीक्ष्यमारश्चौरो जहाराम्बरमन्तरेभ्सु ॥७०॥

रास रसोद्धत नन्द तनूजं वीक्ष्य सवेपथु देव सुदत्यः।
किं पुनरम्बर लुण्ठन भीतेरम्बरमस्वरमाहतवत्यः ॥७१॥

वेणु रवोर्जित पञ्चमरागः पञ्चशरस्फुट कान्ति कदम्बः ।
कामकलाकुल गोपवधूनामन्तारागमपूरयदीशः ॥७२॥

देवा वधूनामवधूयवासः पद्भ्यां हता मूर्धनि याभिरासन् ।
आशांशुकत्वं ददतः किमासां पुष्पैर्मुकुन्दस्य दधुः सपर्याम् ॥७३॥

विद्युन्मालालीलाखेलाबाधां पाद द्वन्द्वान्ते
लब्ध्वासीनारत्याः पत्या हावं भावं कुर्वन्त्यः ।
गोपालानां बालालास्यैः शुभ्रेऽरण्ये चन्द्रांशोः
भेजुः कान्तिं मन्दान्दोलप्रासादान्तर्दीपालेः ॥७४॥

गोप वधूटी[1] कोटियुतः शम्बर हन्तुर्बाणहतः ।
नन्दसुतोऽभून्मारकतः स्वर्णतनूनां मध्यगतः ॥७५॥

मारकतः श्रीर्गानिरतस्तन्मणिशंकोरूर्ध्वमितः ।
किं मणि मध्यादाविर्भूत्कान्ति कलापो नन्दसुतः ॥७६॥

परिणत शशधर रुचिर्रुर वदना स्मरखर शरभर परवश मनसः ।
व्रज युवतय इहकृत नटुनटना प्रियहृत कटितट पटमपि न विदुः ॥७७॥

रतिश्रमाम्भः कणिकाभिरञ्चितं प्रभात पङ्केरुह कान्ति तस्करम् ।
ततः प्रियाणां मुखमम्बुजेक्षणश्चुचुम्ब मत्त भ्रमरश्रियं दधत् ॥७८॥

ततो युवति मानसं कुमुदकाननमुद्रयन्
मुहुर्नववधूमनो नलिनवृन्दमानन्दयन् ।
रथाङ्गकुल कामिनी बहल रागधारां दधत्
जवाकुसुम सोदरो गरुडसोदरोऽभूत्परः ॥७९॥

---

१. यह श्लोक 'क' पुस्तक में नहीं है ।

आशां समीक्ष्य बलरिपोः प्रभावतीमाह प्रिया मुरमथन कलावती ।
हे यामिनी रमण सहोदराननाः क्रीडान्तकः सवितुरुदेति सारथिः ॥८०॥

उदञ्चत्कालिन्दी कमलवदनां कोक मिथुन-
स्तन द्वन्द्वामिन्दीवर नयन सौन्दर्य लहरीम ।
समालिङ्ग्य क्षीवः स्थलकमल माध्वीक कवलैः
कुरङ्गीणां नाभीः स्पृशति पवनः पान्थशमनः ॥८१॥

कंसारातेर्वचन विलोला बाला
जातावल्लयः प्रबल समीरान्दोलाः ।
विद्युल्लीला जलधर मालाभासं
कान्तं वीक्ष्य स्मरशर भिन्नाश्चेलुः ॥८२॥

अथ सभय ब्रज सुदृशां ततिरभवत् त्वरितगतिः ।
पुनररुणं गतकरुणं दिशमपि तां मुहुरशपत् ॥८३॥

अग्रे नृत्यन्कुवलयनिबहः द्रोहि नेत्रालिभासः
पश्चादासां घनरुचि चिकुरस्तोमधाम्नां कलापाः ।
ध्वान्त व्राता रिपु ततिरति चञ्चला चित्तलेखा[1]
नेतुं सद्म प्रमुदित मनसः किम्वभूवुः सयत्नाः ॥८४॥

नक्तञ्चराणामिव शोणितोघैः रक्ताम्बरं वीक्ष्य दिनेश सूतम् ।
नक्तं प्रियाणां परिपूर्यकामं लोलेक्षणः सद्म हरिर्जगाम ॥८५॥

हरिण रमणी नेत्रा वालास्ततो बल सोदरम्
हृदय कमले रक्ते धृत्वा विलोक्य पुरोऽरुणम् ।
मृगमदचयं कृत्वा शोणे यथा मणि सम्पुटे
लघु लघु पदन्यासास्त्रासाकुलाः सवनं ययुः ॥८६॥

---

१. 'क' पुस्तके चित्रलेखा ।

कर परिसरकृत मुखर बलयकुल-

मुरुचलनयनकमलमवसथमधि ।

अवनत वपुरव धृतसुखशयपतिः

ददुरथकशिपुषु चरणमचलधृतिः ॥८७॥

श्रीमत्कृष्ण सरस्वती गुरुपद द्वन्द्वाम्बुजा नन्दिना

धीर श्री मधुसूदनेन यतिना नन्दात्मज प्रीतये ।

यद्गोपाल विलास संज्ञितमिदं काव्यं कृतं कौतुकात्

तस्मिन् केशव रास केलि ललितस्सर्गस्तृतीयोगतः ॥

—:०:—

चतुर्थः सर्ग.

एवं प्रियाभिः प्रतिनक्तमीशः शशाङ्क शुभ्रासु वनीषु रेमे ।
यथाप्सु गीर्वाणतरङ्गवत्या द्विपाधिपोमत्तमतङ्गजीभिः ॥१॥

सदैव राधा हृदयारविन्देभृङ्गायमानोऽप्यरविन्द नाभिः ।
तत्प्रेम वृद्धि विदधद्वनान्तादन्तर्दधे क्वापि कुतूहलेन ॥२॥

गतेमुकुन्दे विरहेण राधा हृदादधानाप्यरविन्द वृन्दम् ।
जगाम शोषं शरदर्कतप्ता जीमूत मुक्ता सरसीव नित्यम् ॥३॥

निदाघ तप्तामिव बल्लरीभिर्वनीं सखीभिस्सहितां कृशाङ्गीम् ।
मालाकृता कापि विलोक्य कान्ता सन्तापमस्याः शमयन्त्युवाच ॥४॥

दामोदर प्राणसमे ! न कामो न्यूनोऽस्ति कश्चित्तव किं कृशासि ।
इत्युक्तवत्यामथदूतिकायां रुदन्मुखी तां निजगाद राधा ॥५॥

दूति ! त्वया नन्दसुते निवेद्यं शीतांशुबिम्बं सुबहुप्रतप्तम् ।
पाटीर पङ्कं मलयानिलं वा हालाहलं सम्प्रति सम्प्रयाति ॥६॥

पद्मानि यान्येव भवन्ति यस्याः सद्मानि सा किं सदृशीममासीत् ।
तान्येव दैवोपहतामिदानीं मां कुर्वते दुःखनिधानमुच्चैः ॥७॥

स्वहस्त सिक्तोऽपि रसालशाखी दहत्यमन्दं नयने मदीये ।
कुन्दोऽपि मन्दो मकरन्दमाद्यन्मधुव्रत व्रात रुतैस्म नाथ ॥८॥

भृङ्गावली या कवरी निविष्टा माध्वीक लुब्धा मधु मल्लिकानाम् ।
कालेन सैव श्रुतिशल्य भावं व्रजत्यहोतन्मलिनेन चित्रम् ॥९॥

भो शार्ङ्गधन्विन् ! किमिदं विचित्रं तवोपभोग्यां गरुडध्वजस्य ।
दुनोति नित्यं मकरध्वजोऽपि पुष्पावली कल्पित चाप वल्लिः ॥१०॥

स्मरः पुरारेर्नयनाग्निनाभूद्भस्मावशेषः स पुनस्त्वयैव ।
नेत्रान्त पातेन निरूढ़कान्तिः कृतः कथंते रमणीं दुनोति ॥११॥

रतिस्तदासीन्ममदासिकासौसौभाग्यकामा मदनस्य रामा ।
रतिं न विन्देक्षणमम्बुजाक्ष ! त्वदास्य चन्द्रामृतवञ्चिताहम् ॥१२॥

कौटिल्यभाजां नव किंशुकानां रागान्न चित्रं परपीडकत्वम् ।
अशोक नाम्नापि जगत्प्रसिद्धः सशोकिनीं मां किमयं विधत्ते ॥१३॥

पुन्नाग बालोऽपि कृतालवालः सम्वर्धितः प्राणपरिश्रमेण ।
स एव पुष्पाङ्कुर पल्लवौघैः प्राणैर्मम क्रीडति निर्विशङ्कम् ॥१४॥

यस्याः प्रमादाद्गलितः प्रवालो दृष्टोमया प्रेम जलाकुलाक्ष्या ।
सा मालती मे हृदये विधत्ते सन्ताप धारां विधिवञ्चितायाः ॥१५॥

सम्मानितस्ते पद पल्लवाभ्यां नीपस्तरूणामधिपः पुराभूत् ।
स पाप बुद्धिः परपुष्ट दुष्टानाश्रित्य मां व्याकुलयत्यजस्रम् ॥१६॥

वासन्त्यपिप्राण समा समासीन्नित्यं सुखीव प्रतिपाल्यमाना ।
मां मन्दभाग्यामनिशंमुरारे ! क्षिपत्यसौ शोकमहार्णवे किम् ॥१७॥

पुत्रीव पूर्वं प्रतिपालिता या वासन्तिका सा करिणीव नित्यम् ।
करोति मारं हृदयारविन्देनिन्दामिधातारमहं वृथैव ॥१८॥

या मल्लिका ते पद पल्लवेन भिन्नालवाला कुतुकात्कदाचित् ।
कृता तदा कोप समाकुलाक्षी भवन्तमैक्षे नमिताननेन्दुम् ॥१९॥

सा पापिनी कान्त वसन्त लाभादानन्दिता चन्दन मन्द वातैः ।
करोति कामस्य वशं मदीयं मनो मनोज्ञस्मित सुन्दरास्य ॥२०॥

युग्मम्

हिन्दोलिका दाम विलग्नहस्ता स्रस्तालकाश्चन्दन चर्चिताङ्ग्यः ।
विलोलहाराश्चल नीरजाक्ष्यः कलक्वणन्नूपुर किङ्किणीकाः ॥२१॥

चलन्मनोजस्मित मञ्जु मुख्यः स्खलद्दुकूलाश्चल कङ्कणाभाः ।
राका शरच्चन्द्र मरीचि हाराः स्मेराननाभिः परितः परीताः ॥२२॥

पेपीयमाना नयनैः पतीनां दोधूयमानाः करपल्लवैस्तैः ।
आनन्दिताः कोमल वाग्विलासैर्नार्यो रमन्ते मधुमन्द वाते ॥२३॥

अहं तु नन्दात्मजमन्तरेणस्तम्बेरमेणेव रतीश्वरेण ।
अपि प्रसूनैर्विशिखैः कृतास्मि भिन्नान्तराला नलिनीव नित्यम् ॥२४॥

चतुर्भिः कलापकम्

हारावलीं मे हृदये कृतासीत्त्वया हरे ! या गजमौक्तिकानाम् ।
सा नाथ ! नित्यं भुजगी भवन्तो दुनोति चित्तं बत किं विधेयम् ॥२५॥

न्यस्ता सखीभिस्तन ताप शान्त्यै कस्तूरिका धूम लतेव सासूत ।
स्वयङ्कृता या बकुलस्य माला ज्वालावली सा मदनानलस्य ॥२६॥

दत्तालिभिः प्रेमकलाकुलाभिः शैवालवल्ली सपटीर पङ्का ।
घृताहुतिः सा मदनानलस्य प्राणा मदीयाः समिधो भवन्ति ॥२७॥

होता विधाता ममरोमराजी कुशावसन्तोयजमानराजः ।
धर्मस्त्वया दुःसह विप्रयोगः फलं मदीया दशमी दशैव ॥२८॥

त्रिभिर्विशेषकम्

कल्हार राजी रजनी जनानामानन्दित्तो या मधुमाधवी या ।
कर्पूर धूली नलिनी दलाली न शीतली कर्तुमलं मदङ्गम् ॥२९॥

मृगी मृगेन प्रतिलब्धमाना कर्णाग्रकण्डूयनहङ्गिनपातैः ।
शेते नदी सैकत शीतलासु छायासु वृन्दावन पादपानाम् ॥३०॥

कोकी निशिप्राणसमेन हीना दीना दिवा भानुमतानुकम्प्या ।
सुखं नखालेखन चुम्बनादीन्समेत्यपत्या रमते समाथा ॥३१॥

लतापनीनामवनीरुहाणां शाखाभुजालम्ब वलन्मनोज्ञाः ।
प्रसून हासा दर चञ्चलाली श्रेणी दृगन्ताः पुलकाञ्चिताङ्गाः ॥३२॥
प्रवाल राजी नवकुङ्कुमाली प्रभूत कान्तिः स्तवकस्तनान्ताः ।
माध्वीकविन्दुश्रमवारिधारा स्वैरं रमन्ते मधुना बनान्ते ॥३३॥

युग्मम्

गजीगजेनानतकन्धरेणभ्रू भङ्गि कर्ण व्यजनानिलाभ्याम् ।
हस्तेन हस्तं परिरभ्यगाढ़मानन्दितास्ते यमुना जलान्ते ॥३४॥
भृङ्गेन साकं सरसीरुहानां बने बने पानरता द्विरेफी ।
शनैः शनैरञ्चितमञ्जुगीता नीता प्रियाङ्कं स्मर शासनेन ॥३५॥
मरालमाला कमलालिमाला सङ्गीत सन्दीपित मीन केतुः ।
आनन्दमाविन्दति बल्लभाङ्के लीना कुलीना तव कामिनीव ॥३६॥
विहाय गीर्वाण गणोपभोग्यं सुधाकरं मन्मथ बाणभिन्नः ।
पिबन्न तृप्तो नयनाञ्चलाभ्यां चकोरिका चञ्चुपुटं चकोरः ॥३७॥
प्राणेश्वरं शम्बर वैरि बाणैर्विभिन्न मर्माणमपि क्षमाता ।
नवं नवं कोपमुपाददाना मानावलेपेन कृत प्रयाणा ॥३८॥
अत्रान्तरे मानधनेन हीनः चकोर कान्ता स्मर तस्करेण ।
भूयोऽपिपत्या विहित प्रणामावामापि रेमे मधु चन्द्रिकाभिः ॥३९॥

युग्मम्

आरुह्य शाखां स्तवकानताया वासन्तिका या परपुष्टरामा ।
कान्ताङ्ग सङ्गोल्लसिताङ्गयष्टिर्भृङ्गाङ्गना गीतमलञ्चकार ॥४०॥
पारावतोऽपि श्रवणाभिराममनङ्गरङ्गैरिवघूर्णमानः ।
गायन्मनोजाङ्कुरिताङ्गवल्लीमालिङ्गति प्राण समांसमानाम् ॥४१॥

कपोत रामा रमणीय गीतापीतामृता शान्त तरोरधस्तात् ।
पतिं भजन्ती कमनीय रूपा भूपाल बालेव मधौचकास्ति ॥४२॥

पतत्प्रसूनालि कलत्र गीतः सुगन्धि शीतानिल बीज्यमानः ।
कान्ताननं निश्चलमीक्ष्यमाणोनृपायतेरन्तुमना कपोतः
यद्वाकूजितराज हंसः ॥४३॥

गाढं शुकः किंशुक कर्णराजीराजत्प्रसूना रमणी ममेति ।
आलिङ्गनानः स्फुटचित्तजन्मा निहन्यते बल्लभयापदाभ्याम् ॥४४॥

प्रसून धूली धवली कृताङ्गाः संगीतमानङ्गमुदञ्चयन्तः ।
कामंरटन्तः सरसं नटन्तः पटन्ति होलां विटवद्विहङ्गाः ॥४५॥

शरालि यूनोः सुखनोपरावैः कुरङ्गक न्तां यवसान्यहासीत् ।
उत्तम्भित श्रोत्रपुटोपनीतस्स्वरामृतं न्यक्कृत वारिधारा ॥४६॥

बने चरा वारिचरा विहङ्गाः स्त्रियोऽथवा स्थावर जङ्गमानाम् ।
मदेन भिन्नाः सुखिनो रमन्ते विधेर्विधानं किमिदं न जाने ॥४७॥

पञ्चदशभिः कुलकम्

वृन्दावनं निन्दित नन्दनादिः क्रीडा बनं पदमभुवापि वन्द्यम् ।
यस्मिन्निविष्टा परिहृत्य दूर निसर्ग वैरं नकुलैर्भुजङ्गाः ॥४८॥

हरीन्द्र वृन्दैः करिणः परीता मयूर यूथैः सहदन्दशूकाः ।
अजा वृकीभिर्महिषैस्तुरङ्गाः कुरङ्ग शावाश्च तरक्षु सुरयैं ॥४९।

काकेरुलूकाः सह नारमेयैः शशावृषादैंगरिकाः समेताः ।
श्येनैरसंख्यै शिशवः समेता विरोधिनोऽन्येपसमेत्यनित्यम् ॥५०॥

मित्राणि मित्रैरिव मोदमानाः परस्परं प्रेम भरं भजन्ते ।
प्राणेश ! तस्मिन्नपि चित्तजन्माधुनोति चित्त ममचित्रमेतत् ॥५१॥

चतुर्भिः कलापकम्

दूति प्रयत्नादिति वाचिकं तत्पादारविन्दे विनिवेदनीयम् ।
मुखारविन्दं तव सुन्दरीणां नेत्रालि साफल्यमनीक्षमाणा ॥५२॥

मृत्युं न निन्दाम्यरविन्दनाभे ! विन्दाम्यमुं किन्नु विषादमुच्चैः ।
बिनाभवन्तं यदनन्य योग्यं भवेन्मदङ्गं ज्वलनोपभोग्यम् ॥५३॥

त्वयि स्थितेशास्तरि दुर्जनानां त्वदेकनाथामवलामनङ्गः ।
वैवस्वताशा मरुता बनान्ते कीनाश पाशस्य वशं विधत्ते ॥५४॥

दूती तस्या वचन विशिखैर्भिन्नहृत्कर्णमूला
राधामूचे किमति चपले वागुराणां प्रयोगैः ।
शङ्के पङ्केरुहमुखितवापाङ्गभल्लेनभिन्नः
प्रायः शेते शिशिरलवलो मूल देशे स कृष्णः ॥५५॥

किं वाचाले ! तरणितनया तीरकुञ्जे विशन्सो
भ्रामंभ्रामं निपततितरां धूलि दिग्धाङ्गयष्टिः ।
यद्वा राधे ! श्रवण चषकैस्त्वत्कथा सीधु पानैः
माद्यन्नुच्चैररुण तरुणाम्भोजनेत्रः प्रियस्ते ॥५६॥

त्वद्गोत्र वा जपति मदन व्याधि बाधोपशान्त्यै
सिद्धं मन्त्रं जगति विजयी यद्बलात्पुष्पधन्वा ।
किं वा बालैःभ्रमति विपिने त्वत्पदाङ्कं विचिन्वन्
अस्रासारैः स्थगित नयनाम्भोरुहो नन्द सूनुः ॥५७॥

तस्याः सूक्तैः पुलकित तनुः प्रोल्लसत्भ्रू विभङ्गी
रिङ्गद्भ्रङ्गी तरणिविलसत्केशरा पद्मिनीव ।
मूर्च्छापन्नं हसित सुधया जीवयन्ती सखीनाम्
वृन्दे वृन्दावन परिसरे दूतिकामाह राधा ॥५८॥

गोपालीनां निधुबन कला केलिपाण्डित्य भाजां
व्रीडालीढाननपरिलसद्भ्रू विलासैर्निबद्धः ।
आर्ये ! नूनं सहज रसिको नन्द सूनुः प्रियाणाम्
आस्हृते कुर्वन्मुखर मुरली द्य वाद्यैः प्रमोदम् ॥५९॥

राधे ! साधारण सुमनसां सौरभे किं रसे वा
सुस्थ स्वान्तो भवति मधुपः पद्मिनीगन्ध बन्धुः ।
त्वं वासन्ती निधुबन बने नन्द बालो रसालः
क्वाचित्कोऽयं भवति चपले जङ्गमत्वाद्वियोगः ॥६०॥

तीरं तीरं तपन दुहितुः पुष्पितानां द्रुमाणाम्
मूलं मूलं नव किसलयाशोक शोणं निकुञ्जम् ।
भ्रामं भ्रामं तव करतलं प्रापयेन्नन्द सूनुम्
संभाष्यैवं प्रहसितमुखी दूतिकागाद्वनान्ते ॥६१॥

श्रीमत्कृष्ण सरस्वती गुरु पद द्वन्द्वाम्बुजानन्दिना
धीर श्रीमधुसूदनेन यतिना नन्दात्मज प्रीतये
यद्गोपाल विलास संज्ञितमिदं काव्यं कृतं कौतुकात्
तस्मिन्विह्वल राधिकाधिकथनैः सर्गस्तुरीयोगत ॥

—:०:—

पञ्चमः सर्गः

सा जगाम विपिनं सहकारैः कोकिला कलरवैः रमणीयम् ।
कामिनी जनमनः कमनीयं चञ्चरीक तरुणी नटनीयम् ॥१॥
कर्णिकार करवीर कदम्बैः काञ्चनाल बहुवार पियालैः ।
कर्मरङ्ग करमर्द करञ्जैश्चम्पकाशन तमाल पलाशैः ॥२॥
फुल्लवल्लि चिर बिल्व कपित्थैः पिप्पलामलक तिल्व मधूकैः ।
नाग रङ्ग कदली लवलीभिः क्षीर निम्बपनसैः सशिरीषैः ॥३॥
शालताल शरलैः रविमित्रैः सद्विजालि पठित श्रुति सूक्तैः ।
पुष्पभार वलिभिर्हरिलोलैः पुण्डरीक सुखदैररुणाभिः ॥४॥
सर्व वर्ण सुमनस्सविकासैररिष्ट भूरि फलदैः प्रिय रावैः ।
छायया त्रपितयाहृततापैश्चन्द्ररोचिरपि यत्र हिमांशुः ॥५॥

चतुर्भिर्कलापकम्

नीलकण्ठ कलकण्ठपिकानां मान्यतां द्विज गणेषु गतानाम् ।
कूजितं भवति यत्र बनान्ते मान्मथं प्रति पदं श्रुति सारम् ॥६॥
गोपिका स्तन तटीभृगुपातः तिग्मरश्मितनया जल नीतः ।
जीवनं वहति यत्र कथञ्चित् नागकेसर-बनी पवमानः ॥७॥
अर्जुनः प्लवग मञ्जुनिकेतः कृष्णचन्द्र पवनः द्युतिपूतः ।
सत्पतत्रिनिकरैरभिरामः कर्णशल्य शकुनीक्षय रूपः ॥८॥
क्षोभयन्हरिरवेण विपक्षान्नन्दयत्यनुदिनं नकुलादीन् ।
कौरवान्क्षपति यत्र समन्तादापगेन निनदेन बनान्ते ॥९॥

युग्मम्

मां विहाय विपिनेबनमाली राधिका रति रसेषु निमग्नः ।
इत्यनल्पविगलन्मधुधारां चिन्तयन्ननुसवंगलदस्रा ॥१०॥

माधवीस्तवक मञ्जुल दीव्यद्वर्तुलस्तनभरानमदङ्गी ।
रञ्जितालिघनसारपरागैः रोदितिस्म मधुपौघरवैः किम् ॥११॥

युग्मम्

माधवस्तव गुणेन निबद्धस्त्वत्पदं भजतिभाविनी भूत्यै ।
मा विषीद सखि माधवि मानादित्यवोचदवनीपिकवाणी ॥१२॥

धूलि धूसर विधूत परागः सद्विजो हरिपद द्वय रागः ।
सङ्गतो वन निवासि जनौघैः किङ्शुकेति पदमापपलाशः ॥१३॥

कीरचञ्चुरुचिभिः सुमनोभिः संवृतोऽति हरितैर्नवपत्रैः ।
संशयं भवति यत्र जनानां किङ्शुको भवति चेतिपलाशः ॥१४॥

खेचरैरनुगतोभयरावः पूर्णमास बनवासिपलाशः ।
माधवादधिगत कुसुमालीर्नन्दयत्यनुदिनं जननेत्रैः ॥१५॥

आससाद सरसां सुकुमारीं चञ्चरीक तरुणी नव वल्लीम् ।
किं विलोक्य तदियं वलदङ्गीमालतीभुविपपात वियोगात् ॥१६॥

चञ्चलालि कुल मञ्जुल गीतैः केतकी ध्वर रज स्फुरिताङ्गैः ।
ऊक्षिताः जललवैः यमुनायाः साम्बरं रविकराभमविन्दत् ॥१७॥

आप्लुतस्त्रिसवनं यमुनायां पद्मिनी बन निवासी समीरः ।
भोगिभोगभवनं भजमाना तांबलादभिभवन्पतितोऽभूत् ॥१८॥

केशरी जनमनः सुखकारी माधवादपगता लघुमानः ।
मत्त कुम्भि गति रूप जनाली रञ्जयत्यनुदिनं विपिनान्तः ॥१९॥

मत्त कुञ्जरघटा कट कन्डूद्धूत षट् पदरव ध्वनितानाम् ।
नीरदागमधिया मुदितानां शंखिनां किमभवत्सुखनादाः ॥२०॥

वीक्ष्य वारिद धियाद्विरदौघान्दन्त दीधितिमिलत्बकपङ्क्तीन् ।
गन्ड मण्डलगलन्मद बिन्दून्ताण्डवानि विदधुः शितिकन्ठाः ॥२१॥

उत्पतन्तमभिवीक्ष्य मृगेन्द्रं शारदाभ्र पटलं प्रतिबुध्य ।
चातकैस्सह शिखण्डि युवानो मौनिनो नयनमुद्रणमीयुः ॥२२॥

निर्झरैरिवझरन्मकरन्दैः पङ्किलां वसुमतीं प्रतिलभ्य ।
मुस्त सुस्थ मनसस्तरुमूले दंष्ट्रिणः क्वचिदयुः सुखनिद्राम् ॥२३॥

कृष्णसार तरुणास्तरुमूले पीतशीतसलिलास्तृणतृप्ताः ।
निद्रिताः प्रियतमा मुखवक्त्राः कुत्रचित्तटगताः सरसीनाम् ॥२४॥

ध्वान्त वृन्द परियायिनिभानौ सङ्गते गगनकानन मध्यम् ।
अन्धकार निकराः किमु पङ्कै कासर व्रज मिषेण समीयुः ॥२५॥

पुण्ड्र पुष्प निकरच्छलनः किं कञ्ज जन्म वचनान्नव भानुः ।
नन्द सूनु चरणद्वय शोभा तस्करस्तरुषु बन्धनमाप ॥२६॥

कुत्र चिद्वहल ताल तमाला मत्तदन्तिनिनदैः शिखि संघान् ।
नृत्यतः शिरसि सक्त शिखण्डान् पृष्ठतः कपिचयाधृतवन्तः ॥२७॥

कुत्रचिन्मरकत द्युतिबन्धून्शाद्वलान्समुपलभ्य नदन्तः ।
रेजुरम्बरमिलच्छरदभ्रभ्राजमान वपुषो वृषभौघाः ॥२८॥

पुष्पिता नवपलाश पलाशैर्लोध्रपादप चयाः पिहिताद्रीः ।
नील चेल परिलक्षित लक्ष्मी लाङ्ग लायुध समद्युतिमीयुः ॥२९॥

खड्गिभिः क्वचन पत्रि समूहैश्चामरैर्हरि गणैर्महिषीभिः ।
मत्त दन्ति पतिभिर्मधु हन्तुर्केलि काननमभून्नृपवासः ॥३०॥

फुल्लवल्लिधवलीकृतभूमौ गोपिकाः क्वचनकुङ्कुमवर्णाः ।
कान्तिमापुरमिताञ्चितपुष्पाः स्फाटिकावनि सुवर्णमणीनाम् ॥३१॥

उन्नमच्चरणमङ्गुलिगाढ़ क्रान्तभूमि शरलीकृतकायम् ।
व्यक्तनाभि विगलद्वलि केशभ्रस्त मल्लिविवृतस्तनपालिः ॥३२॥

श्रोणिलम्बित कचंभुजवल्लीलम्बलोल विटपार्पित दृष्टिः ।
कुत्रचित्तरलहार बलाकं संचिकाय तरुणी कुसुमानि ॥३३॥

युग्मम्

कुत्रचित्त्रुटित कञ्चुक चेलाः स्रस्तनीविवसनाः श्लथ नेत्राः ।
केलि सद्म मिलिता इव कान्तैस्ता वभुर्विकट कण्टकि वृन्दैः ॥३४॥

संकुचत्कमलः कोमल वक्त्रा सीत्कृतानि विविधानिदधत्यः ।
कण्टकाकुलपदानमदङ्गचः पादसज्जितकराः क्वचिदासन् ॥३५॥

सूचि सक्त नयनं नत कण्ठं जानु वामन कुचं बनमालाम् ।
ताः दधुर्मधुभिदर्भक लीला शीलितामृत रसोद्गम कम्पाः ॥३६॥

नन्दतां दिविषदां बनितानां नन्द सूनु विपिनं गमितानाम् ।
कौतुकेन पतिभिस्सहितानामाचयस्सुमनसां क्वचिदासीत् ॥३७॥

ऊर्ध्वं दक्षिणभुजा नतशाखा कृष्ट दृष्टि विगलत्कचबन्धम् ।
चिन्वती सुमनसश्चपलाङ्गी सस्मितं प्रिय मुखं प्रसमीक्ष्य ॥३८॥

हेम केतकदलं भुजमूलं स्वर्णकन्दुक कुचं पिदधाना ।
सन्दधे समुचितं नव वामावामपाणि तल चञ्चल चेलम् ॥३९॥

युग्मम्

कापिकान्त जठराम्बरपादा पादपाग्र कुसुमार्पित पाणिः ।
प्रेष्ठ बाहु दृढ सज्जित जानुर्वाम हस्त धृत तत्कुच बन्धा ॥४०॥

विभ्रद्भ्रमर चुम्बितवक्त्रा मंक्षुमुद्रित विलोचन पद्मा ।
पुष्पबाण विवशा निपतन्ती सादरं धव हृदाविधृताभूत् ॥४१॥

युग्मम्

ऊर्ध्वं बद्ध कच संचय गुच्छाच्छादिताः शितिपटैः कटि देशे ।
गुम्फ गुम्फन भयानकनासाः त्रासकारिनननाननभासः ॥४२॥

अन्धकाररुचितस्करदेहा भास्करात्मज सहोदररूपाः।
सज्ज कार्मुक शिलीमुखघोषैर्भीषित द्विरदसिंहनिकायाः ॥४३॥
स्कन्धलम्बि खरधार कुठाराः कच्छसज्जित यमोपमबाणाः।
धातुभिर्वपुरलङ्कृतवन्तः कानने क्वचिदिभिल्ल युवानः ॥४४॥

त्रिभिर्विशेषकम्

एणनाभि निवह द्युतिदेहाः कुत्रचिच्छबरदार निकायाः।
नन्द सूनुपद कुङ्कुम पङ्कान्याददुस्तृणदलात्कुच देशे ॥४५॥
चञ्चलाः क्वचन कज्जलभासः सायकासन सुसंहित बाणाः।
लक्ष्य सक्त मनसः शबराणांशावकाः कुटिलमीक्षितवन्तः ॥४६॥
नन्द सूनुरिव गोकुलपालः कामिनी जन विहार विलोलः।
हंस चक्र समुपासित पदमानन्दनील सरसीरुह रोचिः ॥४७॥
अम्बुराशि कुमुदोदयकान्तिः शीतरोचिरिवशीतल सङ्गः।
रक्तपद्मपटलारुणदीप्तिर्बालभानुरिव बोधितभृङ्गः ॥४८॥
सामगीतय इव द्विजगीतः शम्बरारिरिवमीननिकेतः।
मेदिनीपति निवास इवान्तर्मत्तकुञ्जरगलन्मदगन्धः ॥४९॥
क्षीरवारिधिरिवामृतभूतिर्भ्राजमान सुमनः सुखसूतिः।
लक्ष्मणाश्रयतनूरिवरामः कुत्रचिद्विलसतिस्म तडागः ॥५०॥

चतुर्भिः कलापकम्

शब्दमेय नभसा हरिभोगो नो भवेदिति चकार विधाता।
चित्र विष्णु पदमत्र वरं न स्पर्श रूप रस सौरभ नादम् ॥५१॥
स्थाणु सङ्गत शिवापदपर्णा निर्मिता बहुफलेति विधाता।
आदराद्बहुफलाः सपलाशा किं शिवा हरि बने रचितास्ता ॥५२॥
जङ्गमाः कतिचिदेव युवानश्चापधारणविधान धुरीणाः।
अत्र तूण सशरासन बाणाः शाबरा अपि शिलीमुख घोषैः ॥५३॥

विप्रकृष्ट दयितानपि यूनः कण्ठ सक्त वनितानपि शूरान् ।
गाढ़ विद्धहृदयान्वनदेशेऽनङ्ग भूपतिवशाङ्कितवन्तः ॥५४॥

युग्मम्

नो दिवा न कुहू तिथि दोषा सङ्गतो नभसि भाति मृगाङ्कः ।
लब्ध विष्णुपद कानन सङ्गा सन्तिसन्ततरुचोऽत्र मृगाङ्काः ॥५५॥

एक ऋक्षपति रस्ति विधात्रा निर्मितो नभसि सक्षय दोषः ।
अत्र ऋक्षपतयोगत दोषाः प्राप्तविष्णुपदसङ्गम तोषाः ॥५६॥

पुण्डरीक जनन स्थल देशे पुण्डरीक जनिनापि न शक्यम् ।
पुण्डरीक निकरा जल भूम्यः पुण्डरीक नयनस्य बने तु ॥५७॥

पाकशासन बनेन न तुल्यं नाक लोक जनिनापि बनं तत् ।
काक वृन्दमपि यत्र मुरारेः काकपक्षधररूपमपश्यत् ॥५८॥

नाग बल्लि खदिरा सह पूगैश्चर्विता विषयिणा मुखरङ्गाः ।
अत्र दृष्टि विषया हृदि रागं योगिनोऽपि दधते बन पूगाः ॥५९ ॥

रक्त चन्दन चयैः कदलीभिः श्वेत पुष्प तरुभिर्बनभूमी ।
शोण नील धवलोर्जित केतुमन्मथस्य नृपतेरिवसेना ॥६०॥

शालि शाखि निचयं सित पुष्पैः छादितान्स्फुट कदम्ब कदम्बान् ।
किं विजेतुमकरोन्मकराङ्कः शङ्करं ध्वज गणान्वृषकेतुम् ॥६१॥

कीचकैरपर वेणु निनादा मञ्जु गुञ्जदलि कल्पित वीणा ।
मरमरोल्लसित पाद विहारा निर्भरन्मधु लव श्रम विन्दुः ॥६२॥

विभ्रमद्भ्रमर शोभि दृगन्ता कुन्द हासविलसद्वदनश्रीः ।
मन्दवायु विचलद्भुज बल्ली हार हारि विशद स्फुट मल्ली ॥६३॥

नृत्यति प्रतिदिनं रमणी या राजमान कुसुमैर्बन राजी ।
कोकिला मृदुलोज्ज्वल गीतैलीलयत्यनुसवं कुसुमेषु ॥६४॥

त्रिभिः कुलकम्

दूतिकापि विपिनं विचरन्ती राधिका धव पदं प्रतिपेदे ।
अङ्कुश ध्वज यवाशनि राजच्छत्र नीरज समुल्लसदर्चिः ॥६५॥

पद्म योनि शशि मौलि महेन्द्रै र्वन्दित मुकुट शोभिशिरोभिः ।
गोप गोधन पदैरभिरामं कामदं जनिमतान्नयनानाम् ॥६६॥

चञ्चरीक चय मन्मथ गीत व्यञ्जितं विकच नीरज गन्धि ।
सा समीक्ष्य सहसा सुख सिन्धौ निर्ममज्ज पदवीमनुयान्ती ॥६७॥

युग्मकम्

भासुरं सभय सङ्कुचदङ्गं सङ्गतं मधु निहन्तृ समीपे ।
सा ततः परम भागवतानामादिमं पतगराजमपश्यत् ॥६८॥

तं समीक्ष्य बिनता सुख सूतिं सा ततस्सपदि संशयमाप ।
मण्डलं किमिह चण्ड मरीचेः कुण्डलं बनभुवः किमुतेति ॥६९॥

उत्पतन्तमथ खं चलदङ्गं तं कथञ्चिदवगत्य खगेन्द्रम् ।
आगता मृदुपदं बलिताक्षी साक्षणान्मधुरिपोश्चरणान्तम् ॥७०॥

शृङ्गार सार रस नीरधिमिन्दुकान्तं
मुक्ता कलाप कमनीय कला निधानम् ।
रामाङ्ग सङ्गि विषयेषु विराजमानं
पद्मालयोल्लसित रत्न मरीचिवीचिम् ॥७१॥

सूरात्मजा सुर तरङ्गवती विलासं
पीताम्बरेण वलितं बनमालया च ।
त दूतिका मकर कुण्डलिताभिराम
नन्दस्य पुण्य निचयं सुमुखी ददर्श ॥७२॥

स्फुरन्मल्ली माला विरचित वितान द्युतिलसन्

निकुञ्जे कञ्जाक्षः स्मित नलिन शय्यामुपगतः ।

घनस्तोमश्यामः करकमल सक्तानन विधुः

व्यलोकि क्षीराब्धौ भुजगपति सुप्तो हरिरिव ॥७३॥

श्रीमत्कृष्ण सरस्वती गुरुपद द्वन्द्वाम्बुजानन्दिना

धीर श्री मधुसूदनेन यतिना नन्दात्मज प्रीतये ।

यद्गोपाल विलास संज्ञितमिदं काव्यं कृतं कौतुकात्

तस्मिन्कानन वर्णनेन वलितस्सर्गोत्यगात्पञ्चमः ॥७४॥

—:o:—

षष्ठः सर्गः

अथ परिहृत मित्र क्रीडनंत्यक्त भृङ्ग
ध्वनि पिक कल गीत प्रीतिमा पाण्डुगण्डम् ।
दर मिलित सरोज भ्राजमानाक्षि युग्मं
नयन युग फलन्तं वीक्ष्य सैवंशशङ्के ॥१॥

किमरुण कमले किं बालभानू किमुश्री
श्रवण युग विभूषा स्वर्ग शाखिप्रवालौ ।
किमुत धरणिभूतौ मङ्गले द्वैतभावः
किमु मुरहरपादद्वन्द्वमुद्दाम धाम ॥२॥

किमु मृगमद पुञ्जौ किन्नु कुम्भोन्द्र हस्तौ
किमु सुरपति भूत्यै नीलकेतू सुराणाम् ।
किमु मरकत दण्डौ किन्नु रम्भा विशेषौ
वलित रुचि कदम्बौ नन्द सूनोः किमूरु ॥३॥

भ्रमिरिह यमुनायाः किन्नु गम्भीर नाभिः
किमु बलिनिचयोऽयं त्रीवयः किन्नु तस्याः ।
हृदि विलसति हारः किन्नु गङ्गाप्रवाहः
स्फुरति किमु मुरारिस्तीर्थराजोऽथवायम् ॥४॥

किमु विकसित कुन्दाः पल्लवप्रान्त भागाः
निमु निशित फलाग्राः पञ्चबाणस्य बाणाः ।
किमु विधुमणि युक्ता विद्रुमाशा शलाकाः
किमु रुचिरनखानामङ्गुलीनां निकायः ॥५॥

किमिह भुजग भोगौ किं भुजौ कौस्तुभः किम् ।
किमु तरणिरुचः किं किं नभोनील रोचिः ।
असित मणि निबद्ध प्राङ्गणे तुङ्ग कान्तिः
किमु मरकत सारस्तम्भयोरन्तराले ॥६॥

किमु सरसिजनालं किन्नु कण्ठो मुरारेः
परिणत शरदिन्दोर्मण्डलं किं मुखं किम् ।
किमु किसलय कान्तिः किन्नु बिम्बाधर श्रीः
किमति विशद मुक्ताः किन्नु दन्तावलिरेषा ॥७॥

किमसितमणिपट्टः किं ललाटं किमम्भो
रुह युगल मदभ्रभ्राजि नेत्र द्वयं किम् ।
किमु मदन धनुष्किं भ्रूलता किन्नु कीर
स्फुरदभिनव चञ्चुः किन्नु नासा मुरारेः ॥८॥

किमु मधुप समूहः किन्नु बन्धः कचाना
मरुण कमल पत्रे किं श्रुतिद्वन्द्वमाहो ।
इति बहुविध शङ्का सङ्कटात्कैटभारे
रुरसि भृगुपद श्री लक्ष्मतामुद्दधार ॥९॥

तदनु सुख समुद्रं सङ्गता पादपद्म
द्वय विनिहित दृष्टिर्हृष्टरोमा बभूव ।
अथ विषय निवृत्तं तत्रसन्तर्प्य चेतः
सुकविरिव मुकुन्दं वर्णयामास दूती ॥१०॥

अरुण कमल युग्मं नन्द सूनोः पदाभ्याम्
सदृशमिति वदन्तो नैव तत्वं विदन्ति ।
तदतुल नखराग्र द्योत खद्योत कल्पो
विधुरपि कमलानां यद् द्युतिं सञ्जहार ॥११॥

व्रजति यदि कदाचिच्चञ्चला निश्चलत्वम्
कटकमुपगतास्यादिन्द्र नीलाञ्चलस्य ।
तदपि भजति नो वा वाससोनन्दसूनोः
कटितटलुठन श्रीशालिनः कान्ति धाराम् ॥१२॥

असित मणि कदम्ब द्योतयोः स्पृश्यतानो
न च तरुण तमालस्तम्बयोः सौकुमार्य्यम् ।
द्विरदपति करे नो मार्दवं युग्मता वा
तदिह मधु निहन्तुर्जंघयोर्नोपमैव ॥१३॥

यदि जलनिधि मध्यं स्वर्धुनी द्वैत युक्तम्
तदुपरिरवि बिम्बंलम्बमानं विभर्ति ।
न तुलयति तथापि स्फारमामुक्त हारं
घनरुचि हरि वक्षः कौस्तुभोद्भासि लक्ष्म ॥१४॥

भवति गलक कम्बू कुन्दनादिन्दुनन्दः
वहति यदि मणीनां दर्पणं वा करीर ।
नहि तदपि समीयादस्य कण्ठस्य शोभा
मधु रिपु मुख रोचिः चुम्बनोद्भूतकान्तेः ॥१५॥

वहु विध मणि वृन्दभ्राजि शृङ्गं सुमेरो
रुपरि यदि कृतं स्यादिन्द्र नीलाचलस्य ।
तदपि किमनु कुर्यान्नैव वा नन्व मूनोः
कनक मुकुट रत्न ज्योतिरूर्जस्वलश्रीः ॥१६॥

अगणित मणि रोचिश्चुम्बि चामीकरान्तः
प्रकटित मकराङ्कंकुन्डल द्वन्द्वमेतत् ।
हरिमुख शरदिन्दूद्योत विद्योतमानं
प्रथयति मकराङ्कं किञ्चकोरस्य युग्मम् ॥१७॥

मुरहरभुजपर्वस्फीतिम द्योतमाने
मणिगण कनकानामाङ्गदे कङ्कणे च ।
गिरिवर धृतिकाले तच्च्युताशङ्किचेतः
किमकृत कर दण्ड ग्रन्थि बन्धाय नन्दः ॥१८॥

दिविभुवि कति नो वा मन्मथस्पर्धिरूपा
हृदि दधति युवानो दन्ति मुक्ता कलापम् ।
तदपि यदि सधत्ते नाम हारेति नूनम्
हरि हृदय निवेशात्तात्पदेसत्पदत्वम् ॥१९॥

भवति यदि कथञ्चिन्मेचका कर्णिकायां
द्रुतकनक मरीचिव्यञ्जिला चारु सम्पत् ।
तदुपरिमुखराचेल्लोल किञ्जल्क माला
तदपि मधुनिहन्तुः किन्तु काञ्ची समास्यात् ॥२०॥

इति पुलकित गात्रा चिन्तयन्ती मुरारेः
वपुरनुपं रूपं मालिनी सा बभूव ।
मुरहर पर भागे तां विलोक्यानुरक्ताम्
हरिपद युगरक्ता किन्तु सन्ध्याविरासीत् ॥२१॥

भवति जडिम युक्तो गीर्पति यत्र गाढं
फणिपति चतुरास्यौ पञ्चवक्त्रश्चमूकाः ।
मुरहर सुषमां तां वर्णयत्यत्र दूति
द्युमणिरिति रुषाक्तः किन्तु रक्तो बभूव ॥२२॥

द्विजगणपति सूक्तं सान्द्र सिन्दुर रक्तम्
किरण कनक कुम्भं वासरेशं विधाय ।
किमु रजनि कुमार्य्याः सिन्धु सूनोर्विवाहे
व्यधित किसलयाभा तत्र सन्ध्या पुरन्ध्री ॥२३॥

चरम गिरि गुहाग्रं प्राङ्गणे भानुबिम्बं
जतु गुड़कमपूर्वं हिङ्गुलोद्दाम धाम।
व्यरचि मदन मुग्धा क्रीड़नार्थं विधात्रा
किमुत रजनि कान्ता भाल सिन्दूर विन्दुः ॥२४॥

रजनिपतिरुपैष्यत्यूढ़ दोषोऽतिरागः।
कुल युवति कुचाग्रस्पर्शकामः करेण।
इति किमु परिभाव्य व्याकुला वासर श्रीः
स्तनमिव दिन नाथं गोपयन्ती जगाम ॥२५॥

वरुण जल विहारान्दोलकान्ता कुचान्त
स्खलित बहुल दीव्यत्कुङ्कुमारक्तकान्तेः।
अरुण कमल बुद्ध्या वासरेशं मदान्धः
किमु गगन तडागादञ्जनः सञ्जहार ॥२६॥

वरुण परिगृहीतामुच्छलात्कुङ्कुमानां
नव किसलय कल्पेनाम्बरेणोल्लसन्तीम्।
अभवदथ करान्तेनाम्बरान्तं दिधीर्षुः
तिमिर जलधिमग्नस्तिग्मरोचिः सरागः ॥२७॥

निविड़ तम तमोभिस्तस्करैस्तिग्मभानुं
कर कलितमपश्यन्पद्मरागं मणीन्द्रम्।
विहित बहु विलापस्त्यक्त सङ्गः प्रियायाः
गृहपतिरिवदीनश्चक्रवाको बराकः ॥२८॥

अति निविडतमिस्रो वारुणी सङ्गदोषात्
पतित इति दिनेश छायया यन्त्रितोऽभूत्।
जरदजगर गीर्णं तं खगेन्द्रं विदित्वा
विधिमिव सुरभावात् [1]पक्षिणोधिक्षिपन्ति ॥२९॥

---

१. क पुस्तकेखरवातः

तदनु घनतनोभिर्गोपिते दिग्विभागे
पथिपथि मनुजानामेवमासीत्प्रजल्पः ।
किमजनि घन संघः किन्नभोभाण्ड भङ्गः
किमुत मधुनिहन्तुर्कान्तिरद्वैतमाप ।।३०।।

किमघटि पटु पुण्यै व्याल नक्तं चराणा
मपि विट कुलटाली व्याधपाटच्चराणाम् ।
किमु सरसिजनीनां निर्मित दुर्विपाकैः
किमुत दितिसुतानां मायया पूरि विश्वम् ।।३१।।

मृगमदचयपङ्कां कि त्रिलोकीं विधाता
व्यधित किमसिताद्रिं चूर्णयामास कश्चित् ।
किमजनि यमुनाया नीर सम्भार भूमा
किमु वहल तमालं श्यामलं ध्वान्त वृन्दम् ।।३२।।

किमु वहल तमोभिस्तस्करैर्गोपते गाः
पशुप कुलकुमारालुण्डितानाकलय्य ।
गगन बन गताक्षं प्राभवं वीक्ष्य भीताः
विपिन भुवन नीता गा गृहे नीतवन्तः ।।३३।।

कुच गिरि शिखरस्थैरम्बरै सम्वृताङ्गान्
प्रतिगृहमवलाभिः प्रापितान्दीप संघान् ।
रिपुभिरतितमिस्रैर्नाशिते वासरेशे
शरणमुपगवास्तांस्तस्य बालान्प्रतीमः ।।३४।।

घन तिमिर कलापान्यामिनीयं बणिक्स्त्री
मृगमद चय पङ्कानम्बरान्ते प्रसार्य्य ।
अभिनबघन सारान् किन्तु तारा निकायान्
किमुत विशद मुक्तास्तोममाविश्चकार ।।३५।।

किमु चरम नगान्त कोटरस्थे खगेन्द्रे
तिमिर विषधराणां सर्पणं सर्वतोऽभूत् ।
उडुगण मिषतस्तन्मस्तक भ्राजमानैः
मणिभिरपि विहायस्कानने कान्तिरासीत् ॥३६॥

दिवसपति वियोगाद्वासरश्री वराङ्गयाः
किमु हृदय विदार प्रोच्छलद्रक्तधारम् ।
किमुदय नगपद्यु प्रस्फुटद्दाडिमार्धं
नहि-नहि समुदञ्चच्चन्द्र बिम्ब चकास्ति ॥३७॥

पथि-पथि कुलटानां निक्षिपन्कण्टकानां
शतमख दिशमिन्दुर्मण्डयन् पौरुहूतीम् ।
विगलित कुल कान्ता नीवि बन्धोऽन्धकारे
क्षतिकरमपनिन्ये भाखद्भूतलस्य ॥३८॥

गगन सरसि हंसः सञ्चरन् रक्तपादः
प्रबल तमतमोभिर्भक्षितः काल सर्पैः ।
इति किमु परिभाव्य क्रोधरक्तोद्विजेन्द्र
स्तिमिर विषधरालीपद्म वैवस्वतोऽभूत् ॥३९॥

उदयति कुमुदानां वान्धवे तारकाणां
यदजनि विरला श्रीस्तत्करामर्दितानाम् ।
गगन वन बिहारी यामिनीकामिनीशः
तदकृत कसुमानामाचयं किं कलावान् ॥४०॥

स्पृशति कुमुदवन्धावंबरान्तंकरेण
प्रचुर मुख विकासः कैरविन्या वभूव ।
तदनु मधुपमाला छद्मनाहग्विभङ्गाः
किमु रति पति सङ्गाद्वेपथुश्चाविरासीत् ॥४१॥

रजनि रति सरागा नील चैलैस्तमोभिः
स्थगयति प्रतिसन्ध्यंपद्मिनीप्राणबन्धुम् ।
तदपि यदि सधत्तेतत्र रागंद्विजेशः
तदुचितमिहमन्ये यत्कलङ्कः सुधांशौ ॥४२॥

अपि जलनिधि सूनुस्तत्र पद्मासनाभि
द्विजपतिरमृतांशुः सम्भृत श्रीः कलाभिः ।
चिरवदनुगनोऽभूद्रागतस्तां सदोषा
मथ विदितकलङ्कः कामिनी गण्ड पाण्डुः ॥४३॥

गगन तलकटाहे कौमुदी दुग्ध सिन्धो
रुपरि परिणतोऽसौ सारभागः सुधांशुः ।
स्फुरति तदुपरिष्टादिन्द्र नीलाङ्क दर्वी
मुहुरिति विधु बिम्बं वर्ण्यते गोप वृन्दैः ॥४४॥

रजत चषकमासं बीक्ष्यराका शशाङ्कम्
समजनि मधु पातुं कामिनां कामभूमौ ।
अथ युवति समेताः सीधुपाने प्रवृत्ताः
मनसिज तरु कन्दं किन्नु सेक्तुसकामाः ॥४५॥

समजनि मधु सङ्गा त्मानिनी मानभङ्गः
कुसुम शररसाले पल्लवः प्रादुरासीत् ।
अथ युवति जनानां सालसान्भ्रू विलासान्
अकृत नव वधूनांवाग्विलासांश्चसीधुः ॥४६॥

करकृत मधुपात्रं पाययिष्यन्कलत्रम्
कुवलय दलचित्रं वीक्ष्य नेत्रंभ्रियाक्तम् ।
प्रसभमपनिनीषुस्तत्रमिथ्या प्रकुप्यन्
सुबहु हसित पात्रं कोऽपि वृत्तः प्रियायाः ॥४७॥

क्वचन नवबधूटी हास्य लास्याति लोभ्यं
भ्रमर कुल निषेव्यं मद्यमास्वादयन्तः ।
स्वमुखसरसिजेभ्यः पीत शेषं प्रियाभ्यः
सरस मधुददानाश्चुम्बनान्मोदमीयुः ॥४८॥

क्वचनपिबति कान्ते काऽपि कान्ता करस्थै
स्तरल वलय वाद्यैः नर्तयामासभृङ्गान् ।
क्वचन नववराङ्गो विभ्रद्भृङ्गभीता
मृकुलित नयनाब्जापात्रमुज्झाञ्चकार ॥४८॥

इति भवतिजनानां नक्तमत्यन्त मोदे
तुदति कुमुद बन्धौ पद्मिनीनां कदम्बम् ।
वदन कमल कान्ति राधिकायाः स्मरन्ती
धृत हरि पदपद्मामालिनीदं जगाद ॥५०॥

कृतमदन विरूपे चन्द्रकोद्भासिमौलौ
धृतमलयज भूतौ हारकर्पूर गौरे ।
भवति शिवपदेयद्विद्यमानेऽपि गौरो
मभिभवति किमेतत् त्वत्प्रियां पञ्चबाणः ॥५१॥

जलधर ! मृदुलाङ्गी माधवी शोषमागात्
खर तर मधुमित्र स्फूर्जतेनाति बेलम् ।
कुरु सदयरसार्द्रां काम भूमीमिदानीं
निशिनिशि परिसिक्ता बल्लिरुल्लासमेति ॥५२॥

स्तवकभरनताभिः मल्लिभिर्भ्राजमानां
स्मरसख बनराजीमञ्चिताञ्चञ्चरीकैः ।
यदि भजसि कथञ्चित्तांस्विना चम्पकालीं
वद सहृदय सत्यं किन्नु तोषं प्रयासि ॥५३॥

यदपि बहुरसानां पुष्पितानां लताना-
मपिकुमुदवनीनां चञ्चरीक ! प्रियोऽसि ।
तदपि कनक कान्तिर्पद्मिनी कापि कान्ता
रजनिकर मुख श्रीः प्रेयसी सेवनीया ।।५४।।

त्यजमधुकर मौनं माधवी प्राणबन्धो !
श्रुतियुग फलदानान्मालिनी माननीया ।
यदियमनुरसालं बल्लरीं योजयन्ती
मधु मधुरनिनादैरञ्चितां तां निषिञ्चेत् ।।५५।।

इति निगदितवत्यां दूतिकायां मुरारिः
क्षतचय ससुदञ्चच्चन्द्रिका हारि हासम् ।
शितिमणिमय भूभृत्भ्राजिरोमाङ्कुरश्रीः
अपहृत मधुधारां माधुरी वाचमूचे ।।५६।।

कथं मालाकार प्रणयिनि गुण श्रेणि रचिता
न सानीता माला भ्रमर पटलेन्दीवररुचिः ।
स्फुरत्यम्भोपातां स्तवक रुचिरां चम्पकमयी
मिदानीमप्येनामुपनयमुदे मन्नयनयोः ।।५७।।

कलानाथः कामं भवतु बहुदोषाङ्कितननुः
कुमुदवत्यास्तस्मिन्नपि भवति किन्नामनरुचिः ।
न पद्मिन्यामोदः किमुदयत्युष्ण महसि
प्रिये प्रायो दोषान्नगणयति चित्तं मृगदृशाम् ।।५८।।

इति श्रावंश्रावं पुलकित तनुर्नन्द तनयम्
नमस्कृत्योत्तस्थौ सहज रसिका सापि सहसा ।

सखी मध्ये राधां वलित मुरजित् ध्यान विभवां
सुखं यातामपश्यत्कमल वदनां फुल्ल वदनाम् ॥५९॥

श्रीमत्कृष्ण सरस्वती गुरुपदद्वन्द्वाम्बुजा नन्दिना
धीर श्रीमधुसूदनेन यतिना नन्दात्मज प्रीतये ।
यद्गोपाल विलास संज्ञितमिदं काव्यं कृतं कौतुकात्
षष्ठस्तत्रमुकुन्ददूतवचनात्सर्गः समाप्तिं गतः ॥६०॥

—:०:—

सप्तमः सर्गः

यातां राधां प्रिय सहचरीं प्रेक्ष्य राका सुधांशौ

चक्षुष्कोणं कमल नयनो निक्षिपन्नन्द सूनुः ।

वृन्दारण्य द्रुम खग मृगानाकलय्याथ दीनः

सीतातीतो रघुपतिरिव प्रौढ शोको जगाद ॥१॥

राका राधा किममृत रुचिस्तन्मुखं किं पुरस्तात्

अङ्को बिन्दु स्फुरति किमसौ कान्त कस्तूरिकायाः ।

ज्योत्स्नाहाराभरण करणोद्दाम हारप्रभा किं

नैवं नैवं दहति सविता अन्यथैव कृशाणुः ॥२॥

आयः पुण्यं परिणतमिदं चन्द्र बिम्बं चकोरी-

भर्तुः किं वा सरसिज वनी दारणे वारणेन्द्रः ।

किं दावोऽयं विरह वनिता मालती काननान्त

किं दुर्दैवं निधुवन कला सम्पदां ध्वंक यूनोः ॥३॥

प्रायस्तस्या वदन सुषमामोहमानः सुधांशुः

ज्योत्स्ना जालं ज्वलनमिवहं सर्वतः सम्प्रसार्य ।

ऊर्ध्वं कुर्वंश्चरणमधरीकृत्य लम्बं कराग्रं

ध्वान्तं धूमं पिबति तपसे स्वर्धुनी तीर सस्थः ॥४॥

मन्ये धन्यं जगति भवतो जन्म राका सुधांशोः

त्वामालोच्य स्वरकृतकरं कौमुदी तल्प सुप्तम् ।

अङ्क व्याज दुपगतवती यत्त्वाङ्कं सकामा

क्रीडा पीडा कव लत वपुर्यामिनी कामिनीयम् ॥५॥

पीयूशांशो ! जगति विदितस्त्वं पुरा शीतरोचिः
तापं पीतं किमिति तनुषे मादृशे सिन्धु सूते ! ।
सन्तप्तातां ददति नितरां वैष्णवामोद धारां
दत्से विष्णोः पदमुपगतस्तादृशे किन्नु दाहम् ।।६।।

क्रूरः क मः शिशिर किरणं निर्मितं वज्र वृन्दैः
चक्रे चक्रं विरहि जनता चक्र चक्रं च हन्तुम् ।
तत्रान्तर्हि न्यधित कनकादिन्द्र नीलाङ्कशङ्कुं
शङ्कुे पङ्कुरुहदलदृशस्तादृशः का दशा स्यात् ।।७।।

पाण्डुच्छायैः विरह विपदं प्रापितानां मनोभिः
चक्रे चन्द्रं परिणत कलं कामदेवः शरावम् ।
प्रायोरत्याः नयन युगलं कज्जलैर्भूषयिष्यन्
ज्वाला जालं तदनु तनुते कौमुदी छद्मनाथः ।।८।।

हे पाटीर द्रुम सहचर ! त्वं वृथा मा कृथा मे
दाहं नाहं क्वचिदपि जगत्प्राण ! ते विप्रकर्ता ।
नैवाधर्मस्त्वयि समुचितो धर्मराजप्रियांशो-
द्भूते माभून्मलय तनये दक्षिणे दाहकत्वम् ।।९।।

रे रे हालाहल सहचराः काल दिक्काः समीराः
क्रूरा, रामा विरहि हृदयान् पीडयन्तः कथं स्थाः ।
दृष्ट्या दंष्टयं प्रिय विरहिषु त्वादृशानां गरिष्ठं
धात्रादिष्टाः किल करुणया निग्रहे दीर्घ पृष्ठाः ।।१०।।

कान्तो किन्नो समुचिन्मिदं प्रान्तरे मामनाथं
हित्वा लीना भवसि विपिने कौतुकं कीदृशं ते ।
नैवं कार्यं सदय हृदये देहि भिक्षां मदीयां
दूर्वापर्व व्यथित चरणा माऽस्मभू कोमलाङ्गि ! ।।११।

मार्तण्डांशु स्मर शर समारम्भ दग्धान्तरात्मा
तापं जह्यामिति मम मनः सस्पृहन्ते मुखेन्दौ।
गङ्गा हारौ हिम गिरि रुची पूर्ण पाटीर पङ्कौ
वक्षोजौ ते जलज नयने ! सङ्गतः शीतलः स्याम् ॥१२॥

कोपाटोपः कठिन हृदये मादृशे नोचितस्ते
हासेनापि प्रिय सखि मया नार्जितं कोपबीजम्।
आं जानीमो जलधि तनयां मत्पदद्वन्द्व लीनां
दीना नित्यं भवति भवती तां विलोक्यैव बाले ॥१३॥

सीतातीतं तरुणि मम हे चन्द्र नीहार हारे !
कान्त्या हीनं मदन दयिता कान्ति सन्तापकान्ते ! ।
वैदर्भी श्री रहितमतनुं प्रौढ़ विद्यानवद्ये !
त्वं कारुण्ये निहित हृदया मां कृतार्थं विधेहि ॥१४॥

सारङ्गी दृग् सदयनयना येमृगा मोदवाहा
ये कालिन्दी तट परिसरे मन्द मन्दारबालाः ।
फुल्लाभूमीरुहकरगता बल्लरीणां निकाया
राधे ! दैवं फलितमधुना तेऽपि जाता हुताशाः ॥१५॥

राधे ! राका हिमकर करा मण्डलं चण्डभानोः
न्यक्कुर्वन्तो जलज नयने ! जीवनं मे हरन्ति ।
ता माधव्यः स्तवक नमितास्त्वत्कुचद्वन्द्व शोभा
मन्तर्भ्राम्यद् भ्रमर वलिताः किं दृशोः शल्यभूताः ॥१६॥

तेतेऽशोकास्तव करपदस्पर्धिनस्तेऽधरान्ते
शोणां शोभां नवकिसलयानीहमाना वहन्ति ।
मह्यं तापं वितरितुमलं पुष्पजालं भजन्तः
शल्यीभूतं दधति हृदये कोकिला कूजितं किम् ॥१७॥

प्रायः पञ्चाशुग शरवरानुद्वहंश्चम्पकौघः
कान्ते ! कान्ति कनक रुचिरां तावकीमीहमानः ।
त्वद्वैधुर्यान्मदन दयितं गन्धवाहं दधानो
धुन्वन्धैर्यं विधु मुखि ! हठात् किन्नयेज्जीवितं मे ॥१८॥

फुल्लाश्चूताः परभृतमिलन्मत्त रोलम्ब माला
स्तालाहालाहल सहचरान्मारुतानुद्वहन्तः ।
मह्यं तापं ददति नितरां सौरभामंदमाना
कौली लीला रसमयधुनीं तां कदा सङ्गतः स्याम् ॥१९॥

त्वत्ताटङ्कद्वय परिलसत्कान्तिकामाकलाव
त्येते चक्रं दधति विविधं केसरा मां निहन्तुम् ।
प्रायः प्राण प्रणयिनि भवेदोप्सितं यद्विधात्रा
राधे ! बाधाकुलितहृदया त्वं भवित्रीति बूये ॥२०॥

नीपः पापः सुहृदिव सदा पालितोऽसौ विधत्तो
चक्षुः शल्यं मदन विलसत्कन्दुकाभ्रप्रसूनः ।
धिग्दुर्दैवं स्थल कमलिनी सन्तति शोण शोभा
दत्तो तापं तव मृदु पदस्पर्धिनो सन्ततं मे ॥२१॥

किं कान्तारे विरहि जनता रक्त रक्ताभिरुच्चैः
मर्मच्छेदो भवति सुमनः कर्तरीभिः पलाशः ।
आज्ञातं ते नव दिन मणी स्पर्धि सिन्दूर लेखा
शोभाकामः कमल नयने मां निहन्तुं सयत्नः ॥२२॥

नीलाम्भोजं रचयतितरां तापधारां मदीये
चक्षुष्कोणे ज्वलन निवहे धिक्कृति कुर्वदुच्चैः ।
मन्येऽरण्ये वरतनुदृशोः कान्ति पीयूष पूरं
गन्तुं कान्ते ! नयन युगलं हन्ति तस्येक्षितुर्मे ॥२३॥

कामः क्रूरः तवरतिकलालालसं लुब्धको माम्
कारं कारं किरति हरिणं कानने बाण वृन्दम् ।
तन्मे भव्यं भवतु भवती वागुरां कोपधारां
भारं भारं तुदति सततं तेन द्रूये नितान्तम् ॥२४॥

राधे ! चित्रं तव कर तल स्पर्धि शोणारविन्दैः
विन्दे तापं तपन तनयासिक्त रक्तोत्पलैश्च ।
कान्ते ! कोपाकुलित हृदयः प्रायशः पञ्चबाणः
तत्र क्ष्वेडं क्षिपति पथिक प्राण बाधां विधातुम् ॥२५॥

ये ये कुञ्जाः प्रिय सहचरि ! प्राण कल्पा ममासन्
ते ते तन्वि ! ज्वलन निवह स्पर्धिनः पीडयन्ति ।
कान्ते ! कोपं न कुरु कठिने सीधु पीयूष यूषैः
आ सिञ्चन्ती शिशिर वचनैः शीतलाङ्गं विधेहि ॥२६॥

प्रह्लादं ते वदन सुषमा नारद तद् सुकान्तिः
गाङ्गेयं ते सरस हसितं तेऽर्जुनं तारहारः ।
प्रातिस्वानं वलिमपि वलात्तोऽपि नामावलग्नं
तत्किं कान्ते समुचितमिदं भीषण स्थापनं यत् ॥२७॥

धम्मिल्लस्ते तरुणि सफले तां तमालालि कान्ति
दन्तालो ते ललित चरिते कुन्द सौन्दर्य भूतिम् ।
तौ ते बाहू त्रिवलिचरिते तां शिरीषस्य शोभां
हारास्तारा विशद हसिते तेऽर्जुनानां विभूतिम् ॥२८॥

वक्षोजौ ते जलज नयने ! श्रीफलामन्दभासं
तौ ते पादौ पदनख विधो भूमिपद्मावभासम् ।
हारं हारं हरिण रमणी दृङ्निपाते बनान्ते
कारं कारं समदनमये मां वृथा किं त्यजन्ति ॥२९॥

युग्मम्

दृक् चापल्यं हरिण तरुणी केशपाशं चमर्य्यः
कोक द्वन्द्वं स्तन युग रुचिं हंस कान्तागतिञ्च ।
माधुर्यं तद्वचन निहितं वल्गु कण्ठी कुहूवाङ्
मन्येऽरण्ये सुतनु सुषमां भागशो नीतवत्यः ॥३०॥

गङ्गाहारे, तरणितनया केशपाशे, विपाशा
नीवौ वक्षोरुह शिखरिणोर्नर्मदातुङ्गभद्रे ।
कम्बुग्रीवा त्रिवलि विभवे घूर्णता स्वर्ण रेखा
सिन्धुः श्रोण्यां समदन रसा बाहुदाबाहुमूले ॥३१॥

कृष्णा वेण्यां, मसृण तमसा रोमराजो विलासे
पुण्यः शोणोऽधर किसलये, वाग्वती वाग्विलासे ।
क्रीडा कोप प्रशमन विधौ कौशिकी चन्द्रभागा
हासे रास प्रतर समये घर्घरो मञ्जुघोषः ॥३२॥

त्रिभिर्विशेषकम्

दृक् चापल्ये धृत बहुरसा चित्र चित्रोत्पलाऽसौ
मन्तौ नव्ये प्रसरतितरां भैरवो विप्रयोगः ।
तीर्थान्येतान्युपचिततपः पञ्चवाणस्य यस्यां
सा मे राधा हृदय जलधौ किं पुनः सङ्गता स्यात् ॥३३॥

सन्ध्या सूर्यः श्रयति सततं सान्द्र सिन्दूर विन्दुं
सोमो राजद्वदन सुषमा मङ्गल पाणि शोभां ।
दृग् चाञ्चल्यं शशधरजनिर्जल्पितं चापि जीवो
हास्यञ्चन्द्रद्युतिरुचिसितोमन्द चारञ्चमन्दः ॥३४॥

केशस्तोमं मुखविधुरुचिः सैंहिकेयोऽप्यरालः ।
केतुर्वृन्तस्तन शिखरिणोः मीनकेतोर्जय श्रीः ॥

यस्या नित्यं गणित विबुधा मुग्ध भावं भजन्ते ।
ज्योतिश्चक्रं मदन सुधियो राधिकां क्वावलौके ॥३५॥

या मृद्वीका वदन रचने दाडिमी या कुचाभ्यां
या सन्मल्ली सहजहसिते मालती या भुजाभ्याम् ।
उर्वो रम्भा स्थल कमलिनी या पदाभ्यां पुनस्तां
क्वालोकेऽहं कुसुमधनुषो राधिकां पुष्पवाटीम् ॥३६॥

वर्णः स्वर्णः कुवलय दृशोरिन्द्रनील प्रकाशो
हासो मुक्ताधर परिसरे कान्तिवल्ली प्रवालः ।
स्वान्तं यस्या हिमकर मणिः पद्म रागोऽनुरागः
क्वालोकेऽहं मनसिज बनी वीथिकां राधिकां ताम् ॥३७॥

मीमांसानां समजनि पदं मध्य देशे कृशाङ्गी
वेदान्तानां विषय सदनं नीविबन्धेऽनुबन्धैः ।
या योगानांभवनमनिशं न्यायभूमौमदङ्गे
क्वालोके तां मनसिज सुधी सर्वविद्यानवद्याम् ॥३८॥

आनन्देऽन्तर्निहित मनसः स्वस्वरूपे स्त्रिया किम्
ह्रीं पीयूषं हसित सुमुखं शावलोके सुधांशुम् ।
नित्यं पद्मा मम पद युगं सेवते राधिका किं
हा हा दैवं किमिदमभवन्मत्कृते सा सरोषा ॥३९॥

रे रे मार ! प्रहरसि कथं मामवज्ञाय मूढं
त्वद्दर्पघ्नस्त्रिपुर दलनो मत्पदद्वन्द्व रागः ।
मूर्छापन्नं व्यथयसि कथं नाधव प्राण बन्धो !
हा ! हा ! राधा मदन विशिखस्फूर्जितैः कीदृशी स्यात् ॥४०॥

किं रे मार ! क्व परिकलये तादृशीं कान्ति वल्लीं
धिग्दैन्यं मे विधुमुखि कथं मामनाथं जहासि ।
को व्यामोहः प्रणय विलसद्भ्रू विभङ्गी कदाहं
धिङ्मां पाप प्रवण मनसं राधिके हा हतोऽस्मि ॥४१॥

धिङ्मां वामा विवशमनलो जीवनं यौवनं वा
यूनः पुण्यैः परिणत कला पूर्ण चन्द्राननाङ्के ।
धिङ्मे कामं कनक कलशावुद्वहन्ती क्व राधा
धिक्चाञ्चल्यं वदन कमले चञ्चरीकः कदा स्याम् ॥४२॥

धन्यं मन्ये प्रशम जलधौ मानसं यस्य लीनं
धन्यो यस्मिन्कथमपि भवेद्राधिकादृङ्निपातः ।
हाधिक् पापं कलयति मनः कामिनां दुश्चरित्रं
चित्रं चित्रं कुसुम धनुषः कौशलं तन्मुखेन्दौ ॥४३॥

उर्वी पीन पयोधरोरु जघने या जीवनं जल्पिते
तेजः सम्भृतिरुन्ननामुख चितौ प्राणा समालिङ्गने ।
नाभौ व्योमतमः शिरोरुहचये सत्तकं सिद्धमनो
मध्ये सा क्वनु मन्मथस्य सुषमा धातुर्विभूतिर्गता ॥४४॥

लीला सम्भार पूरां सुरभिमदमहा कुम्भी कुम्भस्थल श्रीं
राजज्जाम्बु नदाली सुघटित कलशासङ्गिनी चञ्चलाक्षीं ।
कूजत्कादम्बकाञ्ची कलकल रमणी राजहंसी बिहारां
राधां राजीव रोमां मनसिज सरसो सङ्गतोऽहं कदा स्याम् ॥४५॥

बारं बारं बनाली भ्रमरपिकबधू चक्रवाकीचकोरी
केका कण्ठी कपोती कुलकल रणितैः कुण्ठहृत्कर्णकण्ठः ।
एवं कारं मुरारिः कुसुम शर समारम्भ सम्भिन्नमर्मा
राधा बाधा विधूतोऽगदददति करुणं कुन्द कान्ते घनान्ते ॥४६॥

श्रीमत्कृष्ण सरस्वती गुरुपदद्वन्द्वाम्बुजानन्दिना
धीर श्रीमधुसूदनेन यतिना नन्दात्मजप्रीतये ।
यद्गोपाल विलास संज्ञितमिदं काव्यं कृतं कौतुकात्
तत्राख्यात मुकुन्द मुग्धगदितः सर्गोऽगमत्सप्तमः ॥४७॥

—:०:—

अष्टमः सर्गः

अथ समीक्ष्य सखीं मधुसीदतुः प्रियतमां नलिनीमिव दूतिका ।
हृदि निधाय तमेव सजीवनां, शशिकरैः शिशिरैः परितापिनीम् ॥१॥

धृत पटीरपयः सदुशीरिका कमलिनी व्यजनानिलबीजिता ।
मति सुसह्य सखीगण पाणिभिर्मृदित पादतलां मृदुचन्दनैः ॥२॥

आर्यं ! पिकावलि मञ्जुल जल्पिते, पिहित कर्णपुटी मुहुरालिभिः ।
मधुकल क्वणित भ्रमराङ्गना, सरस सारस घोष हृतश्रुतिम् ॥३॥

सहचरी वचन श्रुत माधव श्रवणमामिलितैः पुलकाङ्कुरैः ।
श्वसिति किं किमु नेति विशङ्किनीविदधतीविधिना तुषिता सखी ॥४॥

धवल पङ्कज तल्प वपुः श्रिया, हिम गिरीन्द्र दरी कनक द्युतिम् ।
विदधतीं दधतीममृतद्युतिं दिवमिवोग्र कुहेलिभिरावृताम् ॥५॥

मुखरुचा मिहिकाकलुषीकृतं विरह राहुहतं हिम दीधितिम् ।
विदधतीं सितहार सुतारकां हिमतमी सदृशीं हरिचन्दनैः ॥६॥

स्खलित कुन्तल शैवल शालिनीं, विरत वारणराज गतागताम् ।
मलिन मीननिकेतन नीरजां गत मराल विहार पिकस्वराम् ॥७॥

कमलिनी मलिनीकृत काननां नव पयोदतनुं मनसागताम् ।
खर निदाघ नदीमिव राधिकां वरतनुं शयितामवच्छदैः ॥८॥

अष्टभिः कुलकम्

अयि ! कथं मृदुलाङ्गि मधुद्विषः प्रिय सखि प्रथसे हृदय व्यथाम् ।
विरचय त्वरितं मधुसूदनं स्मरशर व्यथितं शिशिरं मनाक् ॥९॥

कथमपि प्रमथेशगतक्रतुप्रमुखलेखवधूमद हारिणी ।
त्वनयसे कुसुमेषु शर व्यथां प्रियतमे सति नन्दतनूद्भवे ॥१०॥

इति वचोऽमृत वीचि सकाम्यया नयन नीरज चञ्चलनीरया ।
नव कदम्ब समाम्बुरुहश्रिया मृगदृशाददृशे प्रिय दूतिका ॥११॥

चिकुरपाशमपास्यतदास्यतः सरसिजादिवशैवलमञ्जरीः ।
अकृत बद्ध मधुं प्रिय दूतिका करतलेन मुखं मुहुरामृशत् ॥१२॥

कचकलापमवेत्य पयोमुचं वदनमम्बुजसद्म सहोदरम् ।
किमु चकार तदा शरदङ्गनादिवमबालसुधांशुमनम्बुदाम् ॥१३॥

पुनरपि प्रसरद्वदन श्रियं हरिसमागम लालस मानसाम् ।
प्रियसखीमवदत्प्रियदूतिका निदधतीवमधूनिकृशाङ्कके ॥१४॥

अमृत शीकर सीधु सहोदरैः, वचन वीचि भरैः मृत जीवनैः ।
कुसुम कार्मुक जर्जर मर्मणो, मधुभिदो हृदिदाहमपाकुरु ॥१५॥

भ्रमर यौवन भङ्गि मनोहर, भ्रु वि विलासवतो मधुभित्प्रिया ।
वरतनुं शरदुज्ज्वल चन्द्रिका, स्मितमुखी सुमुखीमिदमागदत् ॥१६॥

व्रजजनीरमणः किलमानिनी, परवशोभविता स्मरमार्गणः ।
कथमिमां स्मरति, स्मर सुन्दरः, स्मरकलाचतुरोहरिसोदरः ॥१७॥

अयियदर्जितया सुखधारया, मम भवेन्न कदापि समागमः ।
सखिजनैः शयितास्म कुशेशये, तदमला चरितैः किमतः परम् ॥१८॥

विहसिता विलसन्मुखमण्डले, समुदयन्ति विरोधि गणेऽनिशम् ।
प्रिय सखी नयनेषु च वारिधिः, मम विलोकनतः किमतः सुखम् ॥१९॥

न मिहिका महसोऽपि धनंजयः, समुदयादिकिमद्भुत दोहदैः ।
मृदुपटीर समीरणतस्तथा, मम परं किमतः सुख सम्भृतिः ॥२०॥

व्रज, तमालि, पुनर्वद सङ्गिरा, प्रियतमप्रथितं भवतोयशः ।
अति सुखादपुनर्भव साधनं, तव वचोऽनुकृति पिकहुङ्कृति ॥२१॥

भजसुखेन वनं मधुसूदनप्रियतमा सुलतासुमुदं वह ।
अहमपि त्वरितं परमापदा विघटिताभवितास्मि घन स्वनैः ॥२२॥

मम धरावलये यशसस्ततिः, समुदगाद्भुवतः कृतिनः कृते ।
ध्रुवमिदं दिवसे किमहोत्तरे, ननु गुणैः समुपैति हरेः पदम् ॥२३॥

इदमवादि यदा हरिणी दृशा, कृशतनुप्रसरत्कनकश्रिया ।
तदवबुध्य तदा प्रियदूतिका, सशपथं पुनराह हरिप्रियाम् ॥२४॥

विरम मर्मभिदो वचनाशुगान्मुरहरप्रियकारिणि राधिके ! ।
न भवती यदि यास्यति काननं, मधुरिपुः कथमेष्यति कौतुकम् ॥२५॥

भवति किं कल हंस विलासिनी, कमलिनी विधुरा मधुरा बनी ।
किमु रसाल महीरुहमञ्जरी, रसिक कोकिल मानस रञ्जिनी ॥२६॥

यदि कदापि मधुव्रत संगतः, चपलतामभजन्मधुसूदनः ।
तदपि नो भवती भजतु व्यथामतिचलोऽपि प्रियः, प्रिय एव हि ॥२७॥

कुमुदिनीपतिना विपिने लता, विलसिता दधते मुदमुन्नतीः ।
कुमुदिनी न करोति तथापि किं, सुतनु तं मुदितं विहसन्मुखी ॥२८॥

समुचितं विहितं विधिनाधुना, भ्रमवशाप्युदिता सुरतो हरिः ।
अरचितान्यमधुर्मधुपोभवेन्न सुमनामधुना मधुना यतः ॥२९॥

विरचय त्वरितं गज गामिनि ! क्वणित किङ्किणिकीं जघनस्थलीम् ।
सुरगिरिं हिमधाम करस्फुरत् सुरधुनी शरणीकुरु सुन्दरि ! ॥३०॥

व्रज, वरोरु ! हरिं यमहर्निश मृगयसे मृगशाव विलोचने ! ।
कुरु कृशोदरि कोप पराभवं रचयकान्त मनोभव वैभवम् ॥३१॥

इति वचोमुदिता हिमधामनि प्रसरदक्षियुतं क्षिपति मुहुः ।
हिममयूखकरैर्व्यथितावदत, शित शरैरिव मन्मथ धन्विनः ॥३२॥

किमिदमालि हठात्कुलटाजनी, नयनशल्यमभूद्विधुमण्डलम् ।
समभिसार रसाकुलितापथं, प्रकट कण्टक दुर्गममादधत् ॥३३॥

कथय, किं करवाणि सुधानिधिर्विषशरं किरणं किरतीक्षितः ।
स नु बलानुज जाङ्गलिको वने, वदकथं गमये मधुयामिनीम् ।।३४।।

गिरमिमां मधुरां मधुसूदन प्रियतमामुखचन्द्रगलत्सुधाम् ।
अथ निपीय चकोर विलोचनाऽगददिदं सुदतीं प्रिय दूतिका ।।३५।।

न कुरु तन्वि नितम्बिनिचिन्तनं, रचय चन्दन पङ्किल केसरम् ।
प्रथयमाननिकेत जयस्तुतिं, ग्रथय तामरसं सह केसरैः ।।३६।।

कलय कुङ्कुममञ्जुल तण्डुलान्, दलयमङ्गलगीत सखीगणम् ।
कथय कामिनिभूतपतेः कथां, शमय मन्मथ बाण हुताशनम् ।।३७।।

घटय घर्घरघोष विघूर्णनं, पणव वेणु मृदङ्ग घनस्वनम् ।
क्वणित नूपुर चापल सुन्दरं, युवति गीत शताकुल मन्दिरम् ।३८।।

गृहपतिं वदयामि सखी गणैः फलद गोप जनोश्वर पूजनम् ।
रमण जागर नर्तन गीतिभिः, पुनरुपैमिसमाप्यनिशामिमाम् ।।३९।।

न रमणी, तमृते सुखिनीभवेदपि सुपर्वपतेर्वरवर्णिनी ।
अहमतः करवै मधुयामिनीव्रतमिदं विधुदीधितिरञ्जिताः ।।४०।।

इति गिरापरिवञ्चय वालिशं, गृहपतिं तदनु श्वशुरादिकान् ।
भज, यशस्विनि ! नन्द यशोधनं, सफलय त्वरितं नव यौवनम् ।।४१।।

कृशतनो ! 'कमपूर्वमभूद्भुयं, तव मुखे सति पूर्ण कला निधौ ।
न तमसः दमने शशलाञ्छनो भवति सातिशयोदिन संक्षयः ।।४२।।

तवहरन्मधुजिद्विरहाधिजां, मुख रुचिं हसितं च हरि प्रिये ! ।
परिणतः परिपाण्डर मण्डलः, सितकरः श्रितवान्विपदं विशन् ।।४३।।

किमु कलानिधि मात्र पदाङ्कितस्तव मुखेन समोभविता विधुः ।
क्व नु सुवर्णकला वलिताननं रजत रोचिरसौ क्व नु चन्द्रमा ।।४४।।

तव नखावलिभिः सित दीधितिः, समधिया विधिना तुलयाधृतः ।
पुनरयं समभूद्धृतलाञ्छनो, नखरुचा विजितः खलुरुद्युतिः ।।४५।।

तव कृशाङ्गि ! शशी नयन त्विषामनुचरिष्ठ सिताम्बुज राजिषु ।
द्युति व्रतो हृदय प्रभयाक्षयी, किल सदोषतया विधिना कृतः ॥४६॥

हरिदियं दधते हरिणा बिना, त्वमिव चन्द्रमुखं सखि पाण्डरम् ।
इह ततः सित ताम रसभ्रमान्निपतिताङ्कमियन्मधुपावली ॥४७॥

हरिपद प्रभयैव समुगदतो, हरिमुखेन समं तुलनां दधत् ।
हरकृशानुदृशाम्बुज जन्मना, कृशतरो विधिना विदधे विधुः ॥४८॥

पुनरयं किल ते वदन त्विषां, सम रुचिं चकमे हिमदीधितिः ।
वरु भूधर मूर्धनि सङ्गतो, भृगु निपातमतो बहुधाव्पधात ॥४६॥

आर्यं कृशोदरि ! ते मुख रोचिषामनुचरौविधिना विदधे विधुः ।
इति करैः घनसार रजोभरैस्तव तनोति तनोरनुलेपनम् ॥५०॥

अतुलितैस्तपनीय गणैः कृतं, मुखमिदं विधिना तव सुन्दरि !
तुलयितुं विदधेऽथ विधुं तुलां, रजतमात्रमयुगुंणताङ्कुराः ॥५१॥

तव बने गमनाय सुधानिधिर्मुरहर प्रहितः किमु कञ्चुकी ।
गतभयं यदयं कुरुते करं, मधुभिदो दयिता हृदयादिषु ॥५२॥

मुख विधोः सुषमालवकामुकः, किमुदगादमृतद्युति मण्डलः ।
विहत रागफलोऽथ गताम्बरः, प्रचुरभूतिरभूत्तरिपाण्डरः ॥५३॥

अयमगादुयगङ्गमथाम्बरं, सिततरंश्रितवान् द्विजनायकः ।
हृदि दधाति हरेरमलंमहस्तदुचितं सकलोनिजधर्मतः ॥५४॥

मृगदृशो मनसो हरिणस्य किं, शशिरुचिर्मदनोक्तवागुराम् ।
अयमपीह नभो गहनं गतो, नियतितोऽतिचलोमृगलाञ्छनः ॥५५॥

अयि वणिग् वनिता नु विभावरी, तव तमोरनुलेपन साधनम् ।
इदमपूरि सुधानिधि मण्डलं, स्फटिक सम्पुटकं मृग नाभिना ॥५६॥

तदलमालि भयेन, भजस्व तं, मृग किशोर विलोल विलोचने ।
व्रज बनं, घनसार कराञ्चिता, सुतनु मन्मथ तापमपाकुरु ॥५७॥

सैवं सुधानिधिमुखीमभिधायराधां
बाधां विधूयकुसुमायुध सायकानाम् ।
वृन्दाबनाय गमनाय चकार बालां
बालातप प्रतिमकुङ्कुम रिञ्जराङ्गीम् ॥५८॥

राधापि शारद शशाङ्क मुखी सखीभिः
शृङ्गार सिन्धुमभिनन्दयितुंमुकुन्दम् ।
राकेव साकमुडुभिः समुदञ्चदिन्दुः
शोणाम्बरं वरतनुः समलञ्चकार ॥५९॥

काञ्ची जगद्विजयिना कुसुमायुधेन
प्रोद्दाम हेम रसना रचिता मुरारेः ।
बद्धुं पदद्वितयमिन्दुकला कलापं
बन्द्यं, बबन्ध बनमालि बधू नितम्बे ॥६०॥

विद्युन्मालेव बाला चरणपरिसरत्कान्तिभिः कामवापी
किं वा बिम्बाधर श्री, करपदरुचिभिः शोणराजीवराजी ।
धम्मिल्लोत्फुल्लयुतिभिरतिलसन्मौक्तिकानाञ्चदाम्ना
किं बेणीमीनकेतोर्मुरहर रमणी सा यियासुस्तदासीत् ॥६१॥

श्रीमत्कृष्ण सरस्वती गुरु पद द्वन्द्वाम्बुजानन्दिना
धीरश्री मधुसूदनेन यतिनानन्दात्मज प्रीतये ।
यद्गोपाल विलास संज्ञितमिदं काव्यं कृतं कौतुकात्
तस्मिन् राधिकया समं सखिगिरा सर्गोऽत्यगादष्टमः ॥६२॥

—:०:—

नवमः सर्गः

प्रस्थातुं धृत हृदयां विलोक्य राधामानन्दस्थगिततनुं तदातदाल्यः ।
प्रेमार्द्राः कनकलतां प्रियां मुरारेः सिञ्चन्त्योमधुवचनैः प्रमोदमीयुः ॥१॥

कोटीरं कनकमयं रथं त्वदीयं केयूर द्वयवलयावली रथाङ्गम् ।
आरूढस्मर विशिखाकुलोऽपि कामं संग्रामं मुरविजयी चिरं विधाता ॥२॥

तद्वाले कुचकलशद्वयोपपन्नं रोमाली मरकतकेतनं स्मरस्य ।
प्रेमास्त्रं रस रसनं मनस्तुरङ्गं तन्वङ्गि प्रिय समिधं रथं नयस्व ॥३॥

राधैवं विधुवदना वचः सुधाभिः संसिक्तां हसितमुखी सखी समक्षम् ।
वक्तव्यो गृहदयितस्त्वयेति दूतिंमन्दाक्षस्थगित दशाकृशाङ्गचपश्यत् ॥४॥

सा स्मेरा हरिदयिता दृशोर्विलासैस्तंगत्वा पशुपसुतं विमोहयन्ती ।
प्राहैवं प्रियवचसा प्रियात्वदीया सौभाग्यं शिव चरणादभीप्सतीयम् ॥५॥

गौरीश शशिकिरणाङ्किते बनान्ते सम्पूज्योमधुरजनीष्वयं जनीभिः ।
ताम्बूलं कुसुम बलिपटीर पङ्कं कर्पूरं दधि पयसी निवेद्य तस्मै ॥ ६॥

स्यादेवं ब्रजजनतापतेः प्रियायाः राधायाः भुविरमणी समा नकापि ।
नैवं चेद्वन विबुधाकुलाकृशाङ्गी प्राणानामपि भवनं कथं भवित्री ॥७॥

तत्र त्वंवद यदियं करिष्यते ते पदमेशा शशिवदना कृशालसाङ्गी ।
राधायाः प्रियकरणं हितं मतं मेकल्याणं यदिभवतः कुले कथञ्चित ॥८॥

इत्येव श्रुतवचनः प्रफुल्लगण्डः प्राहैनामतिमुदितः सगोपसूनुः ।
चिन्ताब्धौ किमु भवती निमज्जतो मेसन्ततुं तरिरभवद्विधातृसृष्टा ॥९॥

तो गेहे न च यमुना तटे पटीर क्षोदाम्भः कण पवनैरुपैति मोदं ।
नोभुङ्क्ते न च कुरुते जलाभिलाषं नालीभिः सह कुरुते ‹ हः रुमाजन् ॥१०॥

नो तल्पे न च वसुधातले सखीनां नैवाङ्के न च कमल प्रवाल जाले ।
सातोषं भजति मनागपीह बाला प्रालेयद्युति किरणैरुपैतिदाहम् ॥११॥

किं वाच्यं हरिण दृशो दृशोर्विकासो नानैकैर्भवति भिषग्वर प्रयासैः ।
ईदृश्यामपि विपदि त्वदीय वाचा मन्येऽस्यां हरिरभवत् प्रसन्नचेताः ॥१२॥

देवोऽसौ विपिनभुवः प्रसादनीयः पूजाभिर्बलि विभवैः सगीत वाद्यैः ।
सर्वस्वं मम भवती ददातितस्मै राधायां यदिभविता सकामदाता ॥१३॥

श्रुत्वेत्थं मुदितमनाः समेत्य राधां गोपोक्तं गदितवती स्मितं दधाना ।
आनन्दामृत सरसीं विगाहमाना सा चैनांनलिन मुखीं सखीं बभाषे ॥१४॥

तां तन्वीं मधुमथने नितान्त रक्तां दूतीदं विधु वदनां पुनर्जगाद ।
द्रष्टव्यो यदि विपिने सकेशिहन्ताकोऽयंते हरि दयिते ! तदा विलम्बः ॥१५॥

मन्दान्तः स्मितवदना ततः कथञ्चित्, स्मेरान्तामिदमवदन्मुकुन्दरामा ।
वक्तव्यं तव यदिमा मृदालिमालागन्तव्योचित विभवं यथा विदध्युः ॥१६॥

इत्युक्त्वा नयनिपुणावदत्प्रियाली राधाया बन गमनोचितं विधातुम् ।
श्रीखण्डद्रव कलशंकदम्ब मालां ताम्बूलान्यपि जगृहुः पुनः प्रयुक्ता ॥१७॥

अन्यद्वा रसिक मणेः प्रियं यदासीत्कर्पूराद्युपकरणं तदाददाना ।
प्रेमाम्भःस्थगित दृशः क्षणं कृशाङ्ग्यः सम्प्राप्ताः परम मुदं मुकुन्दचित्ताः ॥१८॥

दध्वानाम्बुद निनदध्वनिमृदङ्गः शंखानामपि मधुरं बभूवनादः ।
घण्टानांध्वनिरुदभूद्दिवं प्रकुर्वन्नानन्दोभुवन जये ससिंह नादम् ॥१९॥

पुष्पेषोरिवधनुषो मधुव्रतानां वीणानां मधुररवस्तदाविरासीत् ।
कान्तानामधररसंवमन्निवोच्चैःवेणूनामपि निनदः समुज्जजृम्भे ॥२०॥

कंसारेरिव मुरलीखोऽङ्गनानां वंशीनांनिनद परम्परा प्रवृत्ता ।
न्यक्कारं जनितवती प्रसून चाप ज्याघोषेकुसुम शरासनस्य राज्ञः ।२१।।

त लानां वलयकुलारवाकुलानां, काञ्चीनांकल रणितैः करम्बितानां ।
टङ्कारोऽजनि गमने हरिप्रियायाश्चीत्कारं किमुमदनद्विपश्चकार ।।२२।।

मञ्जीर ध्वनि तरुणीपदप्रचारैः कांस्याली कर कमलक्वणत्कृतैश्च ।
यज्जातं तरुणमनस्तुरङ्गमाणां, संक्षोभे स्मर करिणः सकण्ठगजम् ।।२३।।

दान्तानामपि मनसांधृतीर्धुनाना राधायाः रतिजनिकां समृद्धयन्त्यः ।
बोणाभी रस सरितः प्रवाहयन्त्यः सङ्गीतं मुर मथन प्रियालिमाला ।।२४।।

गायन्त्यो मधुमधुरं हरेश्चरित्रं जीवातुं भव दहनेन दाहभाजाम ।
निर्दग्धं मदन तरुं पुरारिदावात्कारुण्यादिव सिषिचुर्वचः सुधाभिः ।।२५।।

युग्मम

तन्मध्यं मधुरतरं गतानताङ्गी, सङ्गीतामृत सरसीं विगाहमानाम् ।
शीतांशु द्युति नलिनी मृगाज जालं, किं हंसो स्मितवदनादधार राधा ।।२६।।

तन्वङ्गी कुचभारमुद्वहन्ती, रम्भोरु कमल पदा नितम्ब गुर्वी ।
मत्तेभालसगमना शिरीशमृद्वी, सोत्कण्ठाद्रुत गमने तथापि जाता ।। २७।।

मञ्जीर ध्वनि कपटात्कुलीनधर्मैः, प्रस्थानेधृतचरणाद्दृढंनिषिद्धा ।
इत्येवं हरि रमणीपदारविन्दे किं रोषात्प्रकटतरो बभूव रागः ।।२८।।

साम्राज्यंमदन महीपतेर्विधातुं निर्मातुंकनकमयातपत्र युग्मम् ।
द्वौ दण्डौ पुरटमयौ चकार मन्ये, राधायां जघन घुनं छलेन वेधा ।।२९।।

चाम्पेयीं रति कुसुमां सुवर्ण वर्णां,शय्यान्तां रतिरमसः समेत्य राधाम् ।
ऊरू किं कुसुमशरश्चकारतस्यास्तन्वङ्ग्याः कनक मये मृदूपधाने ।।३०।।

राधायां किमु त्रिदशैर्विधिर्मुरारेः क्रीडार्थं कनक गिरिंस्फुटंत्रितम्बम् ।
यंगत्वा विगतभयः स्मरः, पुरारीकाञ्चीनां किलिकिलितश्चकार गर्वम् ।। ३१।।

निर्णीतं नयनिपुणैरितिप्रयत्नात्तन्मध्यं विधिरकरोद्विहायसैव ।
नैवं चेत्किमिदमभूद्गुणैकसम्पत् काञ्चीनांक्वणितैः सदानुमेया ॥३२॥

रोमाली वलि विभवैः करम्बिता किं, विद्युद्भिः किमु वलिता पयोदलेखा
सन्देहादनुकवयोद्वितीय पक्षे, नाभ्यन्तर्गतगगनंप्रमाणमापुः ॥३३॥

वीणां किंकनकमयीं विधाय राधामेतस्याः स्तन कलशौ विधायतुम्ब्यौ ।
सङ्गीते मधुरणितां तनुरुहालीं तन्त्रीं तां हरिरमणीं चकार कामः ॥३४॥

कंसारेः कर कमलद्वयावलम्बे, लावण्यामृत सरसी कृत प्लवस्य ।
राधायाः कुचकलशौ चकार वेधापीयूषैः किमुहसितैःभृतौ पुनस्तौ ॥३५॥

राधाया वदन विधोः समुच्छलन्ती हार श्रीः किरण परम्परेति मन्ये ।
नैवं चेत्कुच कमल द्वयं कथं वा संङ्कोचंसततमगात्तदीय सङ्गात् ॥३६॥

धिक्कारंप्रव पनयत्सचन्द्रकान्तंराधायाः करनखरद्युति प्रवालम् ।
पाथोधावपि पतितः पुनः सरागं तं बुद्ध्वाहृदयतले विधिर्विभेद ॥३७॥

आबद्धुं शिवचरणद्वयस्य कण्ठं कंसारेः कुसुम शरासनश्चकार ।
चाम्पेयौ गुण निबहौ तदीय बाहूपाशावित्यपरिणताः प्रकाशयन्ति ॥३८॥

तन्मन्दं नयनिपुणा वदन्ति धीराः, किं वीरः कुसुमशरो रथाङ्गपाणेः ।
निर्दग्धः पुररिपुणा पुनर्मुरारेःभ्रू भङ्गान्नव विभवो बभूव देवः ॥३९॥

माङ्गल्ये विधिर्घटितौभृतौसुधाभिस्तन्वङ्ग्याःस्तनकलशौस्मराभिषेके ।
तत्प्रान्तावरण विधौ शिरीषमाले बालायाभुजलतिकेमधुश्चकार ॥४०॥

नोभूताभुवन तले न वा भवित्री राधायाः कमलदृशः समा नवास्ते ।
इत्येवं शपथ पुरस्सरं त्रिरेखंग्रीवायां किमु विदधेविधिर्वराङ्ग्याः ॥४१॥

कान्दर्पं मुकुरतलं मुखं तदीयं तद्ग्रीवा कनकमयी बभूव मुष्टिः ।
तत्रायं प्रतिफलतोरतीश चापः किं तस्याः कमल दृशोदृशोर्विलासः ॥४२॥

रोलम्बा किमु धनुषः कटाक्षपाताः संजाताः किमुरुचिराधरः पलाशम् ।
कोदण्डाः किमु कुटिले भ्रुवौ तदीये, संक्रान्ते मुकुर तले मनोभवस्य ॥४३॥

मन्येऽहं हरि रमणीमुखं सुधानामाधारं विबुधयति प्रमोद बीजम् ।
कंसारेःकर कमल त्विषाञ्चितंयत्ताटङ्कद्युतिमिषतः सुदर्शनेन ॥४४॥

दन्तालीं तरुणिमवल्लरी प्रसूनां मन्येऽहं नव कलिकावलि मृगाक्ष्याः ।
लावण्यावनि तिलक प्रसून भासातन्नासारचि कुसुमायुधप्रयत्नैः ॥४५॥

तस्यातिक्रमण विधौ यशः क्रियन्मे, यच्छूर्न्यविधिचरितादितोवतस्याः ।
श्यामान्तं कुटिलमपि प्रलुप्त धैर्यं, नेत्रद्भिः परममगाद्विलंघ्यकर्णौ ॥४६॥

भीतानां, शशि शकलात्तदीयभालात्संकोचः कचतमसां यदाविरासीत् ।
साहाय्यं कुसुमशरस्तदा चिकीर्षुः भ्रू वल्लीं किमु सुदृशश्चकारवाऽयम् ॥४७॥

मन्येऽहं कच निचयं हरि प्रियायाः शीतांशोरुपरिगतं पयोद वृन्दम् ।
स्यान्नैवं यदि सलिलं प्रफुल्लमल्ली माध्वीक द्रवमिषतः कथं मुमोच ॥४८॥

धात्राऽस्यां द्युतिरुदपादि कुङ्कुमानामास्येन्दौ त्वतितरला सुवर्णपात्रे ।
कस्तूरी किमु कवरो वभूव राशीभूतेयं हरिवपुषो विभूषणायाः ॥४९॥

किं वर्ण्यं मृग तरुणी विलोचनायाः सौन्दर्यंप्रमथपतेः प्रजापतेर्वा ।
यत्कामं त्रिजगदिदं सकाम कामस्तस्यांयद्भुवनगुरुर्मुरारिरासीत् ॥५०॥

नीलांम्भोरुहसञ्चयं नयनयोः कान्त्योत्क्षिपन्तीमुहुः ।
किञ्चिन्न्यंचदुदञ्चितास्मितसुधाधौतं जगत्कुर्वती ॥
आशां स्वर्णमयीं विधाय करण ज्योत्स्ना तरङ्गोत्सवैः ।
पदस्यांगेण सरोरुहं विदधती वर्त्माथ सागाद्वनम् ॥५१॥

कूजत्कङ्कणकिङ्किणी कणरुणत्कारीक्वणन्नूपुरा ।
किञ्चित्किञ्चिदुदञ्चतिस्म मुरजित्कैशोरलीलामृतम् ॥

चञ्चत्पत्त्ररवाकुलं रतिपद वृक्षं समालिङ्गिता ।
राजत्काञ्चन बल्लरीव विपिने राधा दधे विभ्रमम् ॥५२॥

श्रीमत्कृष्ण सरस्वती गुरुपद द्वन्द्वाम्बुजानन्दिना
धीर श्री मधुसूदनेन यतिना नन्दात्मज प्रीतये
यद्गोपाल विलास संज्ञितमिदं काव्यं कृतं कौतुकात्
सर्गोऽसौ नवमो मुकुन्द सुदृशस्तत्रागमद्धात्रया ॥

—:o:—

राष्ट्रिय ... संस्थान
जयपुर ...
पु. ...
क्रमांक 10, 371

दशमः सर्गः

याता ततः कुञ्जरराज गामिनी वृन्दावनं माधव मत्तकासिनी ।
राका शरच्चन्द्र विकास हासिनीतामाह दूतिपिकमञ्जुभाषिणी ॥१॥

आलि त्वमस्मिन्विपिनेगतागतं प्राप्तासिपूर्वं बहुधा निराकुलम् ।
पुष्पेषु लीला वलितं मधुव्रतैः गौरीश पूजासदनं नयस्वमाम् ॥२॥

सम्पूर्णमेतन्मुखैरिसुन्दरी हासेनदुग्धाम्बुधिवीचिजित्वरी ।
इत्थं यदाप्राह तदैव दूतिका प्रोत्फुल्लरोमामिदमाह राधिकाम् ॥३॥
कन्दर्पलीलावलदङ्गवैभवे, तावत्कुरु त्व मुरवैरि पूजनम् ।
यावन्न त्वदीयाचरितामृतैरह सिवत्वा मुकुन्द पुनरेमितेऽन्तिकम् ॥४॥

एवं प्रयुक्ता प्रविवेश सुस्मिता राधासखीभिः सदन पुरद्विषः ।
पद्भ्यामशोकद्रुमपल्लवश्रिया सम्भावयन्तीवभुवपदे पदे ॥५॥

राधा ततःक्षालितपाणिपल्लवा कर्पूर धूपैर्वलिभिः प्रदीपकैः ।
उद्गायन्त्यमन्दं मधुभित्पदद्वय सम्पूजयामास गिरीशमादृता ॥६॥

तस्या कराग्रेण पुरप्रमर्दनः पूजाविधौ शोणतरेण सङ्गतः ।
रत्येव कामोन्नतिचित्तवृत्तया, रवतारविन्देन बभूव पूजित. ॥७॥

ससेवितोऽनङ्गरिपुर्मदातया, पञ्चाङ्गुली चम्पक पञ्चकोरकैः ।
पञ्चाशुगः पञ्चशरोत्तम.नसौ, पञ्चाननने कोपपरः ।कमक्षिपत् ॥८॥

राजीव राजी सहकार मञ्जरी, कल्हाररक्तोत्पल नीपकेसरैः ।
धत्तूर दूर्वागरु चन्दनाक्षतैः महालयङ्गी कुसुमैः सपल्लवैः ॥९॥

कस्तूरिका कुङ्कुमपङ्क पिञ्जरैरन्यैस्तधात्रीदल बिल्व पत्रकैः ।
वादित्र नैवेद्य विचित्र गीतिभिर्गौरी समेत परिपूज्य शङ्करम् ॥१०॥

नन्दस्य सूनौ रमतां निरन्तरं, स्वान्तं मदीयं मयिवास्तुतत्कृपा।
एवं वरं सा सुतनुः पुरद्विषः सम्प्रार्थयामास सरोज लोचना ॥११॥

कामद्विषोऽपि प्रतिलभ्य कामिनी, काम वरं स मुरवैरि सुन्दरी।
एलालतालिङ्गितमन्दमारुत, राकेश शीत विविदे वरे वने ॥१२॥

सम्मूर्च्छयन्तीस्वर मण्डलाभृतां, बीणां समादाय चकार राधिका।
आनङ्ग बाणाकुल नन्दनन्दन, सङ्गीत पाथोनिधिपूर सङ्गतम् ॥१३॥

आलोकयन्तीप्रिय दूतिका पथं, प्रेमाकुलाक्षी मृगशावलोचना।
तस्थौ सखीभिर्मधुभित्पदद्वयं, स्वान्ते नितान्त विनिधाय सातत: ॥१४॥

दूती च राधां मदन प्रमाथिनः सद्मप्रविष्टामवलोक्यसत्वरम्।
कन्दर्प जीवातु कटाक्ष वैभवं, गत्वागदत्तच्चरितं मधुद्विषम् ॥१५॥

वर्षोज्ज्वला श्रीशवनी विराजिनी, राजीवनीं कान्तिहरा हरिप्रिया।
विद्युत् द्युतिः पीन पयोधरत्विषा, विद्योतमानैतितमालतेन्तिकम् ॥१६॥

फुल्लारविन्दानवमालिकाकुला, मल्ली भ्रमन्मत्तमधुव्रतावली।
पुष्पेषु साफल्यकरापिकस्वरा, वासन्तिकी श्रीः समुपैति माधव ! ॥१७॥

इत्थं वदन्तीं समुवाच नन्दज, प्रोत्फुल्लहृत्पद्मलसन्मुखाम्बुजः।
सज्जीकृतः कामिनि ! माधवीशुचौसेकाय ते पावन नीपकाननम् ॥१८॥

वाचं मकुन्दस्य निधाय मस्तके, दूतीप्रतस्थे मुदिताथ राधिकाम्।
सम्पूरयामास मुरारिवाचकैः कल्लोलिनीं प्रावृडिवाम्बु वैभवैः ॥१९॥

विद्योतयन्तीद्युतिमत्तमावनं, तद्वाचमालोच्यबभूव चञ्चला।
मन्दानिलालिङ्गनजात चापला, समुत्थिता दीपशिखेव राधिका ॥२०॥

प्रस्थातुकामांमुरवैरि कामिनीं, दूतीपुनः प्राह कुरङ्गलोचना।
एता व्रजन्त्वन्धकवैरि मन्दिरं कुर्वन्तु सङ्गीतमनङ्गदीपना ॥२१॥

यावत्सरागां पुरुहूत पालितामाशां समालोक्य पुरन्दरानुजः।
राजीविनीनाथकरेणसङ्गतां, कोपाकुलः पश्यतिपाटलेक्षणः ॥२२॥

यावन्मृदङ्गानकशंखनिस्वनैरुद्दीपयन्त्यो मधुमाथिमन्मथम् ।
गायन्तु सख्यस्तवकाननस्थिता, नन्दस्य सूनोश्चरितामृतंमुदाः ॥२३॥

राधा तत प्राह सखी शुचिस्मिता, सम्प्रार्थिता मालिक सुभ्रु वास्म्यहम् ।
द्रष्टुं क्षणं यामि कदम्बकाननं, यूयं यजध्व त्रिपुर प्रमर्दनम् ॥२४॥

सख्यस्तदास्याः पुलकाङ्कुराञ्चिताः, स्मेराननां वीक्ष्यमुख परस्परम् ।
प्रोचुर्वने प्राण समां न राधिकामेकाकिनीं हातुमिहोत्सहामहे ॥२५॥

श्रुत्वा सखीनां वचनान्यवाङ्मुखी, क्षोणीतलं साक्षणमालिखन्नखैः ।
लज्जालसा कोप विलास मांसला, पेतुः पुनस्ताः सुविलोचनत्विषः ॥२६॥

अन्यास्ततस्ता विकसन्मुखाम्बुजा, हास्य प्रियाः प्राहुरलम्विलम्बनैः ।
योग्यस्त्वया शम्भुशिरोनिवेशने प्राप्यः प्रवालः करभोरुकानने ॥२७॥

वक्षोज कक्षोरु कपोलमक्षतं नीव्याममोक्षः कवचंधरक्षणम् ।
पुष्पेषु रङ्गाद्विधिनापि नोवने शक्यानि कर्तुं तव किं सखीजनैः ॥२८॥

इत्थं सखीनां वचनेन सङ्कुचत्पङ्केरुहाक्षीमभिवीक्ष्य दूतिका ।
नायं क्षणः कौतुक योग्य इत्यमूः सम्वार्य राधां परिगृह्य साऽगमत् ॥२९॥

श्रोणीस्तन द्वन्द्वभरेण मन्थरा, विद्धान्तरा शम्बर बैरि सायकैः ।
पद्भ्यां सरोजन्ममयौ मधुद्विषः, प्रेमावलम्बैव वराङ्गना ययौ ॥३०॥

जाम्बूनदी प्राप्तकलेवरा यदि, प्राप्नोति ताराकुलितं नभस्तलम् ।
राधोपमीयेत्तु कदम्ब कानने, कान्त्या तदा निन्दित कामकामिनी ॥३१॥

दूतीं पुरस्कृत्य ततः कुलाङ्गना धर्मं तिरस्कृत्य चकार राधिका ।
लज्जां कुरङ्गीषु वितत्य साहशा, मान मनोज ज्वलने घृताहुतिम् ॥३२॥

मंजीर सिंचद्वलयावलीचलत्कांची निनादैः पदपात मर्मरः ।
झंकार हुकार परम्परार्धितः किं साश्मशानाय चकार मन्मथः ॥३३॥

सारंग कान्ता सदृशेक्षणामिद दूती पुनः प्राहकदंबकानने ।
अस्मिन्बने सुन्दरि नन्दनन्दनः प्राणप्रियस्ते विधुमंडलाननः ॥३४॥

तत्कर्ण पात्रेण वचः सुधासवं पीत्वा प्रमत्तः सबलानुजोऽभवत् ।
कुत्रेति राधा वचनेन चापलं नीतो नितान्तं कमलापति. पुनः ॥३५॥

पाटच्चरः कांचन सार दर्पणो यादृक् सकामो मधुसूदनस्तथा ।
विस्फारयामास दृशौ मृगीदृशः पूर्णेन्दु बिम्बद्युतितस्करे मुखे ॥३६॥

राधा विवाधां परिभूय मान्मथीं शीतद्युति स्फीतमुखे मधुद्विषः ।
मंदाक्ष मंदस्मित सुन्दरे दृशौ चिक्षेप सा मत्त चकोर लोचना ॥३७॥

नन्दस्य सूनोर्मुखचन्द्र चन्द्रिकां पीत्वा चकोरीव बभूव चंचला ।
आनन्द वारांनिधि पूरपूरिता, राधातदाविष्कृतमीनकेतना ॥३८॥

तामीहमानोऽभवदिन्दिरापतिः पीयूष पात्रीमिव पन्नगाशनः ।
राधापि कान्तं प्रतिकाम मार्गणैः भिन्नानना तं गमनाय नाशकत् ॥३९॥

दूती ततः क्लिन्न पयोधरां बरां रोमाङ्कुरोत्फुल्ल कदम्ब सम्पदम् ।
प्रावृद्विडंबीचल पाणि पल्लवां गोपाल भूपाल सुतं निनाय ताम् ॥४०॥

प्राह प्रगल्भाऽथ मुकुन्द बल्लभामानन्दयन्तीव्रजराज नन्दनम् ।
राधे ! क्षणं यामि तवालि सन्निधौ तुभ्यं सरोजावलिमाहराम्यहम् ॥४१॥

एवं निगद्यापससार दूतिका मत्वा निकुंजे निभृतं गतं हरिम् ।
मत्तालिनं केसरराजि रंजितम् वद्धेव पद्मे सवितुः प्रभा ततिः ॥४२॥

दूत्या सखीभिश्च वने समुज्झिता बाला बलारेरनुजश्च चंचलः ।
इत्युच्च चिन्ताकुलयेव लज्जया संभावितासीत्परिरम्य निर्भरम् ॥४३॥

हन्ता मधूद्दाम मदस्य माधवः स्यन्दन् मधुद्रोणिमुखी च राधिका ।
इत्थं तु भीत्या विदधे त्रपासखी तां मुद्रितस्मेर सरोरुहाननाम् ॥४४॥

पाणिद्वयी विम्बफलाधरस्तन द्वन्द्वोऽनुदेशेषु नितान्त कंपिताम् ।
राधां मुरारातिरथावदत्कथं कान्ते भयं ते मम जीवने बने ॥४५॥

आसाद्य राधां स्तन शैलदुर्गमां दन्तीन्द्र मुक्ताफल संकुलां वनीम् ।
कामः किरातो हरिनाद संकुचत् मंदाक्ष दन्तावलमन्तमानयत् ॥४६॥

आकर्ण्य कर्णद्वय पेय माक्षिक द्राक्षातिरस्कारकरं हरेवचः ।
सारंग सेनेव बभूव राधिका रोमाङ्कुरोद्भूतपताकिनी तदा ॥४७॥

नीवीकृत ब्रह्मसुख स्मिताननः साध्वीक्षिताक्ष्या हरिरीक्षितस्तथा ।
उत्तुंग वक्षोरुह कंप भंगुरं मोक्षं मृगाक्ष्याः समवाप कञ्चुकम् ॥४८॥

ऊरू मुरारेः करभोरुरापिता स्मेराननेन्दुर्मृगशावलोचना ।
बद्धापि दोर्दण्ड गुणेन निर्भरं, निव्या विमुक्ताऽथ बभूव बन्धनैः ॥४९॥

तां वैजयन्तीं पुरु कीर्ति हारिणीं सन्धारयामास पयोदसुन्दरः ।
कस्तूरिका राशि करम्बिता तदा, काश्मीर राजीव रराज राधिका ॥५०॥

देवाद्रि गर्वाशनि हेम पर्वतौ, खर्वौ चकाराथ पुरन्दरानुजः ।
दोर्दण्ड वक्षातुल रूढदर्पकः, सोऽपि प्रयातः कुसुमेषु बन्धनम् ॥५१॥

जग्राह रागोद्धतमत्तमाथिनो बन्धूक बन्धुर्मुर वैरिणोऽधरः ।
चञ्चत्प्रबालद्युति तस्करीधनं, भीरोर्मुखे मौक्तिक पंक्तिगोपनम् ॥५२॥

भीरोरुरो जन्म सरोजिनीद्वयं, पद्मालया प्रीतिकरः परः पुमान् ।
पुष्पेषु रङ्गीकर कञ्ज रञ्जितं, कृत्वा ययौ मोद महोदधिं ततः ॥५३॥

कुम्भीन्द्र कुम्भौ करिराज पुष्करे, सौवर्ण रम्भोन्मद हारिणी तथा ।
सन्दारयामासहरिर्नखाङ्कुरैरैसेऽभवद्भृंगमुखे न च क्षतिः ॥५४॥

सिन्दूर रेखानिचितं निरन्तरं रम्भा द्वयं कुम्भयुगं च काञ्चनम् ।
राज्याभिषेके मदनस्य भूपतेर्माङ्गल्यभूति विधिनेव कल्पिता ॥५५॥

सौवर्ण शैलः कदली द्वयान्वितो जम्बू तटिन्या पुलिनप्रभान्वितः ।
कूजद्विहङ्गैः सततं मनोरमो भिन्नो विहारे हरिणा नखाङ्कुरैः ॥५६॥

किङ्कार हुङ्कार क्वणत्कृतै स्ततो, नात्कार सीत्कार रवेण सङ्गतः ।
कुञ्जोऽपि हुङ्कार परम्पराकुलः कुम्भा रमाराव रणैः रवो बभौ ॥५७॥

वद्धः पुरायेन बलि पुरद्विषः कोदण्ड दोर्दण्ड मदश्च खण्डितः ।
पञ्चेषुणा चम्पक दाम बन्धनं, सम्प्रापितः सोऽपि सुवर्ण रेखया ॥५८॥

यास्तासु तस्याः कुसुमेषु सम्पदः या दुर्विभाव्या विधिनापि नैपुणैः ।
नीली सुजाती निबहे समुद्गता, रागाङ्कुरा कुङ्कुम मञ्जरी ततिः ॥५९॥

चाम्पेय राजी मदनेन रञ्जिता, जाता तमालेन च नीप मालिनी ।
किञ्जल्क मालाऽप्यराजितान्विता सम्प्राप्तदेहा रमतेस्म माधवे ॥६०॥

नन्दात्मजे स्वीकृत केलिकानने, सम्मानिते माधव बन्धुना वने ।
मेघोपरिष्टादचिरच्युतेस्तततिः, ताराश्च रेजुस्तरला विलम्बिताः ॥६१॥

जम्बू धुनी या शुचि तापनाशिनी, सा शातकुम्भोज्ज्वलकुम्भ युग्मिनी ।
नीलाञ्चलाभापि रराज रागिणा, सूरात्मजा नीर समूह सङ्गिनी ॥६२॥

अन्धं तमो बन्धन गञ्जनं जहौ, ताराश्च पारावत चञ्चलश्रियः ।
इन्दीवर स्पन्दनमेवनाभवत् भ्रङ्गावली निश्चलतामुपागता ॥६३॥

सञ्जीवनी माररतापि निर्भरं, रक्तापि पीताभगता रता हरौ ।
पीताम्बराभापि निराकृताम्बरा, सा चञ्चला कापि बभूव निश्चला ॥६४॥

या सारसोद्घोषयुताः पिकोक्तयः, शान्तासमन्तात्कलहंस कूजितैः ।
स्पन्दोरु मन्दोप्युदभून्नवाम्बुदे, मुक्तालकानाभवद्विधुपदम् ॥६५॥

ऊर्ध्वं मुरारातिपदं यदार्पिता, पुण्येन केनापि तथापि चञ्चला ।
पाटच्चरी सा पुरटत्विषान्विता, क्रान्ता नितान्तं पतिताऽथराधिका ॥६६॥

पीताम्बरः स्निग्ध पयोदसुन्दरः शान्तायुतौ स्फीत पयोधरद्युतौ ।
संयोजयामास विधुं धनंपनं, तान्ते नितान्तं सचकोर लोचनः ॥६७॥

क्लान्तं विधुं वीक्ष्य पुनः स्मिताननः, तं शारदाम्भोरुहपत्रलोचनः ।
हस्तेन संमृज्य कृतोरुलालनः, कारुण्यवारां निधितामपालयत् ॥६८॥

गङ्गा विहीनावथ हेम शेखरौ, मातुं सरागः स निरीक्ष्य चञ्चलः ।
कन्दर्प वापी रसमग्न मानसौ, रामानुजो निश्चल लोचनोऽभवत् ॥६९॥

राधा ततस्ताम्रविलोचनद्वयीमुन्मीलयन्ती त्रपयावलम्बिनी ।
नीचैः समुच्छ्राय हरेः करग्रहाजग्राह पीतांशुकमाशु सम्भ्रमा ॥७०॥

दुग्धाम्बुधेर्वीचिभरेण राधया स्निग्धेन दृक्पातरसेन सेवितः ।
पङ्केरुहाक्षः पुनरङ्कसङ्गतां मीनाङ्किनी पङ्कचयो यथा दधे ॥७१॥

गण्डेन गण्डं विधुमण्डलाननः स मण्डयामास विलोल कुण्डलः ।
ताम्बूल कल्कं निदधे प्रियाधरे कीराननेदाडिमबीज पूरवत् ॥७२॥

सम्वाहयन्ती कुचपालिपालितं राधा मुरारेश्चरणाम्बुज द्वयम् ।
अङ्गेषु नाङ्गानि विधर्तुमीश्वरी स्मेराननेसक्तमनामनागभूत् ॥७३॥

या विप्रयोगे कुसुमेषु कल्पिता, याश्चाभवन्प्राक्तनचित्तवृत्तयः ।
तास्ताः कथाः संकथयां बभूवतुः पीयूष पूरा मुरवैरि राधिके ॥७४॥

वसन्ते कालिन्दी तट निकट वाटीषु विहरन् ।
न कस्मात्सञ्जातो भुजग बनिता भुक्त चरणः ॥

पुनः पायं पाय हरिहृदय राधा कुचतटी ।
वलत्पाटीराम्भः प्रकटकरणः क्लान्तपवनः ॥७५॥

परीरम्भारम्भे मुरमथन पङ्करुह दृशोः
कृशो जातो वातः स्तन शिखरिणो सन्धिपतितः ।
अकस्मादेतस्याः सुरतपरिभूतेः कृश तनोः
घनश्वासोच्छ्वासात् श्रमजलकणाली निरहरत् ॥७६॥

पथि श्रान्तो दैवादुपगतवनश्चन्दनवनो
जगत्प्राणः स्नातस्त‹णितनयानीर निबहे ।
सरोजन्म श्रेणी सुरभि रस हन्तोरगति या
स्खलत्बारं बारं शरणमगमत्कैटभरिपोः ॥७७॥

श्रीमत्कृष्ण सरस्वतो गुरुपद द्वन्द्वाम्बुज।नन्दिना
धीर श्री मधुसूदनेन यतिना नन्दात्मज प्रीतये ।
यद्गोपालविलास संज्ञितमिदं काव्यं कृतं कौतुकात्
सर्गस्तत्र समाप्तिमाप दशमो राधा हरिक्रीडया ॥

—:o:—

एकादशः सर्गः

अथोच्चकासे पुरुहूतपालिता, दिगङ्गनाभानुकरेण लालिता।
रथाङ्गरामा सुदृशोरुशीलता, तथैव याऽऽस्तकुसुमेषुकीलिता ।।१।।

बभौ प्रबाल द्युति पुञ्जगञ्जिनी, पुरन्दराशाकरि कुम्भरञ्जिनी।
मनोरमानङ्गलताप्रभञ्जिनी, मनस्विनी वल्लिलवित्रसञ्जिनी ।।२।।

वराङ्गना संदधती धृताम्बरा, रराज सिन्दूर परम्परावरा।
निराशिनीं वार विलासिनीं वरामुपानयन्ती स्फुटपद्मसम्बरा ।।३।।

यशो यशोदा सुतशैशवं जना, जगुर्मुदाधिकृत काल गञ्जनाः।
ववुर्वनान्तान्मलय प्रभञ्जना, रतान्त तान्त प्रमदानुरञ्जनाः ।।४।।

हरेः सरागामभिवीक्ष्य राधिका, दिशं सपत्नीव बभूव बाधिका।
दृगन्त सञ्चार मनोजराधिका, तदामुराराति पद प्रसाधिका ।।५।।

हरिप्रसादात्सुरत श्रमं जहौ, हरिप्रसादाय कृतो नु विग्रहः।
हरिप्रसादाभिमुखोपि कातरो, हरिप्रसादादभवद्दिशं मृशन् ।।६।।

हरिप्रियाया मुखमिन्दुसोदरं, हरिप्रियायाः सदन प्रकाशनम्।
हरिप्रियाशामभिवीक्ष्य स व्यथो हरिप्रियाशानुसरोऽपिसोऽभवत् ।।७।।

द्विजालयो माधव चिन्तनं दधुर्द्विजालयो माधव मञ्जुगुञ्जितम्।
हरेश्च गाव. कमलप्रकाशिनो हरेश्च गावः कमलप्रपायिनः ।।८।।

अशोक पुष्पेषु कलाकुलाङ्गना, अशोक पुष्पेषु दधुर्दृगञ्चलम्।
करम्बिता सौरकरेण रागिणा, करम्बिता सौरकरेण रागिणा ।।९।।

तदा पलाशारि निकेतनेन, बभुः पलाशाहरिसूतरञ्जिताः।
अधुः पलाशा हरिनादभीषिता, जगुः पलाशा विहगाः कटुध्वनिम् ।।१०।।

सशम्बरान्ता हरिणाथ पद्मिनी रराज बालारुण कान्ति हारिणी ।
सशम्बरान्ता हरिणाथ पद्मिनी, रराज बालारूण कान्ति हारिणी ॥११॥

अनेकथानेक कुलाङ्गना गणा, अनेकथानेक कुलाङ्गना गणाः ।
हरेर्विहारे न दधुर्वने मुदं, हरेर्विहारे न दधुर्वने मुदम् ॥१२॥

अरिष्ट नादादिव मारकातरा, अरिष्ट नादादभवन्वराङ्गनाः ।
अरिष्ट हन्तुः पदपल्लवाश्रया, अरिष्ट चिन्तां हृदयेषुतत्यजुः ॥१३॥

सुवर्ण कर्णद्वयमिन्दिराधवः सुवर्ण कर्णाभरणेन भूषयन् ।
सुवर्ण केतुर्ब्रज सुन्दरीमुखे सपर्णपूगं विदधे रसाकुलः ॥१४॥

स्तनान्त चेलाञ्चल चञ्चल श्रिया, करेण सिन्दूरभरेण रञ्जितम् ।
स कज्जलं कंसभिदोमुखं ततश्च कार भीरुस्तरसा निरञ्जनम् ॥१५॥

नखक्षताली परभाग पालितं, स्तनद्वयं साधु विलोकयन्हरिः ।
इदं किमत्रेति वदन्कराबुजं, नियोजयामास ततः प्रियोरसि ॥१६॥

तया हसन्त्या पुनरेष पूजितो न किञ्चिदस्तीति चलं दृगञ्चलम् ।
नियोजयन्त्या स्मितलेश सुन्दरे मुखे ऽरच्चन्द्र गभस्ति तस्करे ॥१७॥

गुणच्युतां मौक्तिक पंक्तिमादराद्गुणेन संयोज्य गुणालये गले ।
बबन्धदोर्भ्यामुरसा सरोजयोरुरोजयोर्वामनतां हरिर्दधे ॥१८॥

रतत्रुटच्छं धन मौक्तिकश्रिया विराजमानेन मुरारि वक्षसा ।
तुलां दधानं विरलोडु सम्पदा निशावसानेन नभस्तलं बभौ ॥१९॥

सुधाद्युतिर्मन्दरुचिस्तथाङ्कितां, हृदादधानो वरुणाद्रि मूर्धनि ।
बभौ यथा राजत भाजनं घनं कलङ्कि पङ्केन कदर्यं मन्दरे ॥२०॥

सुकान्तिभांजि द्युतिसत्तमान्यपि स्वभावतोभान्यभवन्निशात्यये ।
वचांसि चित्राण्यपि नन्दनन्दनस्फुरद्यशोराशिकथां बिना यथा ।।२१।।

अनूरु रागेण विराजमानयोः रथाङ्गयूनोरभवन्मनोरथः ।
प्रियागमेशम्बरवैरि सङ्गमा विदर्भपुत्रीमुरवैरिणोरिव ।।२२।।

लवंगिकैलादि लताश्चनिश्चलाः समीरयोगेन विलोल पल्लवाः ।
वभंनिषेधायकराग्रचालना, रतान्तखिन्नाः प्रमदा यथा प्रिये ।।२३।।

सममंरा चञ्चल पल्लवा बभौ, बनस्थली चञ्चल वात रिङ्गिणी ।
सकोकिला रावरतातिरङ्गिणी, द्वितीयराधेव मुकुन्द सङ्गिनी ।।२४।।

रतश्रमाणां हृदयेषु निश्चलं सुखशयानस्य मनोजभूपतेः ।
विबोधनार्थं विधिनेव निर्मिताः कुहूरवा वन्दिवराववन्दिरे ।।२५।।

वभूव चित्रोत्पल नेत्ररङ्गिणी कदम्ब वातेन वलत्सरोजिनी ।
पितुः प्रियं सूतमवेत्य रङ्गिणी, मयूख मालिप्रभया तरङ्गिणी ।।२६।।

ससार सा विश्लथ कुन्तलश्रिया कदम्बभूमीरुहमाश्रिताचलम् ।
प्रियेतितान्तेक्वणितेतुकिङ्किणी, विलासिनीवार विलासिनीव सा ।।२७।।

यदैवमादीन्यभवन् बनान्तरे तदानुरक्ते मुर वैरि राधिके ।
विभाव्य सा मालिकभीरुरागतास्मितानानावीक्ष्य मुरारिमब्रवीत् ।।२८।।

कथं त्वया माधव भोग्य वल्लरी, विमर्दिताभृङ्ग ! शिरीष सोदरा ।
मयूख मालिन्यपि किं पुरस्थितेकलानिधिर्नैव जहाति कौमुदी ।।२९।।

अलक्तकैश्चित्रमुरोमुरद्विषः समीक्ष्य राधामपि लज्जयाकुलाम् ।
पुनर्जगाद प्रसरन्मुख द्युतिर्मृगीदृशांकञ्जदृशं च दूतिका ।।३०।।

यदंघ्रि शोभाशिरसोऽनुरञ्जिनी सपारिजाताविधिशक्रशूलिनाम् ।
सकुङ्कुमश्रीर्मधुपोऽधुनाकथं पदाङ्कितः पङ्कजरेणुरूषितः ।।३१।।

इदं गदन्तीं व्रजनाथ नन्दनःस्मितेन कृष्णीकृत सिन्धुनन्दन ।
कुरङ्गकान्तानयनामधान्मुखे मुखेन्दु चेलांचलपाणिपल्लवाम् ।।३२।।

पुनः प्रगल्भाहनखक्षताकुल समीक्ष्य राधा कुच मण्डल द्वयम् ।
इदं बनं सम्प्रति नो सुखाय मे गजेन्द्र लीलं व्रजत स्थलान्तरम् ।।३२।।

पुरन्दरभ्रातृकरेण लालितौ करीन्द्र कुम्भौ हरिणा विदारितौ ।
सकोऽपि कालोभविता यदा प्रिया तदाबनान्ते सुखिनी भविष्यति ।।३४।।

अलं विलम्बेन मधुव्रतोऽधुना शिरीश मालां वचसा ममोज्झतु ।
पुनः सुधा धामनि विस्फुरत्यसौ कदम्ब पुष्पेषु मुंद विधास्यति ।।३५।।

इदं वचः कैटभहा विरूषकाद्विबुध्य निम्बादपि तिक्तमुत्कटम् ।
क्षणं मुखेन्दौ विरुचिं दधौ पुनः गदाङ्कितः स्वीकृतवान्यथौषधम् ।।३६।।

ततः प्रियायाः सुषमां कलानिधिर्विपाण्डरं गण्डयुगं चमण्डयन् ।
सकुण्डलत्विण्मुख मण्डल श्रिया जगाद सप्रेमसगद्गदस्वरम् ।।३७।।

प्रियेरजन्यां भविता समागमो विधेश्चरित्रादपि मित्र सङ्गतम् ।
तदैवमुक्ता हरिणाह राधिका कथं नु मैत्री तव नाथ पामरे ।।३८।।

सुधा द्युतिं यः कुरुतेहृत द्युतिं, प्रियं प्रियाङ्कादपि यः समाहरत् ।
स ते कथं मित्रमतो ममाकुलं मनोमनोज्ञ ! स्मित शङ्कया वलत् ।।३९।।

ततः प्रियां पद्मपलाश लोचनोहृदाविदूनोप्यगदत्स्मिताननः ।
अमङ्गले भाविनि मंगल ध्वनिः प्रयुज्यते भूमि सुते यथाजनैः ।।४०।।

तथैव कान्ते ममकेलिकण्टके प्रवर्तते मित्र पदं खर द्युतौ ।
ततो गृहान्तर्बहुजीव पालितं व्रजांशुमित्रान्वित तापशान्तये ।।४१।।

निगद्य राधामिति नन्दनन्दनः कलावतीं तांहृदिचिन्तयन्मुहुः ।
यथा दरिद्रः कलधौतसम्पदं, ततः प्रतस्थे सदनं रसाकुलः ।।४२।।

व्रजाङ्गना मंगल गीति सङ्कुलं, समाकुलं मन्थन घर्घरस्वनैः ।
इतस्ततो वत्सतरालि हूङ्कृतैर्गवां कदम्बैश्चनदद्भिरावृतम् ।।४३।।

द्विजार्भकब्रह्मरवेण निर्भरं करम्बितं बेणु मनोज्ञनिस्वनैः ।
गृहे गृहे दीपकरैः कुलाङ्गना कुलैः क्वणन्नूपुर चारु रिङ्गणैः ।।४४।।

बलिप्रकारान्गृहदेव पूजने ददद्भिरुद्दीपित मीनकेतनम् ।
पदायुधाना निनदैर्मनोरमं, मनोरमासक्तमनश्शरारुभिः ।।४५।।

बधान, बन्धंनय, मुञ्च, मोचय, प्रयाहिभाण्डं ममशीघ्रमानय ।
इदं वदद्भिर्व्रजवासिभिर्वृतं मुदानदद्भिर्वृषभैर्विराजितम् ।।४६।।

स्तन्धयानां वचनैः क्वचिद्गिरं, शुकैरितां संतिरयद्भिरोरितम् ।
व्रजार्भकैः प्रेमः सार्द्र मानसैर्यशोसुरारेः प्रथयद्भिराकुलम् ।।४७।।

व्रजं समासाद्य सनन्दनन्दनः प्रविश्यरत्नाङ्गण सङ्गिमन्दिरम् ।
शनैः पदन्यासमधोर लोचनो जनैरतर्क्यः शयनं निजं ययौ ।।४८।।

यदा शयानोऽपि दधार राधिकां, हृदामुरारिर्निशिजात जागरः ।
तदा सपत्नीमिव तां दृशौ हरेः पिधाय निद्राहृदयादपाहरत् ।।४९।।

विधोश्च बिम्बं वरुणाद्रिमस्तके सितातपत्रंनृपतेमनोभुवः ।
गते बनान्ते परिहृत्य माधवे न कान्तिमागाद्दिगरिशाद्भयादिव ।।५०।।

तदैव राधापि विधुं, विधुंतुद ग्रहाधिनाथेनभवत्पराभव ।
विलोक्य याता यमुना तराङ्गिणीं सखी समेतामुरवैरिभाविनि ।।५१।।

यदाबनान्तात्तटिनीं गता बभौ चलालिमालाहरिराग पद्मिनी ।
तदातथाभूत्कुसुमेषुसम्पदा वियोजितं माधव हीन काननम् ।।५२।।

अथोत्थित वीक्ष्य गरुत्मतोऽग्रजं स्फुटांक रूपानसितान्दधत्तिलान् ।
द्विजाधिनाथः पितृ तर्पणाय किं जगाम जीर्णो जलधौ पपात यत् ।।५३।।

नवाङ्गनानामिवकान्तिवीचयः सरोजिनीनामभवन्नवानवाः ।
गते हिमांशौ हिमवारि सम्पदा कुमुद्वतीनां पुनरस्रु विन्दवः ॥५४॥

तदा निमग्नं जलधौ द्विजाधिपं द्विजासमाकर्ण्यजलावगाहनम ।
विधाय कृत्यं पुनरार्द्रवाससोजलाञ्जलिं ते विदधुर्यथाविधि ॥५५॥

द्विजाधिनाथस्य करैर्बिनाम्बरं न कान्तिमेतीति किमु द्विजातयः ।
जलादथोत्थाय दधुस्तपोधना द्विजाधिराजस्य करोज्ज्वलाम्बरम् ॥५६॥

द्विजाः समाचम्य नियम्यमारुतं चिरंसमभ्यस्य च वेदमातरम् ।
मुदाहृदम्भोरुहकर्णिकान्तरा दधुर्मधुद्रोहिपदाम्बुजद्वयम् ॥५७॥

कला निधानं जलकेलि सङ्गतं कलावती सापि विबुध्य राधिका ।
विगाहमाना सलिलं सखी जनैर्जहौ निशाजागर घूर्णनं दृशोः ॥५८॥

मनोजमासाद्य विशिष्ट याजकं वसन्त यागेन सनाथ यामिनीम् ।
मुदाभिषेकं हरिवक्त्र सोमपा चकार किं सावभृथंद्विजेरितैः ॥५९॥

व्रजाङ्गनास्ताः परितः परस्परं प्रियालिभिः सेकमवाप यामुनम् ।
विकासमानोरुपयोधरश्रिया मनांसियूनांस्तिमितानि चक्रिरे ॥६०॥

मधुव्रताः पङ्कजसौरभस्पृहाभ्रमान्निपेतुर्वदनेषु सुभ्रूवां ।
चलत्कराभ्यामपि वारिताभृशं समीर कम्पंविविदुस्सरोजयोः ॥६१॥

कलिन्द कन्या सलिलैः समागमात् चिराद्विमुक्ता वहुदामबन्धनैः ।
कचा बधूनामिति तेषु बन्धुतां गताः पुनस्तैर्नटनं समंदधुः ॥६२॥

नितम्बबिम्बान्यवलम्ब्य मौनिभिर्नितम्बनीनां रसनाकदम्बकैः ।
गुण प्रथिम्ना परितोऽन्तरेश्चतैर्जलेषु नोवाच्यमितीव बोधितम् ॥६३॥

बनान्तदन्तावलकुम्भसम्भवास्तथोत्तमानां कुचपालिपालिताः ।
गुणेन मुक्ताविधिनाऽथताःकृता, ततो नु मुक्त्वाविविशुर्जलान्तरे ॥६४॥

कलिन्दकन्यापि तदा सखीजनैः विगाहिता कुङ्कुममञ्जरी रुचा ।
किमिन्द्रनीलौघविनिर्मिता बभौ करम्बिता हारलतैव हाटकैः ॥६५॥

ततः समुत्थाय सखी समर्थितं यदोरुरागोज्ज्वलमम्बरं दधौ ।
अलङ्कृता कङ्कणहारनूपुरैः प्रदोष राकेव रराज राधिका ॥६६॥

स्रवत्पयोदा कचभार सम्पदा रदद्युते कुन्दमयी हिमोरसि ।
मुखे शरच्चन्द्रधराति पाटला करे सुशीतावनतेन सा बभौ ॥६७॥

ततः सखीभिस्त्रिजगत्सुखावहं यशोयशोदातनयस्य संजगौ ।
पुनः प्रतस्थे पटहादि वादनैः कलक्वणन्नूपुर मंद गामिनी ॥६८॥

इतस्ततो गोकुलवासिबालकैः पशून्नयद्भिः कृतदल्गुनिस्वनैः ।
समाकुलं मञ्जुल दोहनिस्वनं जगाम राधा सदनं निजं ततः ॥६९॥

ततो नु सिन्दूर कदम्बकान्तिभृत्पुरन्दराशाकरिकुम्भ सुन्दरम्
समुत्थितं, सापि बभौ सरोजिनी प्रियं प्रभा मण्डलमुल्लसत्पुनः ॥७०॥

अतिस्फुलिङ्गैः किरणैरलङ्कृतं विधूय धूमध्वजहेलिमण्डलम् ।
अथासुरासृक्चयरोचिषाञ्चितं चकार चक्रं सदृशं मधुद्विषः ॥७१॥

मयूखमाली नलिनीं मनोरमां कुमुद्वतीनाथविमर्दिताननाम् ।
विलोकयन्लोहित लोल विग्रहः समासरत्पादतलेन तांस्पृशन् ॥७२॥

क्रमेण भानुः परिबुध्यपद्मिनींमनस्विनीमस्त्रुमुखीं हिमाम्बुभिः ।
करेण तस्या मुखमामृशन्मुहुः, पपातपादेप्रति स्वरूपधृत ॥७३॥

प्रभात वात छलतः प्रकम्पितापुनः पुनर्नेति मुखं विधुन्वती ।
प्रिये पदान्ते पतितेऽपि नालिभिः प्रबोधिताप्युन्नतमानमुज्जहौ ॥७४॥

मयूख माली दयितः सरोजनेर्विधाय यत्नेनमुखप्रसाधनम् ।
निरीक्ष्य तस्या गरलातिमानना करेण जीवातुकरो निराकरोत् ॥७५॥

अथाब्रुवन्नन्दमुखा व्रजेश्वरीबलानुजक्वेति विलोक्य बालकान् ।
सवेणुभेरीदरशंख निस्वनात्पशून्वतान्तंनयतः समन्ततः ॥७६॥

तदा यशोदापि गृहात्गृहान्तरं विलोकयन्तीमृगशावलोचना ।
क्रमेण याताशयनं मधुद्विषः सुखं शयानं च निरीक्ष्य सासुतम् ॥७७॥

सरोहिणीतन्मुखचन्द्र सौभगं पिबन्त्यमन्दंकररोचिषोऽजितम् ।
जगाद सप्रेम मनोहराक्षरंक्षरन्मतीमुद्रित पद्म लोचनम् ॥७८॥

दिवाकरोल्लासि करैश्चतुर्दिश प्रकाशयन्त कमल प्रकाशिनः ।
तथापि सुप्तोऽसि पितुर्निदेशतो जहीहि निद्रां शतपत्र लोचनः ॥७९॥

सुखं सखायस्तव वृत्तभोजना व्रजन्ति वृन्दावन खेलनोत्सुकाः ।
कथं रजस्यां परिहृत्य भोजनं बनंगतोऽस्तीति न वेद्मि चञ्चला ॥८०॥

त्यजाशुशय्यामभिषेकमाचर प्रभात भोज्यानिगृहाण पुत्रक !
सहस्र गो गोभिरलङ्कृतं बनं प्रयाहि गोभिः सखिभिस्समन्ततः ॥८१॥

यदा यशोदा प्रमुखा व्रजस्त्रियो बभाषिरे न्यस्त कराब्जिदं पदे ।
तदाहरोन्मिलितरक्त लोचने नियोजयामासहरिस्तदानने ॥८२॥

ततस्तु दोर्भ्यां परिरभ्य निर्भरं चुचुम्ब पुत्रस्य मुखं व्रजेश्वरी ।
विमर्दयन्पाणि तलेन लोचने तदा मुकुन्दः शयनं जहौ क्रमात् ॥८३॥

अथोत्थितं नन्दतनूजमादरात्सुगन्धितैलेन कृतोरुमर्दनम् ।
व्रजाङ्गनाःकङ्कणरत्नक्वणत्कृतैः घटाम्बुभिस्त सिषिचुर्यशोदया ॥८४॥

विमृज्य गात्राणि च कोमलांशुकैरथादधुः केशकलाप गुम्फनम् ।
बहिश्चपीते परिधाय वाससी जगामभोक्तुं बलदेव संयुतः ॥८५॥

एवं श्रो मधुमाथिनः सुललितं कन्दर्पदाक्षा गुरो ।
जीयात्सच्चरितं सम प्रतिनिशं यद्राधयासम्भृतम् ॥

यश्च श्री मधुसूदनेनयतिना श्री कृष्ण पादाम्बुज।
द्वन्द्वानन्दि मधुव्रतेन कृतिनातत्पाद पद्मेऽर्पितम् ॥८६॥

यदप्यतिमनोरमा सुकवि कालिदासादिभिः।
स्वलङ्कृतपदोन्नतिर्विरचितास्तिकाव्यावली॥
तथापि मम चापलं कविसभासुहास्यास्पदं।
व्यचकार यदि नन्दजोभवतितेन सन्तोषणम् ॥८७॥

किमत्र बहु जल्पितैर्जगतिकोऽस्ति यस्याधुना।
बिनामधु निघातिना भवतिनिष्कलङ्कं वचः॥
ततः परहितार्थिभिःकृतिजनैर्मदीयाकृतिः।
विलोचन पथं क्वचिद्विगतमत्सरैर्नेष्यते ॥८८॥

नधत्तेऽलङ्कारं न पदचरण स्थान नियमम्।
न वा दोषासङ्गं न च रहितमङ्केन यदपि॥
तथाप्येतत्काव्यं परिचरति विष्णोः पदमिति।
प्रियं कर्तालोके परिणतविधोर्मण्डलमिव ॥८९॥

किं निन्दां प्रथयन्तु दुर्जनगणाः किंवास्तुतिं सज्जनाः।
मध्यस्थवर्गुणमेव दोषमपिवा नो वा द्वयं किं ततः॥
चेद्वाणी तटिनी बलानुज कथा गीर्वाण कल्लोलिनी।
सम्पृक्ता विशदापि सर्वमहितासूरात्मजावद्भवेत् ॥९०॥

मद्वाणी सरसी विचित्र सुरसानालीक लीलावती।
स्वच्छान्तः प्रथुरोमहर्ष जननी विश्वम्भरामोदिनी॥
भद्रोपद्रवकारिणः खरमुखा दुष्टाशयाः शूकराः।
रम्णा मा विलसन्तु सन्तिपरितःपञ्चाननाः सज्जनाः ॥९१॥

श्रीमत्कृष्ण सरस्वती गुरुपद द्वन्द्वाम्बुजा नन्दिना
धीर श्री मधुसूदनेन यतिनानन्दात्मज प्रीतये
यद्गोपाल विलास सज्ञितमिद काव्यं कृत कौतुकात्
सर्गस्तत्र विभात वर्णनवदः पूर्णोऽयमेकादशः ॥

श्रीमत्परिब्राजकाचार्य सद्विद्या विद्योतमान श्री मधुसूदन सरस्वती विरचितं गोपाल विलासाख्य काव्यं समाप्तम् ॥ शुभमस्तु ॥ सम्वत् १७२७ समय ज्येष्ठ वदि पञ्चमी ॥

—:o:—

[illegible]

राष्ट्रिय र ... स्थान
जयपुर परिसर
पुस्तकालय
10371